स्मृति शेष

डॉ. रामदरश मिश्र

(15.08.1924-31.10.2025)

समकालीन साहित्य, संस्कृति,
कला और विचार का मासिक

उत्तर प्रदेश

अक्टूबर–2025, वर्ष–50

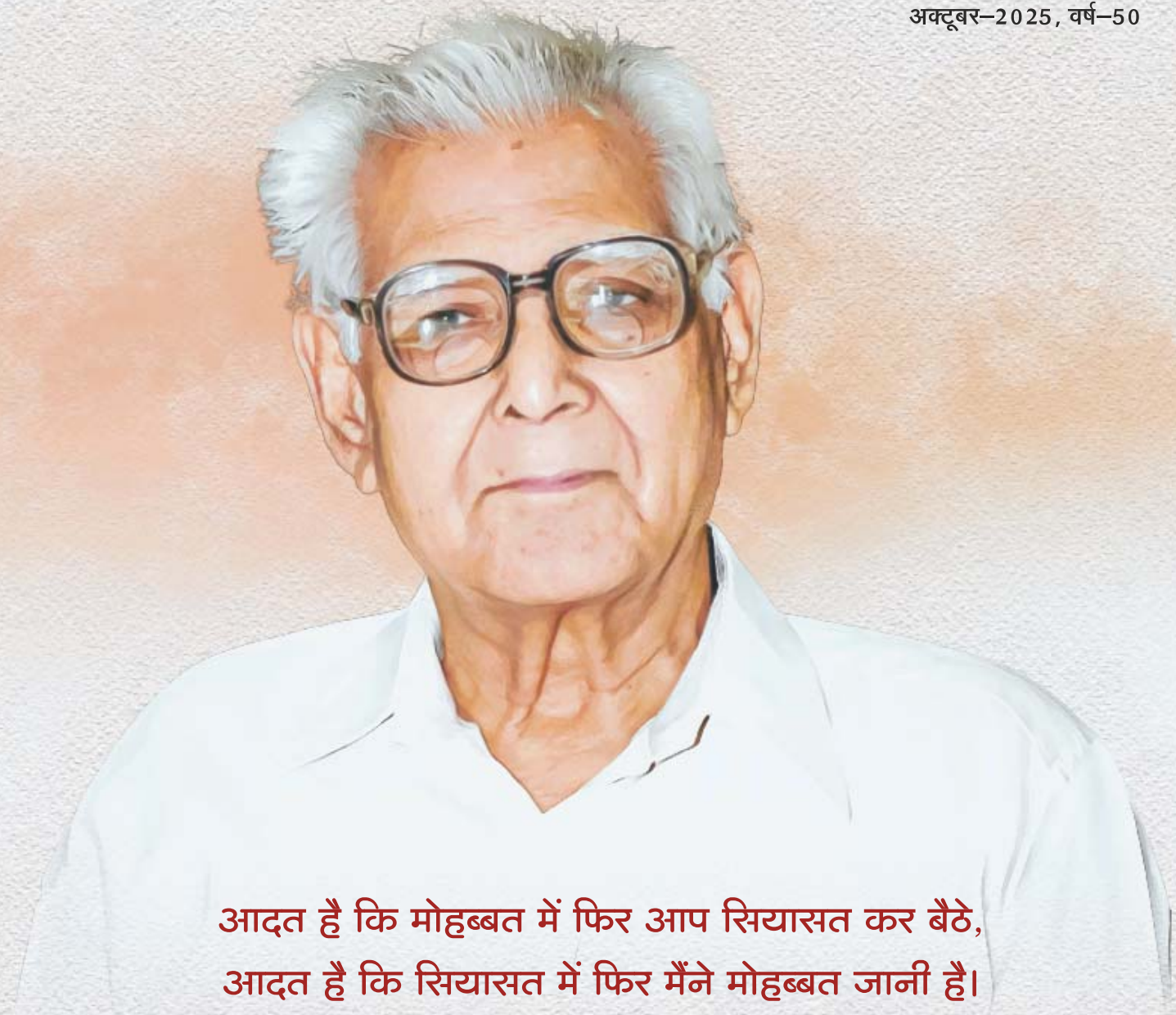

आदत है कि मोहब्बत में फिर आप सियासत कर बैठे,
आदत है कि सियासत में फिर मैंने मोहब्बत जानी है।

जाने क्यों आज गाँव का घर याद आ रहा
उस घर में जो गुजरा है पहर याद आ रहा

कानों में मेरे गूँज सा रहा है आज कुछ
लगता है कि परिवार का स्वर याद आ रहा

लड़ लड़के जिससे ज़िन्दगी को मिल गई सुधा
बचपन के अभावों का ज़हर याद आ रहा

हो देश या विदेश में गुज़रा हूँ बार-बार
पर आज तो रेतों का सफ़र याद आ रहा

फसलों के लिए जिससे लड़ गाँव बार-बार
बाढ़िआई उस नदी का क़हर याद आ रहा

आता था लेके रौनकें त्योहार तो उसका
संगीत से हो जाना मुखर याद आ रहा

हम बच्चे रहे खेलते छाया में जिसकी रोज
फूलों, फलों भरा था शजर याद आ रहा

गीतों से, कथाओं से स्वाभिमान से भरी
माई का ग़ज़ल से सभर याद आ रहा

सौतेली से थे यों तो पिता किन्तु लोक-हित
हाथों में उनके जो था हुनर याद आ रहा

घर की रक्षा के वास्ते भटके कहाँ-कहाँ
मइया का मुझ ज़ख़्मी जिगर याद आ रहा

बेकार है माना कि इन यादों से गुज़रना
रह रह के गाँव दिल को मगर याद आ रहा

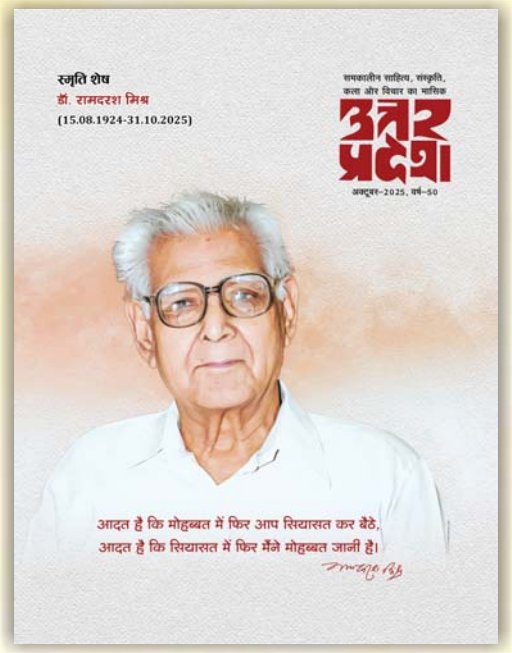

उत्तर प्रदेश

❑ वर्ष–50 ❑ अंक–80
❑ अक्टूबर, 2025

संरक्षक एवं मार्गदर्शक
संजय प्रसाद
प्रमुख सचिव, सूचना

प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी
विशाल सिंह
सूचना निदेशक

सम्पादकीय परामर्श
अरविन्द कुमार मिश्रा
अपर निदेशक, सूचना

सम्पादक
चन्द्रविजय वर्मा
सहायक निदेशक, प्रकाशन

दिनेश कुमार गुप्ता
उपसम्पादक, सूचना

अजय कुमार द्विवेदी
सहयुक्त संपादक

अतिथि संपादक
कुमकुम शर्मा

सम्पादकीय संपर्क :
सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग,
पं. दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर,
पार्क रोड, लखनऊ
मो. : 9412674759, 7705800978
ईमेल : upmasik@gmail.com
दूरभाष–कार्यालय :
ई.पी.ए.बी.एक्स 0522–2239132–33,
2236198, 2239011
पत्रिका information.up.nic.in
वेबसाइट पर उपलब्ध है।

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे मासिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' और सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। –सम्पादक

क्रम

संस्मरण

- कलम के धनी : रामदरश मिश्र — ममता कालिया — 3
- अशोक-हेमंत और गुरुवर प्रो. रामदरश मिश्र — अशोक चक्रधर — 5
- पथ सूना है तुम हो हम हैं, आओ बात करें — डॉ. ओम निश्चल — 11
- मेरे पिता शताब्दी जिनकी सहचर है — डॉ. स्मिता मिश्रा — 17
- रामदरश जी के साथ एक समृद्ध शाम — हरिशंकर राढ़ी — 20
- सहज, सरल और सबके अपने — प्रो. डॉ. अमी दवे — 24
- नब्बे साल की सहचरी चौहत्तर साल से... — मीना झा — 26

कृत्तित्व कुछ मूल्यांकन

- हिन्दी साहित्य में रामदरश जी का अवदान और व्यक्तित्व — विजय कुमार तिवारी — 33
- सहजता जहां एक-एक काव्य निकष है — जितेन्द्र श्रीवास्तव — 38
- मिश्र जी की रचनाओं में बिखरा है, उनके मन में... — डॉ. राहुल — 41
- साहित्य का अव्यय आलोक है मिश्र जी का रचना संसार — चंद्रकला त्रिपाठी — 47
- सर्जना के साथ चलते रहने से जीवन चलता रहता है — डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ — 51
- हिंदी गीत के इतिहास पुरुष — यश मालवीय — 56
- जीवन से निकली सच्ची-सहज कहानियाँ — महेश दर्पण — 58
- समय के सहचर — नीलम चतुर्वेदी — 63

- जीवन को समग्रता में देखता लेखन — योगीन्द्र द्विवेदी — 66
- पानी के प्राचीर और जल टूटता हुआ — प्रदीप उपाध्याय — 70
- ज़िन्दगी की पीड़ा के मुखर रचनाकार — डॉ. शोभनाथ शुक्ला — 75
- रामदरश मिश्र की कहानियां : पीर पराई जानिए — आनन्द प्रकाश त्रिपाठी — 79
- रामदरश मिश्र : बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे — अजय तिवारी — 86
- रामदरश मिश्र : डुमरी के अमूल्य डायमण्ड — धन सिंह मेहता 'अन्जान' — 89
- रामदरश मिश्र के काव्य में किसान और मजदूर — रविशंकर सिंह — 92
- मानवता के सशक्त स्वर हैं मिश्र जी — अजय महताब — 95
- एक नीम मंजरी मेरे आँगन में उतरी काँप उठे लोहे के द्वार — मधु शुक्ला — 98
- एक संवेदनशील रचनाकार को पढ़ना — कुमकुम शर्मा — 105
- सरकंडे की कलम वाला साहित्यकार — सियाराम पाण्डेय 'शान्त' — 108
- स्त्री संवेदनाओं को मुखरता देते हैं उनके उपन्यास — ज्योति कुमारी — 111
- डॉ. रामदरश मिश्र : एक प्रेरक शताब्दी महापुरुष — विनय श्रीवास्तव — 114
- तू दीपक मैं बाती — रेनू सैनी — 117
- काव्य कलश की नई भूमि के हस्ताक्षर — अलका अस्थाना — 120
- बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे — डॉ. रश्मिशील — 122
- यथार्थ के चितेरे कहानीकार-रामदरश मिश्र — अलका प्रमोद — 125
- शताब्दी की स्मृतियाँ : राम का दर्शन — डॉ. सूर्यदीन यादव — 127
- राम का दरश कराने वाले अनमोल रतन — डॉ. यशवंतगिरि के. गोस्वामी — 132
- रामदरश मिश्र के काव्य में प्रकृति चिंतन — कार्तिकेय शुक्ल — 134

- शताब्दियों तक खिलते रहेंगे प्यार के फूल — प्रो. सविता मिश्र — 138
- भूमंडलीकरण और रामदरश मिश्र — डॉ. प्रकाश शंकरराव चिकुर्डेकर — 142

संवाद

- उत्तरजीवन के स्वप्न — डॉ. ओम निश्चल और रामदरश मिश्र की बातचीत — 149

डॉ. रामदरश मिश्र की लेखनी से

- माँ, सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो — 157
- बबूल और कैक्टस — 162
- 'मैला आँचल में लोक-गीत की सर्जनात्मकता' — 165
- मेरा आत्म-संघर्ष — 168
- हजारी प्रसाद द्विवेदी : सर्जना ही बड़ा सत्य है — 172
- विनीतलाल : शिष्य चरित — 175
- रुको ज़रा ओ ज़िन्दगी अभी तो मन भरा नहीं — 180
- कविताएं — 183
- डॉ. रामदरश मिश्र : स्मृति शेष — 191

◆◆◆

सम्पादकीय

प्रातः स्मरणीय श्रृद्धेय डॉ. रामदरश मिश्र जी की जन्मशताब्दी वर्ष में ही हमने उन पर काम करना शुरू कर दिया था। ऐसे रचनाकार लगभग न के बराबर ही होते हैं जिन्होंने पूरी एक शताब्दी को देखा हो। एक ऐसे लेखक जो सदा अकेले ही चलते रहे अपनी राह पर। उन्होंने कभी किसी विचारधारा, किसी वाद का राजमार्ग स्वीकार नहीं किया उन्होंने अपनी चिन्तन-दृष्टि से जो राह बनाई सदैव उस पर ही वे चलते रहे। उन्होंने अपने चारों तरफ एक ऐसी दुनिया सृजित की थी जो उनकी अपनी थी। वे लोगों की कविताएँ सुनते, उन्हें अपनी सुनाते, साहित्य पर देश की भावी पीढ़ी पर चर्चा करते यही उनकी दिनचर्या रही थी। उनके जीवन काल में हम उन पर विशेषांक नहीं निकाल सके इसकी तकलीफ है हमें। बहरहाल अपनी रचनाओं के माध्यम से वे सदैव हमारी स्मृतियों में जीवन्त बने रहेंगे। उनकी एक कविता याद आ रही है-

मैं लिखता हूँ तो
कोई साहित्य-सिद्धान्त मेरे सामने नहीं होता,
होता है अपना और आसपास का जिया हुआ जीवन
और उस जीवन से निकली हुई भाषा
आपका साहित्य शास्त्र
अपने को इसके अनुकूल पाता है तो पा ले,
नहीं तो मसीहा बने रहने के लिए
बंध्या-बहस करते रहिए दूसरों की भाषा में।

रामदरश मिश्र जी की कविताएं हमें इन्सानियत सिखाती हैं। मिश्र जी ने अपनी सृजन यात्रा कविता से ही प्रारम्भ की थी और जीवन पर्यन्त वे अपनी कविता के साथ ही जीते रहे हैं। उनका प्रथम काव्य संग्रह 'पथ के गीत' 1951 में प्रकाशित हो चुका था। 'बैरंग-बेनाम चिट्ठियां', 'पक गई है धूप', 'कंधे पर सूरज', 'दिन एक दिन नदी बन गया', 'जुलूस कहाँ जा रहा है', 'आग कुछ नहीं बोलती', 'बारिश में भीगते बच्चे', 'हंसी ओठ पर आँखें नम हैं', (ग़ज़ल संग्रह) 'ऐसे में जब कभी', 'आम के पत्ते', 'तू ही बता ये ज़िन्दगी' (गजल संग्रह) आदि उनके काव्य संग्रह हैं। उन्होंने कविता की अनेक शैलियों जैसे गीत, नई कविता, छोटी कविता, लंबी कविता और हिन्दी ग़ज़ल में अपनी सार्थक उपस्थिति रेखांकित की है। दुष्यन्त के बाद हिन्दी ग़ज़ल को आगे बढ़ाने में उनका विशेष योगदान है।

रामदरश जी ने समय-समय पर ललित निबन्ध भी लिखे हैं। 'बबूल और कैक्टस', 'घर परिवेश', 'छोटे-छोटे सुख', 'नया सुख' आदि संग्रहों में संग्रहीत हैं। मिश्र जी की सहज भाषा शैली की वजह से ये निबन्ध पाठकों के बीच सराहे गये। उनके उपन्यासों में 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'बीच का समय', 'सूखता हुआ तालाब', 'अपने लोग', 'रात का सफर' प्रमुख हैं। 'खाली घर', 'एक वह', 'सर्पदंश', 'वसन्त का दिन', 'मां, सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो', 'रहमत मियाँ', 'एक दिन अपने लिए', 'विदूषक' आदि उनकी उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। उनकी आत्मकथा 'सहचर है समय', 'फुरसत के दिन' पढ़ते हुए उनके व्यक्तित्व से परिचय होता है।

रामदरश जी की ग़ज़लें अत्यन्त लोकप्रिय हुईं। **बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे** उनकी सुन्दर रचना है। जिसमें उनके व्यक्तित्व की पूरी झलक मिलती है। 'हंसी ओठ पर आंखें नम हैं', 'बाज़ार को निकलते हैं लोग', 'तू ही बता ए ज़िन्दगी' उनके लोकप्रिय ग़ज़ल संग्रह है।

रामदरश जी को सन् 2007 में उदयराज सिंह स्मृति पुरस्कार, सन् 2011 में व्यास सम्मान, 2015 में साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा सन् 2021 में सरस्वती सम्मान से सम्मानित किया गया। अनेक विशिष्ट पुरस्कारों से सम्मानित होते हुए भी उन्होंने अपनी सहजता और सरलता नहीं छोड़ी। उन्हें कभी भी पुरस्कारों की लालासा नहीं रही। उन्हें लिखना अच्छा लगता था, इसीलिए उन्होंने आम आदमी के दुःख-दर्द को महसूस किया और अपनी अभिव्यक्ति में उनको मुखरता दी।

वे उन विरलतम लेखकों में से एक हैं, जिन्होंने भारत में ब्रिटिश काल देखा है। वे स्वाधीनता संघर्ष के भी साक्षी रहे हैं। उन्होंने आज़ाद देश का सवेरा 23 वर्ष की उम्र में देखा था। गुलाम और आज़ाद भारत की तमाम घटनाओं के साक्षी रहे रामदरश जी ने 102 साल की उम्र में इस दुनिया से विदा ली। आज़ादी को सम्भव करने में साहित्य और साहित्यकारों की भूमिकाओं को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता है। 15 अगस्त, 1924 में गोरखपुर जिले के डुमरी गांव में जन्में सुप्रसिद्ध लेखक डॉ. रामदरश मिश्र बहु-आयामी रचनाकार थे। उन्होंने गद्य और पद्य सभी में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है, वे जितने समर्थ कवि थे, उतने ही समर्थ उपन्यासकार और कथाकार भी थे। प्रकाश मनु ने उनके लिए लिखा है, ''साहित्य में आस्था और विश्वास की बात करने वाले बहुतेरे हैं, पर रामदरश मिश्र सही अर्थों में आस्था और विश्वास के लेखक रहे हैं, जो अपने विश्वास को निरन्तर यथार्थ की कसौटी पर कसते रहते थे, और यही चीज़ उनके व्यक्तित्व को विरल बनाती है।''

इस विशेषांक में ममता कालिया, अशोक चक्रधर, डॉ. ओम निश्चल, हरिशंकर राढ़ी, प्रो. अमी दवे और स्मिता मिश्रा के संस्मरण हैं। व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विजय कुमार तिवारी, जितेन्द्र श्रीवास्तव, डॉ. राहुल, डॉ. चन्द्रकला त्रिपाठी, डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ महेश दर्पण, नीलम चतुर्वेदी, योगीन्द्र द्विवेदी, प्रदीप उपाध्याय डॉ. शोभनाथ शुक्ल, डॉ. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, सियाराम पाण्डेय 'शान्त', अजय महताब आदि के लेख हैं तथा डॉ. ओम निश्चल द्वारा लिया गया विस्तृत महत्त्वपूर्ण साक्षात्कार है।

वरिष्ठ कवि-साहित्यकार रामदरश मिश्र नहीं रहे। लेकिन एक सच यह भी है कि वह 'अब भी यहीं हैं और यहीं रहेंगे।' उनकी कविताओं में एक शताब्दी का स्वर है, जहां हमें हल की नोंक से निकली रेखा की गंध और बगिया में झरे आम्रफूल की महक का स्वाद मिलता है। वे जब लिखते थे, तो लगता था जैसे शब्द नहीं, कोई किसान बीज छिटक रहा हो-धरती में, दिल में, समय में। उनकी कविताओं में सादगी कुछ ऐसी मिलती है कि जैसे धूप से चमकते गोबर-लीपे आंगन। उनकी भाषा में कोई प्रदर्शन नहीं था। उनकी कविता में आदमी का विश्वास था, वही विश्वास जो बार-बार टूटता है, और बार-बार जुड़ता भी है। आज जब हम कहते हैं कि वे नहीं रहे, तो यह सिर्फ देह की बात है। वह पूर्ण कवि थे और पूर्णता किसी 'खाने' में नहीं अंटती। वे किसी 'खेमें' में नहीं थे, वे मानवीय संवेदना बहाली के लिए मनुष्यता के पक्षधर के रूप में रचते रहे।

इस विशेषांक में हमें विशेष सम्बल और संरक्षण प्रदान करने के लिए प्रमुख सचिव सूचना श्री संजय प्रसाद जी एवं सूचना निदेशक श्री विशाल सिंह जी की आभारी हूं। उसके सहयोग के बिना इस कार्य को कर पाना सम्भव नहीं था। हमने अपनी तरफ से पूरी कोशिश की है कि साहित्य में उनके अवदान को इस विशेषांक में समेट लिया जाये। अपने मकसद में हम काफी हद तक कामयाब भी हुए हैं पर कुछ छूट गया हो या कोई त्रुटि रह गई हो तो क्षमा चाहते हैं। ओम निश्चल जी के स्नेहसिक्त सहयोग को कभी भुलाया नहीं जा सकता। उनके बहुमूल्य सुझावों और डॉ. स्मिता जी के आत्मीय सहयोग से हमने रामदरश जी की एक लंबी साहित्यिक यात्रा को इस अंक में समेटने की कोशिश की है जो भविष्य में शोधार्थियों, विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। यह अंक आपको कैसा लगा, अपनी प्रतिक्रिया से अवश्य अवगत कराइयेगा। प्रतीक्षा रहेगी।

'उत्तर प्रदेश परिवार' की ओर से रामदरश मिश्र जी को विनम्र श्रद्धांजलि!

कुमकुम शर्मा
अतिथि सम्पादक

संस्मरण

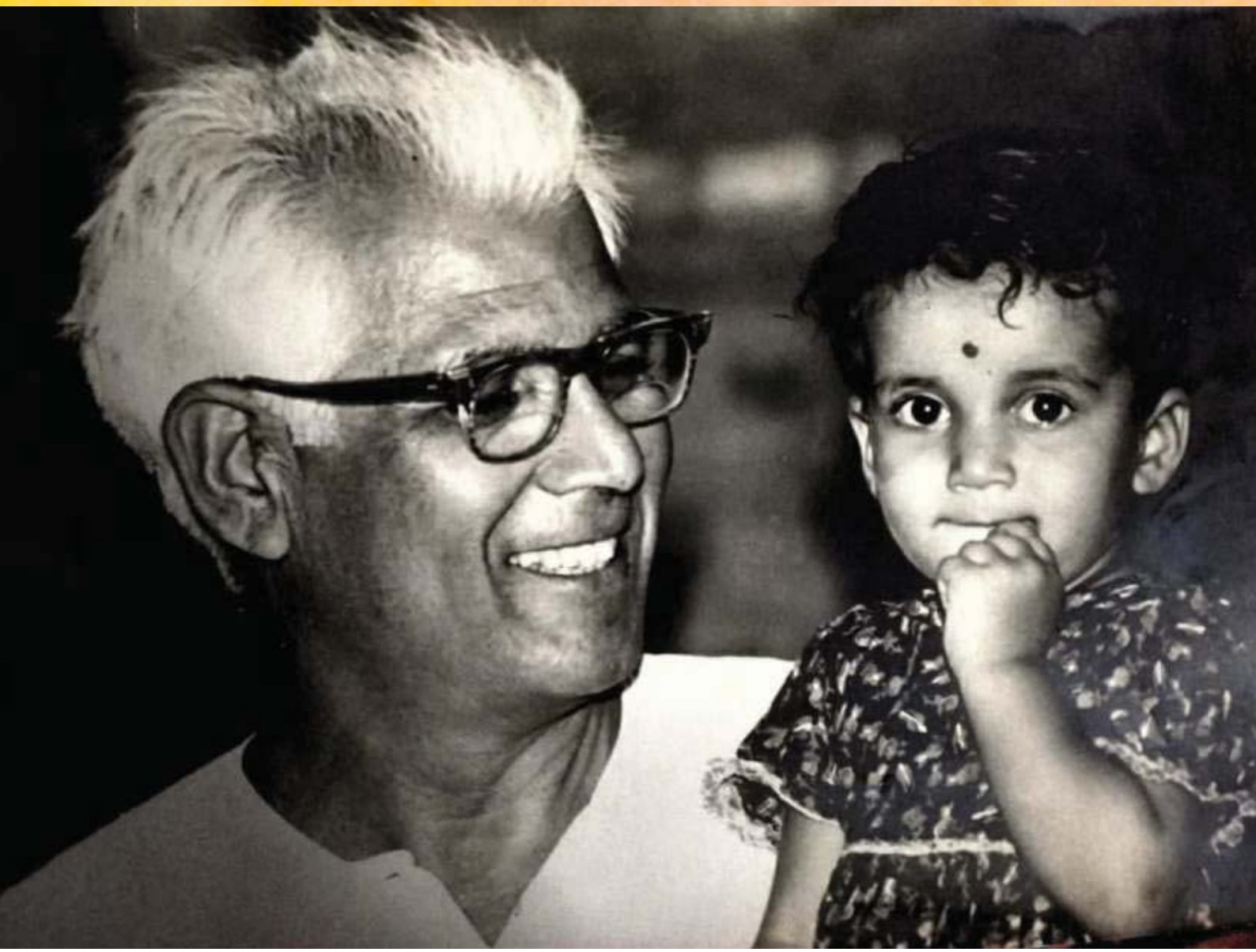

दर्द दुनिया भर का सीने में लिए जाते हैं हम
ज़िन्दगी जीने की मजबूरी जिए जाते हैं हम।

मोहब्बत मिली है मगर धीरे-धीरे

कलम के धनी : रामदरश मिश्र

ममता कालिया

यह शायद 1971 या 1972 की बात है जब लोकभारती के बुक रैक में मुझे रामदरश मिश्र का उपन्यास 'पानी के प्राचीर' दिखाई दिया। नई किताबों के लिए ललक उन दिनों तो आज से कई गुना ज़्यादा थी। मैंने थोड़ी उलट-पुलट कर देखी और 'पानी के प्राचीर' खरीद ली। घर आकर मैंने उपन्यास को पढ़ना शुरू किया तो पढ़ती ही चली गई।

31 मार्च, 1970 को मेरा भी निष्कासन मुम्बई शहर से हो गया। वहाँ से उजड़ कर कहां जाती। ज़ाहिर है इलाहाबाद ही। तब तक रवि ने इलाहाबाद में रानी मण्डी में अपना इलाहाबाद प्रेस जुटा लिया था, प्रेस के ही ऊपरी हिस्से में रहने का फ़कीराना ठिकाना बना लिया था। हिन्दी भवन की छपाई का काम तो अनिवार्यतः करना ही था इसके अलावा रवि को लोक भारती प्रकाशन से भी छापने के लिए पुस्तकें मिलने लगीं। उनका प्रतिष्ठान साहित्यिक पुस्तकों के लिए सबसे बड़ा ठिकाना था। बहुत जल्द आलम यह हो गया कि रोज शाम रवि का स्कूटर सिविल लाइन में लोकभारती प्रकाशन पर खड़ा दिखने लगा। उनकी पीठ पीछे बैठी सवारी में होती। मैं लोकभारती में छत तक गिनी हुई किताबों की कतारें देख कर सोचती, जाने कब होंगी यहां मेरी भी कुछ किताबें।

यह शायद 1971 या 1972 की बात है जब लोकभारती के बुक रैक में मुझे रामदरश मिश्र का उपन्यास 'पानी के प्राचीर' दिखाई दिया। नई किताबों के लिए ललक उन दिनों तो आज से कई गुना ज़्यादा थी। मैंने थोड़ी उलट-पुलट कर देखी और 'पानी के प्राचीर' खरीद ली। घर आकर मैंने उपन्यास को पढ़ना शुरू किया तो पढ़ती ही चली गई।

अब तक के पढ़े शहरी उपन्यासों से एकदम अलग, ग्रामीण परिवेश का ऐसा प्रामाणिक चित्रण! पढ़ते हुए यह भी अभ्यास हो गया कि यह महज़ उपन्यास नहीं वरन् आत्मकथा ही है। विद्यार्थी जीवन में भरी नदी को पार कर लेखक का विद्यालय जाना पढ़कर मेरा रोम-रोम थर्रा गया। बस्ता भीग न जाए इसलिए बस्ता सिर पर, उसके ऊपर गुरूजी को दिया जाने वाला सीधा और अपने कपड़ों को भींगने से बचाने के लिए समेटने का उद्यम/पूरे उपन्यास में उनका शिक्षा संघर्ष और जीवन-संग्राम पढ़कर मैं दहल गई। मन ही मन शर्मिन्दा भी हुई। उनकी तुलना में मेरी शिक्षा तो बेहद आराम और बेफिक्री में हुई थी। अच्छे से अच्छे स्कूलों में मेरी पढ़ाई हुई। एक और बात जिसने मुझे गहराई से छुआ वह थी कि रामदरश जी के लेखन में कहीं आक्रोश का अतिरेक नहीं था।

मुझे याद है मैंने उपन्यास पढ़ कर उन्हें पत्र लिखा जिसका उन्होंने मुझे उत्तर भी दिया था। उन्होंने सघन अक्षरों में पोस्ट-कार्ड लिखा था कि 'आप ने बहुत अच्छे से मेरा उपन्यास पढ़ा। मुझे ऐसे प्रसन्न पाठक पसन्द हैं।

उस दिन मैं सारे दिन फूली-फूली फिरी। उसके बाद उनकी अनेक किताबें पढ़ीं। लेकिन जो असर उस पहली किताब 'पानी के प्राचीर' का हुआ वह अन्य किसी किताब का नहीं हुआ।

इसके बाद एक लम्बा अन्तराल आया जिसमें मैं अपने स्वयं के लेखन और जीवन-संघर्ष में लग गई। उनकी रचनाएँ अखबारों, पत्र पत्रिकाओं में मिलती रहीं। साहित्य की हर विधा में उनकी रचनाशीलता बनी रही। उनके लेखन में ग्रामीण सादगी, अकविता, अकहानी की उठापटक से दूर की चीज़ थी। वे इतने शहरों में रहे लेकिन उनके अंतर का ग्राम हमेशा सुरक्षित रहा। एक कविता में उन्होंने लिखा भी

'कविता का घना प्रभाव रहा
पैसे का सदा अभाव रहा,

बागेश्री, ममता कालिया और अशोक चक्रधर के साथ

रहने को रहा शहर में वह
पर उसमें उसका गाँव रहा।'

विपुल गद्य-लेखन भी किया राम दरश जी ने चौदह उपन्यास, उन्तीस कहानी-संग्रह पांच ललित निबन्ध संग्रह और चौदह काव्य संग्रहों से समृद्ध मिश्रा जी की खूबी यह है कि 102 साल तक मैदान में रहे। उन्होंने न कलम बन्द की न दवात। सरस्वती-सम्मान प्राप्त कविता संग्रह की एक कविता पढ़ कर ऐसा लगता है जैसे कवि को पूर्वाभास था कि कविता उन्हें जिलाये और जिताए रखेगी। उनके शब्दों में,

"तुमने मुझे कितना कुछ दिया मेरी कविते।
जो बीत गया वह भी मुझमें जीवित है
तुम्हारे सहारे।
आज के जलते समय में भी,
मेरा मन पा लेता है कोई धनी छांह
और मनुष्यता के प्रति
मरता हुआ विश्वास
फिर फिर जी उठता है।"

छात्र जीवन में उर्दू की पढ़ाई के कारण रामदरश जी के लिए कविता के साथ-साथ ग़ज़ल कहना बहुत सरल सी बात थी। हिन्दी में ग़ज़ल को ज़्यादा गंभीरता से नहीं लिया जाता। लेकिन रामदरश जी ने कई ग़ज़लें लिखीं जिनमें सबसे अधिक पसंद की जाने वाली ग़ज़ल ऐतिहासिक महत्व रखती है। उन्होंने इस एक ग़ज़ल से अपने कार्यजगत की आपाधापी, वक्त के जुल्म, दूसरों की अतिक्रमण की हड़बड़ी चन्द मिसरों में इस सादगी से बयान कर दी कि वह हम सब के लिए एक दस्तावेज़ बन गई। छोटी सी ग़ज़ल है जो बड़ी बात कहती है। पढ़ने से ताल्लुक रखती है यह ग़ज़ल।

बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे
खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे
किसी को गिराया न खुद को उठाया
कटा ज़िन्दगी का सफ़र धीरे धीरे
जहाँ आप पहुंचे छलांगे लगा कर
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे.....?
पहाड़ों की कोई चुनौती नहीं थी
उठाता गया यूं हर सिर धीरे-धीरे
न हँस कर न रोकर किसी में उँडेला
पिया खुद ही अपना ज़हर धीरे-धीरे
गिरा मैं कहीं तो अकेले में रोया
गया दर्द से घाव भर धीरे-धीरे
मिला क्या न मुझको ए दुनिया तुम्हारी,
मोहब्बत मिली है मगर धीरे-धीरे।

कई साल पहले लिखी इस कविता में कवि ने कितने शालीन ढंग से ज़िन्दगी की वह सारी जद्दोजहद सामने ला दी है जो आज के प्रतिस्पर्धात्मक जगत की सच्चाई है। लोग आगे बढ़ने की उतावली में अतिक्रमण और आपाधापी से भी परहेज़ नहीं करते। हरेक को लक्ष्य तक पहुंचने की हड़बड़ी है। हम सब जानते हैं कि रामदरशजी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक भी थे। वहाँ कई महत्वाकांक्षी दिग्गज भी थे जिन्हें रातों रात महत्व पाने की होड़ थी। इतने लम्बे प्राध्यापन काल में कई बार ये अतिक्रमण के शिकार हुए होंगे। अपने सामने औरों को भौतिक सफलता और महत्व प्राप्त करते देखा होगा। पर उन्होंने अपनी शाइस्तगी नहीं छोड़ी, किसी को गिराया न खुद को उठाया।' अपनी काफी सहनशक्ति लगानी पड़ी होगी मिश्रजी को इस ताबड़तोड़ त्वरा के दौर को झेलने में।

अपने सुरताल में जीने में एक खूबसूरती और ख़ासियत होती है, जिसकी मिसाल यह ग़ज़ल है, इसे रामदरश मिश्र की आत्मकथा भी कह दें तो ग़लत न होगा। अनके जीवन में सुख, सन्तोष, समृद्धि, सम्मान और सद्भाव था। उनसे बात करने पर कोई हताश, निराश, बददिमाग वयोवृद्ध नहीं मिलता वरन् रामदरश मिश्र मिलते थे मीठी मुस्कान और स्वअर्जित स्वाभिमान के साथ। जीवन कैसे जिया जाता है, इसकी जीती-जागती पाठशाला थे रामदरश मिश्र। वे सदैव लेखन और जीवन में अपने समूचे कद के साथ खड़े मिलते थे, स्पष्ट, सुप्रतिष्ठित और स्वाभिमानी। वे हमेशा जयी रहेंगे। ◆

पता : 303/बी, 3-ए टॉवर, सुशांत एक्वापॉलिस क्रासिंग रिपब्लिक, गाजियाबाद, उ.प्र.-201016
मो. : 9212741322

बागेश्री और ममता कालिया के साथ

अशोक-हेमंत और गुरुवर प्रो. रामदरश मिश्र

अशोक चक्रधर

> हेमंत मेरे लिए गुरुवर रामदरश मिश्र की ऊंचाइयों को जानने के लिए एक माध्यम-सीढ़ी की तरह थे। हेमंत मुझे पहले मिले, गुरुवर बाद में, लेकिन हेमंत ने मुझे नहीं बताया था कि वे उनके पुत्र हैं। मुझे बाद में पता लगा।

अतीत चेतन और अवचेतन के बीच का एक धुंधलका जैसा होता है। संदर्भ सहित सकारात्मक प्रसंग जुड़ते जाएं तो अचानक ही कुछ दैवीय उजाला-सा दिखने लगता है। उस प्रकाशावतरण के बाद आसपास की व्यतीतावलियां साकार होने लगती हैं। इन दिनों गुरुवर प्रो. रामदरश मिश्र और उनके दिवंगत पुत्र हेमंत का दैवीय उजाला, मेरे मनस्पटल पर अपने प्रोजैक्शन के दौरान, आउट ऑफ फोकस से शार्प फोकस में लाने के लिए, वक्त के लैंस की किनारी को अपनी स्मृतियों की एक-एक किरण की उँगली और अंगूठे से घुमा रहा है।

मेरे अनुजवत मित्र थे हेमंत और उनके पिता मेरे पितातुल्य गुरु हैं।

हेमंत मेरे लिए गुरुवर रामदरश मिश्र की ऊंचाइयों को जानने के लिए एक माध्यम-सीढ़ी की तरह थे। हेमंत मुझे पहले मिले, गुरुवर बाद में, लेकिन हेमंत ने मुझे नहीं बताया था कि वे उनके पुत्र हैं। मुझे बाद में पता लगा। सीढ़ी प्रसंग पर आने से पहले थोड़ी सी पृष्ठभूमि बता दूं।

सन् बहत्तर में एम.ए. करने के बाद जब मैं दिल्ली आया, तो बहुत दिन तक मेरी देह और प्राणात्मा से मथुरा नहीं छूटी। मथुरा की आशा-निराशा, हाथरस-इगलास-खुर्जा की भावभीनी बानी, खड़ी बोली और ब्रज की मानक भाषाएँ, और पूरे ब्रजमण्डल की संस्कृति-संकृति मुझसे लिपट कर मेरे साथ आई थीं। मथुरा से दिल्ली आने की प्रेरणा देने वाले थे बड़े भाई सरीखे सुधीश पचौरी। 'दिल्ली में मथुरा नहीं छूटी', अगर यह बात मैं किसी और से कहूं तो सोचेगा कि शायद अपने साथ वहाँ का पंडिताऊ बोझा लेकर आया होऊँगा, लेकिन ऐसा था नहीं।

अशोक चक्रधर के साथ रामदरश जी

पंडिताऊपन नहीं था, एक तथाकथित मेधावी छात्र का प्रदर्शनप्रिय पांडित्य था, और उस आधे-अधूरे पांडित्य का हल्का-फुल्का गुरूर भी रहता था। गुरूर का कारण था हिंदी के परम्परित पाठ्यक्रम से अतिरिक्त कुछ ज्ञान। अपने सहपाठियों को पढ़ाने में मुझे बहुत आनंद आता था। वहीं मेरा स्वयं को पढ़ाने का तरीका

हुआ करता था। दिल्ली आने पर वह आदत गई नहीं। कला संकाय और पुस्तकालय के बीच के गोलाकार लॉन में एम.ए. हिन्दी और बी.ए. ऑनर्स के छात्रों को बिन माँगा ज्ञान बाँटा करता था, जबकि मेरा स्वयं तय नहीं था कि क्या करूँगा। लॉन की ऐसी ही किसी बैठकी में सम्मिलित हो गए थे हेमंत मिश्र।

1969 में सुधीश पचौरी मथुरा में मुझे गजानन माधव मुक्तिबोध की एक पुस्तक 'नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध' देकर गए। मैं तब तक इतना ही जानता था कि मुक्तिबोध 'तार सप्तक' के पहले कवि हैं। उनकी पुस्तक पढ़कर मेरी बातचीत में ज्ञानात्मक संवेदन, संवेदनात्मक ज्ञान, संवेदनात्मक उद्देश्य और फैंटेसी जैसे शब्द आने लगे। आगे चलकर एम.ए. में जो पढ़ाई की, उसमें यह नया शब्द-ज्ञान भी शामिल हो गया। शायद इस नए ज्ञान का ही परिणाम था कि चीजों को देखने का नजरिया बदला और भाषा में संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण बदल गए। नंबर खूब सारे आए।

रामदरश जी के पुत्र हेमंत मिश्र जो एक सुप्रसिद्ध अभिनेता भी थे।

तीन लोक से न्यारी मथुरा से भाग कर छुट्टियों में ही दिल्ली आ गया। सामान में कपड़े कम, किताबें ज़्यादा थीं। अपने बहुत प्यारे चाचा जी के घर जंगपुरा में आकर ठहरा। आगे क्या करना है, कुछ निश्चित नहीं था। कोई सी पुस्तक और कॉपी पेन लेकर पैदल ही वहाँ से निजामुद्दीन खानखाना टूम्ब में जाकर पढ़ता था और जो मन आए लिखता रहता था। ताऊजी पंडित गोपाल प्रसाद व्यास मुझे मेरे छुटपन से जानते थे। मैंने 1963 से 1967 तक बालकवि अशोक शर्मा के नाम से लाल किला कविसम्मेलन में कविताएँ सुनाई थीं। पिता के निर्देश पर एक दिन भगीरथ पैलेस उनके निवास पर पहुँचा। मिलकर वे प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा 'दिल्ली ही तुम्हारा भविष्य है। लालकिले पर मैं तुम्हें कवि रूप में चमका दूँगा, दिल्ली विश्वविद्यालय में नौकरी दिलवा दूँगा'। उनकी सलाह पर दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ. विजयेंद्र स्नातक जी के घर राणा प्रताप बाग गया। एम.ए. में मेरी प्रथम श्रेणी, अंक-प्रतिशत और मेरा प्रेमादर भाव देखकर खुश हुए। वे मेरे कवि पिता श्री राधेश्याम 'प्रगल्भ' से भली-भाँति परिचित थे। उन्होंने मुझे दो विकल्प बताए कि 'तुम यहाँ से सीधे पीएच-डी. कर सकते हो या फिर दो वर्ष का एम.लिट। पीएच-डी. करना चाहो तो मैं तुम्हें डॉ. रामदरश मिश्र के पास भेज सकता हूँ, कोई विषय बता देंगे'।

मैं अपनी ऊहापोह कैसे बताऊँ? कविसम्मेलनों में जाना मैं तीनेक साल पहले छोड़ चुका था और तत्काल नौकरी पाने की कोई उत्कट कामना भी नहीं थी। 'छुट्टियां बीतने पर मथुरा लौट आऊंगा', कहकर आया था। वहाँ अपनी जमी-जमाई प्रिंटिंग प्रेस थी, 'संकल्प प्रेस'। मैं और मेरा छोटा भाई मिलकर उसे चलाते थे। मैं दक्ष कम्पोजिटर और अनिल शानदार मशीन मैन। पिताजी प्रेस के लिए काम लाते थे और कविसम्मेलनों में जाते थे। मेरे संकल्प डगमगा रहे थे। पीएच-डी. आगरा विश्वविद्यालय से भी कर सकता था। दिल्ली आकर अभी तक सुधीश जी से नहीं मिला था, लेकिन उनकी पुरानी सलाह पर मुक्तिबोध का काव्य-संकलन 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' आसफ अली रोड से खरीद लाया। निज़ामुद्दीन पर बने खानखाना के मकबरे में बैठ कर मैंने इस पुस्तक की अधिकांश कविताएँ पढ़ीं। उन कविताओं के लिए मकबरे की पृष्ठभूमि बड़ी अनुकूल बैठती थी। कवितागत बिंब-प्रतीक पढ़ता था और मकबरे की जर्जर दीवारें देखता था। मुक्तिबोध ने मुझे बेहद प्रभावित किया। 'समाज परिवर्तन विधियां' जानने की जिज्ञासाएं बलवती होने लगीं। 'इस दिल के भरे रिवॉल्वर में बेचैनी ज़ोर मारती थी', वाला आलम था।

ढूँढता-ढूँढता मॉडल टाउन पहुंचा जहाँ सुधीश रहते थे। उनके कमरे में वो वाली मथुरा थी, जो मुझे अच्छी लगी। उन्होंने सिर्फ एक बार मन से कहा था और मैं अगले ही दिन सामान सहित जंगपुरा से मॉडल टाउन आ गया। कुछ दिन रहा सुधीश पचौरी और कर्ण सिंह चौहान के साथ। बचपन के हमउम्र मित्र मुकेश गर्ग श्रद्धानंद कॉलेज में पढ़ाने लगे थे। हाथरस के सहपाठी अमर देव शर्मा भी कहीं नौकरी पा चुके थे।

उन कुछ दिनों में ही तय हो गया कि पीएच-डी. नहीं, एम.लिट. करनी है, जिसे करते हुए नौकरी भी मिल सकती है। सुधीश और करण अपनी राजनीतिक गतिविधियों में व्यस्त रहते थे और मैं जा बैठता था कला संकाय और लाइब्रेरी के बीच वाले लॉन में, जहाँ पहली बार मिले थे हेमंत मिश्र। अब सुनिए हेमंत मिश्र के साथ क्या पठन-पाठन हुआ।

अनेक छात्र हों तो मैं कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास और काव्यशास्त्र की बात करता था लेकिन जब अकेले रह जाते थे तो मैंने उन्हें सुनाईं ऐतिहासिक भौतिकवाद की कहानियां। जितनी मथुरा में सव्यसाची जी से सुनी थीं, उनमें मैंने भी अपनी कल्पनाओं से विस्तार भर दिया। कुछ चर्चाएं मुक्तिबोध और अज्ञेय की। हेमंत किरोड़ीमल कॉलेज में बी.ए. ऑनर्स के छात्र थे। वे अपनी कक्षाएं छोड़कर लॉन में आ बैठते थे। हम घंटों बात करते थे और टैगोर हॉल के सामने वाली रेलिंग पर छोले कुलचे खाते थे, चाय पीते थे। वे मुझसे दो-तीन साल छोटे थे और बड़े भाई जैसा आदर देते थे।

कई बातें हम दोनों में कॉमन थीं। पहली, हम दोनों कविता प्रतियोगिताओं में प्रथम पुरस्कार पाते रहे थे। लॉन में एक-दूसरे को अपनी-अपनी कविताएं सुनाते थे। मैंने अपनी कविता 'खचेरा और उसकी फैंटेसी' पहली बार हेमंत को सुनाई थी, उन्होंने भी सुनाई जोंक और रेवड़ियों के बारे में एक लंबी कविता। प्रतियोगिताओं में छोटी कविताएं सुनाकर वे पुरस्कार पाते थे। दूसरी कॉमन बात, हम दोनों अपने काव्य-पाठ की प्रस्तुतियां

नाटकीय कौशल से करते थे। कविताओं में कथोपकथन होते थे। उनमें पात्र-चरित्रों सहित कहानियाँ हुआ करती थीं। तीसरी बात, हम दोनों युववाणी के कार्यक्रमों के लिए आकाशवाणी जाया करते थे। चौथी, कि हम दोनों कवि-पुत्र थे। कविता हमें विरासत में मिली थी। और पाँचवीं कि दोनों ही कुछ कर गुज़रने पर आमादा थे।

आर्ट्स फैकल्टी का वो चौकोर गलियारा, जिसके दूसरे स्थल पर अध्यक्ष का कमरा होता था। उसके बराबर वाले कमरे से उजालेनुमा व्यक्तित्व निकलता था। उसका उजाला दूसरों तक इसलिए नहीं पहुंचता था, क्योंकि वह किसी की तरफ देखता ही नहीं था। पता चला वे डॉ. नगेंद्र हैं, बड़ा रोबदाब था उनका। प्रगतिशील तबका उनके विरुद्ध रहता था। उनके कमरे में जाते हुए लोगों को मैंने सहमते हुए देखा था। डॉ. नगेंद्र भारतीय काव्यशास्त्र की कक्षा लेते थे। डॉ. उदय भानु सिंह शोध-प्रविधि पढ़ाया करते थे। डॉ. विजयेंद्र स्नातक जी शोध-प्रविधि में सांस्कृतिक तत्वों को रेखांकित करते थे। डॉ निर्मला जैन पाश्चात्य काव्यशास्त्र की बड़ी प्रभावशाली अध्यापिका थीं। उनको सुनते भी थे, बोलते हुए देखकर चमत्कृत भी होते थे, नया पढ़ने की प्रेरणा मिलती थी। किसी एक दिन स्नातक जी नहीं आये तो उन्होंने डॉ रामदरश जी से कहा होगा कि उनकी क्लास वे ले लें। मिश्र जी कभी पैंट-कमीज कभी धोती-कुर्ता पहनते थे, पर उनके वस्त्रों में अधिक कलफ नहीं लगा होता था। लंबे आकर्षक स्वाभिमानी व्यक्तित्व में जरा सा भी आभिजात्य नहीं दिखता था। वे बहुत अपने से लगते थे, जैसे खुर्जा-इगलास-हाथरस के हों।

मुझे याद है कि वे शोध-प्रविधि पर इतना नहीं, जितना कविता की रचनात्मकता को केंद्र में रख कर बोले थे। उनकी वाणी का उजाला मुझे अपने अंदर ज्यादा दूर तक जाता हुआ दिखाई दिया। शब्दाडंबर के स्थान पर एक बहुत सहज ग्राम्य-गंध के साथ इंसानियत की ईमानदार पैरोकारिता नज़र आई। ग्रामीण अंचल का अनुभवों से पका गहरा ज्ञान रखने वाला, एक जीवंत महामानव मुझे दिखाई दिया। राष्ट्रीय एकता, देशाभिमान, उदारता, धर्म-निरपेक्षता, स्वतन्त्रता, सत्यवादिता, प्रगतिशीलता का मिलाजुला मर्म उनकी वाणी से छलक रहा था। छायावाद पर उनके विचार मुझे प्रगतिशील दीप्ति से भरे हुए लगे। मैंने मन ही मन उन्हें गुरु धारण कर लिया और सोचा कि जब एम.लिट. का लघु शोध-प्रबंध लिखूँगा तो उन्हीं से गाइड बनने का अनुरोध करूँगा। लेकिन, खेद है कि उस एक कक्षा के बाद मैं कभी उनकी कक्षा में बैठने का सौभाग्य नहीं पा सका। वे एम.लिट. की कक्षाओं में आते भी तो बहुत कम थे। वे हमारी 'प्रगति' की गोष्ठियों में प्रायः नहीं आते थे। हेमंत हर गोष्ठी में आते थे। न केवल आते थे बल्कि व्यवस्थाएँ कराते थे। 'प्रगति' की गोष्ठियां कला संकाय के कक्ष संख्या बाइस में होती थीं।

गुरुवर रामदरश मिश्र हेमंत के पिता हैं, बताऊँ कब पता चला, मज़ेदार बात है।

तब वैचारिक हलचलें बहुत रहती थीं। किरोड़ीमल कॉलेज में स्टूडेंट यूनियन का चुनाव होने वाला था। छात्र राजनीति में 'स्टूडेंट्स फेडरेशन ऑफ इंडिया' का बोलबाला था। हेमंत उसमें काफी सक्रिय रहते थे। एक दूसरे के पोस्टर फाड़ने का चलन था। कुछ शरारती तत्व 'प्रगति' के पोस्टर भी फाड़

अभिनेता हेमंत

देते थे। हेमन्त ने कभी किसी विरोधी के पोस्टर नहीं फाड़े, लेकिन अगर अपना पोस्टर कोई फाड़े, तो आक्रामक हो जाते थे। एक दिन हेमंत ने अपने एक मित्र के साथ सिर पर अंगोछा बांधकर ऐसा रूप बनाया जैसे वे मजदूर हों और पता नहीं कहाँ से बहुत लंबी सीढ़ी ले आए। रात में 'प्रगति' का एक पोस्टर आर्ट्स फैकल्टी की बिल्डिंग में काफी ऊँचाई पर लगा दिया। ऐसा करने की कोई ऐसी हिम्मत नहीं कर सकता था। लेकिन नौजवान क्या कुछ नहीं कर सकते? एक पोस्टर नीचे आदमकद ऊँचाई पर भी लगाया। अगले दिन सुबह-सुबह फैकल्टी के गलियारे में छिप कर बैठ गए, जैसे, बकरी को किसी पेड़ से बांधकर शिकारी शेर के आने की प्रतीक्षा करता है। मुझे रेलिंग के पास चाय की दुकान पर खड़ा कर दिया था। घंटे भर की प्रतीक्षा के बाद जैसे ही एक लड़के ने नीचे वाला पोस्टर फाड़ने की कोशिश की, उन्होंने उसे दबोच लिया और मेरे मना करने के बावजूद उसकी जमकर धुनाई कर दी। फैकल्टी का चौकीदार आ गया। हेमंत उससे भी बहस करने लगे। चौकीदार बोला, अगर डीन साहब को पता चल गया कि हमारे एक प्रोफेसर का बेटा इस तरह मजदूर बनकर पोस्टर चिपकाता है और मार-पिटाई करता है तो तुम्हारे पिताजी का सिर शर्म से झुक जाएगा। हेमंत अपने नाटकीय ढंग से चौकीदार से भी भिड़ने की मुद्रा में आ गऐं 'किसी की मजाल, किसी की जुर्रत, किसी का कलेजा, किसी का जिगरा है जो मेरे परम् पूज्य पिता से एक शब्द भी बोल सके। ऐसा हुआ तो ये कायनात जान ले कि डीन सर किसी दीन के नहीं रहेंगे'।

चौकीदार मुस्कुराने लगा। उस दिन मुझे पता चला कि हेमंत डॉ. रामदरश मिश्र के पुत्र हैं। फिर तो मेरा स्नेहभाव हेमन्त से और भी प्रगाढ़ हो गया। मेरे गुरु के पुत्र। मेरे लिए एक माध्यम-सीढ़ी।

मुझे मुक्तिबोध की कविता 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' याद आने लगी। जिसमें ज़माना पेंटर है और शहर एक कारीगर। पेंटर शहर से कहता हैं

फिलहाल तस्वीरें इस समय
हम नहीं बना पाएंगे,
अलबत्ता पोस्टर हम लगा जायेंगे।

हम धधकाएँगे।
मानो या मत मानो
आज तो चंद्र है सविता है,
पोस्टर ही कविता है।

हेमंत मेरे बनाए हुए 'प्रगति' के पोस्टर जगह-जगह चिपकाते थे। निमंत्रण-पत्र बांटते थे। डाक से भेजे जाने वाले निमंत्रण पत्रों पर टिकट चिपकाते थे।

उसके बाद किसी गोष्ठी में गुरुवर ने मेरी 'खचेरा की फैंटसी' कविता सुनी। बड़े लाड़ से उन्होंने मेरी कविता की प्रशंसा की। एक बार की कक्षा और एक बार की प्रशंसा, एक शिष्य के लिए इतना काफी था।

एम.लिट. के लघु शोध-प्रबंध के लिए मैंने विषय चुना था 'गजानन माधव मुक्तिबोध की कविताओं की रचना-प्रक्रिया'। निर्देशक बतौर डॉ. रामदरश मिश्र का नाम दिया। फैकल्टी की विषय चयन समिति का मानना था कि वे कथाकार-गीतकार हैं, नई कविता उनका क्षेत्र नहीं है। अंततः, डॉ. निर्मला जैन की प्रस्तावना पर डॉ. नित्यानन्द तिवारी मेरे निर्देशक निर्धारित हुए। वे यदा-कदा 'प्रगति' की गोष्ठियों में आते थे। मैंने स्वीकार कर लिया। जी लगा कर काम किया। साथ में एक सचाई भी बता देता हूँ, अपने विषय या कार्य को लेकर मैं कभी डॉ. तिवारी के पास नहीं गया, न कभी उनसे कोई चर्चा हुई। अनेक विद्वानों से मेरी चर्चाएँ हुईं और होती रहीं पर संयोग से उनके साथ नहीं। दिल्ली विश्वविद्यालय में रहते हुए बस एक बार उनके घर गया था, अपने लघु-शोध-प्रबंध पर उनके हस्ताक्षर कराने।

बहुत संवाद गुरुवर रामदरश जी से भी नहीं होता था, क्योंकि उन दिनों पुस्तकालय में खूब स्वाध्याय होता था, पर्चेबाजी होती थी, खूब चर्चाएं होती थीं। किसी भी धर्म और अपनी प्राचीन संस्कृति के विरोध को छोड़कर वामपंथ का सब कुछ मुझे स्वीकार था। हाँ, धर्मों के पाखंड के साथ अतिवादी वामपंथियों का पाखंड भी अखरता था। अनेक साथियों की कथनी और करनी में भेद था।

अभिनय करते हुये अशोक चक्रधर और हेमंत मिश्र

चर्चाएं होती थीं, सुधीश-करण के रहते खर्चा नितांत नहीं होता था। करण के प्रयत्नों से 1972 के दिसंबर महीने में तीन महीने के लिए सत्यवती कॉलेज में नौकरी लगी। लेकिन, वह भी बाद में तीन साल की बेरोजगारी में बदल गई। नौकरी लग जाये, ऐसी कामना नहीं थी। जरूरत भर के लिए आकाशवाणी, दूरदर्शन, गोस्ट-राइटिंग, अनुवाद और मित्रों का सहारा था। 1973 में हिन्दी में एम.ए. करने बागेश्री दिल्ली आ गईं। लॉन की कक्षाएँ बदस्तूर जारी थीं। वहाँ प्रेम जनमेजय, हरीश नवल, पवन माथुर, सुरेश ऋतुपर्ण, दिविक रमेश, जोगेंद्र शर्मा, चंचल चौहान की बैठकी भी जमती थीं। समाज को बदलने के विराट सपने थे। लगता था कि हमारे ही प्रयत्नों से क्रांति आएगी। अब आई कि तब आई! क्रांति तो नहीं आई, कामरेड कांतिमोहन ने अपनी बेटी का नाम क्रांति रख लिया। वह भी बड़ी हो गयी। फिर भी क्रांति नहीं आई, पर पेंटर ज़माना निराश नहीं था।

मैकमिलन से 'मुक्तिबोध की काव्य-प्रक्रिया' किताब छपने के बाद, सन् 74 में अपनी थोड़ी धाक सी जम गयी थी। लोग साहित्यकार के नाते महत्त्व देने लगे थे, लेकिन बेरोजगार होने के नाते अपनी बिरादरी में शरीक नहीं मानते थे। प्रायः सबके पास नौकरियां थीं। उनका यह दबा-ढका उपेक्षा भाव मुझे पीड़ित करता था। उन दिनों बाबा नागार्जुन टैगोर पार्क में हमारे साथ रहते थे। मेरी पीड़ा को उन्होंने पता नहीं कैसे सूंघ लिया, बोले, अशोक तुम्हारे हाथ में इतना हुनर है कि पेंटर बन कर मास्टरों से ज्यादा कमा सकते हो। मुझे उनकी बात अच्छी लगी, पर हँसी आई। उसी दौर में आदरणीय रामदरश जी से मेरी भेंट हुई। मैं जानता हूं कि हेमंत के माध्यम से वह मेरी कसक को जानते थे। कला संकाय के गलियारे के एकांत में उन्होंने मुझसे कहा भी था, 'कुछ भी हो जाए अशोक, निराश न होना।' मैं देखता था उन्हें, संकाय की एक ओर की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए, कक्षा में जाते हुए, फिर दूसरी ओर की सीढ़ियों से उतरते हुए। एम.ए. की कक्षाएं होती थीं, वहां मैं नहीं जाता था।

कभी-कभी उनका कक्षा से निकलना देखने के लिए निचली मंजिल पर कार्यालय के सामने खड़ा रहता था। शायद रामदरश जी निकलेंगे, प्रिय हेमंत के पिता और मुझे बहुत अच्छे लगने वाले मनुष्य। एक बात और बता दूँ कि हेमंत मेरे साथ बने रहने के बावजूद 'जन नाट्य मंच' के साथ नहीं जुड़े। अपने कॉलेज में ही नाटक किया करते थे। फिर उनके ऊपर सेना में जाने का भूत सवार हुआ और कुछ समय बाद उन्हें राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय पुकारने लगा। मथुरा के मेरे एक अनन्य मित्र अनिल चौधरी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के सीनियर छात्र थे। मैंने हेमंत को उनसे मिलवाया पर अनिल बाबू का अकड़ू स्वभाव ज़मीन से जुड़े अभिनेता को नहीं भाया।

1975 में जामिया कॉलेज में लग तो गया पर दिल्ली विश्वविद्यालय मेरे साथ-साथ आया। यहाँ नौकरी थी, पर मन वहाँ लगा रहता था। बागेश्री वहाँ थीं न। पुराने मित्रों से नहीं, उनसे मिलने जाता था। साथियों में आत्मीयताएँ कम, नाराजगियाँ ज़्यादा थीं। मैंने भी उनके लिए लिख दिया।

मैंने वरण किया
उन्होंने कहा मरण है,
मैंने कहा नहीं!
यही तो क्रांति का अगला चरण है।

हेमंत और अशोक चक्रधर

धीरे-धीरे एक अनुभववादी अपनेपन को जामिया में पा सका। मुजीब रिज़वी जैसे अभिभावक थे। जामिया में समाजोपयोगी रचनात्मक कार्यों के लिए पूरी आज़ादी थी। आधा दिन के शुक्रवार ने और शनिवार-रविवार के पूर्ण अवकाश ने कविसम्मेलन और मीडियाकर्म के लिए पर्याप्त मौके दिए। कविसम्मेलनों की वाचिक परंपरा से पुनः जुड़ने पर देश को नए तरह से जानने का मौक़ा मिला। लोकोत्सवों और भारत महोत्सवों ने अपने देश की बहुरंगी संस्कृति से साक्षात मिलवाया। जामिया आने के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय और दलबद्ध वामपंथी मुझसे दूर होते गए। परिवारवाद, जीवनवाद और मानवतावाद से बड़ी कोई विचारधारा अब सुहाती नहीं थी। ऐसी ही सोच बागेश्री का थी। संघर्षरत परिवार को मथुरा से हाथरस ले आया। रसमय घर बस गया। सकर्मकता को नए आयाम मिलने लगे थे। माता-पिता और गुरुओं का आशीष मेरे साथ था। जामिया के नए साथियों और मंच के सभी वरिष्ठ कवियों के हृदय में मेरे लिए प्यार था। कामनाएँ, जो नहीं भी थीं, पूरी होती जा रही थीं।

साक्षरता अभियान के लिए जितना कार्य कर सका जामिया में कर सका, वह दिल्ली विश्वविद्यालय में शायद संभव न हो पाता। जामिया में बुनियादी तालीम पर बहुत ज़ोर रहता था। हेमंत ने जनजागरण से जुड़ी मेरी अनेक फिल्मों में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाईं , जैसे 'हाय मुसद्दी', 'झूमे बाला झूमे बाली', 'गुलाबड़ी' और 'तीन नज़ारे'।

जामिया में बहुत अच्छे लोग थे। संतुष्ट, सीधे और सरल। जामिया के परकोटे से बाहर निकलने को 'शहर जाना' कहते थे। कॉलेज जब केंद्रीय विश्वविद्यालय बन गया तो शहर के लोगों की आवाजाही अधिक होने लगी। कवि, लेखक और पत्रकारों का आना हमारे विभाग में निरंतर बना रहा। प्रो. रामदरश जी कितनी बार आए, मुझे याद नहीं। रचनात्मक लेखन और टीवी पत्रकारिता जैसे विषय हमारे पाठ्यक्रमों का हिस्सा बन गए। असगर पाँच साल के लिए हंगरी चले गए थे। मैं जामिया ही क्या देश भर में सबसे कम उम्र का विभागाध्यक्ष बन गया था। सुदीर्घ सेवाओं के बाद मैंने पाया कि सभी अलग-अलग बहुत अच्छे-अच्छे लोग थे, लेकिन जब मसला दीन का आता था, धर्म का, या ईष्याओं का, तो कुछ लोग बेगाने से होने लगे। नाइंटी नाइन पॉइंट नाइन प्रतिशत अपनेपन और पॉइंट जीरो वन प्रतिशत बेगानगी में बड़े प्यार से सकर्मक उन्तीस बरस बीत गए।

स्वैच्छिक अवकाश लेने के बाद जब मैं जामिया से निकला तो वहाँ से जामिया के घोषित जीवन-मूल्य लेकर बाहर आया था। वे जीवन-मूल्य हैं तालीमी आज़ादी, वतन दोस्ती, राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक आदान-प्रदान, ज्ञान की विविधता, सादगी और किफायत, समानता, उदारता, इन्सान दोस्ती, धर्म-निरपेक्षता, सहभागिता और प्रयोगधर्मिता। हाँ, अपने अशोक चक्रधर को वहाँ छोड़ आया। वहाँ छोड़ा हुआ चक्रधर वहाँ से मेरे लिए न्यौते भिजवाता रहता है। मैं आज तक जामिया से जुड़ा हुआ हूँ। हिन्दी ही नहीं जामिया के विभिन्न विभाग और जामिया का प्रशासन, सब मुझे समय-समय पर याद करते रहते हैं। जामिया मेरी अन्नदाता रही है, मैं उसका आभारी हूं।

उन दिनों गुरुवर की पंक्तियां गूंजती रहती थीं--

आख़िरी मोड़ ना कि हाँ कहिए
और रोयें कहाँ-कहाँ कहिए?
राह यह आज तक बहाना थी
आज से जाएं हम जहाँ कहिए?

तदनंतर, इधर-उधर के किसी भी प्रकार के रचनात्मक कार्यों को करता हुआ, हिन्दी और भाषा प्रौद्योगिकी के इलाके में अपना ज्ञान बढ़ाता हुआ, विश्व हिन्दी सम्मेलनों में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाता हुआ, फिर से दिल्ली विश्वविद्यालय पहुंच गया, कुलपति श्री पेंटल के बुलावे पर, आई ट्रिपल एल (जीवनपर्यंत शिक्षण संस्थान) में। हिन्दी समन्वयक के रूप में तीन-चार वर्ष रहा। पाठ-योजनाओं में गुरुवर का पूरा सहयोग मिलता रहता था। आई ट्रिपल एल में एक साल तो अध्यापकों की ट्रेनिंग करने में निकल गया। फिर दिल्ली विश्वविद्यालय के चालीस अध्यापकों के साथ मैंने ई-लर्निंग के लिए पाठ-योजनाएं बनवाने का काम किया था। उदाहरण के लिए 'मधुशाला' की पाठ-योजना मैंने स्वयं तैयार की थी। पहली खेप में पांच पाठ योजनाएं मैंने डॉ. रामदरश मिश्र जी के पास प्रतिक्रिया के लिए भेजीं। यह नहीं बताया गया था कि कौन सी पाठ-योजना किसने तैयार की है। बहुत जल्दी मुझे गुरुवर की एक-एक पृष्ठ की पाँच संक्षिप्त प्रतिक्रियाएं मिल गईं। वे अपने किसी भी शैक्षिक कार्य को विलंबित नहीं करते थे। 'मधुशाला' पाठ-योजना की उन्होंने अच्छी-खासी प्रशंसा की थी। पाठ-योजनाओं का आगे का कार्य मैंने डॉ. विजया सती को सौंपा। वे सह समन्वयक थीं। गुरुवर का मधुशाला वाला पत्र मुझे किसी प्रमाणपत्र जैसा लगा और मैंने उसका फोटो खींच लिया।

कवि सम्मेलनों में राजनेताओं से अक्सर मुलाकात होती रहती थीं, लेकिन किसी राजनैनिक दल का सदस्य कभी बना नहीं और किसी जन-प्रतिनिधि की अवमानना मैंने कभी की नहीं। अपना बीहड़ रास्ता स्वयं बनाने में सुख मिलता है। गुरुवर मिश्र जी की एक कविता मेरी पसंदीदा है, 'अपना रास्ता'-

यह रास्ता चिकना था, हरा-भरा था
लेकिन अपना नहीं था

इसलिए जब-जब इस पर पाँव रखा
फिसलकर गिर पड़ा।
अपना रास्ता बीहड़ है, सुनसान है
तपाता है, हैरान करता है
लेकिन वह गिराता नहीं
खड़ा करता है
बाहर-बाहर घिसता है
भीतर-भीतर बड़ा करता है।

मेरे भीतर और बाहर के रास्ते अपने आप बड़े हो रहे थे। टेलीविजन और कविसम्मेलनों से 'हास्य कवि' का ठीकठाक काम चल जाता था। इसी दौरान दो-ढाई साल तक 'जयजयवंती' की हिन्दी सूचना प्रौद्योगिकी पर एक संगोष्ठी-शृंखला भी चलाई, 'हिन्दी का भविष्य और भविष्य की हिन्दी'। हिन्दी जगत के लिए यह एक डिजिटल जागरूकता का अभियान था। उन गोष्ठियों में हेमंत तो नहीं, उनकी छोटी बहन डॉ. स्मिता मिश्र यदाकदा आती रहीं। हर गोष्ठी में एक साहित्यकार को हिन्दी और भारतीय भाषाओं के सॉफ्टवेयरों से पूरित लैपटॉप भेंट करते हुए 'जयजयवंती सम्मान' से नवाज़ा जाता था। लैपटॉप कभी अपनी संस्था 'जयजयवंती' से, कभी परिचित व्यक्तियों या संस्थाओं से स्पॉन्सर कराता था। साहित्यकारों के घर जाकर प्रयोग की विधियां बताई जाती थीं। गुरुवर प्रो. रामदरश मिश्र को भी सम्मानित किया गया। उनका वाला लैपटॉप 'ब्रज कला केंद्र' से दिलवाया। वे लैपटॉप से मैत्री न बना पाए। उनके लिए उनके पौत्र ने सीख लिया। यह भी कम संतोष की बात नहीं थी। बहरहाल, इन गोष्ठियों की चर्चा साहित्येतर हलकों तक फैल गई। प्रिय राकेश पांडे और मित्र अशोक सिंह किसी न किसी राजनीतिक हस्ती को लेकर आते थे। हमारा भाषा प्रौद्योगिकी का संदेश दूर-दूर तक जा रहा था। परिणामस्वरूप, 'केंद्रीय हिन्दी संस्थान' और दिल्ली की 'हिन्दी अकादमी' के शीर्ष पद सँभालने के अवसर मिले। गुरुवर का एक शेर याद आता रहा

जहां आप पहुँचे छलाँगें लगाकर,
वहाँ हम भी पहुँचे मगर धीरे-धीरे।

और तब गुरुवर रामदरश जी से मिलने के सिलसिले बढ़ते गए। कभी हिंदी अकादमी के मंचों पर, कभी विश्वविद्यालयों और साहित्योत्सवों की संगोष्ठियों में, कभी पुस्तक मेलों में, कभी हेमंत की यादों के रेलों में, कभी उनकी कविताएं सुनते हुए, कभी अपनी सुनाते हुए। सुख में वे मेरे घर आए, दुःख में मैं उनके घर गया। हर बार उनसे पाया कुछ नया। जामिया से लाए हुए सारे के सारे जीवन-मूल्य उनमें पहले से ही विद्यमान थे। उनसे और भी बहुत कुछ मिलता रहा।

डॉ रामदरश जी की रचनाओं पर दो ढाई सौ से ज्यादा शोधकार्य हो चुके हैं। जामिया में अपनी विभागाध्यक्षता के दौरान एक शोध-कार्य, 'डॉ. रामदरश मिश्र की कहानियों में पारिवारिक संबंधों का स्वरूप', मैंने अपने निर्देशन में कराया था। शोध-छात्रा अमिता ने मेहनत और लगन से काम किया। उन्होंने गुरुवर की कहानियों में गांव और शहर के संयुक्त परिवेश का

एक नाटक में हेमंत

रूपायन करते हुए भारतीय परिवारों के हर तरह के संबंध रेखांकित किए। जैसे, पिता-पुत्र, माता-पुत्र, भाई-भाई, भाई-बहन, पति-पत्नी, चाचा-भतीजे, दादा-पोते और अड़ोस-पड़ोस के परिवारों के विवाहेतर संबंध। वे प्रायः अपने ही परिवार के सदस्यों को नाम बदलकर अपने पात्र बनाते रहे हैं। उनकी पत्नी, मेरी गुरुमाता श्रीमती सरस्वती मिश्र अनेक कहानियों में आपको विद्यमान दिखेंगी। बहुत सी कहानियाँ हेमंत केंद्रित हैं। सबके संदर्भ गुरुवर की किसी न किसी रचना में मिल जाएँगे आपको।

अमिता का शोध-कार्य नवंबर 2004 मैं पूरा हुआ। मैं अक्टूबर महीने में ही जामिया से स्वैच्छिक अवकाश ले चुका था। उससे कोई फर्क नहीं पड़ा। विभाग ने मुझे बाद में भी जोड़े रखा।

रामदरश जी के प्रति मेरे मन में अपार आदर है। हेमंत-केंद्रित अपने उपन्यास 'एक था कलाकार' में उन्होंने मेरे बारे में जो लिखा है। उसे पढ़कर मेरी आंखें नम हो आई थीं। मैंने उनको जी भरकर पढ़ा है। उनकी जीवन-यात्रा से जी भरकर सीखा है।

उनका जन्म जिस गांव में हुआ, उसके दोनों ओर नदी थीं गोर्रा और राप्ती। यह तथ्य मेरे अवचेतन में कहीं बैठा हुआ था, तभी तो मैं एक शेर में कह सका-

इस माथे पर शिकनें लाखों, कुछ अपनी कुछ दुनिया की,
जिसके दोनों ओर नदी हों , उस तट का वाशिंदा हूँ।

बातें घनेरी हैं। पचास साल पहले उनके दर्शन हुए थे। निर्व्यसनी, कर्मठ और संतोषधनी धरापुत्र-सर्जक होने के कारण वे हमेशा सुदर्शन रहे। गुरुवर की ऊर्जास्वरूपिणी सहधर्मिणी, उनके शतायु होने के कुछ महीने पहले अभी-अभी गई थी, उनको पुनः श्रद्धांजलि और गुरुवर ने रिकॉर्ड-तोड़ू स्वास्थ्य एवम् दीर्घायु जीवन से अपना दैवीय उजाला फैलाते हुए प्रस्थान किया। उन्हें मेरी भी विनम्र श्रृद्धांजलि। ◆

पता : जे-116, सरिता बिहार, नई दिल्ली-110076
मो. : 9911013621

पथ सूना है तुम हो हम हैं, आओ बात करें

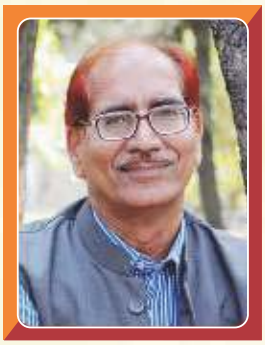

डॉ. ओम निश्चल

एक कवि, कथाकार, उपन्यासकार, गद्यकार दुनिया को आख़िरकार क्या देकर जाता है। आज दुनिया भर में हिंसा, नस्ली भेदभाव और साम्राज्यवादी शक्तियों का जो परिदृश्य है उसमें एक लेखक के पास देने को केवल शब्द हैं जिनकी महिमा भले ही दिनोंदिन ख़त्म हो रही हो पर जिनकी धमक अभी भी बरकरार है।

संस्कृत में कहा गया है : न-सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः। वह सभा कोई सभा नहीं, जिसमें कोई वयोवृद्ध न हो। हिंदी साहित्य का यह सौभाग्य रहा है कि उसकी महफिल में रामदरश मिश्र जैसे वयोवृद्ध एवं श्रेष्ठ साहित्यकार सौ वर्षों तक मौजूद रहे हैं जो न केवल अपनी सतत् सर्जना के साथ रचना में सक्रिय रहे, बल्कि सभा समारोहों में भी आते-जाते रहे। हिंदी के अन्ययपुरोधा एवं वयः श्रेष्ठ रचनाकारों में कृष्णा सोबती एवं डॉ. नामवर सिंह उनके पीछे-पीछे हैं। साहित्य के पैनोरमा में रामदरश मिश्र की उपस्थिति वरेण्य है। कितना आह्लादकारी है कि 1917 की बोल्शेविक क्रांति के आठ साल बाद पैदा हुआ यह अनूठा कवि-कथाकार पिछली सदी की तमाम बड़ी घटनाओं का साक्षी रहा है और इस सदी के इन डेढ़ दशकों में इन्होंने भूमंडलोत्तर दुनिया के तमाम परिवर्तनों को देखा जाना है। एक कवि, कथाकार, उपन्यासकार, गद्यकार दुनिया को आखिरकार क्या देकर जाता है। आज दुनिया भर में हिंसा, नस्ली भेदभाव और साम्राज्यवादी शक्तियों का जो परिदृश्य है उसमें एक लेखक के पास देने को केवल शब्द हैं जिनकी महिमा भले ही दिनोंदिन ख़त्म हो रही हो पर जिनकी धमक अभी भी बरकरार है।

रामदरश मिश्र के लेखक व्यक्तित्व पर विचार करते हुए उनके तमाम प्रतिमान हमारे सामने मुखर हो उठते हैं। उनका व्यक्तित्व, उनका कवित्व, उनकी किस्सागोई, गज़लगोई, सबको साथ लेकर लिखे गए उनके संस्मरण, उनके ललित निबंध, उनके यात्रा-वृत्तांत और उनके गीत-सब मिलकर एक ऐसे लेखक की छवि निर्मित करते हैं जिसके भीतर सदियों का संताप, आह्लाद, उत्सवता, रोज बनती दुनिया के अनुभव और साहित्यिक मूल्यों को स्थापित करने वाले तत्व विद्यमान हैं।

रामदरश मिश्र को देखकर लगता था, हम गाँधी के देश के किसी बड़े लेखक से मिल रहे हैं जिसका खुद का जीवन गाँधीवादी है, समाजवादी है। उनसे मेरा कितनी ही बार मिलना हुआ है। पास रहने के कारण जब तब उनके साथ बैठकी संपन्न हो जाती थी पर हर बार उनसे मुलाकात में यही लगता था उनसे पहली-पहली बार मिला हूँ। वही ताज़गी, वही उत्साह, वही मेहमान-नवाज़ी। वे और उनकी धर्मपत्नी सरस्वती मिश्र दोनों मिलकर किसी भी सान्निध्य को बहुत ही आत्मीय बना देते थे। रामदरश जी के पास थोड़ी देर बैठिए तो संस्मरण के लच्छे दर लच्छे निकलते चले जाएँगे। जिसने लगभग जीवन के आठ दशक सक्रिय साहित्यचर्या में बिताए हों, जो अरसे तक गुजरात, बनारस व दिल्ली रहे हों, जो देश-विदेश तमाम जगहों पर साहित्य के अनेक समारोहों में आते-जाते रहे हों, उनके पास अनुभवों की एक बड़ी विरासत होगी, इसमें कोई संदेह नहीं। उनके पास बैठिये तो क्या नामवर सिंह, क्या शंभूनाथ सिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह, शिवप्रसाद सिंह, नगेन्द्र, कृष्ण बिहारी मिश्र, रामविलास शर्मा-तमाम साहित्यकारों के संस्मरण ताज़ा हो उठते थे। बनारस में पढ़ाई के दिनों की यादें ही इतनी कि शुरू करें तो खत्म न हों। इसीलिए उनके संस्मरण के कई खंड प्रकाशित होने के बाद भी उनके भीतर संस्मरणों की पूँजी ख़त्म नहीं हुई है। कवि-सम्मेलन, गोष्ठियाँ, वाद-विवाद,

साहित्यिक उठापटक के तमाम प्रसंग आज भी उनके भीतर वैसे ही जीवित हैं। बस जरा-सी चर्चा छेड़ने की जरूरत है, वे कोई न कोई प्रसंग आपके सामने रख देंगे।

कहते हैं, सारे सम्मान मिल जाएँ पर किसी लेखक को साहित्य अकादमी का पुरस्कार न मिले तो शायद कहीं कुछ अधूरापन-सा रहता है। विडंबना देखिए कि हिंदी के विराट संसार में इतने सारे लेखक हर साल पुरस्कार के लिए योग्यता रखते हैं पर मिलता किसी एक को है। दूसरी तरफ कुछ भाषाएँ ऐसी हैं जिनके पास पर्याप्त लेखक ही नहीं हैं, जो हैं भी वे उस स्तर के नहीं हैं कि उन्हें हम हिंदी के कमलेश्वर, नामवर सिंह या रामदरश मिश्र के सम्मुख रख सकें। तो भी वे पुरस्कृत होते हैं। इन्हीं कारणों से आज भी हिंदी में तमाम ऐसे लेखक हैं जिन्हें बहुत पहले यह पुरस्कार मिल जाना चाहिए था पर वे अभी तक इससे वंचित हैं। रामदरश मिश्र जी को यह पुरस्कार 92 साल की अवस्था में मिला। इसे ही गुणीजन 'देर आयद दुरुस्त आयद' कहा करते हैं। पर यहाँ यह मुहावरा भी फिट नहीं होता। पुरस्कार संस्थानों में विचारधाराओं का दबाव इतना ज्यादा रहा है कि साहित्य के श्रेष्ठ मूल्यों वाले रचनाकारों की तरफ निगाह ही नहीं जाती। फलतः किसी खास विचारधारा के अनुगामी साहित्यकार को यदि पुरस्कार मिलता भी है तो यह बात जगज़ाहिर हो उठती है। जहाँ साहित्य अकादमी पुरस्कार रामदरश मिश्र से आधी से भी कम उम्र के लेखक को दिया गया हो, किसी को केवल पहली या दूसरी ही कृति के लिए ही यह पुरस्कार मिल गया हो तो लगता है साहित्य किसी साधना की फलश्रुति नहीं, यह पुरस्कारों की सिद्धि पर आधारित है। इस संबंध में यही हुआ है कि अपने बड़े समकालीन रचनाकारों के बीच समादृत और बहुप्रशंसित होते हुए भी रामदरश मिश्र को अकादमी पुरस्कार के लिए बरसों प्रतीक्षा करनी पड़ी और यह प्रतीक्षा तब करनी पड़ी जब चयन-मंडल में उनके ही सुधी मित्र लेखक-कवि-आलोचक रहे हैं। इस विडंबना के बावजूद उन्हें जब यह पुरस्कार घोषित हुआ तो वे सहज भाव से प्रसन्न हुए। उनके स्वर में कभी इस बात की कुंठा नहीं रही कि अमुक को यह पुरस्कार क्यों मिला या उन्हें क्यों नहीं मिला या इतनी देर से क्यों मिला। बल्कि जिन संस्थाओं से वे जुड़े रहे या जहाँ उनकी संस्तुतियों की कद्र की जाती है, वहाँ के पुरस्कारों के लिए वे अपने निकट के योग्य साहित्यकारों के लिए पुरस्कारों की संस्तुतियाँ करते रहे जिससे कि अपने समय के श्रेष्ठ सर्जक व साहित्यकार पुरस्कार या सम्मान से वंचित न रहें।

मेरा सौभाग्य कि इतने निकट वे रहते हैं तो उनसे क्यों न बार-बार मिलना हो। कुछ साल पहले एक शाम उनसे मुख्तसर-सी भेंट हुई। चर्चा चली तो उन्होंने पूछा 'आजकल' का अंक देखा क्या आपने ओम जी? मैंने कहा, नहीं तो। उन्होंने कहा, उसका केदारनाथ सिंह पर अंक आया है, अच्छा है और दिखाने लगे उसे। देखा, राकेश रेणु ने बहुत करीने से अंक निकाला है और अनेक विद्वान लेखकों से उनका वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करवाया है। केदार जी पर बात चली तो मैंने कहा केदार जी को लेकर गाँव की चर्चा होती है पर उनकी कविता में गाँव उनके अपने क्राफ्ट और कला की शर्तों पर ही आता है। बिम्बों के रूप में। वह गाँव प्रेमचंद, नागार्जुन, विवेकी राय जैसा यथार्थवादी गाँव नहीं है। एक झीना कलावाद भी वहाँ दिखता है। पर हम उनकी कविताओं-माँझी का पुल, टमाटर बेचने वाली बुढ़िया व झुम्मन मियाँ, नूर मियाँ और कुछ किरदारों को लेकर लिखी कविताओं की आधुनिक संवेदना में गाँव व वहाँ के लोगों के प्रति उनकी आत्मीयता से प्रतिबिम्बित होते हैं। हालाँकि यह गाँव उनकी आधुनिकता से मुठभेड़ करता हुआ लगता है। मैंने पाया कि केदार जी को लेकर रामदरश जी बहुत आत्मीय हो उठे हैं। उन्होंने याद करते हुए बताया कि केदार जी को मेरा संग्रह 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' बहुत प्रिय था। कहने लगे, ''बहुत दिनों बाद ऐसी ताज़गी कविता में देखने में आई है, मैं लिखूँगा इस पर।'' पर वे लिख नहीं पाए। मैं रामदरश जी के बड़प्पन पर न्यौछावर था कि कह कर भी न लिख पाने वाले केदार जी के प्रति आज उनमें कोई कटुता नहीं है। लिखा तो नामवर जी ने भी उन पर कभी नहीं, हालाँकि रामदरश जी के मन में उनके प्रति सदा वही पुरानी प्रीति रही। वे बाहर से जब कभी यहाँ आते तो उनसे मिलकर बनारस के नाते वही अपनापा महसूस करते। नामवर जी पर आधारित 'बहुवचन' के अंक में रामदरश जी ने अभी कुछ साल पहले ही लिखा है। कहने लगे, पानी के प्राचीर उपन्यास आया तो उसे पढ़कर नामवर जी ने कहा था, ''ताज्जुब है कि आपने इसमें इतने गहरे स्ट्रोक्स दिए हैं। ब्राह्मण किरदारों को लेकर। मैं शायद ऐसा न कर पाता।'' पर कभी वह समय नहीं आया कि नामवर जी रामदरश जी पर कुछ लिखते, फिर भी उनके चित्त में नामवर जी के लिए वही प्रीतिकर भाव रहा जो बनारस के साहचर्य के दिनों में रहा था।

रचनात्मक सक्रियता इस उम्र में भी इतनी कि अभी कुछ ही साल पहले पत्नी पर एक उपन्यास, बेटे हेमंत पर एक उपन्यास, दो दो कविता-संग्रह, एक गजल-संग्रह, कुछ संस्मरणात्मक कृतियाँ व निबंध संग्रह व डायरी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। और जब भी जाएँ, सिरहाने रखा राइटिंग पैड देखें तो गज़लें लिखी जाती हुई मिलेंगी। कोई कविता मिलेगी। कोई संस्मरण धारावाहिक चल रहा होगा। यह है उनकी सक्रियता। जिसे देखकर मुक्तिबोध की पंक्ति याद आती है- कभी भी ख़त्म नहीं होती कविता। एक कवि कथाकार का करघा हमेशा कुछ-न-कुछ बुनता रहता है। कभी कोई गीत, कभी कोई गजल, कभी कोई संस्मरण वे आज भी अपने राइटिंगपैड पर टाँकते ही रहते हैं। ऐसी ही एक शाम पहुँचा तो वे अपनी गजलों की नोक-पलक सँवार रहे थे। बोले, लीजिए गज़लें सुनिए। ताज़ा ही लिखी हैं और सुनाने लगे। याद है उनकी गज़लों की संक्रामकता। बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे। कैसे यह गज़ल जैसे उनके पूरे कवि व्यक्तित्व का सिग्नेचर ट्यून बन गयी हो।

इस तरह यह शाम जैसे रामदरश जी की गजलों के हवाले रही। मैं सोच रहा था, दर्जनों उपन्यास, दर्जनों कहानी-संग्रह, डेढ़ दर्जन कविता-संग्रहों व तमाम विधाओं में लिखने वाले रामदरश जी के यहाँ विधाओं की बंदिश नहीं है। किसी भी विधा के प्रति उनके यहाँ संकीर्णता का भाव नहीं है। जो मन में आए सो लिखो। चार खंडों में उनका कविता समग्र अमन प्रकाशन, कानपुर से आया तो एक नया गज़ल-संग्रह भी। एक कहानी चयन उनका साहित्य भंडार से प्रकाशित हुआ। कई वर्षों से देख रहा हूँ कि 15 अगस्त को जब वे अपना जन्मदिन मना रहे होते हैं, उनकी कई-कई कृतियों के लोकार्पण उस दिन होते

हैं। इस साल भी जब वे 100वां जन्मदिन मना रहे थे, बेटे शशांक की हाउसिंग सोसायटी में उनका शताब्दी समारोह चल रहा था, उस दिन कई कृतियों व पत्रिकाओं के अंक लोकार्पित हुए। कथादेश, अक्षरा, आजकल ने विशेष अंक निकाले। मेरी एक विवेचनात्मक पुस्तक उन पर आई : रामदरश मिश्र : जीवन और साहित्य। मिश्र जी की भी कई किताबें लोकार्पित हुईं। अभी हाल ही में उनका नया गज़ल संग्रह हंस प्रकाशन से छप कर आया है तो सर्वभाषा ट्रस्ट से उनकी गज़लों का चयन-खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे जिसका लोकार्पण साहित्य आज तक के साहित्योत्सव में हाल में संपन्न हुआ। किसी सार्वजनिक साहित्यिक उत्सव में एक सौ वर्ष के रचनाकार का शामिल होना हमारे समय की एक जीवंत घटना है। वे पैदल चल कर समारोह के पंडाल की तरफ चल रहे थे तो जैसे एक युग चल रहा था। थोड़ी ही देर में साहित्य आज तक के मंच पर वे थे जहां उनसे जीवंत बातचीत के लिए आजतक की मशहूर ऐंकर चित्रा त्रिपाठी थीं। दोनों शख़्सियतें गोरखपुर की। लिहाज़ा बातचीत गोरखपुर से शुरु होनी थी जो उनके जीवनानुभव से होती हुई उनके कविता पाठ में बदल गयी। जीवन की यह उत्सवता आख़िर कितने कवियों-लेखकों को हासिल होती है।

डॉ. रामदरश मिश्र और डॉ. ओम निश्चल

हिंदी में वे ऐसे कुछ विरल लेखकों में हैं जिन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास व कथेतर सभी विधाओं में लिखा है, फिर भी कहा जाए कि रामदरश जी की मूल विधा क्या है तो निस्संदेह इसका उत्तर देने में कठिनाई होगी। पर प्रभूत परिमाण में कथा-कहानी व उपन्यास लिखने के बावजूद उनकी कवि-छवि को देखते हुए कहना होगा कि वे मूलतः कवि हैं। याद है साहित्य अकादमी पुरस्कार मिलने के बाद लेखक से मिलिए कार्यक्रम में साहित्य अकादमी सभागार में भारी संख्या में उनके समकालीन लेखक-कवि और छात्र उन्हें सुनने आए थे। बातचीत के दौरान अपनी रचना यात्रा के बारे में बोलते हुए सुधीजनों के आग्रह पर रामदरश जी ने अपनी कई गज़लें सुनाईं। कविताएँ और गीत सुनाए। उनकी कहानियों और उपन्यासों को लेकर हिंदी में बहुत काम हुआ है पर जैसी वाचिक सरसता उनकी कविताओं, गीतों व गज़लों में है वह किस्सागोई के ब्यौरों में नहीं। इसलिए उनके कवि रूप को कहीं ज्यादा मान्यता मिलना सहज ही है।

शुरुआत तो उन्होंने गीतों की रचना से की थी। क्योंकि बनारस का वह दौर गीतों का था। जहाँ छायावाद के प्रमुख स्तंभ प्रसाद जी हुए हों, एक दौर में शंभूनाथ सिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह जैसे बेहतरीन गीतकार रहे हों, वहाँ उनसे प्रभावित होकर गीत की रचना करना स्वाभाविक ही है। दूसरे यह कि हिंदी में प्रसाद, पंत, महादेवी व निराला के छायावादी प्रभाव छायावादोत्तर रचनाकारों में भी कमोबेश आए हैं। इसलिए उत्तर छायावादी कवियों में यह प्रभाव आसानी से लक्षित किए जा सकते हैं। इसलिए पथ के गीत में रामदरश जी का कोमल व भावुक मन श्रृंगार, विरह और प्रकृति के साहचर्य के गीत लिखने में संतोष का अनुभव करता है तो बाद में आधुनिकता के आवेग और नई कविता के उन्मेष के बाद उनकी रचना शैली में युगानुरूप बदलाव भी आया। वे नई कविता के कवियों के बीच सक्रिय हस्ताक्षर बन कर उभरे। 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ', 'पक गई है धूप', 'कंधे पर सूरज', 'दिन एक नदी बन गया', 'जुलूस कहाँ जा रहा है', 'आग कुछ नहीं बोलती', 'बारिश में भीगते बच्चे', 'ऐसे में जब कभी', 'आम के पत्ते;, 'आग की हँसी', और 'एक दिन', 'मैं तो यहाँ हूँ' और 'रात सपने' में उनकी कविताएँ कविता के नए फार्मेट और वस्तुनिष्ठता के बोध के साथ रची गयीं। ऐसा नहीं कि उन्होंने इस दौरान गीत लिखना छोड़ दिया पर गीत लेखन उत्तरोत्तर कम होता गया। हाँ, मिजाज़ में वह प्रगीतात्मकता कायम रही।

रामदरश जी की कविताओं में भारतीय सांस्कृतिक छवियाँ नज़र आती हैं। हर मौसम को जीने का जो उत्साह गाँवों में देखा जाता है वही उनकी कविताओं में मिलता है। प्रकृति के उल्लास को रामदरश जी जैसे खुली आँखों से निहारते व उसके सौंदर्य को अपनी कवि कल्पना में आँकते हैं। उनका सौंदर्यबोध प्रकृति को लेकर इतना उद्वेगी है कि बसंत पर उनके यहाँ जाने कितनी रचनाएँ होंगी। हर त्यौहार को अपनी तरह से उन्होंने अपनी कविताओं में चित्रित किया है। पर जो बात उनके यहाँ कहीं ज्यादा ध्यातव्य है, वह है मनुष्यता का सूचकांक जिसे उन्होंने सदैव ऊँचा रखा है। वे जहाँ जीवन में ओछेपन के आलोचक हैं, वहीं लेखकीय जीवन में दिखावे से परे हैं। लेखकीय छद्म व विडंबनाओं पर उन्होंने सबसे ज्यादा लिखा है। लेखकों में जिस तरह की खेमेबंदी, वैचारिक संकीर्णताएँ व नकली प्रदर्शनप्रियता देखी जाती है, रामदरश जी की कविताएँ उस पर कटाक्ष करती हैं। उनकी प्रारंभिक कविताओं पर बहुत कुछ लिखा गया है। बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ से लेकर आम के पत्ते तक उनकी कविताओं का अपना मिजाज़ रहा है। उसके बाद उनकी उत्तरवर्ती कविताओं पर कम लिखा गया है हालाँकि दशाधिक संग्रह गए डेढ़ दशक में प्रकाशित हुए हैं। आम के पत्ते जिस पर उन्हें व्यास सम्मान मिला, सच कहा जाए तो वह भारतीय सांस्कृतिक प्रत्ययों का एक रूपक है। आम के पत्ते या पल्लव में जो शुचिता है वही हमारी भारतीय संस्कृति की शुचिताग्रही पृष्ठभूमि भी है।

रामदरश जी की कविताओं में जो सादगी दिखती है वह उनकी जीवनशैली से अनुप्राणित है। किसी शायर ने कहा है - वाक़िफ नहीं तो उसके लबों को कँवल न लिख। अल्फाज़ को ख़िजाब लगाकर गज़ल न लिख। यही बात उनकी कविताओं पर लागू होती है। वह शिल्प के चाकचिक्य से दूर पर अपनी सादाबयानी में बेधड़क है। यह और बात है कि समकालीन आलोचना अक्सर उनकी कविताओं के बगल से कतरा कर गुजर जाती रही है। जबकि सत्तर के दशक वह दौर ऐसा था जब कविता में रघुवीर सहाय प्रतिष्ठित हो रहे थे। आगे चलकर केदारनाथ सिंह जी कविता के केंद्र में आए। रघुवीर सहाय की कविताओं का एक स्कूल बना तो दूसरा स्कूल केदारनाथ सिंह का। प्रतीकों व बिम्बों की सघनता ने कविता की एक नई किस्म ईजाद की। रामदरश मिश्र ने जीवन के सहज अनुभवों को कविताओं कहानियों में पिरोया। न उसे प्रयोगों का जामा पहनाया, न उसमें प्रगतिवाद की नक्काशी उकेरने की कोशिश की। इसीलिए उनकी कविताओं में प्रकृति प्रेमी कवि के हृदय-छंद का आभास मिलता है। बहुत तराश भरी कोटि की न सही, अनगढ़ काव्यात्मकता की ज़मीन पर ही बेशक रामदरश जी की कविताएँ अपने समय के सांस्कृतिक जीवन के चित्र अंकित करती हैं, अपने समय की विडम्बनाओं से टकराती हैं और कविताओं में छोटी-छोटी टिप्पणियों के ज़रिए अपने क्षोभ और प्रसन्नता का इज़हार करती हैं। रामदरश जी का यह कहना कि मैंने अपने आँगन में कच्ची ज़मीन छोड़ रखी है-मौजूदा समय के बीहड़ यथार्थ के मध्य संवेदना-सजल मानस को बचाए रखने का उपक्रम है। इससे आज की महानगरीय रूक्षता के बीच भी एक गँवई संवेदना सहेज कर रखने और उस पर गर्व करने वाले कवि के भीतरी संसार का परिचय मिलता है।

रामदरश जी की कविता यात्रा में कई मोड़ खोजे जा सकते हैं। बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ से लेकर पक गई है धूप, कंधे पर सूरज, दिन एक नदी बन गया, जुलूस कहाँ जा रहा है संग्रहों के साथ उनकी कविताओं का एक वृत्त बनता है। इस दौर की रचनाओं में उनका मन प्रकृति के साहचर्य में जैसे फूला-फला है। बसंत पर सैकड़ों कविताएँ व गीत उन्होंने इसी दौर में लिखे। यह जैसे जीवन में समाए बसंत का ही रचनात्मक अनुभव हो। गीतों की कोमल पदावलियों का विन्यास मिलता है तो कविताओं में हार्दिकता की एक विरल नमी जिससे आज की कविताएँ वंचित हो रही हैं। बीच का एक दौर ग़ज़लों का भी रहा, पर कविताओं का तीसरा दौर आग कुछ नहीं बोलती से शुरू होता है तथा बारिश में भीगते बच्चे, ऐसे में जब कभी, आम के पत्ते, हवाएँ साथ हैं, कभी-कभी इन दिनों, आग की हँसी से होते हुए नवीनतम संग्रह मैं तो यहाँ हूँ तक चिह्नित किया जा सकता है। मुझे याद है, जिन दिनों रामदरश जी को दयावती मोदी सम्मान मिला था, उसी के आसपास उनके संग्रह आग कुछ नहीं बोलती पर विद्यानिवास मिश्र की अध्यक्षता में वाणी विहार में एक गोष्ठी आयोजित की गयी थी। मुझे रामदरश जी के अनेक कविता-संग्रहों पर लिखने का सौभाग्य मिला है, किन्तु आग कुछ नहीं बोलती पर बोलते हुए पंडित जी के विचार काफी निर्णायक थे। जिस सांस्कृतिक बोध की बात मैंने ऊपर उठाई है, उन्होंने रामदरश जी को सांस्कृतिक वैभव व गँवई जनजीवन का एक बड़ा कवि माना था। अचरज नहीं कि रामदरश जी के यहाँ आम के पत्ते, बारिश, धूप, सूरज और आग के बिम्ब बहुत आते हैं। किन्तु उनका कवि मानस परंपराओं का पिछलगुआ नहीं है। वह प्रगतिशीलता की आँच में सहज ही पका है। उनकी कविताओं में किसी प्रकार की धर्मांधता नहीं मिलती, बल्कि उसका पर्याप्त विरोध मिलता है। मंदिर जाने के बदले वे उसे तरज़ीह देते हैं जो किसी अँधेरी चौखट पर चुपचाप एक दिया रख जाता है। वे ऐसी बातों पर जगह-जगह पर कविताओं में तंज कसते हैं जो मनुष्य को पीछे ढकेलने वाली हों। हाल के वर्षों में उनके कई महत्वपूर्ण संग्रह आए। आग की हँसी, मैं तो यहाँ हूँ और रात सपने में। आग की हँसी इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि उस पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। बल्कि इसलिए कि एक बार वे इस पुरस्कार के बहाने फिर चर्चा में आए। आग की हँसी या आग कुछ नहीं बोलती के पारस्परिक मिजाज़ में भी कोई ख़ास अंतर नहीं है फिर भी उनकी कविताओं में ध्वन्यात्मकता और व्यंग्य की अन्विति उत्तरोत्तर सघन और प्रभावी हुई है। जीवन में इतनी विडंबनाएँ हैं कि वे तंज करने का कोई मौका नहीं छोड़ते। खुद लेखकों के जीवन की क्षुद्रताओं पर वे उनकी आलोचना करते हैं। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने वालों को आड़े हाथों लेते हैं तो दंद-फंद कर महत्व पाने की कोशिशों को वे रचनात्मकता का शत्रु मानते हैं। वे बाज़ार का विरोध करने के लिए बाज़ार-बाज़ार चिल्लाते नहीं, बल्कि कैसे बाज़ार हमारे घरों में घुस आया है प्रसंगवश, उसकी महीन पड़ताल करते हैं। चाहे गुरुदेव हजारी प्रसाद द्विवेदी के आदेश से ही, बगीचे में जाकर फूल तोड़ना न जाने क्यों उनके कवि-मन को कचोटता है। घर और बाज़ार को उन्होंने किसी बाज़ारवाद की थियरी पढ़कर नहीं, खुद के अनुभवों से जाना पहचाना। खुद के घर के सामने रेत कारोबारी की दुकान की पारस्परिक तुलना से जो कविता पैदा हुई वह घर और बाजार के फर्क को आमने-सामने रख कर पहचानती है।

वे बूढ़े भले हुए हों लेकिन जीवन और समाज को दर्ज़ करने में उनकी कलम अभी थकी नहीं है। हमेशा बोलचाल के लहज़े में कविताएँ लिखने वाले इस कवि ने कविता के किसी प्रतिमान को अपने लिए रूढ़ नहीं बनने दिया, बल्कि वे अपनी सधी हुई लीक पर चलते रहे हैं। मैं तो यहाँ हूँ की कविताओं को देखें तो रामदरश जी ने कभी कविता के प्रतिमानों की परवाह नहीं की। वे लिखते हैं- "मेरी रचनाएँ जैसी भी हैं, मेरी हैं, वे शुष्क सिद्धांत नहीं हैं, अंतर के छोटे-बड़े गान हैं, यानी आदमी के आदमी होने की पहचान हैं।" वे चैनलों पर बाबाओं के बढ़ते प्रभुत्व की आलोचना करते हैं तो एक दल की एक दूसरे दल द्वारा की गयी आलोचना भी उन्हें रास नहीं आती जिससे आज के अख़बार प्रायः आच्छादित रहते हैं। कभी उमाकांत मालवीय ने लिखा थाः खोली दर खोली में घर गए उघर। रहने लायक नहीं रहे महानगर। लिहाज़ा महानगर के अपने घर के खुले आँगन को निहार कर कवि-मन खुश होता है। आँगन में पहुँचते ही उसे लगता है कि वह अतीत के बाग-बगीचों में पहुँच गया है। कवि समाज के जीते-जागते चरित्रों से ही नहीं, निर्जीव चीजों से भी बतियाता है। रामदरश जी ने ऐसा बहुतेरी कविताओं में किया है। कुर्सी, चारपाई, आइना, अंगीठी, फाइल के साथ, चाबी ऐसी ही कविताएँ हैं।

रात सपने में पढ़ते हुए लगता है अब वे कविताओं की खोज में नहीं जाते, कविताएँ उनकी खोज में आती हैं, तितलियों की तरह उड़ती हुई। वे आकर उनकी अनुभूतियों, स्मृतियों और संवेदनाओं के गाछ पर मँड़राती हैं।

एक सदी को जिन आँखों ने निहारा है, पारंपरिकता, आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता के दौर को देखा है, बाज़ार को चुपचाप घरों और ड्राइंगरूम से लेकर इच्छाओं के अनंत अतृप्त भूखंड में व्यापते देखा है, उन बूढ़ी आँखों में अब भी युवा सपने हैं- और वे सपने में भी दूरागत कल्पनाओं का आश्रय नहीं ग्रहण करते, बल्कि यथार्थ की तहों को उन्मीलित करते हैं। हर कविता उनके देखे-सुने-भोगे और अनुभव की काया में पगे जीवन का वृत्तांत है। वे पहली ही कविता में जिस पानी और आग के सहकार की कामना करते हैं, सहयोग के छंद में प्रतिरोधी तत्वों के समरस हो जाने की बात करते हैं, वही तो हमारी सनातन आस्था का मूर्त रूप है- संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। वे यात्रा के कंटकाकीर्ण पथ पर खिले एक जरा-से फूल की कौंध को खुशबू से भर देने का सबब मानते हैं। इन कविताओं में कला और शिल्प की सादगी के बावजूद, उत्तरजीवन की सीख है, नसीहतें हैं, लोगों के ओछेपन पर तंज है और इस बात का आह्वान भी कि राह में अकेले पड़ते आदमी का हाथ पकड़िए, उसे आवाज़ देते रहिए, अकेला मत छोड़िये, जिससे कि "एक सामूहिक हँसी से रास्ता नहाता रहे/मंज़िल को भी लगे/कि उसकी ओर एक कारवाँ आ रहा है/जिंदगी से भरा हुआ।" उनकी कविताओं में ज़िन्दगी का उजाला है- थके-माँदे, पस्त जीवन को भी उजास से भरता-नहलाता हुआ। ये कविताएँ उन्हीं उजालों के दस्तख़त हैं, ख़्वाब हैं।

उनकी गज़लों का दूसरा संग्रह हँसी ओंठ पर आँखें नम हैं आने के साथ-साथ वे गज़ल में पहचाने जाने लगे थे। यहाँ तक कि गज़ल के उस्ताद शायर मुनव्वर राणा अपनी निजी बातचीत में रामदरश जी की गज़लगोई की तारीफ करते हैं। हम सब जानते हैं कि पिछले दो दशक में गज़ल को ऐसी लोकप्रियता मिली कि अन्य काव्य विधाएँ गौण हो गयीं। यूट्यूब पर गज़ल गायकी का ऐसा बोलबाला रहा कि हर कवि गज़लगोई की ओर आकृष्ट हुआ। आज हिंदी में कितने ही गज़लगो हैं जिनकी अपनी पहचान है। ऐसे में रामदरश मिश्र जैसे सिद्ध रचनाकार ने गज़लगोई में भी अपनी संभावनाएँ तलाश कीं और सफलता पाई। हाल ही उनकी गज़लों का संग्रह सपना सदा पलता रहा आया है। तिरासी गज़लों के इस संग्रह में सामाजिक जीवन के विविध आयाम दृष्टिगत होते हैं। गज़ल काफिए और रदीफ में कसी हुई विधा है जिसका एक-एक शेर मौजूँ होता है।

रामदरश मिश्र की किस्सागोई में सैकड़ों कहानियाँ व दर्जनों उपन्यास शामिल हैं। इसलिए जितना बड़ा उनका कवि व्यक्तित्व है उससे कमतर उनका कथाकार व्यक्तित्व नहीं है। 1950 के आसपास कहानियों में आए रामदरश मिश्र ने किस्सागोई की वही लीक अपनाई जो प्रेमचंद ने बनाई, शिवप्रसाद सिंह, रेणु व विवेकीराय ने बनाई। उनके लिए कहानी, नई कहानी का आंदोलन नहीं, वह पठनीयता महत्वपूर्ण थी, जिसके बिना कहानी प्रयोग का एक टूल तो बन सकती है पर मानवीय संवेदना को कहीं छूती नहीं। जिस तरह साठोत्तरी कविता को अकविता जैसे अराजक आंदोलन कविता की पठनीयता से दूर ले गए उसी तरह नई कहानी आंदोलन के कथाकार कहानी में एक खास तरह का प्रायोजित संसार रचने पर आमादा रहे। लिहाज़ा जड़ीभूत मूल्यों को कहानी में नए ढंग से परोसने की कवायद हुई। रामदरश जी किसी वैचारिकता के प्रभाव में आए बिना समाज के सुख-दुःख से वास्ता रखने वाली कहानियाँ रचते रहे। 'एक रात', और 'बेला मर गयी', 'पड़ोसन', 'मृत्यु', 'कहाँ जाओगे', 'मुक्ति', 'एक औरत एक ज़िन्दगी', 'प्रतीक्षा', 'आख़िरी चिट्ठी', 'अकेला मकान', 'डर', 'वह औरत', 'धंधा', 'खोया हुआ दिन', 'नौकरी', 'रोटी', 'हद से हद', 'सर्पदंश', 'इज्जत', 'फिर कब आएँगे', जैसी उनकी तमाम कहानियाँ हैं जिनमें भिन्न-भिन्न विषयवस्तु पर घर, गाँव, समाज, परिवार, रिश्तों, दहेज उत्पीड़न, ऊँच-नीच, ईर्ष्या, द्वेष, स्त्री होने की नियति, अनमेल विवाह आदि विसंगतियों को उन्होंने वाणी दी है।

रामदरश जी कहानियों में जितने बड़े दिखते हैं, उपन्यासों में उससे कम नहीं। उनके उपन्यास भी कहानियों की तरह ही ज़िन्दगी के यथार्थ से जुड़े हैं। एक वक्त था, पानी के प्राचीर व जल टूटता हुआ की धूम थी। अपने लोग व दूसरा घर भी बड़े फलक के उपन्यास हैं। उनके बड़े कहे जाने वाले उपन्यासों की दुनिया से अलग कुछ छोटे-छोटे उपन्यास भी हैं जिन्हें वे समय-समय पर भीतर की माँग के अनुरूप लिखते रहे हैं। जैसे थकी हुई सुबह, बिना दरवाज़े का मकान, बीस बरस, परिवार, सूखता हुआ तालाब और अभी हाल में ही आया पत्नी सरस्वती पर लिखा उपन्यास एक बचपन यह भी व दिवंगत पुत्र हेमंत पर लिखा उपन्यास एक था कलाकार।

उपन्यासकार के रूप में एक बड़ा कद होने के बावजूद अपनी उत्तर वय में रामदरश जी ने अपनी रचनात्मक सक्रियता तो बनाए रखी पर शायद हाल के उपन्यासों को वे वैसा बड़ा फलक नहीं दे पाए जैसा पानी के प्राचीर या जल टूटता हुआ जैसे उपन्यासों में। जहाँ लेखक से उसकी परिपक्व वय में और भी संजीदा रचनाओं की अपेक्षा की जाती है, उस दृष्टि से रामदरश जी इन उपन्यासों से कोई नई लकीर खींचते नहीं जान पड़ते। हाँ, वे इधर अपने अतीत में झाँक रहे हैं तो जीवन के सुखों-दुःखों की साक्षी रही पत्नी को एक बचपन यह भी नामक उपन्यास के केंद्र में रखते हैं तो असमय दिवंगत कलाकार पुत्र हेमंत मिश्र को एक था कलाकार जैसे उपन्यास में गूँथते हैं। पर जो भी हो उनके शुरुआती उपन्यासों का जादू बीस बरस के बाद से लिखे गए उपन्यासों में प्रभावी नहीं है किन्तु किस्सागोई में रमे हुए हाथ किसी की सामान्य घटना को एक बड़ी कथोक्ति में बदल सकते हैं, यह आज भी उनके लिए संभव है। इस तरह कवि व्यक्तित्व के साथ-साथ कथाकार के रूप में रामदरश मिश्र का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। वह इस बात से कहीं भी कमतर नहीं आँका जा सकता कि उत्तरवय में उन्होंने ऐसे उपन्यास लिखे हैं जिनका स्तर कुछ कमतर है। बेशक इनका अधिक साहित्यिक मूल्य भले न हो किन्तु उनमें वर्णित जीवन-मूल्य और सामाजिक मूल्यों की अपनी प्रासंगिकता है और रहेगी।

रामदरश जी ने कविता व कथा के अलावा कथेतर गद्य विधाओं में प्रभूत लेखन किया है। ललित निबंधों की पुस्तक कितने बजे हैं, बबूल और कैक्टस व छोटे-छोटे सुख उनके लालित्यपूर्ण निबंधों का परिचायक है तो संस्मरणों में सर्जना ही बड़ा सत्य है व स्मृतियों के छंद व सहयात्राएँ उनकी जीवंत कृतियाँ हैं। स्मृतियों के छंद में वे अनेक साहित्यिक मित्रों को बड़े अपनापे के साथ स्मरण करते हैं। ठाकुर प्रसाद सिंह जैसे लेखक पर उनका संस्मरण दर्द की हँसी कितना मार्मिक बन पड़ा है इसकी दूसरी मिसाल उनके यहाँ नहीं मिलती। समय-समय पर प्रकाशित होते आत्मकथाओं के संचयन

सहचर है समय की अपनी खुशबू है तो डायरियों में उनके दैनंदिन का संसार मुखरित है। समीक्षा की दशाधिक पुस्तकें होने के बावजूद वे अपने को आलोचक के रूप में क्लेम नहीं करते बल्कि वे एक ऐसे समावेशी समीक्षक के रूप में नज़र आते हैं जिन्होंने अपने विपुल अध्ययन से हिंदी की रचनात्मक विधाओं को गौर से आत्मसात किया है।

रामदरश जी का जीवन बहुत धवल और उदात्त नहीं रहा कि जहाँ संघर्ष की खरोंचें न हों। वे गोरखपुर के डुमरी गाँव में जन्मे जो राप्ती व गोर्रा दो नदियों से घिरा हुआ है। बाढ़ यहाँ के किसानी जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। अतः जीवन अभावों से ही गुज़रा। भाई ने पढ़ाया-लिखाया। बाद में स्कॉलरशिप से मदद मिली। काशी से एम.ए., पीएच.डी. की पर विश्वविद्यालय में उनके लिए स्थान न संभव हुआ। काशी छोड़कर रोजी-रोटी

डॉ. ओम निश्चल के साथ

के वास्ते गुजरात जाना पड़ा। हालांकि गुजरात में उनके प्रेमियों की विशाल संख्या है। वहीं उनके शिष्य हैं गुजराती के जाने माने लेखक डॉ. रघुवीर चौधरी जो भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से समादृत हैं। विस्थापन का पहला बड़ा दर्द उनके लिए बनारस छोड़ना ही था। क्या विडंबना है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के रहते हुए भी उनकी नियुक्ति वहाँ न हो सकी। यहाँ तक कि गुरुवर हजारी प्रसाद द्विवेदी को भी काशी छोड़नी पड़ी। पर आचार्य से मिली जीवन व साहित्य की सीख पग-पग पर काम आती रही और वही उन्हें पहचान दिलाती रही। आख़िरकार गुजरात वे से दिल्ली आए और मॉडल टाउन में रहने लगे। आकाश की छत जैसा मार्मिक उपन्यास उनके इसी मॉडल टाउन प्रवास की देन है। इतने सुदीर्घ जीवन में रामदरश मिश्र ने जो देखा-सुना-भोगा व अनुभव किया है पता नहीं उसका कितना अंश वे अपनी रचनाओं में दे सके हैं पर अपने उपन्यासों में ऐसे ऐसे चरित्र गढ़ते हैं जिन्हें हम भूल नहीं पाते। उनकी पीड़ा के सहयात्री बन जाते हैं। मंजरी, बदमी, दीपा, रूपमती, लक्ष्मी, जैसे स्त्री पात्र इसके प्रमाण हैं। दूसरा घर के डॉ. गौतम के रूप में हम रामदरश जी की स्वयं की छवि देख-परख सकते हैं। विचारधारा के स्तर पर उनमें पर्याप्त प्रगतिशीलता है। गाँवों के समाजशास्त्र व अर्थशास्त्र की पूरी समझ है। हम यह कह सकते हैं यदि विवेकी राय, राही मासूम रज़ा, रेणु, शिवप्रसाद सिंह, मार्कंडेय व कमलाकांत त्रिपाठी के यहाँ ग्रामीण और किसानी जीवन की वेदना बखूबी चित्रित हुई है तो इसका श्रेय प्रेमचंद की उस किस्सागोई की परंपरा को जाता है जिसे किसानी जीवन के यथार्थ की समझ तो थी ही, पूँजीवादी शक्तियों व सामंतों के शोषण की भी समझ कम न थी। एक तरह से ऐसे लेखकों के उपन्यासों से उस दौर के सामाजिक आर्थिक ढाँचे को बखूबी समझा जा सकता है।

इतने विपुल लेखन, इतने विशद जीवन और रचनाशीलता के इतने लंबे सफर के बीच आज रामदरश मिश्र जब जीवन शती की देहरी पर हैं, उन्हें कभी-कभार शारीरिक शैथिल्य तो अनुभव होती थी, पर थकान नहीं। रचनात्मकता उनकी शारीरिक थकान के लिए मलहम की तरह थी। जरा-सा स्वस्थ हुए कि गज़ल का कोई मतला भीतर गूँजने लगता है। डायरी का अपना नोटपैड वे निकाल लेते हैं। बेटी डॉ. स्मिता उनके इर्दगिर्द बनी रहती है। शशांक बैंककर्मी होते हुए भी उनका मिजाज़ समझते हैं। यही वह जिजीविषा है जो उन्हें सृजन-विरत नहीं होने देती। उनका जीवन बतकहियों का जीवन रहा है। उन्होंने जीवन को एक महोत्सव की तरह जिया है। अभावों से आँखें मिलाते हुए भी होली, दीवाली और त्यौहारों को पूरी जीवंतता से जिया और रचनाओं में उकेरा है। वे कहते हैं, पथ सूना है, तुम हो, हम हैं, आओ बात करें। साथ सफर की घड़ियाँ कम हैं, आओ बात करें। ऐसे कितने ही आत्मीय गीत उन्होंने रचे हैं। एक गीत में वे कहते हैं, "हँसता हुआ रहेगा आँगन दीवारें ढह जाएँगी/यह न रहेगा वह न रहेगा, यादें ही रह जाएँगी।" कितनी वेदना से वे यह कहते हैं, रच रेती पर चित्र पवन से/चले गए वे दिन उन्मन से। रामदरश मिश्र ने जीवन की दुश्वारियों के चित्र ज़रूर खींचे हैं, पर हताशा या नैराश्य उनके रचना-संसार व जीवन में कहीं नहीं है। वे मानवीय जीवन के सभी पहलुओं के चितेरे हैं और आज भी लाखों पाठकों के लिए एक तीर्थतुल्य आकर्षण भी, जिनकी रचनाओं से मिलने पर ही सर्जना के सत्य का सही अर्थ पता चलता है। ◆

पता : जी-1/506 ए, दाल मिल रोड,
उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059
मो. : 9810042770

मेरे पिता, शताब्दी जिनकी सहचर रही

डॉ. स्मिता मिश्रा

गीत नई कविता, छोटी कविता, लंबी कविता यानी कि कविता की कई शैलियों में पिताजी ने अपनी प्रभावशाली अभिव्यक्ति के साथ-साथ ग़ज़ल में भी अपनी सार्थक उपस्थिति रेखांकित की। इसके अतिरिक्त उपन्यास, कहानी, संस्मरण, यात्रावृत्तांत, डायरी, निबंध आदि सभी विधाओं में महत्वपूर्ण साहित्यिक कृतियाँ दी हैं।

पिताजी संभवत हिंदी के पहले साहित्यकार थे जिनके जीवित रहते उनकी शताब्दी मनाने का अवसर मिला। हम लोग उस महा सृष्टा के आभारी हैं जिसने मेरे श्रद्धेय पिता प्रो. रामदरश मिश्र को एक बहुत लंबी उम्र दी और उन्हें बचपन से लेकर आजतक साहित्य सेवा में निमग्न रखा ग़रीब गाँव के एक अभाव-ग्रस्त परिवार में जन्म लेकर वे क्रमशः शिक्षा और साहित्य के सहारे लगातार आगे बढ़ते गए। पिताजी की यह लंबी साहित्य-यात्रा अपने समय के कई महत्वपूर्ण पड़ावों से होते हुए निरंतर प्रखर और प्रांजल होती गई। पिताजी ने अपने परिवेशजन्य अनुभवों एवं विचारों को लेखनी में उतारा एवं गाँव की मिट्टी, सादगी और मूल्यधर्मिता को अपनी रचनाओं में व्याप्त होने दिया। गीत नई कविता, छोटी कविता, लंबी कविता यानी कि कविता की कई शैलियों में पिताजी ने अपनी प्रभावशाली अभिव्यक्ति के साथ-साथ गज़ल में भी अपनी सार्थक उपस्थिति रेखांकित की। इसके अतिरिक्त उपन्यास, कहानी, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, डायरी, निबंध आदि सभी विधाओं में महत्वपूर्ण साहित्यिक कृतियाँ दी हैं।

पिताजी की इस यात्रा का प्रारम्भ कम रोचक नहीं है। यह बड़ा सच है कि पापा की बचपन में पढ़ने से रूचि उचाट हो गयी थी। जब सबने यह मान लिया था कि पापा निरक्षर ही रहेंगे। जब सबसे उपेक्षा ही मिल रही थी तब मेरी दादी ने इस नियति को स्वीकार नहीं किया कि उनका बेटा निरक्षर रह जाये। एक दिन रसोईघर में कोयले की राख को ही स्लेट बना कर, पापा का हाथ पकड़ कर अक्षर ज्ञान करना शुरू किया। माँ का गहरा आत्मीय स्पर्श और विश्वास से भरे हाथ से अक्षरों का तिलिस्म पापा के लिए खुलता चला गया और पापा के हाथ में कुदाल-फावड़े की जगह कलम आ गयी। और कलम भी ऐसी वैसी नहीं-'सरकंडे की कलम' जो प्रशस्ति गान नहीं बल्कि सच लिखती है, झंडा या नारा नहीं लिखती बल्कि अभिशप्त लोक का जिया हुआ अनुभव का सत्य लिखती है। अपनी जीवन यात्रा के क्रम में पिताजी विविध अनुभवों से गुज़रते रहे और उन्हें अपनी मूल्य दृष्टि से कहानियों में रूपायित करते रहे। पिताजी की रचनाएँ किसी विमर्श के तहत नहीं बल्कि गहन जीवन अनुभव और मूल्य दृष्टि से सहज भाव से लिखी गयी हैं। पिताजी की प्रथम पाठिकाएँ घर में हम दो रही हैं। पहले माँ फिर हम। हम दोनों ने कई पुस्तकों का सम्पादन भी किया। पिताजी के साथ हम दोनों रचनाएँ छाँटने का कार्य करते।

पापा का सुबह का समय विशेषकर सृजनात्मक लेखन का रहता था। कविता-गीत तो दिनभर गुनगुनाया करते थे, आज भी गुनगुनाते हैं। गत वर्ष फरवरी में जब पापा के कूल्हे की हड्डी की बहुत गंभीर सर्जरी हुई तब ऑपरेशन के बाद आईसीयू से जब कक्ष में लाया गया तो होश आते ही अपनी कविता गुनगुनाने लगे। उस समय यह ज्ञात हुआ कि कविता में कितनी शक्ति है! अवसाद के क्षणों से भी संजीवनी की ताकत है कविता में। पापा की कविता-कहानी हम भाई बहनों के लिए केवल साहित्यिक संस्कार भर तक न थी बल्कि हमारी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का भी साधन थी। जब हमें कुछ पैसे चाहिए होते थे तो हम पिताजी के पास कलम कागज़ लेकर बैठ जाते और उनसे कोई कविता लिखवा लेते। पापा बोलते

जाते और हम स्पष्ट लेखनी में लिखते जाते। जब वह कविता छप कर आती तो उस मानदेय में से हमें भी कुछ मिल जाता। सच में पापा के दिए उन कुछ पैसों से हमें जो अपार आनंद मिलता उसका रोमांच अभी भी होता है।

बचपन से ही साहित्यिक परिवेश से हम सब भाई बहनों को मिला। घर में पुस्तकें, पुस्तकें और पुस्तकें ही देखीं। बचपन से ही अपने घर में सभी विचारधाराओं के लेखकों, चिंतकों, शोधार्थियों और प्राध्यापकों का आना-जाना देखा है। साहित्य जगत में बेशक वे शीर्ष आलोचक रहे हों, जनवादी कवि हों, प्रयोगवाद-तार सप्तक के कवि रहे हों पर हमारे लिए सभी अंकल, चाचा जी, ताऊ जी ही थे। आज के शीर्षस्थ प्रकाशकों को पैदल या साइकिल से घर में आते देखा और पापा से कोई भी पुस्तक प्रकाशन हेतु निवेदन करते देखा। इसलिए आज भी सभी को हम अत्यंत आत्मीय दृष्टि से ही देखते हैं और आत्मीय संबोधनों से ही पुकारते हैं।

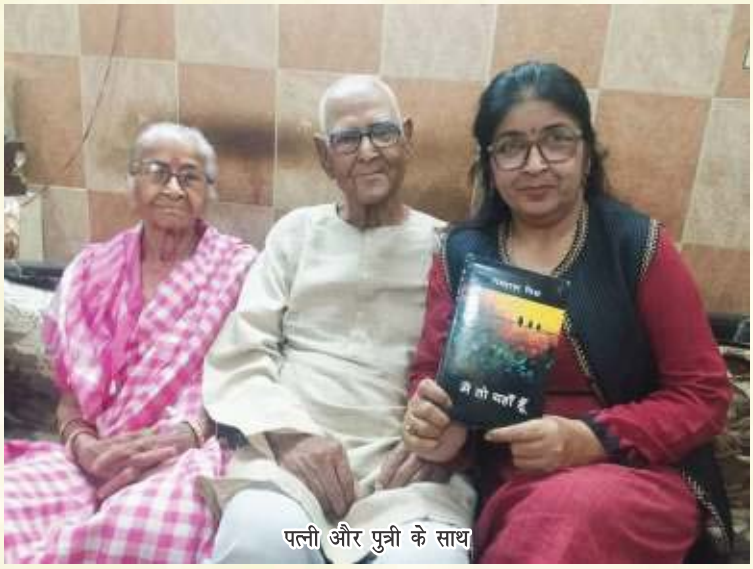

पत्नी और पुत्री के साथ

घर में सबसे छोटी होने के कारण मैं माता-पिता, भाई-बहन सबकी लाडली रही। पापा की तो मैं पिछलग्गू ही रही। पापा जहाँ-जहाँ जाते मैं उनका कुर्ता पकड़े-पकड़े साथ साथ चलती। मेरे पाँव में बचपन में कुछ परेशानी थी। पापा मुझे साइकिल पर बैठाकर मॉडल टाउन से करोल बाग ले जाते और मेरे पैर का उपचार कराते। मैं चुपचाप साइकिल पर पापा के आगे बैठ जाती और यात्रा का आनंद लेती। मंझले भाई शशांक मिश्र के प्रयास से मैंने भी छत्रसाल स्टेडियम में बास्केटबॉल खेलने जाना शुरु किया। प्रत्येक कक्षा में अच्छे अंक प्राप्त होते रहे पढ़ाई के साथ-साथ मेरे स्पोर्ट्स की यात्रा भी चलती रही। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नेट बॉल और राष्ट्रीय स्तर पर बास्केटबॉल प्रतियोगिता में भाग लिया। पिताजी साहित्य में निमग्न रहे लेकिन मेरे जीवन की गतिविधियों से भलीभांति अवगत रहते थे। सीमित संसाधनों में भी मेरी स्पोर्ट्स की आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास करते रहते। मुझे याद आता है वह दिन जब मेरी क्रॉस कंट्री की अभ्यास-दौड़ थी। मैं आठवीं कक्षा में थी। दिल्ली यूनिवर्सिटी से छत्रसाल स्टेडियम तक की इस दौड़ में स्टेडियम के सभी खेलों के खिलाड़ियों को भाग लेना था। यह मेरा दौड़ का पहला अनुभव था। मैंने पापा और माँ को कहा था कि आप भी मेरी दौड़ को देखने आना। इसलिए दौड़ते हुए मेरा ध्यान दौड़ पर कम और माँ पापा को देखने में ज़्यादा था। दौड़ते-दौड़ते मैंने देखा कि मम्मी पापा दोनों सड़क के किनारे खड़े मेरी हौसला अफज़ाई के लिए खूब ज़ोर-ज़ोर से ताली बजा रहे थे। यह मेरे लिए अनोखा अनुभव था और फिर मैं प्रसन्न होकर इतनी तेज़ी से दौड़ी कि कई लोगों को पछाड़कर तीसरे स्थान पर आ गई। सच में माता पिता का चेहरा कितनी ऊर्जा दे जाता है।

जहाँ आप पहुँचे छलाँगे लगाकर,
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे धीरे।

पापा की अमर ग़ज़ल की ये पंक्तियां पापा की बेटी यानी मुझ पर भी लागू होती हैं। जब-जब मैं किसी उदास स्थिति में पड़ी तब तक पिताजी ने मुझे संभाला और सुंदर भविष्य का पाठ सिखाया। देश विदेश के संस्थानों में प्रोफेसरशिप ऑफर तो डेढ़ दशक पहले से ही आ रहे थे, किंतु माता-पिता के मोह और दायित्व के कारण दिल्ली से बाहर जाना संभव नहीं रहा। दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलेज में जब बहुप्रतीक्षित प्रोफेसरशिप मुझे प्राप्त हुई तो पापा ने कहा जो मिला है उसका आनंद उठाओ, महत्वाकांक्षा के चलते स्वयं को लहूलुहान नहीं करना चाहिए।

सारे भाई अपने-अपने पथ पर चलते रहे। मेरे बड़े भाई स्वर्गीय हेमंत मिश्र और छोटे भाई विवेक मिश्र राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की पढ़ाई कर थिएटर और फिल्मों से जुड़ गए। मंझले भाई और हमारे घर की केंद्रीय धुरी शशांक मिश्र बैंकिंग के क्षेत्र में चले गए। बड़ी बहन डॉ. अंजलि तिवारी हमारे जीजाजी अश्विनी तिवारी की तबादले की नौकरी के कारण देश के तमाम भागों में घूमती रहीं। मैं ही माँ-पापा के पास अभिन्न भाव से जुड़ी रही। पिताजी को इस बात की प्रसन्नता रही कि मैं उनके साहित्य की देखभाल कर रही हूं। उन्हें इस बात की प्रसन्नता थी कि मैं उनके साहित्य की सुरक्षा तो करूंगी ही और लोगों के बीच उनके निरंतर प्रसारित होने में मेरी अहम भूमिका रहेगी। मैंने पिताजी की विविध विधाओं की कृतियों की समीक्षा एवं सम्पादन किया है जैसे रामदरश मिश्र रचनावली, कविता समग्र, रामदरश मिश्र : एक शिनाख्त, दलित जीवन की कहानियाँ आदि।

माँ-पापा का गहरा साहचर्य अद्भुत रहा है। मुझे लगता है कि उनके संबंधों को पाठ्यक्रम में केस स्टडी के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए। माँ का सातवीं कक्षा में पिताजी के साथ विवाह हुआ था। आगे स्नातकोत्तर तक और फिर पीएचडी रजिस्ट्रेशन तक की शिक्षा पापा ने करवाई। अभी 5 जुलाई, 2023 को ही माता पिता की 75 वीं वैवाहिक वर्षगाँठ मनाई थी। उनका दांपत्य जीवन इसीलिए आदर्श बना कि उन्होंने माँ की इच्छाओं का सदा सम्मान किया और कभी भी अपने मत को उन पर थोपा नहीं। अपनी सारी कमाई-धमाई माँ को देते रहे और स्वयं फकीर की तरह चलते रहे। माँ ने पिता जी से संबंधित बातचीत करते हुये एक साहित्यिक समारोह में मज़ाक-मज़ाक में कहा था कि

मिश्र जी एक बहुत निकम्मे व्यक्ति सिद्ध हुए होते यदि वे कवि न होते तो। लोग हँस पड़े थे और इस मज़ाक में छिपी मिश्र जी की प्रतिष्ठा का सम्मान किया था। वास्तव में वे दुनियादारी का दायित्व तो माँ ने सँभाला और समर्पित भाव से पिता जी को साहित्य रचना के लिए प्रोत्साहित करती रही और उनके साहित्य की प्रथम पाठिका बन कर एक अच्छे कवि की पत्नी होने का गौरव अनुभव करती रहीं। पापा ने माँ को केन्द्रित कर अनेक कविताएँ लिखीं, 'एक बचपन यह भी' जैसा उपन्यास लिखा।

पिताजी पूजा पाठ की स्थिति को नहीं मानते थे किंतु माँ तो सनातन पूजा पाठ में विश्वास करती रही। पिताजी ने कभी भी उनसे इस मामले में विवाद नहीं किया। वह परिवार की प्रसन्नता के लिए पूजा पाठ में उपस्थित अवश्य रहते रहे हैं। मैंने बचपन से ही माँ के साहस के अनेक कारनामें देखे हैं। वह अपने बचपन में भी वे स्वतंत्रता सेनानियों के लिए कार्य करती थीं और बड़े से बड़े अंग्रेज़ अफसर के सामने वह निडरता से खड़ी हो जातीं और जवाब देतीं। 1984 के दंगों में मां ने हमारे मोहल्ले के तमाम सिक्खों को सेना की सहायता से सुरक्षित जगहों तक पहुंचाया। माँ का नाम लिम्का बुक ऑफ रिकार्ड्स में भी शामिल रहा है। वर्ष 2018 की लिम्का बुक ऑफ रिकार्ड्स ने देश के प्रथम द्विभाषिक मासिक खेल समाचार पत्र के रूप में माँ के स्वामित्व और मेरे सम्पादन में प्रकाशित होने वाले 'स्पोर्ट्स क्रीडा' समाचार पत्र को रिकार्ड्स बुक में दर्ज़ किया। माँ और मैं - 'पीर बावर्ची भिश्ती खर' की तर्ज़ पर स्पोर्ट्स क्रीडा से जुड़े रहे। माँ हिन्दी के सभी लेखों को पढ़ती और अपनी राय देती। हम लोग मिलकर लिफाफे बनाना, अख़बार को फोल्ड करना, उन पर पते लिखना, स्टाम्प टिकट लगाना आदि प्रक्रियाओं से गुज़रते थे। पापा हम दोनों को देखते और हम पर कुछ लिख डालते, कई बार मेरे लिए चाय भी बना लाते।

माँ पिताजी के आत्मिक प्रेम के अनेक प्रसंगों की मैं साक्षी रही। पिछले वर्ष जुलाई में माँ के ब्रेन ट्यूमर का पता चला और उनका दायाँ अंग काम करना बंद कर दिया। मैं प्रतिदिन कॉलेज से शाम को उनके पास जाकर उनकी मालिश करती तो वे आंखों से इशारा करतीं कि मेरी नहीं पापा की करो। मां, पापा से इतनी अभिन्न रूप से जुड़ी हुई थीं कि उस अचेतावस्था में भी उन्हें पिताजी की चिंता लगी रहती थी। कभी पिताजी का हाथ पकड़ कर रोने लगती थीं और यदि पापा मुंह उधर करके सो जाते तो वह उनका हाथ पकड़ कर के छूने की कोशिश करती थीं। दोनों का एक दूसरे को देखना, पीड़ा को अनुभव करना, साहचर्य की ऊष्मा और आगत का दर्द...इनके चेहरे देख कर अद्भुत अहसास होता था। जो एहसास हुआ, अद्भुत था, और यहां तक कि पापा के खाने-पीने, दवाई सबका ध्यान उनको उसे अवस्था में भी रहता था। कभी कुर्ते के बटन खुले हुए हैं तो मुझे इशारा करके आंखों से इशारा करके मुस्कुराती थीं कि देखो कैसे उल्टे बटन लगा रखे हैं पापा ने। जब मैं रोज़ माँ के पास से रात को अपने फ्लैट पर लौटती थी तो वह उसी अवस्था में भी अटेंडेंट से कहती थी कि मुझे बालकनी तक ले चलो और जब तक मैं नीचे अपनी कार में बैठकर उनको हाथ हिला करके नहीं निकलती थी तब तक वह मुझे दूर तक देखती रहती थीं। 3 दिसम्बर, 2023 को सुबह 4:00 बजे शशि भाई का फोन आया और बस इतना ही कहा आ जाओ। मैं समझ गई इसका क्या अर्थ है। अभी पिछली रात को ही तो माँ से कहा था कि मैं कल आती हूँ। भाई के घर पहुँच कर देखा कि माँ के प्रशस्त ललाट पर बड़ी सी बिंदी और एकदम शांत मुद्रा। लगा ही नहीं कि अब माँ कभी नहीं मुझे देखेगी...।

पिताजी की शतकीय उपलब्धि के उल्लास का हम समस्त आत्मीय जन प्रतीक्षा कर रहे थे किन्तु माँ के परलोकगमन के कारण एक गहरा अवसाद छा गया। हम सब की इच्छा थी कि शताब्दी वर्ष माता-पिता दोनों की उपस्थिति में मन सके ..किन्तु ईश्वरेच्छा के आगे निरुपाय ...

यह मेरे प्रारब्ध कर्मों का फल है कि मैं ऐसे घर में पैदा हुई जहाँ सरस्वती मिश्र मेरी माँ रही और रामदरश मिश्र मेरे पिता। आज के दिन माँ को समर्पित पापा की एक ग़ज़ल साझा कर रही हूँ, शायद पाठक भी इसमें अपने को खोज पाए !

माँ

गाल पर ढलका हुआ एक दर्द का मोती है माँ
घोर अंधियारों में जलती प्यार की जोती है माँ।

ओठ उसके, उसकी आँखें हैं भला उसके कहाँ
घर के सुख-दुःख में समाकर हँसती है रोती है माँ।

बारी-बारी छोड़ जाते साथ हैं जब हमसफर
मेरी रग-रग में दुआ सी तैरती होती है माँ।

भूख, बीमारी, तबाही सोखते रहते हैं रस
ख़्वाब फिर-फिर घर की बंजर भूमि में बोती है माँ।

दहशतें आ जाये आँखों में न बच्चों की कभी
रात भर सोती हुई सी भी कहाँ सोती है माँ।

भागती सुबहें, बहुत बेचैन दिन, शामें थकी
भग्न रातें शीश पर अपने सदा ढोती है माँ।

दाग कितने ही लगा बाहर से आ जाते हैं लोग
आँच में खुद को गला करके उन्हें धोती हैं माँ।

जलती रहती है अंगीठी सी रसोईघर के बीच
देके पूरी ज़िन्दगी कुछ भी कहाँ खोती है माँ।

पापा का जाना हमारे लिए एक अजीब-सा खालीपन छोड़ गया है बहुत याद आयेंगे पापा। ◆

पता : सी-903 चित्रकूट अपार्टमेंट, प्लाट संख्या-9,
सेक्टर-22, द्वारका, नयी दिल्ली-110077
मो. : 8860127131

रामदरश जी के साथ एक समृद्ध शाम

हरिशंकर राढ़ी

मिश्र जी से मिले एक महीने से अधिक हो गया था, उनसे मिलने का एक यही कारण पर्याप्त था। सुबह फोन किया और पूछा कि कब आऊँ? मिश्र जी ने कहा, 'राढ़ी जी, जब मन हो आ जाइए आजकल में'।

साहित्य मनीषी प्रो. रामदरश मिश्र जी से मिलना हमेशा ही सुखकर, प्रीतिकर एवं ऊर्जस्विता से भरपूर होता था। यह अपना सौभाग्य ही है कि जब मन होता, मिश्र जी से मिल लिया करता था। हाँ, इतना ध्यान अवश्य रखता हूँ कि उनका स्वास्थ्य ठीक चल रहा हो, मेरे कारण उन्हें कोई असुविधा न हो। वैसे, उनका स्वभाव ही ऐसा है कि उन्हें किसी से असुविधा नहीं होती थी, बशर्ते वह भी उनकी उम्र एवं निष्कलुष मानसिकता को समझता हो।

मिश्र जी से मिलने का कोई विशेष कारण नहीं होता। बस जब भी उनके सान्निध्य की व्याकुलता होती है, बात की और चल दिए। बात तो होती ही रहती थी। पिछले 15 अगस्त को जब उनका जन्म शताब्दी समारोह प्रारंभ हुआ था, तब से ऊर्जा एवं गर्व का स्तर अपने आप उठ गया है। समारोहों का साक्षी बनने का अपना आनंद है तो अलग से मिलने का अलग। मिश्र जी के कालखंड में होने व मिलते रहने का तात्पर्य हमारे लिए कुछ ऐसा ही है, जैसे मिश्र जी का पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी के कालखंड में होना और उनसे मिलते रहना था।

मिश्र जी से मिले एक महीने से अधिक हो गया था, उनसे मिलने का एक यही कारण पर्याप्त था। सुबह फोन किया और पूछा कि कब आऊँ? मिश्र जी ने कहा, 'राढ़ी जी, जब मन हो आ जाइए आजकल में'। फिर तो आज ही ठीक है। मित्र बद्री प्रसाद जी को फोन किया। वे मिश्र जी से मिलाने के लिए आग्रह कर चुके थे। मैंने कहा कि आज शाम को समय हो तो चलें, और हम शाम को पहुँच गए। इन दिनों वे बड़े पुत्र श्री शशांक जी के साथ द्वारका में रह रहे थे।

मिश्र जी के काव्य पाठ का आनन्द लेते हुए

मिश्र जी तो वैसे ही खुश रहते थे, ऊर्जस्वित रहते थे, लेकिन उस दिन कुछ अधिक खुश दिख रहे थे। डॉ. वेद मित्र शुक्ल जी पहले से आए हुए थे। मिश्र जी की अपनी आभा है, औरा है, जिसकी उजास में साहित्य और संबंध बहुत पवित्र, बहुत अर्थवान लगने लगते हैं। लगता है कि हम साक्षात् साहित्य की विभिन्न विधाओं के सम्मुख बैठे हुए हैं। जितना आत्मसात कर लें, हमारा है। किसी अपरिचित को भी वे

क्षणभर में सहज एवं आत्मीय बना लेते हैं। बिना किसी दिखावे के ही साहित्य उनसे झरता रहता है। साहित्य के लिए उन्हें कोई श्रम नहीं करना पड़ता।

कुछ देर बाद बहन प्रो. स्मिता मिश्र जी माता जी को सहारा देते हुए लाईं। माता जी को मालूम हुआ कि राढ़ी जी आए हैं तो मिलने के लिए उद्यत हो गईं। उनका स्नेह ही ऐसा था। खटाखट चलने वाली माता जी सहारे से चल रही थीं। इन दिनों माता जी का स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं था। दाएँ हाथ में चोट लगी थी, थोड़ा-सा पैरालिसिस का प्रकोप था। माता जी को इस रूप में देखकर दुःख हुआ। उन्हें इस हाल में देखने की आदत नहीं थी। वे तो सदैव ऊर्जा से भरपूर, ठहाके लगाती हुई, साहित्य एवं समाज पर बेबाक टिप्पणियाँ करती हुई मिली हैं। इस बार से पहले न जाने कितनी बार उनके हाथों की चाय पी है, नाश्ता किया है, हलवा खाया है। अभी जून में 'समकालीन अभिव्यक्ति' के 'रामदरश मिश्र एकाग्र अंक' का पुस्तकीय रूप आया था तो उन्हीं के यहाँ उसका लोकार्पण था। उस अवसर पर भी डॉ. वेद मित्र शुक्ल, श्री ओम निश्चल जी, प्रकाशक श्री हरेन्द्र तिवारी जी उपस्थित थे। मैं और उपेंद्र कुमार मिश्र जी तो संपादक के रूप में थे ही। उस दिन भी माता जी के हाथ का हलवा खाया था। उनसे बहुत स्नेह मिलता रहा था। माता जी की ऊर्जा की चर्चा मेरी श्रीमती जी तमाम रिश्तेदारों एवं अपनी सहेलियों से करती रहती हैं, प्रेरित भी होती हैं। माता जी से कुछ देर तक बात हुई। कुछ सुधार है और विश्वास है कि अपनी सकारात्मकता एवं सक्रियता से शीघ्र ही पहले की भाँति स्वस्थ हो जाएँगी। मिश्र जी की जन्म शताब्दी का समारोह दूर-दूर तक मनाया जा रहा था। अभी 27 सितंबर, 2023 को अहमदाबाद में एक समारोह बड़े स्तर पर धूमधाम से मनाया गया। गुजरात को मिश्र जी अपना दूसरा घर मानते हैं। वहाँ के लिए उनके मन में असीमित प्यार है और बदले में गुजरात के लोग उतना ही प्यार करते हैं। वैसे यह कहना मुश्किल है कि कौन ज़्यादा प्यार करता है। उन लोगों ने लगभग साठ साल पूर्व की मिश्र जी की यादें सहेजकर रखी हुई हैं। मिश्र जी के जन्म शताब्दी समारोह के अवसर पर सूर्यदीन यादव जी अहमदाबाद से चलकर बस मिश्र जी के कार्यक्रम में शरीक होने आए थे। गुजरात के कार्यक्रम में मिश्र जी की ओर से प्रो. स्मिता जी और श्री ओम निश्चल जी गए थे। सुना था, फोटो भी देखा था और ओम निश्चल जी ने भी बताया कि कार्यक्रम कितना भव्य था। यह सब देखकर लगता है कि समय कितना भी ख़राब क्यों न हुआ हो, जोड़-जुगाड़ का कितना भी बोलबाला हो, सच्चाई और अच्छा साहित्य अभी भी सम्मान पाता है।

गुजरात को मिश्र जी अपना दूसरा घर मानते हैं। वहाँ के लिए उनके मन में असीमित प्यार है और बदले में गुजरात के लोग उतना ही प्यार करते हैं। वैसे यह कहना मुश्किल है कि कौन ज़्यादा प्यार करता है। उन लोगों ने लगभग साठ साल पूर्व की मिश्र जी की यादें सहेजकर रखी हुई हैं। मिश्र जी के जन्म शताब्दी समारोह के अवसर पर सूर्यदीन यादव जी अहमदाबाद से चलकर बस मिश्र जी के कार्यक्रम में शरीक होने आए थे। गुजरात के कार्यक्रम में मिश्र जी की ओर से प्रो. स्मिता जी और श्री ओम निश्चल जी गए थे।

मिश्र जी के पास अनुभवों, स्मृतियों का विशाल भंडार है। आज वे पूरे मूड में थे और बहुत सारी यादें हमसे साझा कीं। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी की सहजता, उनका स्वतःस्फूर्त लेखन, डॉ. नगेंद्र, रामविलास शर्मा आदि की स्मृतियों से जुड़े किस्से सुनाए। दंडी एवं भारवि के प्रसंग सुनाए। यह हमारा

बाएं से डॉ. वेद मिश्र शुक्ल, हरिशंकर राढ़ी, बद्री प्रसाद और रामदरश जी

एक समृद्ध शाम रामदरश जी, प्रो. स्मिता, ओम निश्चल और बद्री प्रसाद के साथ हरिशंकर राढ़ी

सौभाग्य था कि मिश्र जी के माध्यम से हम न जाने कितने मूर्धन्य साहित्यकारों को जान पा रहे थे। फिर बात भारतीय समाज, ख़ासकर हिंदू समाज में फैले पाखंडों व अंधविश्वासों की चली। मिश्र जी ने कुछ घटनाओं की चर्चा के साथ पाखंडियों एवं अंधविश्वासियों की अपने तरीके से भर्त्सना की। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श व आलोचना की बात चली।

एक ख़ास मानसिकता के आलोचकों व स्वनामधन्य साहित्यकारों ने मिश्र जी को हाशिये पर रखने का पुरज़ोर प्रयास किया, केवल इसलिए कि मिश्र जी उनके ध्वज तले खड़े होकर महिलाओं और दलितों-वंचितों के पक्ष में नहीं लड़ रहे थे। डॉ. रामदरश मिश्र जी कभी किसी वाद और झंडे के नीचे नहीं रहे। उनके साहित्य की विषयवस्तु आम आदमी रहा। वह उसके सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होते रहे। उसकी पीड़ा और अधिकार को लेकर अपनी सशक्त लेखनी चलाते रहे। आमजन की बात करने वाले तमाम समकालीन लेखक किसी न किसी मठ-समुदाय से जुड़े रहे। पहले उनका एजेंडा निर्धारित होता, नीतियाँ निर्धारित होतीं और फिर उनमें से अधिकतर उन्हीं घोषणा पत्रों के अनुसार अपना लेखन करते। कहना न होगा, इनमें से अधिकतर मठ वामपंथ से मान्यता प्राप्त थे, जिनकी नज़र में सर्वहारा जन के कल्याण का ठेका सिर्फ उन्हें ही मिला था। यदि कोई उनसे लाइसेंस लिए बिना इस वर्जित क्षेत्र में घुसने का प्रयास करता तो उस पर हमला होना ही था। यह बात अलग जिज्ञासा की हो सकती है कि ऐसे लाइसेंसधारी लेखक स्वयं आमजन से कितना जुड़े रहे!

वे स्त्री-विमर्श के नाम पर पौराणिक या ऐतिहासिक चरित्रों का नाम लेकर भाषण नहीं झाड़ते, अपितु वर्तमान समाज की किसी पीड़ित औरत के दुःख-दर्द को इतनी शिद्दत से उभारते हैं कि उनका अंदाज़-ए-बयाँ अपने आप में एक स्त्रीवादी विमर्श बन जाता है और पाठक के मन में परिवर्तन का एक संदेश छोड़ जाता है।

वे स्त्री-विमर्श के नाम पर पौराणिक या ऐतिहासिक चरित्रों का नाम लेकर भाषण नहीं झाड़ते, अपितु वर्तमान समाज की किसी पीड़ित औरत के दुःख-दर्द को इतनी शिद्दत से उभारते हैं कि उनका अंदाज़-ए-बयाँ अपने आप में एक स्त्रीवादी विमर्श बन जाता है और पाठक के मन में परिवर्तन का एक संदेश छोड़ जाता है। मिश्र जी किसी अहल्या, सीता या द्रौपदी के वकील बनकर नहीं खड़े होते। वे उन महिलाओं के साथ खड़े दिखते हैं, जो अपने घरेलू कार्यों को निपटाते हुए पुरुषों के हिस्से का भी काम कर रही हैं। समाज चाहता है कि वह पुरुष की देहरी पर नाक रगड़े, उससे सहायता की भीख माँगे और उसी पर आश्रित रहे। इसके लिए उसे भले ही अपने तन का सौदा करना पड़े। मिश्र जी की नायिका प्रेम में है, तो प्रेम करेगी, लेकिन अपने प्रेमी पति के जुल्मों को एक हद तक ही सहेगी। उसका स्वाभिमान जागृत है और प्रथम वरीयता पर है।

समान्यतः स्त्री विमर्श की बात हो, आधुनिक साहित्य में स्त्रियों पर केंद्रित साहित्य की बात हो या स्त्रीलोक में हुई प्रगति की, तो लोग बड़े या मध्यम शहरों की स्त्रियों की ओर मुख़ातिब होते हैं। कितनी महिलाएँ नौकरीपेशा हुईं, कितनी ऊँचे पदों पर पहुँचीं, कौन-कौन राजनीति और प्रशासन में बुलंदी के झंडे गाड़ रहीं, यह उनकी प्रगति का मानदंड होता है। टीवी-दूरदर्शन पर आने वाली महिलाएँ भी प्रगतिशीलता की प्रतीक हैं। फिल्मी नायिकाएँ तो ख़ैर एकमात्र मानक बनी ही हैं। साहित्य जगत में अच्छा लेखन कर रहीं महिलाएँ सम्मान की पात्र हैं ही, बड़े आलोचकों एवं संपादकों की गणेश परिक्रमा से स्थापित लेखिकाएँ भी इक्कीसवीं सदी की प्रतिमान हैं। इसमें आपत्ति वाली कोई विशेष बात नहीं है, किंतु डॉ. रामदरश मिश्र के साहित्य की कई नायिकाएँ अंतिमजन के समाज से आती हैं। वे नगरीय भी हैं, किंतु उनके ग्राम्यलोक में ऐसी अनेक नारियाँ हैं, जो सदियों से चले आ रहे पितृसत्तात्मक समाज, लिंग आधारित भेदभाव और शोषण के विरुद्ध खुली चुनौती हैं। ज़्यादा नहीं, यदि मिश्र जी की एक कहानी 'एक औरत : एक ज़िंदगी' की अकेली औरत भवानी का साक्षात्कार कर लिया जाए तो स्त्री विमर्श ही नहीं, नारीशक्ति का संपूर्ण दर्शन सामने आ जाता है। पुरुषवादी समाज में भवानी फावड़ा लेकर ज़मीन का सीना तोड़ती दिखती है, और वह भी डंके की चोट पर! नगरीय-उपनगरीय परिवेश की स्त्री विषयक कहानियों की बात करें तो 'आख़िरी चिट्ठी', 'एक भटकी हुई मुलाकात', 'डर' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं, जो पढ़ने के बाद ज़ेहन में देर तक गूँजती रहती हैं। किशोर मनोविज्ञान, एक विकलांग लड़की का मानसिक संत्रास एवं वर्णन की कुशलता देखनी हो तो 'सीमा' कहानी ही पर्याप्त है। इन कहानियों के नाम से अब तक मिश्र जी के कई स्वतंत्र संग्रह आ चुके हैं।

मिश्र जी तो वैसे ही ख़ुश रहते रहे हैं, ऊर्जस्वित रहते थे, लेकिन उस दिन कुछ अधिक ख़ुश दिख रहे थे। डॉ. वेद मित्र शुक्ल जी पहले से आए हुए थे। मिश्र जी की अपनी आभा है, औरा है, जिसकी उजास में साहित्य और संबंध बहुत पवित्र, बहुत अर्थवान लगने लगते हैं। लगता है कि हम साक्षात् साहित्य की विभिन्न विधाओं के सम्मुख बैठे हुए हैं। जितना आत्मसात कर लें, हमारा है। किसी अपरिचित को भी वे क्षणभर में सहज एवं आत्मीय बना लेते थे। बिना किसी दिखावे के ही साहित्य उनसे झरता रहता था।

मिश्र जी के लिए स्त्री विमर्श या दलित विमर्श हवाबाज़ी नहीं है। वे सिर्फ दिखावटी परचम नहीं लहराते। स्त्री विमर्श में शामिल शक्तिशाली समूहों में तमाम ऐसे लोग रहे हैं जो स्त्री विमर्श या स्वतंत्रता के नाम पर नग्नता परोसते रहे। उनकी दृष्टि में नारी सशक्तीकरण यौनिक स्वतंत्रता के अतिरिक्त कुछ नहीं था। वे अपनी पत्नी को परदे के पीछे रखकर दूसरी महिलाओं का समर्थन करने वाले लोगों में नहीं रहे हैं। उनकी दृष्टि में नारी सशक्तीकरण का अर्थ नारी द्वारा अपने दम पर एक सार्थक जीवन जीना एवं समाज की कुदृष्टि से लड़ना रहा है। इसके सबूत में उनकी दर्जनों कहानियों का ज़िक्र किया जा सकता है।

अभी हाल में सर्वभाषा प्रकाशन से मिश्र जी के आलोचनात्मक निबंधों की पुस्तक - 'आधुनिक साहित्य : सर्जना के आयाम' पुस्तक आई थी। मैं उसे पढ़कर उस पर समीक्षात्मक लेख ले गया था। उसकी भी चर्चा चली। मिश्र जी ने माना कि प्रोफेसर के रूप में सेवा के दौरान उन्होंने आलोचना पर बहुत काम किया था। पत्रिकाओं के माँगने पर छायावाद से लेकर अन्य विषयों पर आलोचना का कार्य किया था, किंतु उन्होंने अपने आलोचक को बहुत महत्त्व नहीं दिया। उपरोक्त पुस्तक में मिश्र जी का आलोचना पक्ष बहुत समृद्ध होकर उभरा है। इस पुस्तक से गुज़रते हुए मिश्र जी की चिंतनशीलता एवं नवोन्मेषी दृष्टि पर अचंभित हुए बिना नहीं रहा जाता।

लगभग एक घंटे बाद ओम निश्चल जी आ गए। हम उनकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। गीतकार, आलोचक एवं कुशल संचालक ओम निश्चल जी विभिन्न विषयों पर धाराप्रवाह बोलते हैं। उन्होंने मिश्र जी पर अहमदाबाद में हुए कार्यक्रम का विवरण सुनाया। उनके दृष्टिपथ में बहुत-सी बातें आती हैं और वे उन्हें बेबाकी से रखते हैं। बहुत देर तक ठहाकों के साथ बातचीत चलती रही। जब वे अपने गुरु डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की चर्चा करते हैं तो मानो कहीं खो जाते हैं। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अपने विद्यार्थी जीवन की यादें वे प्रायः साझा करते हैं। यह सच है कि मिश्र जी लगभग अंतर्मुखी स्वभाव के रहे हैं, किन्तु इस स्वभाव की अपनी विशेषता होती है। वे याद करते हैं कि किस प्रकार एक कवि गोष्ठी में अपना गीत 'पुरवइया कुंतल जाल' सुना रहे थे तो वहाँ उपस्थित द्विवेदी जी झूम रहे थे। मिश्र जी उन्हीं के विद्यार्थी थे, लेकिन वे पहचानते नहीं थे। जब द्विवेदी जी ने परिचय पूछा तो मिश्र जी ने बताया कि आपका ही विद्यार्थी हूँ। तबसे जो आत्मीयता बनी, वह बनी ही रही।

'समकालीन अभिव्यक्ति' का जुलाई-सितंबर अंक अभी हाल में ही आया है। इस अंक में अन्य सामग्री के साथ मिश्र जी के जन्मशताब्दी समारोह की सचित्र रिपोर्ट भी गई है। डॉ. वेद मित्र शुक्ल के सुझाव से इस अंक का लोकार्पण भी मिश्र जी, ओम निश्चल जी, प्रो. स्मिता जी, डॉ. शुक्ल के हाथों हुआ। पत्रिका परिवार से बस मैं था। इस मुलाकात का यह एक अतिरिक्त लाभ था, संभवतः यह 'समकालीन अभिव्यक्ति' के वर्तमान अंक का सौभाग्य था।

अब हमारे जैसे नाचीज़ के लिए इससे अधिक समृद्ध शाम दूसरी क्या होगी? हाँ, मिश्र जी का सान्निध्य है और ऐसी शामें मुझे मिलती रहीं जब तक मिश्र जी रहे। उन्हें नमन। ◆

पता : बी-532 (दूसरा तल), वसंतकुंज एंक्लेव (बी-ब्लॉक)
नई दिल्ली-110070
मो. : 09654030701

सहज, सरल और सबके अपने

प्रो. डॉ. अमी दवे

ऋतुओं की रंगिनी को पीकर उल्लसित होने का जो संस्कार उनके कछार-अंचल ने बचपन में ही भीतर जमा दिया, वह दिल्ली में भी अपनी पूरी ताज़गी के साथ प्रतिष्ठित मिला।..... ऐसा लगता था कि वे मस्त कवि और गंभीर चिन्तक के साथ व्यवहार कुशल व्यक्ति हैं।

किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का सबसे आकर्षक पहलू होता है - उसकी निश्छल 'हंसी'। एक ठहाके के साथ, मुक्त होकर जो हंस सकता है उसे कोई परेशानी का अनुभव नहीं होता। श्रेष्ठ साहित्य सर्जक डॉ. रामदरश मिश्र की मुक्त हंसी उनके व्यक्तित्व की परिभाषा है। अति संवेदनशील, भावनामय, उत्साही, निश्छलता और सरलता से भरे मिश्रजी हर किसी को अपनेपन से मिलने की विशेषता रखते थे। 'रामदरश मिश्र, व्यक्ति और अभिव्यक्ति' में प्रस्तुत कथन अक्षरशः यथार्थ है-

"ऋतुओं की रंगिनी को पीकर उल्लसित होने का जो संस्कार उनके कछार-अंचल ने बचपन में ही भीतर जमा दिया, वह दिल्ली में भी अपनी पूरी ताज़गी के साथ प्रतिष्ठित मिला।..... ऐसा लगता था कि वे मस्त कवि और गंभीर चिन्तक के साथ व्यवहार कुशल व्यक्ति है। समय-समय पर मुक्त हास्य और बेलौस परिहास के क्षण भी आया करते थे। परिवार के भीतर वे गृहपति की गंभीरता ओढ़े प्रायः नहीं दिखाई पड़ते। वास्तव में कृत्रिम गाम्भीर्य उनके स्वभाव से ख़ारिज रहता है।"

(पृ-26)

आपका जीवन अत्यंत संघर्ष-युक्त रहा। समय के थपेड़ों और जीवनानुभव से एक साहित्य सर्जक तैयार हुआ। एक ऐसा सर्जक जो लोकहित, लोकपीड़ा एवं लोकोन्मुख होकर सोचता है। साधारण जन के दुःख से दुःखी होकर साहित्य सर्जन की ओर उन्मुख होता है। 15 अगस्त, 1924 को डुमरी जैसी ग्रामीण धरती पर डॉ. रामदरश मिश्र ने जन्म लिया। सम्प्रति हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्य सर्जक श्री मिश्र जी का शताब्दी वर्ष चल रहा है। आपकी जीवनयात्रा को नज़दीक से देखने का शुभ अवसर मिला है। उन स्मृतियों में पुनः गोता लगाने का मौका प्राप्त हुआ है एक संस्मरण के बहाने। सुप्त स्मृतियों को पागुरने का लुत्फ़ उठा रही हूँ। उसी पगदंडी पर पुनः पदछाप बनाने का यह क्षण गंवाना नहीं चाहती थी के.एस.एन. कणसागरा कॉलेज के अध्यापक डॉ. यशवंतभाई गोस्वामी के द्वारा दयावती मोदमयी कवि शेखर पुरस्कार से सम्मानित डॉ. रामदरश मिश्र जी के लिए एक संस्मरण तैयार करने का प्रस्ताव मिला। मैंने सहर्ष उसे स्वीकार कर लिया।

आदरणीय डॉ. रामदरश मिश्र जी से रूबरू होने के शुभ अवसर मुझे प्राप्त होते रहे। 'आकाश की छत' उपन्यास से मेरा प्रथम परिचय हुआ। बाद में एम.फिल (1999) की पढ़ाई के दौरान आपके कहानी साहित्य से परिचय हुआ। एम. फिल के शोध प्रबंध हेतु आपकी कहानियां मुझे पसंद आ गयी। अतः 'कहानीकार रामदरश मिश्र' विषय के साथ शोध कार्य शुरू हुआ। अहिन्दी-भाषी प्रदेश होने के कारण पुस्तक प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। डॉ. यशवंतभाई की सहायता से मिश्र जी से पत्रव्यवहार तथा टेलिफोनिक वार्तालाप संभव हो सका। टेलिफोनिक संवाद में आपकी सरलता मनमंदिर में अंकित हो गई।

दि. 09/03/1999 को के.एस.एन. कणसागरा महिला कॉलेज में गोस्वामी साहब ने मिश्रजी का व्याख्यान रखा। फलतः मुझे उनके प्रत्यक्ष दर्शन हो सके। खादी के धोती कुर्ते में सजी एक बेहतरीन शख़्सियत मेरे सन्मुख थी। दिल्ली जैसे महानगर में रहने वाले, अनेक

साहित्यिक विधाओं पर लेखनी चलाने वाले रचनाकार एकदम सादी पोशाक में !!! मन को मनाते हुए, भरसक आश्चर्य को छिपाते हुए, मैं नतमस्तक हो गयी। कॉलेज में आपकी ज्ञानयुक्त वाणी से लाभान्वित हुई। दूसरे दिन मेरी तबीयत ठीक न होने के कारण आप घर पर पधारे। मेरा हालचाल पूछा। एम.फिल के लघुशोध प्रबंध के विषय को लेकर मेरे प्रश्नों का समाधान किया। साक्षात्कार से आपके प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं विचारों का परिचय हुआ। कहानी में अभिव्यक्त घटना एवं पात्र के विषय में पूछे गये सवाल का जवाब देते हुए आपने कहा था-

"हर रोज़ कोई न कोई घटना घटती रहती है पर कुछ अनुभव खण्ड ऐसे होते हैं कोई चीज़ ऐसी होती है जो पुकारती रहती है कि हमें ज़रा गौर से देखो और बस वही कहानी का आधार बनती है।"

लोक-पीड़ा से भरा आपका साहित्य अत्यंत प्रेरणादायी है। आपने शोधार्थी की शुभेच्छा हेतु कुछ काव्य पंक्तियों को कागज़ पर लिख दिया था। जो मेरे लिए अकल्पनीय था। आपसे हुई वह मुलाकात असाधारण रही।

सन् 2000 में अमरेली (गुजरात) में आयोजित कार्यशाला में अध्यक्ष पद को शोभा देने वाले मिश्रजी से मेरी दूसरी मुलाकात हुई। आप उम्र के उस पड़ाव पर थे, वहीं व्यवहारिकता, ताज़गी एवं उत्साह को देखकर मैं नतमस्तक हो गई थी। आपके व्यक्तित्व एवं विचारों की ऊंचाई का तब अलग अनुभव रहा। आप ही की कहानियों पर मैंने पी.एच.डी. की पढ़ाई आरंभ कर दी थी। आप गुजरात (राजकोट) की एक शोधार्थी के लिए अपने साथ 4 कहानी संग्रह लाये थे। जिससे मेरा शोधकार्य आगे बढ़ पाया था। मेरे लिए आनंद का क्षण वह था जब आपके सन्मुख 'मैला आँचल' को लेकर प्रपत्र पढ़ा। तत्पश्चात् आपके अध्यक्षीय व्याख्यान में मेरे प्रपत्र का उल्लेख हुआ था। आज भी वह क्षण याद करती हूं तो रोमांच से भर जाती हूँ। आपके ज्ञानवर्धक व्यक्तित्व ने मुझे साहित्य के अधिक क़रीब ला खड़ा किया। आपकी सादगी, आपकी वाणी एवं विद्यार्थी के साथ ऊष्मापूर्ण व्यवहार ने मेरा मार्गदर्शन किया।

अगर स्पष्ट कहूँ तो-

"बड़ा भया तो क्या भया जैसे पेड़ खजूर,
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।"

(कबीर)

प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित से व्यास सम्मान प्राप्त करते हुये

खादी के धोती-कुर्ते में सजी एक बेहतरीन शख्सियत मेरे सन्मुख थी। दिल्ली जैसे महानगर में रहने वाले, अनेक साहित्यिक विधाओं पर लेखनी चलाने वाले रचनाकार एकदम सादी पोशाक में !!! मन को मनाते हुए, भरसक आश्चर्य को छिपाते हुए, मैं नतमस्तक हो गयी। कॉलेज में आपकी ज्ञानयुक्त वाणी से लाभान्वित भी हुई।

कबीरदास की इन पंक्तियों का मूलभाव समझ पायी। 2004 में राजकोट में रिफ्रेशर कोर्स के दौरान आपसे पुनः भेंट हो पाई थी। आपकी सरलता एवं निश्छलता ने समाज में उपयोगी होने का पाठ सिखाया। आपके खादी परिधान ने मुझे लघुता से ऊपर उठकर सोचने की ओर उन्मुख किया। आप जैसे बड़े साहित्यकार ने शैक्षणिक क्षेत्र के कर्तव्य पथ को समझाया। नवागत कोमल विद्यार्थी का हाथ पकड़कर उसे मंज़िल की ओर अग्रसर करना शिक्षण है, आपके व्यवहार से स्पष्ट हुआ।

मैं अपने आपको सौभाग्यशाली समझती हूं कि आप जैसे विख्यात, आदर्श, असाधारण, साहित्यकार से मिलना हुआ और यह संस्मरण सम्भव हुआ।

आज उनके न रहने पर उनकी ये यादें और महत्वपूर्ण हो गई हैं। ◆

पता : 3-न्यू कॉलेजवाडी,
प्रीमीयर पैलेस अपार्टमेन्ट के सामने,
कालावड़ रोड, राजकोट-360005 (गुजरात)
मो. : 9879968998

नब्बे साल की सहचरी चौहत्तर साल से हमसफर : सरस्वती मिश्र

मीना झा

जहाँ बुद्धिजीवियों पर छद्म बुद्धिजीविता सवार है, उत्कृष्ट सृजन पर औसत लेखन सवार है, सार्थक महत्वपूर्ण साहित्य पर लाभ-लोभ के आंकड़े नृत्य कर रहे हैं, साहित्य की नैतिकता विज्ञापनों से खेल रही है, वहाँ एक विद्वान अपने आदर्शों को कैसे जीवित रख पाया? ज़ाहिर है।

"किसी को गिराया न खुद को उछाला
कटा ज़िन्दगी का सफर धीरे-धीरे
जहाँ आप पहुँचे छलांगे लगाकर
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे !"

ये पंक्तियाँ मूर्धन्य साहित्यकार डॉ. रामदरश मिश्र ने यूँ ही नहीं लिखी होंगी। ज़िंदगी के इस सफर में कोई तो ऐसा हमसफर था, जिसने उन्हें ये हौसले दिये। मूल्यों के भयानक विघटन के इस पतनकाल में क्या कोई मानव सहजता से मूल्यों के उत्कर्ष सहेज सकता है? प्रश्न यह है कि जहाँ बुद्धिजीवियों पर छद्म बुद्धिजीविता सवार है, उत्कृष्ट सृजन पर औसत लेखन सवार है, सार्थक महत्वपूर्ण साहित्य पर लाभ-लोभ के आंकड़े नृत्य कर रहे हैं, साहित्य की नैतिकता विज्ञापनों से खेल रही है, वहाँ एक विद्वान आपने आदर्शों को कैसे जीवित रख पाया? ज़ाहिर है अगर कोई निष्ठावान साथी कंधे से कंधा मिला कर दुश्वार राहों पर चलने को तैयार हो, तो क्यों नहीं! रामदरश मिश्र की पत्नी, सरस्वती मिश्र एक ऐसी ही सरल, सहज और स्नेहिल महिला थी।

27 जून, 2022 साहित्य एकेडमी सभागार। साहित्य मनीषी डॉ. मिश्र को, उनके काव्य संग्रह 'मैं तो यहाँ हूँ' के लिए के.के. बिरला फाउंडेशन की तरफ से दिये जाने वाले सरस्वती सम्मान अर्पण समारोह का आयोजन चल रहा था। यह सम्मान प्रशस्तिपत्र एवं पंद्रह लाख नगद राशि के रूप में दिया जाता है। कार्यक्रम आरम्भ होने से पूर्व डॉ. मिश्र के साथ अत्यंत मंद स्मित के साथ जिस तन्वी काया को सभागार में प्रवेश करते देखा, वह कितनी सरल-सहज थी। मैं उन्हें पहचानती नहीं थी, कभी मिली भी नहीं, किन्तु दिल ने कहा निश्चय ही यही हैं वह। एक माधुर्यपूर्ण तेज से ओतप्रोत यह महिला ही सरस्वती मिश्र थीं, डॉ. रामदरश मिश्र की जीवन संगिनी।

डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण, कविवर ओम निश्चल, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी इत्यादि विद्वान मंचासीन थे। सभी ने रामदरश मिश्रजी की रचना यात्रा पर अपने-अपने वक्तव्य दिये। उम्र को धता बताते डॉ. मिश्र की बुलंद आवाज़, सतर खड़ा शरीर और चश्मे के नीचे बेधती सरल दृष्टि से पूरा सभागार अभिभूत था। अंत में लाल मखमली पोटली और डॉ. ऋतुपर्ण ने घोषणा की- हम डॉ. मिश्र को पंद्रह लाख की राशि का सरस्वती सम्मान देते स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं...और भी बहुत कुछ कहा उन्होंने। फिर शरारती मुस्कान के साथ कहा- यह सरस्वती तो सरस्वतीजी के पास ही जाएगी। सम्पूर्ण सभागार हँस पड़ा। डॉ. मिश्र ने बेहद सरल मुस्कान के साथ डॉ. ऋतुपर्ण से सहमति जताते हुए पत्नी की तरफ देखा। परस्पर स्नेह, सौहार्द, सामंजस्य का नाम ही तो है दाम्पत्य। उस एक क्षण में ही मुझे मिश्र दम्पती के सफल दीर्घ दाम्पत्य का रहस्य समझ आ गया।

डॉ. मिश्र ने लगभग साहित्य की सभी विधाओं में लिखा है। कई उपन्यास, कथा संग्रह, काव्य संग्रह, यात्रावृत्त आदि के लेखक ने 2017 में एक उपन्यास लिखा है-'एक बचपन यह

भी'। उपन्यास का समर्पण भी सरस्वती जी के नाम है। इस लघु उपन्यास का मूल चरित्र 'चेतना' के रूप में एक लड़की के बाल्यावस्था से युवावस्था तक की संवेदनशील कहानी है। नायिका चेतना चंचल, बुद्धिमती, सुसंस्कृत एवं ऊर्जा से भरपूर है। चेतना अपने नाम को सार्थक करती एक मूल्य दृष्टि संपन्न युवती है। उसका बचपन सामान्य होते हुए भी विशिष्ट है, क्योंकि उसके पिता पुत्री की परवरिश के प्रति विशिष्ट रूप से चैतन्य हैं। यह चेतना कोई अन्य नहीं, स्वयं लेखक की पत्नी सरस्वती जी हैं। इस दृष्टिकोण से यह एक आत्मकथात्मक उपन्यास है, जिसकी झलक पूर्वकथन में इस प्रकार व्यक्त की गयी है- 'चेतना जी इन दिनों बाँह से परेशान चल रही हैं...लेकिन पांच बजे सुबह उठ जाती हैं। बाँह का दर्द सहती हुई भी धुलाई मशीन में कपड़े दाल देती हैं...किचेन भी संभाल लेती हैं। बहू को सुबह स्कूल जाना होता है...चेतना जी उनके लिए नाश्ता बना देती हैं और दोपहर का भोजन भी ... अब वह चौरासी वर्ष की हो गयी हैं, किन्तु घर बाहर के कामों के साथ उसी तरह चल रही हैं, जैसे पहले चलती थीं। एक कर्मठ और सफल गृहणी सरस्वती जी को समझने के लिए इतना ही काफी है।

साहित्यिक परिवार के साथ

सरस्वती मिश्र का जन्म 8 अगस्त, 1932 को गोरखपुर में हुआ था और विवाह सन् 1948 में रामदरश जी के साथ हुआ। सरस्वतीजी का विवाह जल्द हुआ, इसलिए उन्होंने मायके में रहकर ही मैट्रिक की पढ़ाई पूरी की इसके बाद वह पति के साथ बनारस चली आयीं, जहाँ मिश्रजी पीएच-डी कर रहे थे। लेकिन मिश्रजी ने उन्हें आगे पढ़ने का मौका दिया और उन्होंने इंटर में दाख़िला ले लिया। आगे हिंदी साहित्य में एम.ए. किया। साहित्यिक रूचि की सरस्वतीजी ने मिश्रजी की रचनाओं के बहुचर्चित संकलन 'सरकंडे की कलम' का संपादन किया है। सचेतक पत्रिका में इनके अनेक संस्मरण प्रकाशित हुए हैं।

अपने संस्मरण में सरस्वतीजी ने रामदरशजी के सरल व्यक्तित्व एवं इस वजह से उत्पन्न हुई कठिनाइयों को बखूबी याद किया है। वह लिखती हैं-'इन्होंने कभी यह नहीं पूछा कि तुमने पैसे कहाँ और कैसे खर्च किये।...कौन सी चीज कहाँ मिलती है और क्या भाव है यह नहीं जानते।' कभी सामान लेने जाते भी हैं, तो सारे दुकानदार माताजी की खोज करते हैं और रामदरशजी झल्लाते हैं- जैसे मैं सामान खरीद ही नहीं सकता। आगे वह मज़े लेकर बताती हैं कि कैसे पूरा घर बन जाने के बाद ही वह पहली बार घर देखने गये। फिर घर बनाने में कितनी परेशानियाँ हुईं और मामला कोर्ट में गया, तो रामदरश मिश्र कितना घबराए। लेकिन कोर्ट में सरस्वतीजी ने बेधड़क मजिस्ट्रेट के सवालों का जवाब दिया और गृहिणी ने अपनी हिम्मत से अपना घर बचा लिया। इसी तरह सूझबूझ से भरी सरस्वतीजी अपनी गृहस्थी अकेली चलाती आयीं हैं। वह दुनियादारी से अनभिज्ञ या अनासक्त पति का दाहिना हाथ रही हैं या उनके शब्दों में 'एक दूसरे के पूरक भी' थे।

27 जून, 2022 साहित्य एकेडमी सभागार। साहित्य मनीषी डॉ. मिश्र को, उनके काव्य संग्रह 'मैं तो यहाँ हूँ' के लिए के.के. बिरला फाउंडेशन की तरफ से दिये जाने वाले सरस्वती सम्मान अर्पण समारोह का आयोजन चल रहा था। यह सम्मान प्रशस्तिपत्र एवं पंद्रह लाख नगद राशि के रूप में दिया जाता है। कार्यक्रम आरम्भ होने से पूर्व डॉ. मिश्र के साथ अत्यंत मंद स्मित के साथ जिस तन्वी काया को सभागार में प्रवेश करते देखा, वह कितनी सरल-सहज थी। मैं उन्हें पहचानती नहीं थी, कभी मिली भी नहीं, किन्तु दिल ने कहा निश्चय ही यही हैं वह। एक माधुर्यपूर्ण तेज से ओतप्रोत यह महिला ही सरस्वती मिश्र थीं, डॉ. रामदरश मिश्र की जीवन संगिनी।

अपनी कविताओं में रामदरशजी ने बार-बार इस गृहिणी से प्रेरित कई पंक्तियाँ लिखीं हैं, किस तरह वह पत्नी की गृहस्थी में रचे-बसे हैं-

'उठो सुहागिन चार बज गये...
यह गृहिणी जब उठेगी तो
जाग उठेंगे अरतन बरतन...'

प्रेम में एकात्म होना भी इसी प्रेयसी ने सिखाया-

'छूटती गयी
तुम्हारे हाथों की मेहँदी की शोख लाली...
मुझे लगा कि
मेरे लिए तुम्हारा प्यार कम होता जा रहा है...
जब तुमसे टकराना चाहा
तो देखा तुम 'तुम' थीं कहाँ?
तुम तो मेरा सुख और दुःख बन गयी थीं।

संतुलन, अधिकार और अधिकारी के संबंधों की समरसता, स्नेह, सद्भावों से पगी पति की ये कविताएँ कवि पत्नी होने का गौरव हैं और

पति-पत्नी के संबंधों की गरिमा भी। आधुनिक समय में शतरंज की कई चालें चलने के बाद भी दम्पती सहअस्तित्व की यह सीमा प्राप्त नहीं कर सकते। भावभूमि की सरलता ही वह रेशमी डोर है, जो दाम्पत्य को अटूट बंधन में बांधने की क्षमता रखता है-

'झगड़े भी हुए अनबोले भी-
पर सदा दर्द की चादर से चुपके से कोई
एक दूसरे का नंगापन ढांक गया'

रामदरशजी और सरस्वतीजी ने। अगले वर्ष रामदरश मिश्र जी ने जन्मशती पूरी की। ईश्वर ने सपत्नीक स्वस्थ और प्रसन्न रखा एवं उनकी लेखनी सतत गतिशील बनी रही। इन्हीं शब्दों के साथ हिंदी साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र एवं उनकी चिरसहचरी को मेरी सादर भावांजलि!

जब भी मिश्र दम्पति को देखती हूँ या उनके विषय में सोचती हूँ, अनायास ही मेरी स्मृतियों में अपनी मिथिला के मनीषी दम्पति 'भारती-मण्डन' और 'भामती-वाचस्पति' सजीव हो उठते हैं। कैसा अद्भुत संयोग है कि उन दोनों के उपनाम भी 'मिश्र' ही थे। मण्डन मिश्र ने मीमांसा और वेदांत दर्शन पर मौलिक ग्रन्थ लिखे। मण्डन मिश्र और शंकराचार्य का शास्त्रार्थ जगत विदित है। मिथिला की जनश्रुति के अनुसार मण्डन मिश्र की सहधर्मिणी भारती ने पति के शंकराचार्य के साथ शास्त्रार्थ में पराजित होने के बाद उनसे शास्त्रार्थ किया और उन्हें पराजित किया।

मनीषी दम्पति के ढाई आखर

15 अगस्त, 2023 श्रद्धेय डॉ. रामदरश मिश्र का सौवें वर्ष में प्रवेश, एक दुर्लभ जन्मदिन! देश की स्वतंत्रता का अमूल्य दिवस और वयोवृद्ध साहित्यकार के जन्मदिन की ऐतिहासिक संध्या। हमेशा की तरह परिवार, आत्मीय मित्र और विद्वानों से भरा सभागार ! शताब्दी के सहयात्री रामदरश मिश्र के जन्म शताब्दी का समारोह-साहित्य जगत के लिए एक प्रतीक्षित उत्सव का समय ! सभी के चेहरे पर उल्लास और हाथों में उपहार! यह महज एक शताधिक कृतियों के रचयिता वरिष्ठ साहित्यकार की ही नहीं, वरन् एक सहज, सरल, स्नेहिल व्यक्तित्व की अभ्यर्थना थी। मैं जानती हूँ ये सारे स्नेहिलजन डॉ. रामदरश मिश्र की स्नेह पगी, मानवीय डोर से खिंचे चले आये थे। प्रेम या आत्मिक लगाव के कच्चे धागे सबसे सुंदर, सबसे शक्तिशाली होते हैं... चारों वेदों से गहरे ढ़ाई आखर ! जीवन से साहित्य तक...जित देखूं तित लाल! इस लाली का एहसास चारों तरफ था वहाँ।

मंच पर बैठे डॉ. मिश्र निर्विकार और आत्मीय मुस्कुराहट के साथ सभी का स्वागत कर रहे थे। करुणा एवं राग से भरी आँखें। उनकी आँखों में एक परिचित, कुछ खोजने की तरल सशक्त दृष्टि। पता नहीं क्यों, मुझे उन आखों में कोई तलाश दिख रही थी। जीवन के मध्य जीवन खोजती आँखें। साहित्य और जीवन दोनों में सादगी के सौन्दर्य का स्नेहिल आकर्षण। यह स्नेह विद्वेष से बचाने की शक्ति भी है। अपने वक्तव्य के आरम्भ में ही कहते हैं- "दोस्तों के प्यार, सम्मान और दुआओं ने लम्बी उम्र दी...महत्वाकांक्षी नहीं हूँ, वह बेचैन करती है।" आगे बालसुलभ सरलता से बताते हैं कि कैसे उनकी माँ ने अलाव की राख ज़मीन पर फैलाकर, उन्हें उँगलियों से 'क' अक्षर लिखना सिखाया। शायद वही ज़मीन अपने संघर्ष एवं उत्सव को लेकर जीवन पर्यन्त उनके साथ रही-जीवन में, साहित्य में। विशाल अनुभवों को समेटे सहज भाव की अभिव्यक्ति ने उन्हें इतनी प्रसिद्धि दी। केवल अनुभवों की अभिव्यक्ति ही नहीं, मूल्यों के साथ अभिव्यक्ति को वह हितपूर्ण साहित्य मानते थे।

पार्श्व में जीवन सहचरी सरस्वतीजी बैठी थीं। अगल बगल में कई उद्भट विद्वान। सरस्वती जी बीमार लग रही थीं। स्मिताजी ने पहले ही बताया था कि माँ बीमार है। सुनकर अच्छा नहीं लगा था। देख कर और भी नहीं। तब मेरी माँ भी बीमार चल रही थीं। सारे कार्यक्रम, सारे संवादों के बीच मैं माँ और बेटी का व्यावहारिक संवाद सुनती रही। अभिभूत थी मैं स्मिताजी की माँ के प्रति ममता देख। यहाँ बेटी माँ बन गयी थी और माँ ने बेटी का स्थान ले लिया था। कभी वह माँ को पानी पिलातीं, कभी रुमाल से चेहरा पोंछतीं। साथ ही पिता की देखभाल भी कर रही थीं। उनके उठने-बैठने की सुविधा, थकान का ध्यान रख रही थीं। कार्यक्रम के दौरान स्मिताजी को लगातार माँ की देखभाल करते देख अपनी माँ की बहुत याद आयी। मैं अपनी माँ से दूर रही। उनकी सेवा का मौका कम मिला। यहाँ माँ-बेटी कितनी हार्दिकता से ममता से परस्पर मिली हुई थीं। स्मिताजी कितनी सौभाग्यशालिनी हैं !

उनकी ये पंक्तियाँ उनका जीवन दर्शन हैं-

...मुझे लगता रहा कि
वह भगवान बनने के चक्कर में है

और एक दिन यों ही भगवान बन बैठा
मैं सोचता रहता हूँ कि
कब एक आदमी बन पाऊँगा।

कोई देवता बनना चाहे तो उसकी मर्जी, किन्तु इन्सान बनने की चाहत में यह मूर्धन्य कवि अपने हमदर्दों के साथ ही संतुष्ट और प्रसन्न हैं। अपने दोस्तों के आभारी हैं कि वह उनके साथ हैं। उन्हें वह सावन भादो के कीचड़ के बाद 'कातिक का त्यौहार' मानते हैं। कितना निर्मल और मौलिक है यह बिम्ब ! सामने बैठे डॉ. मिश्र का निर्लिप्त अंतर्मन क्यों देख रही थी मैं ? मुझे लगा जैसे उन्हें कुछ पाने की चाह न रह गयी हो। सांसारिक दुःख-सुख से गुजरकर मानो मात्र कविता सुनाने का आग्रह रह गया हो। कई कविताएँ सुनाई उन्होंने प्रेम, मित्रता, आत्मिक उद्‌गार की-

एक लम्बा सफर था मेरे दोस्तों,
राह चलती रही मोड़ खाती हुई
साथ हो ली हवा आग बन के कभी 'औ'
कभी प्यार महमहाती हुई...
थक के बैठा जभी मौत के पास मैं
आ गयी ज़िन्दगी गुनगुनाती हुई।

जन्मशताब्दी के इस भावपूर्ण अवसर पर स्मिताजी ने अपने पिता के लिए जो वक्तव्य दिये वह कितना सारगर्भित, भावगर्वित और माता-पिता तथा संतान के संबंधों को एक ऊँचाई देने वाले, भरोसा उत्पन्न करने वाले हैं- "पिताजी का सौवें साल में प्रवेश करना हर उस इन्सान के लिए एक बहुत बड़ा संबल है, जिसे लगता है कि आजकल के इस भागदौर की ज़िन्दगी में वह कहीं छला जा रहा है, वह कहीं छूटा जा रहा है, वह कहीं उपेक्षित है, तो उन तमाम समय की चुनौतियों को झेलते हुए, अवसादों को झेलते हुए उस व्यक्ति के सामने मेरे पिताजी एक प्रतिमान के रूप में हैं कि किस तरह से पूर्ण निष्ठा, सहजता, ईमानदारी के साथ एक बेहतर जीवन जीया जा सकता है।..इतने यशस्वी पिता की पुत्री होना मेरे प्रारब्ध कर्मों का शुभ फल है, किन्तु जिम्मेदारी भी बहुत है, दायित्व बोध बहुत है, संकट भी बहुत है।...पिताजी जिस तरह से समय की चुनौतियों को फेस करते रहे हैं.. हम में उतनी ताकत नहीं है..."कुछ ऐसी चुनौतियां जो बच्चों के लिए कल्पनातीत हैं। पिता ने जो सहन किया क्या उनसे संभव हो पाएगा ? दो पीढ़ियों के समय का अंतर, जिसे संतान समझना चाहती है, सीखना चाहती है, जीना भी चाहती है कालनिरपेक्ष होकर। सकारात्मक द्वंद्व यहाँ निर्द्वन्द्व हो जाते हैं। पिता और पुत्री दोनों स्नेहधनी हैं, एक ने जितनी गंभीरता से विरासत दी, दूसरे ने उतने ही एकाग्र भाव से, लगन से उसे संभाल लिया।

जब भी मिश्र दम्पति को देखती या उनके विषय में सोचती। अनायास ही मेरी स्मृतियों में अपनी मिथिला के मनीषी दम्पति 'भारती-मण्डन' और 'भामती-वाचस्पति' सजीव हो उठते हैं। कैसा अद्‌भुत संयोग है कि उन दोनों के उपनाम भी 'मिश्र' ही थे। मण्डन मिश्र ने मीमांसा और वेदांत दर्शन पर मौलिक ग्रन्थ लिखे। मण्डन मिश्र और शंकराचार्य का शास्त्रार्थ जगत विदित है। मिथिला की जनश्रुति के अनुसार मण्डन मिश्र की सहधर्मिणी भारती ने पति के शंकराचार्य के साथ शास्त्रार्थ में पराजित होने के बाद उनसे शास्त्रार्थ किया और उन्हें पराजित किया। जनश्रुति कहाँ तक सत्य है, मैं नहीं जानती। इतना जानती हूँ कि मिथिला में स्त्रियों का जन्म नाम कोई याद नहीं रखता। यहाँ विवाहित स्त्रियाँ सुन्दरी या कुंवरि के साथ ससुराली नाम से जानी जाती हैं। मण्डन के साथ भारती का नाम सदैव आदर के साथ लिया जाना उनके पति के साथ सहयोग, समर्पण और सही अर्थों में सहगामिनी होने की अवधारणा मजबूत करती है।

अद्वैत दर्शन के टीकाकार वाचस्पति मिश्र ने ब्रह्मसूत्र के शंकरभाष्य की टीका लिखने में अठारह वर्ष लग गये। पुस्तक रचना में इतने निमग्न थे कि अपने आस-पास के संसार को भी भूल गये। पुस्तक पूरा होने के बाद जब एक दीया जलाती स्त्री पर दृष्टि पड़ी तो उससे उसका परिचय पूछा। वह अपनी कर्तव्यपरायणा सहधर्मिणी 'भामती' को भी भूल गये थे। पत्नी के इस एकान्तिक समर्पण को ही पति ने 'भामती टीका' नाम दिया। ज्ञानपिपासुओं, ज्ञानीजनों के लिए कुछ भी असंभव नहीं। ऐसी ही है डॉ. रामदरश मिश्र और सरस्वती मिश्र की जोड़ी। डॉ. मिश्र की यह कविता इस तथ्य का साक्ष्य है-

"एक औरत थी
जो चूल्हे-चक्की बर्तन भाड़े की लय पर
जीवन के मन्त्र पढ़ती रही
जो खुद को अँधेरे में रख कर
ज़िन्दगी भर रोशनी की मूर्ति गढ़ती रही।"

अगर प्रत्येक प्रेमिका पत्नी का यही आदर्श है, तो उसे क्यों न महिमामंडित करें !

यह भी एक संयोग ही है कि जब स्मिता जी का मैसेज आया उनके माता पिता पर लिखने के लिए तो मैं मातृवियोग की दारुण पीड़ा से गुज़र रही थी। 20 सितम्बर को मेरी माँ नहीं रहीं। मुझे वहाँ जाना था। समय नहीं था, लगा पता नहीं लिख पाऊँगी या नहीं। उन स्मृतियों की अनुभूति मेरा पाथेय हैं। अब लिखते हुए मेरा मन शांत हो गया है। आभार स्मिताजी का !

मेरे ये शब्द कोई संस्मरण, लेख या स्मृति नहीं, मेरी आत्मानुभूति हैं। ◆

पता : B3A-102, सुशांत एक्वापोलिस,
डुंडाहेड़ा, गाजियाबाद-201016
मो. : 9990018356

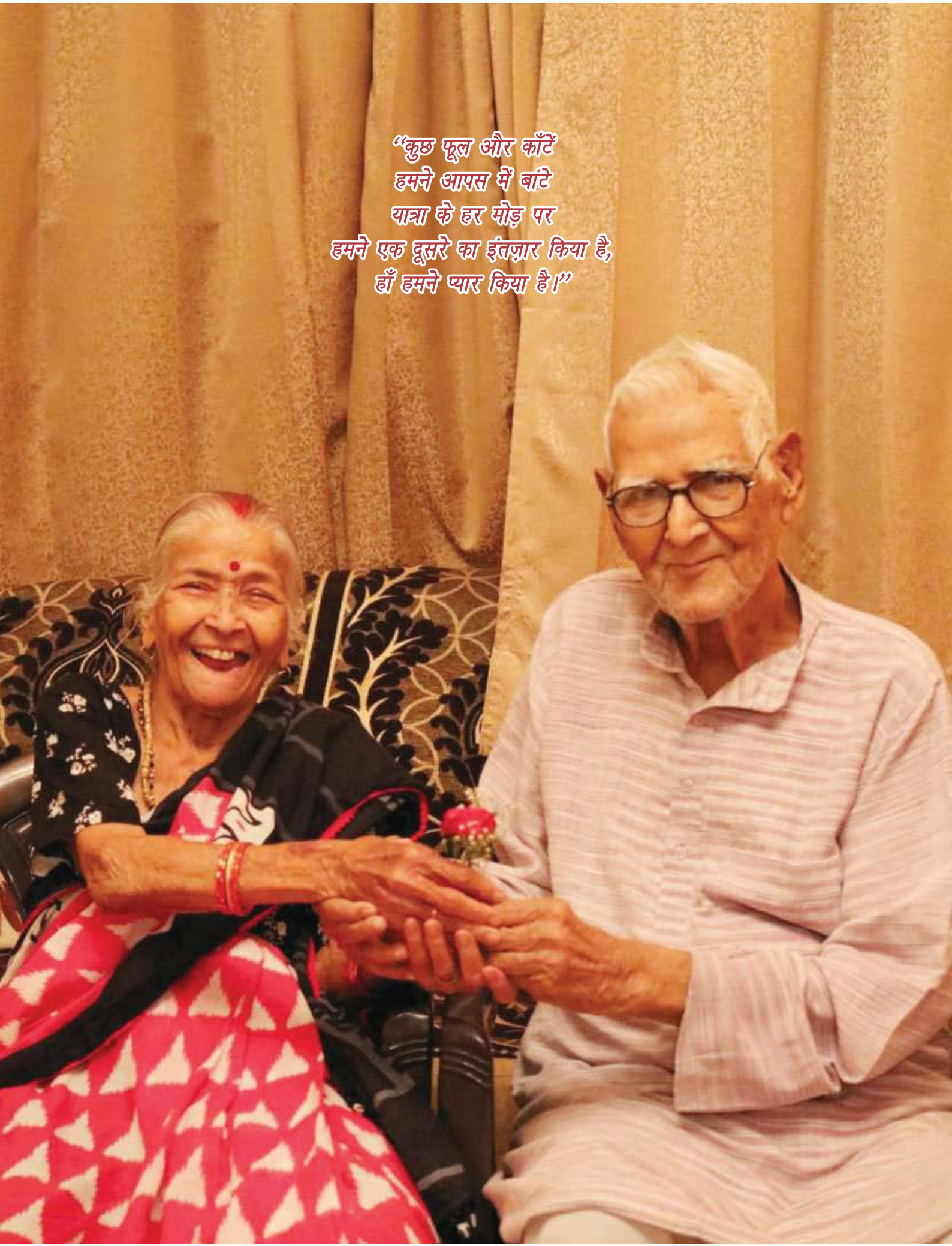
“कुछ फूल और काँटें
हमने आपस में बांटे
यात्रा के हर मोड़ पर
हमने एक दूसरे का इंतज़ार किया है,
हाँ हमने प्यार किया है।”

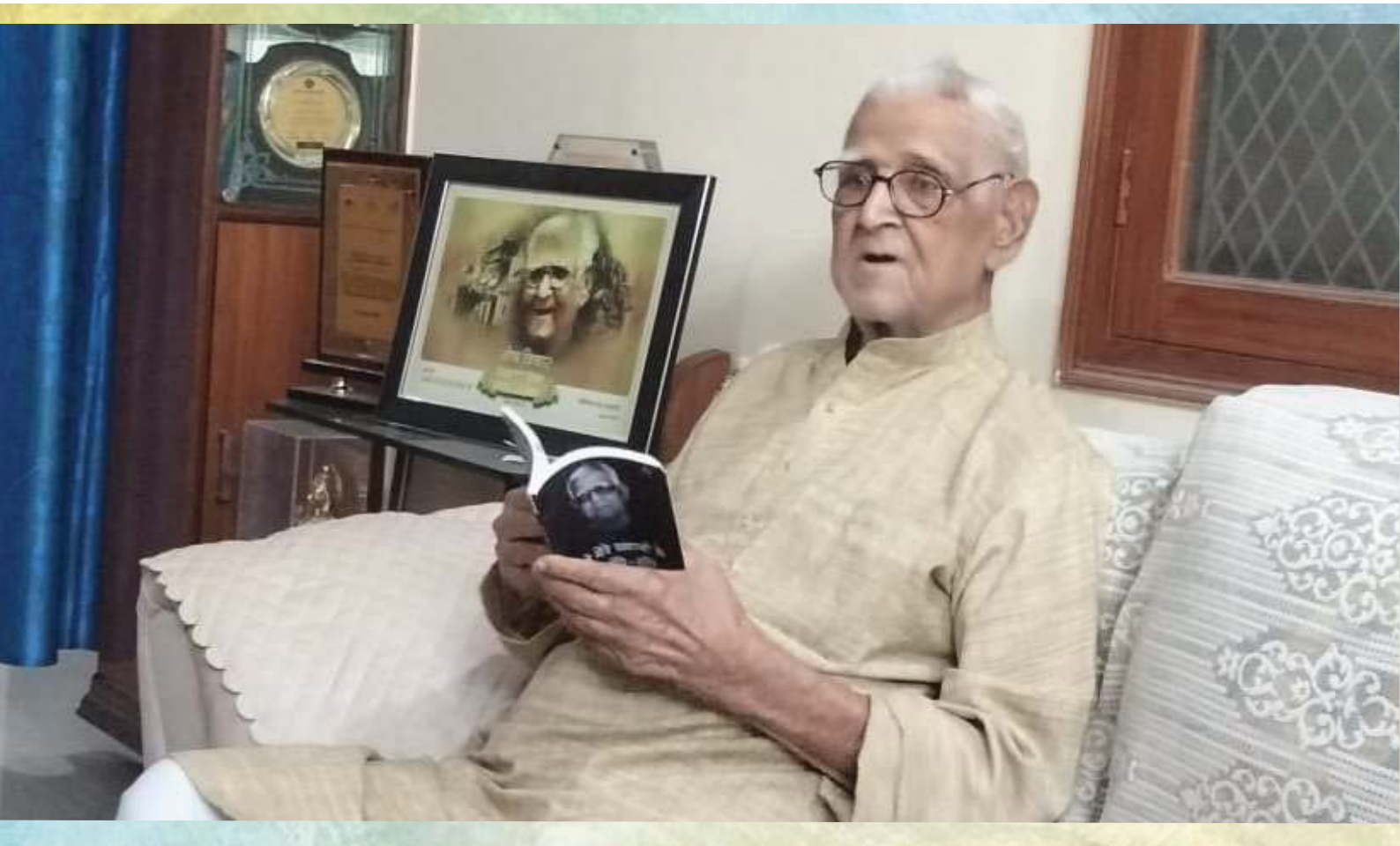

कृतित्व कुछ मूल्यांकन

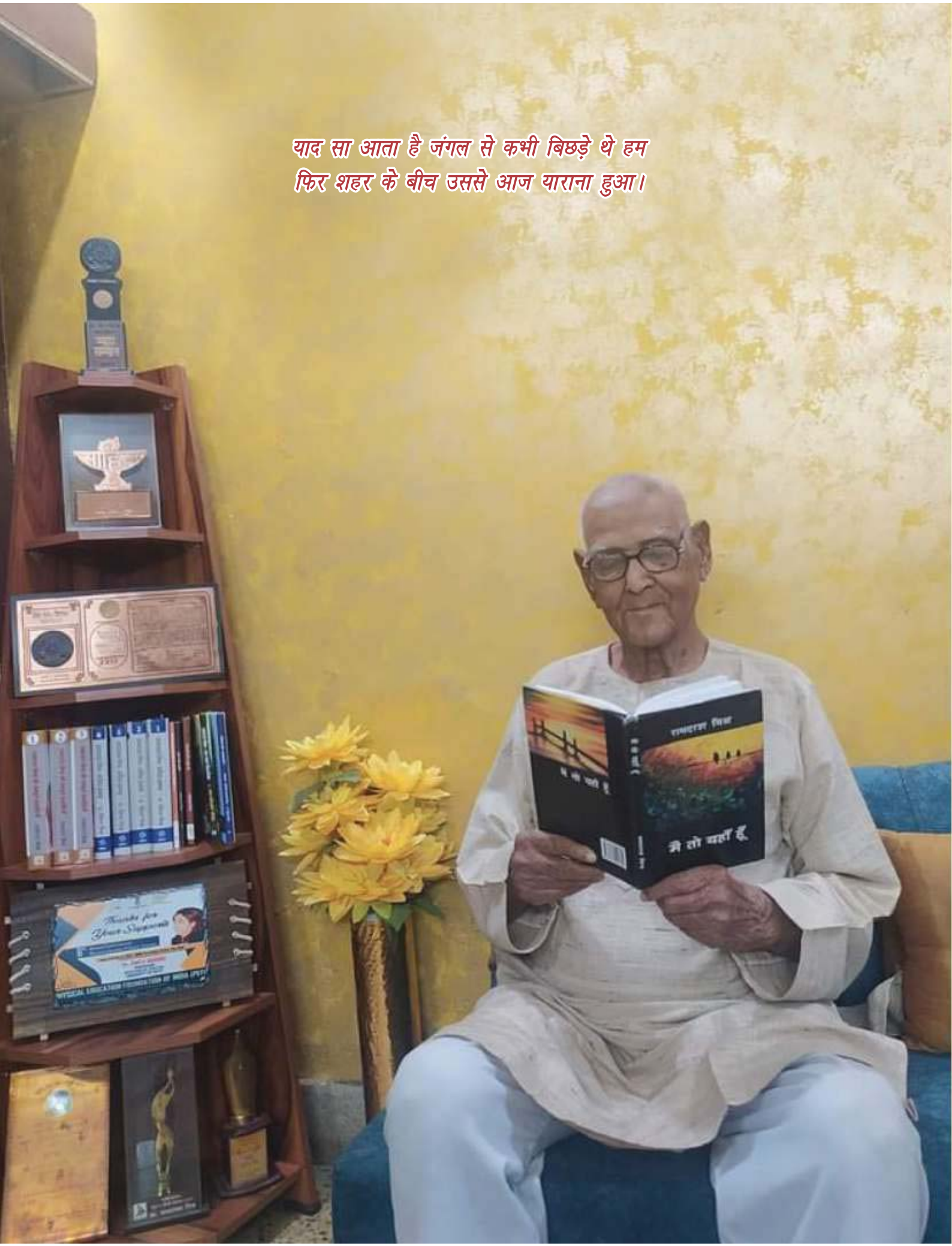
याद सा आता है जंगल से कभी बिछड़े थे हम
फिर शहर के बीच उससे आज याराना हुआ।

हिन्दी साहित्य में रामदरश जी का अवदान और व्यक्तित्व

विजय कुमार तिवारी

वाराणसी में उनकी पढ़ाई पूरी हुई, साहित्य लेखन की गति बढ़ी, तत्कालीन बड़े-बड़े कवियों, लेखकों का संग-साथ मिला और पत्र-पत्रिकाओं ने सदैव उन्हें प्रकाशित किया। बिना किसी वाद की चादर ओढ़े उन्होंने सहजता से लिखा और खूब लिखा।

हिन्दी साहित्य में, रामदरश मिश्र जी जैसे विराट व्यक्तित्व को लेकर चिन्तन करना किसी के लिए भी सहज व सरल नहीं है। उन्होंने न केवल अपनी आयु का शतक पूरा किया बल्कि अपना आशीर्वाद देते हुए, पूरे होशोहवास में, संवाद व सृजन की लौ जलाए रहे। यह देश का सौभाग्य है, हिन्दी व हिन्दी साहित्य का सौभाग्य है और हम सभी भाग्यशाली हैं कि हमारे बीच ऐसा श्रेष्ठ व वरेण्य साहित्यकार गौरव बढ़ा रहा है। उनका जन्म 15 अगस्त, 1924 को गोरखपुर जिले के कछार अंचल के गाँव डुमरी में हुआ था। उन्होंने 'हिन्दी' विषय में स्नातकोत्तर तथा डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। सयाजीराव गायकवाड़ विश्वविद्यालय, बड़ौदा में प्राध्यापक के रूप में उनकी नियुक्ति सन् 1956 में हुई। सन् 1958 में ये गुजरात विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हो गये और आठ वर्ष तक गुजरात में रहने के पश्चात 1964 में दिल्ली विश्वविद्यालय में आ गये। वहीं से 1990 में प्रोफेसर के रूप में सेवामुक्त हुए।

अपनी आयु का शतक पूरा करना, सक्रियता के साथ सृजन-कर्म से जुड़े रहना स्वयं में बहुत बड़ी उपलब्धि है। गाँव से निकलकर साहित्य के आकाश पर छा जाना, उनकी जीवटता का प्रमाण है। उनका अपना वक्तव्य बहुत कुछ कहता है, उन्होंने लिखा है-"सपने पालता हूँ, अपने लिए, समाज के लिए, देश के लिए, वे छीन लिये जाते हैं, छीनकर किसी और को दे दिये जाते हैं या तोड़ दिये जाते हैं- अपनों द्वारा भी और दूसरों के द्वारा भी लेकिन न जाने क्या है कि मैं टूटा नहीं, बिखरा नहीं, मिट-मिटकर बनता हूँ, गिर-गिरकर उठता गया हूँ, भटक-भटककर रास्ते पर आ गया हूँ।"

ऐसा कहना किसी के लिए सहज नहीं है, ऐसा वही कह सकता है या कर सकता है जिसने संघर्ष का रास्ता चुना हो। उन्होंने अपना मार्ग चुपचाप चुन लिया और बिना शोर मचाए लगे रहे। उन्हें शायद कभी भी कोई हड़बड़ी नहीं रही, धीरे-धीरे प्रवाहित होता रहा उनके भीतर का काव्य और साहित्य। विद्यार्थी काल में ही उनका काव्य लेखन शुरु हो गया और उन्होंने मंचों पर उस समय के बड़े कवियों के साथ मंच साझा किया।

वाराणसी में उनकी पढ़ाई पूरी हुई, साहित्य लेखन की गति बढ़ी, तत्कालीन बड़े-बड़े कवियों, लेखकों का संग-साथ मिला और पत्र-पत्रिकाओं ने सदैव उन्हें प्रकाशित किया। बिना किसी वाद की चादर ओढ़े उन्होंने सहजता से लिखा और खूब लिखा। उनकी रचनाओं में छायावादी और प्रगतिवादी विचार देखे जा सकते हैं परन्तु कभी भी किसी झंडे का सहारा नहीं लिया। उनकी रचनाओं में मानवीय संवेदनाएं, मानवीय मूल्यों से जुड़ी भावनाएं भरी पड़ी हैं। उन्होंने प्रकृति की विभीषिका देखी और उसका प्रभाव उनके चिन्तन पर जीवन भर बना हुआ है। उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं में सशक्त लेखन किया है।

रामदरश मिश्र जी के व्यक्तित्व और व्यवहार पक्ष की चर्चा करते हुए अपनी पत्रिका "समकालीन अभिव्यक्ति" में उपेन्द्र कुमार मिश्र ने उनसे मुलाकात के बाद लिखा, "भीतर कमरे में सब कुछ सहज सामान्य था, कोई दिखावा नहीं, फिर भी कुछ ख़ास था जो उस कमरे

पूर्व गर्वनर भीष्म नारायण सिंह अशोक चक्रधर, बागेश्री और रामदरश जी

को दिव्यता प्रदान कर रहा था, वह था आदरणीय मिश्र जी का व्यक्तित्व, वहाँ उनकी उपस्थिति। यहाँ मिश्र जी थे, किताबें थीं, अपनापन था और ममता का अहसास भी।'' उनकी सादगी और सहजता व्यावहारिक जीवन के साथ-साथ उनके लेखन में भी देखी जाती है। लेखन को लेकर आस्था व विश्वास उनकी ताकत है और सतत् सक्रियता उन्हें श्रेष्ठ बनाती है। उन्होंने अनवरत् लिखा है और सैकड़ों प्रकाशित पुस्तकें हिन्दी साहित्य की समृद्धि का उदाहरण हैं।

रामदरश मिश्र जी एक साथ कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, निबन्धकार, आलोचक, समीक्षक, संस्मरणकार और आत्मकथाकार हैं। उनका सम्पूर्ण सृजन हिन्दी साहित्य की समृद्ध धरोहर है। उन्होंने गद्य में लिखा तो पद्य भी लिखा और यह कहना कठिन है कि उनका श्रेष्ठ लेखन गद्य में है या पद्य में। वैसे ऐसा चिन्तन बेमानी है, हमें दोनों को जोड़ते हुए उन्हें श्रेष्ठ लेखक स्वीकार करना चाहिए क्योंकि उन्होंने अपने समय, अपने परिवेश, अपने आसपास के सम्पूर्ण परिदृश्य को लेकर लिखा है, उनके पात्र सहज जाने-पहचाने से हैं और उनके लेखन में जीवन पूर्णतया उभरता है।

हिन्दी साहित्य में खेमेबाजी का शिकार बहुतेरे रचनाकार हुए, मिश्र जी भी उनमें एक थे। डॉ. संदीप अवस्थी ने 'समकालीन अभिव्यक्ति' की रामदरश मिश्र पर परिचर्चा में लिखा है- ''उन चार दशकों में अनगिनत लेखक-लेखिकाएं उपेक्षित किए गए। चाहे वह नरेन्द्र कोहली, कमल किशोर गोयनका, मिश्र जी हों, मृदुला सिन्हा, कुसुम खेमानी, अज्ञेय, अमृतलाल नागर, जैनेन्द्र, भवानी प्रसाद मिश्र, वैद्य आदि सभी दरकिनार किए गए। पूरी हिमाकत, धृष्टता और बेशर्मी के साथ।''

रामदरश मिश्र के उपन्यास और कहानियों में आंचलिकता के सहज दर्शन होते हैं। साथ ही सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध उनकी आवाज़ उभरती है, स्त्री को लेकर उनमें कोमल भाव हैं और सामाजिक उत्पीड़न को अपने लेखन में जोड़ते हैं। सहजता, सरलता और साफ-साफ कह देने का साहस उनके लेखन में खूब देखा जा सकता है। प्रायः सभी साहित्यकारों, आलोचकों, अध्येताओं ने महसूस किया है कि रामदरश मिश्र जी खेमेबाज़ी के शिकार हुए हैं। इसका एक कारण उनका स्वाभिमानी स्वभाव भी रहा है, उन्होंने कभी भी समझौता नहीं किया और ना ही किसी के साथ चापलूसी की। उन्हें यथार्थवादी सृजनरत् रचनाकार के रुप में देखा जाना चाहिए।

अपनी आयु का शतक पूरा करना, सक्रियता के साथ सृजन-कर्म से जुड़े रहना स्वयं में बहुत बड़ी उपलब्धि है। गाँव से निकलकर साहित्य के आकाश पर छा जाना, उनकी जीवटता का प्रमाण है। उनका अपना वक्तव्य बहुत कुछ कहता है, उन्होंने लिखा है-''सपने पालता हूँ, अपने लिए, समाज के लिए, देश के लिए, वे छीन लिये जाते हैं, छीनकर किसी और को दे दिये जाते हैं या तोड़ दिये जाते हैं- अपनों द्वारा भी और दूसरों के द्वारा भी लेकिन न जाने क्या है कि मैं टूटा नहीं, बिखरा नहीं, मिट-मिटकर बनता हूँ, गिर- गिरकर उठता गया हूँ, भटक- भटककर रास्ते पर आ गया हूँ।''

मेरे लिए सहज नहीं है, उनके विपुल साहित्य पर लिखना या उनका मूल्यांकन करना। मैंने उन्हें कम पढ़ा है। जितना पढ़ पाया हूँ,उसके आधार पर कह सकता हूँ, उनकी लेखनी से साहित्य कलात्मकता के साथ निःसृत हुआ है। मैं किसी भी रचनाकार को किसी दूसरे रचनाकार से तुलना करने, श्रेष्ठ या कमतर घोषित करने का पक्षधर नहीं हूँ। इसके लिए मेरे पास अपने तर्क हैं। कोई भी लेखक अपने समय का इतिहास-बोध चित्रित करता है, अपने समय की सच्चाई लिखता है और अपनी अनुभूतियों के आधार पर लिखता है। स्वाभाविक है, हर रचनाकार की अनुभूतियाँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। अतः सबका आकलन उसी आधार पर किया जाना चाहिए। कुछ समीक्षक, आलोचक, साहित्य के मठाधीश लेखकों के लेखन को सिरे से ख़ारिज करते हैं, भ्रूण-हत्या जैसा घिनौना कृत्य करते हैं, यह किसी भी तरह उचित नहीं है। लेखकों से भी मेरा आग्रह है, कभी ऐसे फतवों से घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है, अपना लेखन ईमानदारी से करते रहिए और लेखन का सुख पाइए। रामदरश मिश्र जी ने इसी भाव को अपने जीवन में उतारा है और लगातार लिखा है। उनके पास अपनी कोई सशक्त दृष्टि है, ग्रामीण जीवन की गहन अनुभूति है।

रामदरश मिश्र जी की कहानी "एक भटकी हुई मुलाकात" पर तनिक ध्यान दीजिए, एक-एक ब्यौरा जिस तरह से जोड़ते जा रहे हैं मानो पाठक सारा दृश्य आँखों के सामने देख रहा है। स्वाभाविक है, कहानी सुनाई जा रही है और सुनाते-सुनाते जीवन का यथार्थ उड़ेला जा रहा है। यह उनकी परिपक्वता के साथ संवेदना से अटी पड़ी शैली है। मौसम और प्राकृतिक दृश्यों को समाहित किए बिना कहानी को आगे बढ़ाना संभव नहीं होता, यह मिश्र जी समझते हैं और अपने सम्पूर्ण साहित्य में, चाहे कहानी हो या कविता, खूब प्रयोग करते हैं। उनका कथ्य-कथानक का चयन भी विचित्र भाव-बोधों से भरा है, ऐसे संयोग विरले होते हैं। जीवन की जटिलताएं, पात्रों का चरित्र, मनोविज्ञान और मार्मिक भाव-संवेदनाओं का चित्रण इस कथा में सब कुछ है। ऐसे दृश्य रचते हुए कोई भी सहज नहीं रह सकता, मिश्र जी खूब भावुकता के साथ सारा विवरण समेटे होंगे, अपनी कथा में। यह भी हो सकता है, बहुत करीब से इन पात्रों को उन्होंने देखा होगा और उनका दुःख-दर्द अनुभव किया होगा। ऐसी गहन अनुभूतियों से भरी कथाएं ही उन्हें श्रेष्ठ बनाती हैं।

रामदरश मिश्र जी की कहानी "एक भटकी हुई मुलाकात" पर तनिक ध्यान दीजिए, एक-एक ब्यौरा जिस तरह से जोड़ते जा रहे हैं मानो पाठक सारा दृश्य आँखों के सामने देख रहा है। स्वाभाविक है, कहानी सुनाई जा रही है और सुनाते-सुनाते जीवन का यथार्थ उड़ेला जा रहा है। यह उनकी परिपक्वता के साथ संवेदना से अटी पड़ी शैली है। मौसम और प्राकृतिक दृश्यों को समाहित किए बिना कहानी को आगे बढ़ाना संभव नहीं होता, यह मिश्र जी समझते हैं और अपने सम्पूर्ण साहित्य में, चाहे कहानी हो या कविता, खूब प्रयोग करते हैं।

रामदरश मिश्र जी ने हर विधा में लिखा और श्रेष्ठ लिखा है। "फागुन" शीर्षक से उनका निबंध सम्पूर्ण भाव-चिन्तन के साथ लालित्य समेटे हुए है। उनके निबंध काव्यात्मकता लिए हुए हैं, सहज विवरण भीतरी अनुभूतियों का दर्शन देते हैं और वे कोई उड़ान भरते दिखाई देते हैं। यह तभी संभव है जब कोई विषय की सम्पूर्ण जानकारी रखता हो और उसमें गहरा उतरना चाहता हो। उन्होंने लिखा है-"मेरे लिए फागुन स्वयं एक काव्य के रुप में दिखाई देता है। फागुन का हर दिन त्यौहार की तरह लगता है।" हिन्दी साहित्य में बसंत और फागुन को लेकर बहुत कुछ रचा गया है। मिश्र जी को फागुन आकर्षित करता है और उन्होंने इस विस्तृत ललित निबंध में प्रकृति, मौसम व मन की गतियों को चित्रित किया है। उनका मन फागुन के लिए तड़पता रहता है और वे उसे बार-बार बुलाकर स्वयं को सान्त्वना देते हैं। उन्होंने फागुन को भरपूर जिया है, उनकी पंक्तियाँ देखिए-"मैंने फागुन को समग्र भाव से अपनाया है। मैं गाँव का हूँ और मेरे जीवन के आरंभिक बीस वर्ष गाँव में गुजरे हैं। मैंने गाँव को अपना बनाकर उसकी जिंदगी जी है। गाँव का प्रत्येक सुख-दुःख, प्रत्येक रात-दिन मेरा अपना बनकर गुज़रा है। प्रत्येक ऋतु को मैंने अखण्ड भाव से आत्मीय बनाकर आने-जाने दिया है। किन्तु फिर भी फागुन के प्रति मेरी विशेष ममता है-चाहे तो आप पक्षपात कह लें।" शीत ऋतु के बाद फागुन का आना सबके जीवन में उत्साह भर देता है। यह गाँवों में रहने वाला हर व्यक्ति अनुभव करता है और उसकी मादकता में खो जाता है। शहरीकरण ने मनुष्य से ऋतुओं का आनन्द छीन लिया है और एक ख़ास तरह का उचाटपन उसकी जिंदगी में पसर गया है। हिन्दी साहित्य के पाठकों को उनके ललित निबंधों को पढ़ना चाहिए और देखना चाहिए कि रामदरश मिश्र जी की दृष्टि कितनी व्यापक है।

मिश्र जी का डायरी लेखन भी हमारे साहित्य में महत्व रखता है। 'क्वार का एक दिन' शीर्षक के अन्तर्गत पाठक उनके द्वारा मौसम की विभीषिका व सहृदयता का अनुभव कर सकते हैं। किसानों के लिए हर मौसम और महीने का अलग-अलग महत्व है। बरसात हुई नहीं है, सावन सूखा गया है और खेत प्यासे हैं। किसान आने वाले कठिन दिनों को लेकर आशंका से भरे हुए हैं। मिश्र जी अकाल का भयावह मार्मिक दृश्य चित्रित करते हैं। मौसम के मिजाज़ के चलते हर किसी के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का यथार्थ वर्णन उनकी सम्यक दूर-दृष्टि दर्शाती है। भाषा काव्यात्मकता लिए हुए है, मनोहारी दृश्यावली है, रिमझिम फुहार और सुखी-दुःखी होता जीवन उनकी लेखनी में उभरता है। पावस ऋतु का जीवन्त वर्णन करते हैं। क्वार महीने में बादल इक्के-दुक्के दिखाई देते हैं। कभी-कभी दो-तीन दिनों की बरसात हो जाती है। उनकी लेखनी का कमाल देखिए-"परसों शाम को ही पानी बरसने लगा था। हम सोए तो लगा कि पानी थम गया है। सुबह उठे तो देखा कि झड़ी लगी हुई है। आँगन तरबतर है। पेड़ खूब नहाए हुए हैं और नहा रहे हैं। सुबह-सुबह गाना छोड़कर पंछी कहीं दुबके हुए हैं। दरवाज़े पर

गया तो देखा सामने की सड़क पानी से भरी हुई है और उसपर गिरती हुई बूँदें शोर मचा रही हैं। पानी लगातार बरस रहा है, हाँ, वेग से नहीं, कभी रिमझिम-रिमझिम, कभी तेज़ फुहार। बरसात का यह रुप मुझे बहुत पसंद है।'' इस तरह उनकी लेखनी एक-एक विवरण लिखती है, उनके मन को दुलराती है और आसपास की सच्चाई खोलकर रखती है।

इष्टदेव सांकृत्यायन के साथ साक्षात्कार में उन्होंने कहा है कि उनके लेखन की शुरुआत 1946 के बाद हुई जब वे बनारस में थे। उस दौर में मार्क्सवादी लेखकों की जमात थी। उनकी पंक्तियाँ देखिए-''सन् 1950 के आसपास मार्क्सवाद से मैं भी जुड़ा किन्तु धीरे-धीरे महसूस होने लगा कि जमात से जुड़ना मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। मैं तो मार्क्सवाद को अपनी दृष्टि और आवश्यकता बनाकर रचना-कर्म करता रहा। अतः मेरी या मेरी तरह जमात-मुक्त रचनाकारों की रचनाओं की उपेक्षा होती रही।'' उन्होंने कहा, 'आमजन पर मैंने भी कविताएं लिखीं परन्तु जनवादी कहाने के लिए नहीं। जन के प्रति संवेदना के नाते सहज भाव से ये कविताएं लिखी गई हैं।' मिश्र जी को लेखकों का शराबी होना पसंद नहीं है। दल के दलदल में फँसे लेखक दल के बाहर के लेखकों के साथ उठना-बैठना भी पसंद नहीं करते। मिश्र जी मानते हैं कि हमारे समाज में पहले जो मूल्य-मान्यताएं थीं, वे क्रमशः छीज रही हैं। लोक में जो भाईचारा था, जो सामूहिकता थी और जो दूसरों की सहायता करने की संवेदना थी, वह बहुत कुछ छीजी है। पर्यावरण के प्रति हमारे पूर्वजों का जो लगाव था वह लगातार टूट रहा है।

रामदरश मिश्र जी ने बहुतायत संस्मरण लिखे हैं। उनका ''सुरभित स्मृतियाँः देवेन्द्र सत्यार्थी'' संस्मरण पढ़ते हुए स्पष्ट होता है कि उनके पास ज़हीन भाषा है, शैली लाजवाब है और चित्रण सब कुछ खोल कर रख देने वाला है। कुछ पंक्तियाँ देखिए-''देवदूत सा लम्बा शरीर, बिखरे हुए लम्बे श्वेत बाल और दाढ़ी, एक लम्बा चोगा और हाथ में एक मोटी सी फाइल। वह व्यक्ति आपको फुटपाथ पर मिल जाएगा, आप चाहेंगे तो आपसे घुल-मिलकर न जाने कितनी बातें करेगा, नहीं चाहेंगे तो चुपचाप फकीर की तरह निकल जाएगा। कभी-कभी वह आपको किसी प्रकाशक के यहाँ बैठा हुआ मिल जाएगा और कितना कुछ कहेगा, किन्तु अपने बारे में नहीं, दूसरों के बारे में। हाँ, ये देवेन्द्र सत्यार्थी हैं-साहित्य के प्रसिद्ध यायावर।'' मिश्र जी ने जिसे भी याद किया अपने संस्मरण में, विस्तार से उनके बारे में लिखा, सार्थक लिखा, सच लिखा और साहस के साथ लिखा। उनके लेखन में स्मित हास्य-व्यंग्य का पुट भी अनुभव किया जा सकता है परन्तु कहीं भी अगम्भीरता नहीं मिलेगी। सत्यार्थी जी से जुड़े नाना प्रसंगों को उन्होंने पूरी विनम्रता से अपने संस्मरण में संजोया है।

रामदरश मिश्र जी ने हर विधा में लिखा और श्रेष्ठ लिखा है। ''फागुन'' शीर्षक से उनका निबंध सम्पूर्ण भाव-चिन्तन के साथ लालित्य समेटे हुए हैं। उनके निबंध काव्यात्मकता लिए हुए हैं, सहज विवरण भीतरी अनुभूतियों का दर्शन देते हैं और वे कोई उड़ान भरते दिखाई देते हैं। यह तभी संभव है जब कोई विषय की सम्पूर्ण जानकारी रखता हो और उसमें गहरा उतरना चाहता हो।

रामदरश मिश्र जी के लेखन को लेकर कवि शमशेर बहादुर सिंह जी के चिन्तन को देखना चाहिए, उन्होंने लिखा है, ''रामदरश मिश्र एक सच्चे कवि हैं। बहुत बड़े कवि नहीं, मगर बहुत संवेदनशील, सच्चे लिरिक कवि, जैसे कविता के अलावा उन्होंने अभिव्यक्ति की और भी विधाएं

पुस्तकों में लीन

अपनायी हैं, मसलन उपन्यास, कहानी और आलोचना को काफी समय दिया है, वैसे ही कविता में भी हम उनके कई रंग देखते हैं, यद्यपि मूल स्वर लिरिक ही माना जाएगा।'' इतना तो माना ही जाना चाहिए, उनकी कविताओं में ग्रामीण परिदृश्य अपने सम्पूर्ण गौरव के साथ उभरता है। उनका अपने गाँव से सम्बन्ध सहजता से जुड़ता है और कोई जटिल भाव उभर आता है। गाँव उनके मन-चिन्तन में रचा-बसा है। ऋतुओं, मौसम, महीनों के साथ मिट्टी, गाँव के खेत-खलिहान, श्रम करते किसान आदि के गहरे भावों से भरी कविताएं उन्हें अलग पहचान देती हैं। कवि ने कहीं लिखा है-

इच्छा होती है कि मेरी अंतिम सांस
अपने गाँव की गोद में टूटे
मेरी मिट्टी उसकी मिट्टी में मिल जाए

हालांकि आगे चलकर कविता का सन्दर्भ बदल जाता है और पूरा देश ही उसकी परिधि में शामिल होता है। 'वे दोनों' कविता में सहजता से मिश्र जी सच्चाई बयान करते हैं-वे एक-दूसरे को बाँहों में कसते रहे/अपना-अपना दर्द छिपाकर। औरतों के लिए ''घर-बाहर'' कविता का विस्तार बहुत मार्मिक और भावपूर्ण है। जो घर पहले उब पैदा करता था, बाहर जाकर खुली हवा में बोल-बतिया लेने के बाद वही घर प्यारा लगने लगा है। 'नदी एक रोशनी की' अपने बच्चों को संदेश देती कविता है। कवि के पास अद्‌भुत बिंब हैं जो जीवन में उल्लास भरते हैं, उम्मीद जगाते हैं और सतत् सक्रियता का संदेश देते हैं। 'फूल' शीर्षक कविता बनावटी व सचमुच के फूलों का अंतर बतलाती है। कवि भावुक होता है, बच्चों की माँग पर और फावड़ा लेकर फूल उगाने चल पड़ता है। उनका मौसम के साथ उलाहना भरा संवाद रोचक हो उठता है। कवि को बरसात खूब पसंद है। 'बारिश में भीगते बच्चे' के बिंब मनमोहक हैं और वह प्रसन्न हो उठता है। घर में आँगन का होना कितना महत्वपूर्ण है 'मेरे मकान में एक आँगन भी है' कविता पढ़कर समझा जा सकता है, कविता के अंत में लिखते हैं-

सोचता हूँ
कितना भाग्यशाली हूँ कि
मेरे मकान में एक आँगन भी है।

ऐसी सीधी-सपाट सहज अनुभूतियाँ ही कवि को श्रेष्ठ बनाती हैं। बहुतेरे लोगों ने उनमें भारतीय परंपरा के तपस्वी, साधक के स्वरुप का आभास किया है। यह भले ही अतिशयोक्ति लगे, फिर भी इतना तो स्वीकार करना ही चाहिए, रामदरश मिश्र जी की कविताएं अंधेरों से बाहर का प्रकाश दिखाती हैं। वे कभी निराश नहीं होते बल्कि उनकी सौम्य हँसी आस्था का आलोक फैलाती रहती है। भारत यायावर ने मिश्र जी के बारे सहजता से लिखा है-''उधार का न लेकर अपने अनुभवों की भरपूर कविताएं और किस्से और वैचारिक लेखन उन्होंने हिन्दी साहित्य को अर्पित किया है।''

रामदरश मिश्र जी की पुस्तकों का देश की दूसरी भाषाओं में बहुतायत मात्रा में अनुवाद हुआ है, पाठकों ने आदर के साथ पढ़ा और स्वीकार किया है। किसी भी लेखक के लिए यह छोटी उपलब्धि नहीं मानी जा सकती है। गुजराती, उड़िया, अंग्रेजी, कन्नड़, मलयालम, पंजाबी आदि अनेक भाषा-भाषी पाठकों तक उनका अनूदित साहित्य पहुँचा है। 'रात का सफर' का अनुवाद उड़िया भाषा में सुश्री सुषमा पाणि ने किया है। अपने लोग, आदिम राग, रात का सफर और बिना दरवाज़े का मकान जैसी पुस्तकों का अनुवाद गुजराती में हुआ है। रात का सफर का अनुवाद कन्नड़ और मलयालम में भी किया गया है। अनुवाद के माध्यम से आग की हँसी और रात का सफर जैसी पुस्तकें देश की अनेक भाषाओं में पहुँची हैं। 'रामदरश मिश्र : संकलित कहानियाँ' का पंजाबी में अनुवाद हुआ है। इस तरह मिश्र जी देश की हर भाषा में सादर पढ़े जाते हैं।

साहित्य में गहरी आम धारणा है, पीड़ा और विसंगतियों की अभिव्यक्ति ही रचनाकार की सफलता का आधार है। इस आधार पर रामदरश मिश्र जी के लेखन को देखते हैं तो वह कोई पीछे नहीं दिखते। पाठक के मन को वही साहित्य स्पर्श करता है जिसमें समाज की पीड़ा दिखाई देती है, हमारे संघर्ष दिखते हैं। ऐसे दृश्य लोगों को अपने लगते हैं, अपना संघर्ष लगता है। आज का पाठक जागरूक है, उसे भरमाया या बहकाया नहीं जा सकता बल्कि वह सब समझता है। रामदरश मिश्र जी इस सच्चाई को समझते हैं और बिना शोर मचाए अपना लेखन करते हैं। उनके पात्र पाठकों को आकर्षित करते हैं, अपने लगते हैं और इसीलिए मिश्र जी उनके हृदय में जगह पाते हैं। उनके लेखन में खास तरह की विविधता है और स्थितियाँ परिवेश से जुड़ी दिखाई देती हैं। वे सहजता से दबे-कुचले, पीड़ित, वंचित की बातें करते हैं, उनके साथ खड़े होते हैं और कलात्मकता के साथ लेखन करते हैं। उनकी रचनाओं में स्त्री-मन की पीड़ा और संघर्ष विशेष रुप से समाकृत है। अक्सर लोग उन्हें जुझारू स्त्रीवादी लेखक मानते हैं।

उनके काव्य और गज़ल संग्रहों की संख्या पच्चीस से अधिक है, पन्द्रह के आसपास उपन्यास हैं और तीस से अधिक कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इसके अलावे पाँच ललित निबन्ध संग्रह, आत्मकथा, डायरी, साक्षात्कार और समीक्षा की ग्यारह पुस्तकें हैं। पाँच संस्मरण और चार संचयन की पुस्तकें और चौदह खण्डों में उनकी रचनावली है। यह विवरण मोटा-मोटी मानकर चलना चाहिए, इसके अलावा भी बहुत कुछ होगा ही। ऐसे महान साहित्यकार को अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ नमन करता हूँ। आत्मकथा ''सरकंडे की कलम (संचयन) में उन्हीं के द्वारा लिखे चिन्तन को उद्धृत करना चाहता हूँ, उन्होंने स्पष्ट किया है,'' जीवन के प्रति आस्था को खंडित करने वाले साहित्य में मेरी आस्था जम नहीं पाती और अपने लेखन से मैं जीवन-आस्था को जिलाए रखने की कोशिश करता हूँ, चाहे कविता हो या कहानी-उपन्यास या अन्य विधाएं, ''जीवन-आस्था'' की केन्द्रीय उपस्थिति आश्वस्त करती है।'' ◆

पता : टाटा अरिआना हाउसिंग, टावर-4, फ्लेट-1002,
पोस्ट-महालक्ष्मी विहार, भुवनेश्वर-751029 (उड़ीसा)
मो. : 9102939190

सहजता जहां एक-एक काव्य निकष है

जितेन्द्र श्रीवास्तव

एक कवि के रूप में रामदरश मिश्र का वास्तविक विकास आज़ादी के बाद मोह भंग वाले दौर में हुआ था लेकिन उनकी कविता में वैसी अनास्था अभिव्यक्त नहीं हुई है जैसी उस दौर के कई दूसरे कवियों के वहां। अपनी पूरी बनावट में वे उम्मीद और जिजीविषा के कवि हैं।

आठ दशक से भी लंबी काव्य-यात्रा करने वाले संभवतः अकेले कवि हैं रामदरश मिश्र। यह हिंदी के वैश्विक समाज के लिए आह्लाद का विषय है। दीर्घ जीवन तो कई कवियों को मिला लेकिन याद नहीं आता कि उनमें से कोई सृजनात्मक रूप से उस तरह सक्रिय रहा हो जैसे कि रामदरश जी हैं। विगत वर्षों में उनकी नई कविताओं के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं। हिंदी के साहित्य जगत ने उनके इन संग्रहों को पर्याप्त मान सम्मान भी दिया है। मिश्र जी की कविताओं पर विचार करते हुए यह बहुत स्पष्ट दिखाई देता है कि वे सदैव ऊर्ध्वमुखी रहे। उनकी दृष्टि भविष्योन्मुखी और यथार्थवादी रही। जिस सत्य को कहने से बहुतेरे कवि परहेज़ करते रहे, मिश्र जी ने उसे पूरी ईमानदारी से कहा। आज भी कह रहे हैं जबकि वे उम्र के सौवें वर्ष में हैं। यह कैसा विलक्षण संयोग है कि वे आज भी उसी विश्वास पर अडिग हैं जिसे अपने काव्य जीवन के बिल्कुल आरंभिक दिनों में उन्होंने अपने भीतर विकसित किया था। उनके शुरुआती दिनों के एक गीत का टेक है -

चल रहा हूं क्योंकि गति से पंथ का निर्माण होगा।

कहना होगा कि बिना किसी शोर के यह कविता में वैज्ञानिक चेतना का निवेश था। इस गीत में कवि विडंबनाओं के बीच उम्मीद का एक सूत थामे हुए है। वह लिखता है -

आंधियों में भी दिवा का दीप जलना ज़िंदगी है
पत्थरों को तोड़ निर्झर का निकलना ज़िंदगी है।

एक कवि के रूप में रामदरश मिश्र का वास्तविक विकास आज़ादी के बाद मोह भंग वाले दौर में हुआ था लेकिन उनकी कविता में वैसी अनास्था अभिव्यक्त नहीं हुई है जैसी उस दौर के कई दूसरे कवियों के वहां। अपनी पूरी बनावट में वे उम्मीद और जिजीविषा के कवि हैं। 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' उनकी एक प्रसिद्ध कविता है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद सपनों के टूटने की जो एक पूरी शृंखला थी उसमें आम जन के दुःखों का रंग एक सा हो गया था। सपने भी धूसर हो गए थे या हो रहे थे। लोकतंत्र में ऐसा होना विषाद का ही विषय बन सकता था और ऐसा हुआ भी। रामदरश जी अपनी इस कविता में लिखते हैं -

मित्रो!
हमारी तुम्हारी ये बैरंग लावारिस चिट्ठियाँ
किसी दिन लावारिस जगहों पर
परकटे पंक्षी की तरह
पड़ी पड़ी फड़फड़ाएंगी
और कभी किसी दिन
कोई अजनबी

इन्हें कौतूहलवश उठाकर पढ़ेगा
तो तड़प उठेगा
ओह!
बहुत पहले किसी ने
ये चिट्ठियाँ
शायद मेरे नाम लिखी थीं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि 'यह अजनबी' उस दौर का कोई भी व्यक्ति हो सकता था। एक संश्लिष्ट यथार्थ को ऐसी सहजता के साथ कविता की प्राणवस्तु बनाना उसी कवि के बूते की बात हो सकती है जो जन्मना कवि हो।

प्रेम रामदरश मिश्र की कविताओं और गीतों का एक अनिवार्य घटक है। लेकिन यह याद रखना अत्यंत आवश्यक है कि उनके वहां प्रेम की अभिव्यक्ति दाम्पत्य प्रेम के रूप में अधिक हुई है। उनकी 'तुम बिन' शीर्षक कविता बहुत से काव्य-प्रेमियों की स्मृति में होगी। इस कविता का प्रत्येक बंद उज्ज्वल दाम्पत्य की आभा से दीप्त है। कविता शुरू होती है -

तुम बिन कुछ खोया-खोया सा
कुछ सूना-सूना सा लगता है
रीते घर का हर रीतापन
कुछ दूना-दूना लगता है।

फिर प्रत्येक बंद अलग-अलग ढंग से जीवन के रीतेपन और अकेलेपन को सामने रखता है। लिखे जाने के दशकों बाद भी यह कविता बहुत से नए और युवा पाठकों को अपनी लगती होगी। इसी रूप में प्रेम एक सार्वभौमिक सत्य है। यह अकारण नहीं कि कवि मन में असंख्य मन समाए होते हैं। कई बार कवि की नितांत अपनी व्यक्तिगत बात भी 'अन्य' की बात होती है। 11 अप्रैल, 1947 को लिखा रामदरश जी का एक गीत है 'स्वर्गीया के प्रति'। यह गीत संभवतः उन्होंने अपनी पहली पत्नी के असमय निधन पर लिखा था। 'आज मैं पथ पर अकेला आज मेरे गान सूने' की टेक पर खड़ा यह गीत दाम्पत्य और साहचर्य का एक मार्मिक गीत है। प्रेम पर केंद्रित यह कविता भी रोकती और बतियाती है -

कुछ फूल कुछ काँटे
हमने आपस में बांटे
यात्रा के हर मोड़ पर हमने
एक दूसरे का इंतज़ार किया है
हां,हमने प्यार किया है।

अपनी रचनाओं को लेकर एक आत्मविश्वास रामदरश जी के भीतर बिल्कुल आरंभिक दिनों से ही है। इस विश्वास का कारण उनके 'गीत हमारे' शीर्षक गीत में अभिव्यक्त हुआ है। वे कहते हैं-नभ में नहीं, धरा-ज्वाला में, पलते हैं गीत हमारे। अर्थात् हर प्रकार की वायवीयता को टाटा-बाय बाय। उनके गीतों में प्रकृति अपने प्राकृत रूप में दिखती है। संध्या गीत, मन डूबा सन्नाटे में, मेरी राह न बांधों!, डूब गया दिन धीरे-धीरे, जेठ की भोर, मधुपर्व, चाँद को आज रात भर देखा, रात-रात भर मोरा पिहंके, फिर फागुन आ गया इसी तरह के गीत हैं। मनुष्य और प्रकृति के नाभिनाल संबंध को जीवंत करते। इन गीतों और कुछ अन्य कविताओं को पढ़ते हुए रामदरश जी की सूक्ष्मतम पर्यवेक्षण सामर्थ्य का पता चलता है। कोई कवि यूँ ही आठ दशकों तक नवोन्मेषी बना नहीं रह सकता। यह भी स्वाभाविक है कि जो कवि प्रकृति के अछोर सौंदर्य का गायक रहा है वह बदलते समय में मनुष्य की विविध वासनाओं को लक्षित करते हुए 'साक्षात्कार' जैसी कविता भी लिखे। वे लिखते हैं-चंदन वनों को बंद कर लिया गया है संगमरमरी मकानों में। इस और ढेर सारी अन्य कविताओं में विडंबनाओं की अचूक पहचान की है इस कवि ने। इस कविता में रामदरश जी लिखते हैं -

ओह, कैसी हवा चल रही है आजकल
कि अमराई के सारे बौर
देखते- देखते झुलस जाते हैं
बच्चे पैदा होते ही
विकलांग हो जाते हैं
अन्न
खाने के पहले ही अपच करने लगता है
नदियां
अपना जल लिए दिए
खुद ही प्यास जाती हैं
बादल आकर
बिना बरसे, जल लिए लौट जाते हैं
धरती के रस को पीती हुई
बालियाँ फसलों के कंधों पर
लाशों की तरह लटक जाती हैं।

यह पूरी कविता एक शोकगीत की तरह है। कह सकते हैं कि एक आइने की तरह भी है जिसमें हम अपने समय को उसके वास्तविक रूप में देख सकते हैं और भविष्य को बचाने का कोई यत्न कर सकते हैं। कविता और कलाएं यही काम करती हैं। वे धीरे से हमारी चेतना बदल देती हैं।

रामदरश मिश्र अपने राजनीतिक होने का शोर नहीं करते। उनकी कविताएं भी किसी प्रकार का शोर नहीं करतीं। एक कवि के रूप में वे अपने आरंभिक दिनों से आश्वस्त हैं कि इस तरह का कोई भी शोर अंततः एक साहित्यिक प्रदूषण है। याद रखना चाहिए कि राजनीतिक चेतना कवि होने की अघोषित किंतु अनिवार्य शर्त है। जिस कवि को अलग से अपनी राजनीति

स्पष्ट करनी पड़े, उस पर विचार करना चाहिए। रामदरश जी की एक कविता है-रात। इस कविता को पढ़िए और देखिए कि राजनीतिक कविता इस तरह भी लिखी जा सकती है –

रात जितनी घनी होती है
उतनी ही तेज़ होती है
मन में रोशनी की चाह
और रोशनी चाहे जहाँ भी रहे
रुकती नहीं
चली आती है खुली आंखों के पास
रात रोशनी की चाह है
आओ, इसे कोसें नहीं
केवल अपनी आँखें खुली रखें।

इसी तरह की एक अर्थवान कविता है-हाथ। धक से लग जाने वाली कविता। संश्लिष्ट यथार्थ को सहजता से कह देने वाली कविता। यहीं यह कहना भी ज़रूरी है कि रामदरश मिश्र ने उपेक्षा सहते हुए भी चले हुए मुहावरों की कविता नहीं लिखी। उन्होंने सहजता को अपना काव्य निकष बनाया। उन्होंने नीम और गेंदे के फूल पर कविताएं लिखी हैं। गेंदे का फूल किसान मन के करीब होता है। वह अभिजन के समानांतर आम जन की अभिरुचि के अधिक करीब पड़ता है और कहना चाहिए कि यही कवि के रूप में रामदरश जी की शांत और संतुलित प्रतिबद्धता है। उनकी एक कविता मां पर केंद्रित है। इस कविता में सौ बरस के इस कवि के बचपन की स्मृतियां हैं। उस स्मृति में चूकवश हंसुए से लगी चोट की स्मृति है। मां की व्याकुलता है और स्कूल जाने से पैदा हुई वह उजास है जिसने इस कवि का जीवन बदल दिया था। यह कविता न सिर्फ मां पर लिखी बहुतेरे कवियों की ढेर सारी भावुक करने वाली कविताओं से भिन्न और मन की त्वचा को स्पर्श करने वाली है बल्कि कवि की उस काव्य भूमि का पता भी है जिसे उसने कभी गिरवी नहीं रखा। बेच देना या भूल जाना तो बहुत दूर की बात है। कवि की भावभूमि का पता देने वाली एक और कविता है-उत्तर। इस छोटी सी कविता को देखिए और मनन कीजिए –

उस दिन साथियों की भीड़ में
किसी बच्चे ने आकर एक पत्र थमा दिया था
वह प्रेम-पत्र था पता नहीं किसका
तब से मैं प्रेम-पत्र का उत्तर दिए जा रहा हूं
कभी गद्य में कभी पद्य में
कभी इसको, कभी उसको
जाने किस-किसको
ऑह, कितने वर्ष हो गए उत्तर लिखते हुए...

यहां यह रेखांकित करना आवश्यक है कि यह कोई सामान्य प्रेम-पत्र नहीं है। यह मनुष्यता का मनुष्यता को लिखा जाने वाला प्रेम-पत्र है। एक सच्चा कवि उम्र भर यही करता है। यह पत्र कभी तुरंत पढ़ लिया जाता है तो कभी महाकवि भवभूति की तरह यह विश्वास जताते हुए प्रतीक्षा करता है कि कभी तो कोई समानधर्मा आएगा जो इस पत्र के वास्तविक तत्व को समझेगा और समझाएगा भी। रामदरश जी कविता की प्रकृति को न केवल समझते हैं बल्कि समझाते भी हैं –

जब मैं बोलता रहता हूं
तब कविता चुप रहती है
जब मैं चुप हो जाता हूं
तब कविता बोलने लगती है।

यह याद रखना चाहिए कि जहां सब मौन हो जाते हैं वहां कविता न केवल बोलती है बल्कि समय का भेद भी खोलती है। यह विश्वास रामदरश मिश्र ने अपनी कई कविताओं में दुहराया है। उनकी ग़ज़लों में भी समय की आवाज़ दर्ज़ हुई है। उनके कुछ अशआर बहुत लोकप्रिय हुए हैं। उनका यह शेर तो बहुतों का सहचर रहा है –

जहां आप पहुंचे छलांगें लगा कर
वहां मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे।

इसी तरह कोई कवि 'अन्य' की आवाज़ बनता है। रामदरश मिश्र ने एक ज़रूरी और यशस्वी काव्य-यात्रा संभव की है। इस मुक्तक में जैसे उनका अपना ही जीवन अभिव्यक्त हुआ है –

जानता है तन कि उस पर, बुढ़ापा आया हुआ।
किंतु मन पर हँसी सा, जीवन अभी छाया हुआ।
अभी भी उसको बुलाती, अपनी मिट्टी की सदा।
अभी भी लगता समय है, गीत ज्यों गाया हुआ।

कवि के मन पर हँसी सा जीवन छाया रहा।

उन्होंने खूब लिखा, शीर्ष पर पहुँचे। उन्हें नमन। ◆

पता : निदेशक, अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाग,
इन्दिरा गांधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली-68
मो. : 9818913798

मिश्र जी की रचनाओं में बिखरा है, उनके मन में रचा बसा गाँव

डॉ. राहुल

मिश्र जी का समस्त साहित्य वैचारिक भावभूमि से मुक्त-मन की नैसर्गिक सृष्टि है। यानी वह मुक्ति-चेतना (स्वच्छन्दता नहीं) से समृद्ध है। यानी मुक्ति और स्वच्छन्दता में जो अन्तर है उसकी साफ झलक यहां देखी जा सकती है।

रामदरश मिश्र के रचना संसार में गांव और उसका उन्मुक्त परिवेश सदैव इनके मन-मस्तिष्क में रचा-बसा रहा है। दिल्ली जैसे महानगर में रहते हुए भी कभी गांव की सोंधी मांटी की सुगन्ध विस्मृत नहीं हुई। यही कारण है कि इनके गीत हों, कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्धात्मक स्मरण सबमें गांव में मोहक-मार्मिक दृश्य-परिदृश्य सहजता से दिखाई देते हैं। यह आंचलिकता बोध इन्हें प्रेमचन्द और रेणु की परम्परा का महान उपन्यासकार सिद्ध करता है।

मिश्रजी का समस्त साहित्य वैचारिक भावभूमि से मुक्त-मन की नैसर्गिक सृष्टि है। यानी वह मुक्ति-चेतना (स्वच्छन्दता नहीं) से समृद्ध है। यानी मुक्ति और स्वच्छन्दता में जो अन्तर है उसकी साफ झलक यहां देखी जा सकती है। 'मुक्ति' स्वतन्त्रता है और 'स्वच्छन्दता' उनकी सौन्दर्यबोधीय प्रवृत्ति का परिचायक है। स्वच्छन्द चेतना की अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम दर्शन था। 19वीं शताब्दी के प्रथम तीन दशकों में अंग्रेजी साहित्य के सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक क्षेत्रों में एक नयी विचारधारा विकसित हुई जिसे स्वच्छन्दतावाद की संज्ञा दी गई। इस दृष्टि से यदि मिश्रजी आंचलिक उपन्यासों की कथात्मकता का अध्ययन करें तो उनमें कहीं भी स्वच्छन्दता का बोध नहीं होता। मसलन वे मुक्ति-स्वर का निनाद करते हैं। अतः मैं यहां उनकी समस्त विधागत रचनात्मकता पर बात न कर सिर्फ चार आंचलिक उपन्यास-'पानी के प्राचीर' (1961), जल टूटता हुआ (1969), बीच का समय (1970) सूखता हुआ तालाब (1972) अपने लोग (1976), रात का सफर (1976), आकाश की छत (1979) बिना दरवाज़े का मकान (1984) दूसरा घर (1986) थकी हुई सुबह (1994), बीस बरस (96) और परिवार, बचपन भास्कर का, एक बचपन यह भी, एक था कलाकार की कथात्मकता को केन्द्र में रखकर वैचारिक विवेचन प्रस्तुत करना मुनासिब समझता हूं। उनके इन उपन्यासों में नारी-मुक्ति, शोषण-उत्पीड़न-मुक्ति, अवमूल्यन-मुक्ति, दलित-दलन से मुक्ति का स्वर मुखरित हुआ है। 'मेरा आत्म-संघर्ष' में स्वयं मिश्रजी ने लिखा है-'मेरे बचपन का जीवन सड़क नहीं, पगडंडियाँ रहा है। जहां मैं पैदा हुआ वह दो नदियों के बीच घिरा कछार है जहां दूर-दूर तक सड़क नहीं थी, केवल पगडंडियाँ, खेतों के मेड़, और बहुत हुआ तो कहीं कोई छोटी सी कच्ची सड़क। इन्हीं पगडंडियों पर पूरा कछार गिरता-पड़ता चल रहा था। अभावों से अभिशप्त अनन्त टूटे-फूटे कच्चे घर थे जिनमें चुपके-चुपके न जाने कितने सपने टूट-टूटकर सो जाते थे, कितने आंसू रातभर बहकर सबेरे सूख जाते थे, कितने चूल्हों की आंचें कभी जागकर कई-कई दिनों तक बुझी रहती थीं। शरीरों पर फटे-पुराने वस्त्र झूलते रहते थे। अपने समय पर दहाड़ते हुई बाढ़ आती थी और खेतों को लूट ले जाती थी। उसके साथ जाते थे जमींदार के कारिन्दा, कुर्क ज़मीन, पटवारी, थानेदार और न जाने कौन-कौन से लोग-जोंक की तरह दुर्बल देहों से खून चूसने के लिए। मेरा घर भी इन्हीं घरों में से एक घर था। और मैं इन तमाम लोगों में-से एक व्यक्ति था।' (अभिनव प्रसंगवश, पृष्ठ 9-10) आंचलिक उपन्यास पर उनका कथन है कि, उपन्यास का अर्थ कथा (सूक्ष्म या सघन) के माध्यम से व्यक्त होने वाला जीवन-चित्र जो स्थान विशेष या स्थान सामान्य से सम्बद्ध होकर सर्वदेशीय मानव संवेदनाओं

एवं मूल्यों की प्रतिष्ठा करे...किसी उपन्यास में द्रष्टव्य जीवन अपनी कितनी सच्चाई, मानवीयता और समग्रता के साथ व्यक्त हुआ है और यह अपनी संवेदना की कितनी गहराई तथा मानवीयता के कारण वृहत्तर मानव-सत्य को कहां तक स्पर्श करता है।' तत्वतः आंचलिक/ ग्रामांचल के उपन्यासों में स्थान विशेष का उतना महत्व नहीं होता जितना संवेदनाओं का होता है।

दरअसल उपन्यासकार रामदरश मिश्र के औपन्यासिक कृतियों के आंचलिक परिवेश और बिम्ब को समझने के लिए वहां के क्षेत्रीय/स्थानीय रंग और संस्पर्श को देखना निहायत लाज़िमी है। अतः उनकी औपन्यासिक कृतियाँ हों या अन्य रचनाएं उनमें आजादी के बाद के भारत का एक यथार्थ चित्र अंकित हुआ है। जिन परिस्थितियों में आजादी मिली थी उसके प्रति मन में एक आस्था थी। देश के लोगों सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक नवनिर्माण का सपना देखा था। उन्हें विश्वास था कि गांव की दशा बदलेगी, आम आदमी का विकास होगा, जीवन-स्तर ऊंचा उठेगा। हर खेत को पानी और हर हाथ को काम मिलेगा लेकिन अपने देश और समाज में बढ़ती स्वार्थपरता, अजनबीपन, भूख-भय-महंगाई से लोगों को मोहभंग हुआ। और यह स्वाभाविक भी था। क्योंकि हमने अंग्रेज़ों के भयानक जुल्मोसितम को झेलकर जिस कठिन संघर्ष के उपरान्त आज़ादी हासिल की थी, उसका वातावरण कुछ ही वर्षों में गंदला होने लगा था। यह दूषित आबोहवा का प्रभाव हमारे गांवों तक पहुंचा और पूरा का पूरा माहौल ही भ्रष्टाचार, शोषण, वैषम्य, विघटन और संक्रमणशीलता से पूर्णतः प्रदूषित हो गया। मिश्रजी की दृष्टि व्यापक और सोच सूक्ष्म है इसलिए उन्होंने अपनी कृतियों में उन समस्त विद्रूप-विषम स्थितियों का चित्रण किया है। बकौल डॉ. शुकदेव सिंह, 'पं.रामदरश मिश्र हिन्दुस्तान की ग़रीबी, ग़रीब आदमी की तकलीफ, औरत की दहलीज़ लांघती लाचारी अर्थात् नाइंसाफी का मारा हुआ कोई भी इंसान मिश्रजी के लिए रचना का विषय होता है। शोषित वर्ग के हाथ में बन्दूक थमा देने वाले गुण्डा गांवों को खा गए, शहरों को खा गए। विचार की दृष्टि से एक 'उपनिवेश' में रहने वाले ये नम्बूदरी हिन्दुस्तान को नहीं जानते। पिछले सत्तर सालों में जो क्रोध और घृणा का साहित्य लिखा गया है उसने भारत को विश्वपूंजीवाद के एक जाहिल नरक में झोंक दिया है। इसलिए पिछले साठ सालों के साहित्य की-कम से कम पचास सालों के साहित्य की जब छान-बीन की जाएगी तो मिश्रजी दिल्ली में रहते हुए तलहटी के गांवों के दुःखी आदमी और मर्दों के साथ उन्हीं के बीच से, उनकी गाते हुए, उनकी कहते हुए, उनके पक्ष में खड़े एक सशक्त-सक्रिय साहित्यकार के रूप में दिखाई पड़ेंगे। (वही, पृष्ठ 43)

मिश्रजी का समस्त साहित्य वैचारिक भावभूमि से मुक्त-मन की नैसर्गिक सृष्टि है। यानी वह मुक्ति-चेतना (स्वच्छन्दता नहीं) से समृद्ध है। यानी मुक्ति और स्वच्छन्दता में जो अन्तर है उसकी साफ झलक यहां देखी जा सकती है। 'मुक्ति' स्वतन्त्रता है और 'स्वच्छन्दता' उनकी सौन्दर्यबोधीय प्रवृत्ति का परिचायक है। स्वच्छन्द चेतना की अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम दर्शन था। 19वीं शताब्दी के प्रथम तीन दशकों में अंग्रेज़ी साहित्य के सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक क्षेत्रों में एक नयी विचारधारा विकसित हुई जिसे स्वच्छन्दतावाद की संज्ञा दी गई।

यूं ग्राम्यांचल के उपन्यासों को आंचलिक कहकर सीमित कर दिया जाता है। रेणू के 'मैला आंचल' के प्रकाशन से पूर्व नागार्जुन का 'बलचनमा' (1952) प्रकाशित हो चुका था पर उसे आंचलिक नहीं कहा गया, यद्यपि इनमें आंचलिकता का कम रंग नहीं था। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में ग्राम-कथाएं ली हैं, पर उन्हें आंचलिक न कहकर ग्राम्यांचलीय कहा गया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में ग्राम के निवासियों की कथाएं तो हैं पर उन्हें ग्राम्य-उपन्यास ही कहा जाता है, उनमें गांव की धरती, खेत-खलिहान, नदी-नाले, ड्रेगन, पशु-पक्षी, हल-बैल, लोकगीत, भाषा, रीति-रिवाज़, त्यौहार आदि सभी कुछ है और इनके बीच रहने वाले व्यक्तियों के साथ समवेत रूप में वाणी पाते हैं। अभिप्राय है कि उपन्यास के पात्रों के साथ उनका परिवेश भी बोलता है। रेणु ने अपने उपन्यासों-'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' में ग्राम को जो प्रधानता दी है उसके आधार पर केवल उन्हीं की कृतियों को आंचलिक कहा जाना चाहिए। किन्तु हिन्दी में लकीर के फकीर या भेड़चाल का भी बोलबाला है जिसके चलते किसी भी उपन्यास में थोड़ा सा भी ग्राम्य-बोध दिखाई दिया कि उसे आंचलिकता से सम्बद्ध कर दिया जाता है। और कहें कि यह आंचलिकता उसी तरह ऐसे उपन्यासकारों की कृतियों के साथ बतौर फैशन जैसे प्रगतिशीलता को मार्क्सवाद कहकर जोड़/जाड़ दिया गया। बेशक ग्राम्यांचल को आधार बनाकर राही मासूम रज़ा, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र और हिमांशु श्रीवास्तव (रथ के पहिये) के उपन्यास लिखे गए हैं। रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ' और 'सूखा हुआ गुलाब' ग्रामांचलीय उपन्यास हैं। ये उपन्यास वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा समूचे गांव के स्तर पर यथार्थ भाव-बिम्ब को लिए रूपायित हैं।

डॉ. रामदरश मिश्र विलक्षण प्रतिभा के साहित्यकार हैं और उनका साहित्य बहुमुखी है। पानी के प्राचीर उनका प्रथम प्रकाशित ग्रामांचलिक उपन्यास है जिसमें गोरखपुर (गोरक्षपुर) जिले की दो नदियों-राप्ती और गौरा से घिरे हुए एक पिछड़े भू-भाग की कहानी प्रस्तुत की गई है। उपन्यास की महत्ता असंदिग्ध है। उसकी महत्ता का रहस्य है कि यह विस्तृत भू-भाग युगों से अपनी हरियाली राप्ती और गौरा इन दो नदियों की भूखी धारा को लुटाता आ रहा है। बाढ़ का विकराल रूप यहां हर वर्ष देखने को मिलता है। जिसके कारण इस क्षेत्र में अभाव, विवशता और संघर्ष स्थानीय लोगों के शेष रह जाता है। ग्रामांचल के दृश्य 'गोदान' और 'मैला आंचल' में दिखाई देते हैं किन्तु 'पानी के प्राचीर' कथात्मकता में ग्राम्य-बोध की विशेषता यह है कि इसमें परम्परागत भारतीय संस्कृति की विकृति नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें ग्रामीण मनोवृत्तियों का चलचित्र-सा पेश किया गया है। इसका ऐतिहासिक महत्व भले ही कमोबेश हो किन्तु पौराणिक परिदृश्य मन को आकर्षित करते हैं। भारतीय जनजीवन की विविध प्रवृत्तियों की कथात्मक अभिव्यक्ति मार्मिक बन पड़ी है। मिश्रजी जीवन के विविध पक्षों को

उद्घाटित करते हैं और एक ऐसा कलात्मक आयाम दे देते हैं जिससे गंवई जीवन-संस्कृति का न्यूनाधिक गौरव महसूस होता है।

उपन्यास की कथावृत्ति में आज़ादी के बाद के भारतीय गांवों का सर्वाधिक प्रामाणिक चित्रण मिलता है। इसमें ग्रामीण जीवन-संघर्ष, आर्थिक अभाव, विपन्नता सामाजिकों की विवशता, दैवी-प्रकोप (बाढ़) की विभीषिका, किसानों की छटपटाहट, राजनीतिक उठापटक, विद्रूपता, क्रूर-कूट चालें-साजिशें, उत्सव-उमंग-उल्लास, सांस्कृतिक सच का संश्लेषण, लोक गीत-संगीत, खेतों का विधान, फसलों की तबाही से उपजी संवेदना की जीवन्तगाथा है यह उपन्यास। इसे एक महाकाव्यात्मक गाथा भी कह सकते हैं। इसे कुछ नये-पुराने आलोचक अत्युक्ति (भी) कह सकते हैं किन्तु सच्चाई यह है कि मानवीय संवेदना की परतों को कथासूत्र में इस खूबी से पिरोया गया है कि उसके बिम्बांकन मन में साठोत्तर गद्य-महाकाव्य की अनुभूति कराते हैं। यकीनन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक यथार्थ की संश्लिष्ट गाथा है यह उपन्यास। इसमें-की गीतात्मकता, लयात्मकता, माधुर्य जो उपन्यास में जगह-जगह चम्पा चूही माला के पुष्प के समान पिरोए गए हैं। काव्यात्मक सांकेतिकता और नाटकीय वक्रता प्रदान करते हैं।

डॉ. प्रभाकर माचवे ने इस उपन्यास के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, 'रामदरश चाहते हैं गांव की अच्छाई-बुराई सबको अपनी पूरी गोलाई के साथ स्वीकार करना। वे सिर्फ एक पक्षीय होकर गांव में सब कुछ मधुरामपुर नहीं देखना चाहते, न प्रगतिवादी सिद्धान्त-ग्राहियों की भांति यहां की गन्दगी एवं बुराई और मुफलिसी को ही उभारकर सामने लाना चाहते हैं।' यही कारण है कि 'पानी के प्राचीर' में यथार्थबोध और मूल्यबोध साथ-साथ संश्लिष्ट रूप में है।

डॉ. प्रभाकर माचवे ने इस उपन्यास के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, 'रामदरश चाहते हैं गांव की अच्छाई-बुराई सबको अपनी पूरी गोलाई के साथ स्वीकार करना। वे सिर्फ एक पक्षीय होकर गांव में सब कुछ मधुरामपुर नहीं देखना चाहते, न प्रगतिवादी सिद्धान्त-ग्राहिरों की भांति यहां की गन्दगी एवं बुराई और मुफलिसी को ही उभारकर सामने लाना चाहते हैं।' यही कारण है कि 'पानी के प्राचीर' में यथार्थबोध और मूल्यबोध साथ-साथ संश्लिष्ट रूप में है। ऐसे बहुत कम या कहें कि गिनती के ही उपन्यास होंगे जिनमें ऐसा गुणात्मक वैशिष्ट्य विद्यमान हो। हर साल और हर बार आने वाली बाढ़ की विभीषिका ग्रामीण जीवन को किस तरह विपन्न, अभावग्रस्त, विवादी, अन्धविश्वास विश्वासी बनाती है इसका जितना और जैसा प्रामाणिक चित्रण मिश्रजी ने किया है जो काबिलेगौर से ज़्यादा काबिलेतारीफ है। इस प्राकृतिक प्रकोप को कुछ ग्रामीण भूत-प्रेत के सांयें से जोड़कर देखते हैं। उनका विश्वास है कि इस इलाके में बाढ़ की भयानक प्रकोप उसी साया के प्रताप से आता है और भीषण तबाही मचाता है। उसकी मान-मनौती करते हैं और फिर बाढ़ का पानी धीरे-धीरे घटकर सामान्य हो जाता है। उपन्यास में प्राकृतिक प्रकोप का दंश भी उभरा है। 'पानी के प्राचीर' का अन्त आज़ादी मिलने पर हुआ है, नीरू जहां ग्रामीणों की नीयत का भाष्य करता है वहीं आज़ादी से जुड़ी उसकी आशा जनतांत्रिक मूल्यों में विश्वास को जगाती है-'गांव के चारों ओर पानी की ये दीवारें जो आप देख रहे हैं, इन्हें गुलामी ने और बलवान बना दिया है।-ये हमारी फसलें लूट लेती हैं-आज हमें आज़ादी मिली है। अब ये पानी की दीवारें टूटेंगी-खेतों में नये सपने खिलेंगे।' मगर वो सपने टूट-टूटकर बिखरने लगे। देखिए-

'मास्टर सुगन का मन आज अजीब ढंग का सूनापन महसूस कर रहा था। वे धीरे-धीरे ताल के खेतों की ओर बढ़ गए। रास्ते में धान, कोदो के पौधे निःशंक भाव से हरी-हरी आभा फेंक रहे थे...और नाले-नदियों का सफेद जल क्रूर हंसी का हाहाकार लिए इधर को चला आ रहा था। मास्टर सोच रहे थे-कितने सुखी हैं, पौधे जो अपने करीब मौत के हाहाकार को सुनकर भी इतनी निश्चिंत हंसी हंस लेते हैं। आदमी तो अपने सुखों की चरम स्थिति में भी दुख की आशंका से कांप-कांप उठता है। मास्टर अपने ताल वाले खेत के पास पहुंच गए। कितना कीचड़ है रास्ते में, चलना मुश्किल है।' उपन्यास में ग्रामीण परिवेश का बड़ा ही यथार्थ अक्स अंकित हुआ है, एक दृष्टान्त-सतीश के पूछने पर, सुग्गन मास्टर भीगे स्तर में घिघियाए-'सतीश भाई, हवाला तो कई दिन पहले छोड़कर भाग गया, रोज-रोज खर्ची मांगता है, कहां से दूं? रहा मैं...सो क्या बताऊं जरा कस्बे की ओर जा रहा हूं। अभी लौटकर स्कूल भी तो जाना है।' इसीलिए प्रकार ग्रामीण जीवन के पारिवारिक बिम्ब खींचने और उनकी बोली-भाषा से रूबरू कराने में यह उपन्यास अपनी अद्वितीय महत्ता रखता है। 'प्रिया आंखों में आंसू भरे, दामन पकड़कर अनुभव करती रहती है-'मत जाओ प्रिय पूरब देश को मत जाओ...मुझे अन्न-धन नहीं चाहिए, मुझे पति चाहिए...।' 'मैं सेर भर गेहूं पीसकर वर्षभर खाऊंगी।'

संसदीय समिति सदस्य के रूप में बोकारो विजिट

कुंजू फिर एक तान लहरा रहा है-

'सेर भरी गेहुंआबलिस पीसी खइबो
पियऊ जाये न देशों हो...
तोहका पूरुबी बनिजिया, पियूष जाये ना देशों हो।'

(पृ. 36)

नीरू ग्रामीणों और उनकी स्थितियों का जो बयान करता है वह ऐसा बिम्ब पाठक के मन में उभार देता है कि मानो हम उसे यथार्थ रूप में देख रहे हैं, 'नीरू ने किसानों के तड़पते चेहरे, आंसू से भीगी सूनी आंखें, खून से चिपचिपी पीठें, क्षमा याचना करते देखे हैं। अतः आज़ादी न केवल नीरू अपितु किसानों के लिए भी मुक्ति का द्वार बनकर आती है। इस प्रकार संक्षेप में कह सकते हैं कि 'पानी के प्राचीर' की कथावस्तु पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्राम्य-जीवन के परिवेश में सामाजिक जीवन में घुलती राजनीति और उसके दुष्परिणामों का प्रभावशाली निरूपण है। घुटते-पिसते किसान, खानपान, रीति-रिवाज़, रहन-सहन, शादी, त्यौहार आदि को बड़ी गहराई से मिश्रजी ने ग्रामांचलिकता में नये ढंग से अंकित किया है। जुटते-जुड़ते रिश्ते में बदलते जीवन-मूल्यों को भी इसमें साफ-साफ देखा जा सकता है। जीवन-सत्य को पाने के लिए व्यक्ति-व्यथा का रोचक चित्रण उपन्यास की विशेषता है। प्रतिशोध, कुंठा और ज़मींदारी सोच की कुत्सा के साथ कथा के बीच में रोमांच के बिम्ब भी उभरते हैं : दीनदयाल की बेटी शारदा मास्टर से प्रेम करती है। उसकी दृढ़ता क्रूर और निर्दयी पिता को द्रवित कर देती है। पंचायती व्यवस्था सरकारी तंत्र की निर्ममता, रूढ़ियों, कुसंस्कार और भ्रमों के जाल से परे जीवन-सत्य की व्यापक परिवेश में परख इसकी अतिरिक्त विशिष्टता कही जा सकती है।

इसी परिप्रेक्ष्य में 'जल टूटता हुआ' का विवेचन विशेष अर्थवान होगा। जल टूटता हुआ में सन्दर्भ आज़ादी मिलने के बाद का है। उपन्यास के आरम्भ में ही सुग्गन मास्टर के माध्यम से यह सवाल उठता है कि, 'आज़ादी ने क्या दिया हमें?' हमें अर्थात् विशेष रूप से अंचल के पिछड़े किसानों को। कालांतर में आज़ादी की प्राप्ति के पश्चात् गांव की दशा और बेहाल हो जाने पर भारी चिन्ता उभरती है। ध्यातव्य है, आज़ादी से जुड़ी अनेक समस्याओं सामाजिक समता-समानता, छुआछूत, न्याय आदि मूल्य संकटग्रस्त दिखाई देते हैं। महीप सिंह जैसे लोग जो कल तक साम्राज्यवादी सत्ता के मजबूत पाये थे, अपने दमनात्मक रवैये से जनता को शोषित-पीड़ित करते थे, जो अन्याय और अत्याचार के पर्याय बने थे, आज़ादी के बाद वे स्वदेशी बाना धारण कर लेते हैं और आज़ादी के जूझने वाला आम आदमी उपेक्षित, बदहाल और ठगा सा रह जाता है। मिश्रजी ने जम्मू हरिजन के माध्यम से वास्तविक स्वतन्त्रता सेनानियों की उपेक्षा का बेबाक बयान किया है। यह बयान एक देशव्यापी दृश्य यानी मुखौटाधारियों के नकाब को उघारकर साफ-साफ दिखा देता है-जग्गू हरिजन आज़ादी की लड़ाई में तिरंगा लिए घूमा था और मुक्ति का नारा बुलंद किया था किन्तु आज़ादी मिलने पर उसकी स्थिति इतनी दयनीय हो गई है कि वह ग़रीबी रेखा से नीचे ज़िन्दगी गुजारने पर मजबूर है। यह विवशता समूचे दलित समुदाय की आर्थिक-सामाजिक दशा का दिग्दर्शन करता है-'सभी बामन उनके मालिक हैं-ये बामन चाहे बाहर भीख ही क्यों न मांगते हों, मिलों की दरबारी, चपरासगिरी, और कुलीगिरी ही क्यों न करते हों। रिक्शा ही क्यों न हांकते हों, चोरी-डकैती ही क्यों न करते हों, लेकिन गांव में सभी हरिजन के मालिक हैं।'

उपन्यास में पात्रों के चरित्र-चित्रण में लेखक को बड़ी सफलता मिली है। ये सभी पात्र बड़े ही जीवन और प्रभावशाली ढंग से अपने व्यक्तित्व का दर्शाते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, 'यह पात्र टूटते हुए मूल्यों और बढ़ती हुई विसंगतियों को उभारते हैं और परिवर्तन की झंझा के पद सरकारों का आभास देते हैं। परन्तु ये सारे पद-संचार अलक्षित रह जाते-जैसा कि की व्यंग्य-प्रधान आधुनिक उपन्यासों में रह गए हैं, यदि सतीश, उमाकांत, बदली और कुंजी जैसे अविचल दृढ़ चरित्र-पात्र इसमें न आए होते।'

'जल टूटता हुआ' उपन्यास की रचनात्मकता पर विचार करें तो यह आज़ादी के बाद इसमें देशव्यापी मोहभंग का इतिवृत्त है। जिस प्रकार समाज में रीढ़ परम्पराओं, अन्ध निष्ठाओं, दलित-वर्ग के शोषण, भ्रष्टाचार, बैर-वैषम्य जातिवाद, पूंजीवाद के अभिशाप, सामाजिक जीवन में विविध विसंगतियों के

प्रति आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई है उसी प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में विद्रूपताओं और बुराइयों के प्रति विद्रोहमूलक भावनाओं ने जन्म लिया। प्रत्येक वर्ग की असंख्य आशाएं, आकांक्षाएं राजनीतिज्ञों के उदर में समा गईं। जिस तरह की निम्नकोटि की दलबन्दी, सत्ता के प्रति लोलुपता, भाई-भतीजावाद, अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, प्रादेशिकता और जातीयता जैसी अनेक बुराइयों की बाढ़-सी आ गई और उसमें बहने लगे गोताखोर राजनीतिक, उसकी धुंधला किन्तु सच्चा सीन 'जल टूटता हुआ' में देखा जा सकता है। संभवतः इसीलिए विवेकी राय ने लिखा है-'इसमें सन्देह नहीं कि इसमें व्यक्ति यथार्थ 'स्वतन्त्रता' से जुड़ी आशाओं को तार-तार कर देने वाला है। लेकिन इसमें तथ्य चेतना के समानांतर जो मूल्य चेतना है वह पाठक को हताश-निराश करने के बजाय अवमूल्यों के प्रतिवाद का बल प्रदान करती है।'

इसीलिए गांव का अवमूल्यन हुआ है लेकिन मिश्रजी के मन में रचा-बसा गांव आज भी गांव (ही) है, वहां भोलापन, चौपाल, दुःख-दर्द की पारस्परिक अनुभूति, जीवन की सहजता, खेत-खलिहान, गेहूं-धान की बालियां देख किसानों की खुशी, मजदूरों की विवशता और अभावग्रस्त आदमी की घुटती-पिसती जिन्दगी।...यह उपन्यास भले ही गोरखपुर जिले के एक अविकसित गांव (तिवारीपुर) की कथावृत्त हो, लेकिन अपनी समग्रता में यह देश के उन तमाम गावों की बदहाल स्थिति का बयान कर देता है। इसमें समष्टि-परकता है। गांव के परिवेश मेंहदीपुर, सिंहपुर, खानपुर, सोनहचा (ला) आदि गांव भी प्रसंगानुसार केन्द्रीय कथा के सूत्र में बंधे हैं। सारत ग्रामीण जीवन की विविध विसंगतियों, विडम्बनाओं, अभावों, अन्ध-विश्वासों और आधुनिक राजनीति की विकृतियों में सासें ले रहे, जन-जीवन की विषम मनोदशा का धारदार रूपांकन है यह उपन्यास।

'सूखता हुआ तालाब' रामदरश मिश्र का तीसरा और ग्रामांचलीय बोध का महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसका प्रकाशन 1972 में हुआ। उपन्यास अपनी कथात्मकता में गांव की गिरावट और उत्पीड़न को केन्द्र में रखकर रचित है। शिकारपुर और नारायण पुर नामक दो गांवों के सामुदायिक जीवन और उनकी समस्त गतिविधियों को उद्घाटित किया गया है। मिश्रजी के लेखन की विशेषता है कि वे अपने अनुभवों और अनुभूतियों को बड़ी गहराई से वर्णित करते हैं। गांव के झगड़े, अफवाहें, गुटबाजी, (दलबन्दी), हंसी-ठट्ठा, प्रतिद्वन्द्विता, बद-बेईमानी, उठापटक आदि का उपन्यास में यथार्थ चित्रांकन हुआ है। एक-दूसरे की चुगलखोरी कीचड़ उछालना गांववालों की आदत बन गई है। लोग दिन-रात इस जुगत में रहते हैं कि एक-दूसरे को कैसे फँसाएं, उनका किस विधि से नुकसान पहुंचाएं और उनकी पिछली रंजिशों का बदला लें। इस उपन्यास की कहानी से गुज़रते हुआ 'जल टूटता हुआ' की कथा-स्मृति ताजा हो आती है। मगर दोनों में बारीक अन्तर यह है कि 'जल टूटता हुआ' में राजनीतिक परिवेश की विकृतियों के गंदले कण-कण जगह-जगह बिखरे हुए हैं जबकि 'सूखता हुआ तालाब' में गांव के दर्दीले दृश्य बार-बार उभरते हैं। गांव वालों की यह सामान्य सोच होती है एक-दूसरे को नीचा दिखाना। यह जैसे उनका नित्य कर्म बन चुका है। चुगलखोर और शिकायत उनकी रुचि नहीं आदत बन चुकी है जिसका डॉ. मिश्र ने बड़ा ही यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है।

गांव में हो रही लगातार गिरावट को लेकर रह प्रश्न मन-मस्तिष्क में बार-बार उठता है कि आखिर यह गिरावट लोगों को कहाँ ले जाकर छोड़ेगी और किस हाल में वे अपना दैनिक जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होंगे? मिश्रजी बहुत ही ज्वलंत प्रश्न इस उपन्यास के माध्यम से उठाया और सामयिक विमर्श के गवाक्ष खोल दिए हैं। कुछ ऐसी ही दुश्चिन्ता 'जल टूटता हुआ' के सतीश के मन में भी उठती है कि गांव का क्या होगा? और इस तरह की चिन्ता हर उस नागरिक में मन में उपजेगी जो देश का एक सही नागरिक होने के नाते अपनी ज़िम्मेदारी के बारे में सोचेगा आज के गांव की स्थितियां युवा पीढ़ी को तोड़ रही हैं। उनकी मानसिकता में जो बदलाव आया है/आ रहा है वह है शहरीकरण की चकाचौंधी अपसंस्कृति। चमक-दमक। वे भारतीय और भारतीय संस्कृति को दकियानूसी विचारधारा कहकर हंसी उड़ाते हैं। वे यह कतई नहीं समझते हैं कि, संस्कृति ही हमारे जीवन को परिष्कृत, और समृद्ध बनाती है।

डॉ. मिश्र की औपन्यासिक रचनाएं अपनी सभी खामियों से पृथक पुष्ट और परिपक्व हैं। उनमें किंचित व्यंग्य का पुट है वहां भी उनका कथात्मक घनत्व हावी है। यही कारण है कि शिकारपुर का सामूहिक जीवन तमाम जटिलताओं और अन्तर्विरोधों के बावजूद सहज बना हुआ है। यद्यपि वहां के वासियों में रूढ़िगत सामाजिक मान्यताओं, भूत-प्रेतों की रहस्यमयता और अन्धविश्वास कूट-कूट कर भरा हुआ है। इसका कारण हम शिक्षा का अभाव या दकियानूसी सोच कह सकते हैं। शिक्षा से वंचित शिकारपुर के गांववासी अन्धकारमय जीवन जी रहे हैं। अंधेरे (अज्ञानता) से घिरे होने के कारण उनका समान्र जीवन भी दूभर हो गया है। यही हाल नारायणपुर के लोगों का भी है। पर चोरी-छिपे किए गए निन्दनीय कारनामों को सारे गांव में वे हवा की तरह प्रसारित करते हैं। दलगत सोच कै कारण वे एक-दूसरे की कमियां या कुत्सित कामों की पोल खोलने में उन्हें देरी नहीं लगती। कहने का तात्पर्य ये है कि वहां के लोग दोहरे-दोमुंहे चरित्र के हैं। दिखावे के लिए भाईचारा का नाटक करते हैं।

समग्रता में कह सकते हैं कि सुप्रसिद्ध कथाकार डॉ. रामदरश मिश्र के बहुआयामी व्यक्तित्व की तरह उनके ग्रामांचलिक उपन्यास भी बहुकोणीय हैं उनका विरल व्यक्तित्व एवं कृतित्व गांव की सोंधी मांटी की गन्ध से महकता है। उनका बचपन गांव में गुज़रा लेकिन शिक्षा एवं जीविका के लिए अहमदाबाद, दिल्ली को विशेष रूप से कर्मभूमि बनाया। मगर नगर-महानगर के ठेलमठेल में भी वे ग्रामीण संस्कारों को नहीं भूले बल्कि साहित्य के माध्यम से उन्हें न केवल सुरक्षित रखा अपितु साहित्य की अन्य विधाओं-गीत, ग़ज़ल, कविता, कहानी, आत्मकथात्मक-संस्मरण, निबन्ध आदि में भी अपने गंवई परिवेश को पिरोते रहे।

अन्दर ही अन्दर अनेक कुत्सित गतिविधियां करते हैं। जाति-पांति, छुआछूत की मानसिकता रखने वाले शिवलाल और धर्मेंद्र प्रसाद बांटते वक्त अछूत बालक को स्पर्श तक नहीं करते। इस तरह के ढोंगी और तिकड़मबाज लोगों के मुख पर से उच्चता का नकाब नोंचकर लेखक उनका घृणित चेहरा सबको दिखा देता है। ऐसी अन्य कथाएं भी हैं उपन्यास की कथावस्तु का अहम् हिस्सा हैं मैं उनका जिक्र न कर मिश्रजी की उपन्यास-कला और उनके कुछ अन्य उपन्यासों पर संक्षिप्त चर्चा करना लेख की पूर्णता की दृष्टि से सर्वथा समीचीन समझता हूं।

शिल्प-कला की दृष्टि से मिश्रजी के उपन्यास अपनी नवीनता लिए हैं। कथ्य में देशज बोलियों और शब्दों के प्रयोग ग्राम्य-बोध के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। इनके उपन्यासों में शैली-प्रयोग अपने ढंग से हुआ है यानी इनका उपन्यासकार कथा-पात्र, घटना और वातावरण के सम्बन्ध में स्वतः कहता चलता है। किसी पात्र के चरित्र, रहन-सहन या निजी जीवन के बारे में किसी अन्य से स्पष्टीकरण न कराकर पात्र-चरित्र के द्वारा कहलवा देते हैं। यह ख़ास खूबी अधिक कथाकारों की कृतियों में नहीं मिलती। मिश्रजी का दृष्टिकोण साफ है। वह ग्रामांचलीय बोध को जनजीवन की भाषा-भाव में अभिव्यक्त करते चलते हैं ताकि परम्परायुक्त अंचलीय जीवन का सम्पूर्ण परिवेश चित्रित हो। इनमें उपर्युक्त तीनों उपन्यास हों अथवा 'अपने लोग', जिसमें नीरू संग निर्लज्जता की तलाश है, 'बिना दरवाज़े का मकान', में दीपा की ताई बस में सफर करते हुए मर्दों के स्वभाव और प्रकृति से अवगत कराते हैं कहती है, 'इस पुरुष सत्तात्मक समाज में अपना अस्तित्व बचाए रखने के लिए हिम्मत की आवश्यकता होती है। उसकी बातें सुनकर दीपा कहती है, हमारी जाति की औरतें अगर बिकेंगी तो गरीबी की मार से बिकेंगी और आपके यहां की औरतें बिकती हैं खाली शौक पूरा करने के लिए। ग़रीबी से बिकना व्यभिचार नहीं है बीबी जी, शौकिया मर्द की गोद बदलते रहना व्यभिचार है।' इस निर्दयी समाज में मानवता और भावुकता नाम की चीज़ नहीं रह गई है। इस तरह की आर्थिक किल्लत सामाजिक नारी-जीवन के दृश्य हमें 'दूसरा घर', 'थकी हुई सुबह' में भी देखने को मिलते हैं। मिसाल के तौर पर मिश्रजी का एक कथन कौंधता है। 'भारतीय नारी परम्परागत दासता से मुक्त होना चाहती है। दासता के रूप में उसे दीन-हीन परावलम्बी जीवन जीना पड़ता है। पुरुष सापेक्षता में ही जीवन के तमाम सम्बन्धों, मूल्यों और धार्मिक, सामाजिक आस्थाओं को ढोना पड़ता है वह उनसे मुक्त होना चाहती है और पुरुष के समान सम्मानपूर्वक जीना चाहती है।" इस प्रकार मिश्र जी ने अपने उपन्यासों में नारी-मुक्ति की अवधारणा को पूरी शिद्दत से उद्घाटित किया है।

गांव में अशिक्षा, अज्ञानता और रूढ़िवादिता के कारण भारतीय नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। उसका अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था। पुरुष की दया पर निर्भर थी, घर की चाहारदीवारी में बन्द वह पीड़ा और घुटन का जीवन व्यतीत कर रही थी। नारी को सामाजिक सम्मान, पुरुष की दासता और रूढ़िवादिता से मुक्ति, अधिकारों की समस्या को राजा राममोहन राय, अरविन्द, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी और प्रेमचन्द ने उठाया। उस फेहरिस्त में डॉ. रादरश मिश्र का नाम भी जुड़ गया है जिन्होंने माना कि नारी को सम्पूर्ण अधिकार मिले बिना मानवजाति का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता। उनके उपन्यास 'थकी हुई सुबह' की ये पंक्तियां नारी नियति को चित्रित करने के लिए काफी हैं, अभी भी नारी प्राकृतिक कारणों से कमजोर मानी जाती है। सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से भी परम्परागत विषमताओं व विडम्बनाओं को झेलते हुए अभिशप्त सी दिखाई पड़ती है। बाप के घर से लेकर ससुराल तक और घर से लेकर समाज तक अभी भी वह दोयम दर्ज़े की नागरिक मानी जाती है। इसलिए अभी उसके संघर्ष के लिए काफी कुछ बचा है। यानी अपनी अस्मिता और सम्मानपूर्ण जीवन यापन के लिए अभी भी एक लम्बी लड़ाई स्त्री को लड़नी है।' चूंकि मिश्र जी के उपन्यासों के नाम भी व्यंजनात्मक हैं इसलिए उनके शीर्षक से ही उनके कथ्य-कथन जोकि समाज की थालियों की भांति इन विविध उपन्यासों में निहित हैं अपनी उपादेयता को प्रमाणित करते हैं। उपन्यास के सभी पात्र हमारे जीवन के क़रीबी माने जा सकते हैं।

समग्रता में कह सकते हैं कि सुप्रसिद्ध कथाकार डॉ. रामदरश मिश्र के बहुआयामी व्यक्तित्व की तरह उनके उपन्यास ग्रामांचलिक उपन्यास भी बहुकोणीय हैं उनका विरल व्यक्तित्व एवं कृतित्व गांव की सोंधी मांटी की गन्ध से महकता है। उनका बचपन गांव में गुज़रा लेकिन शिक्षा एवं जीविका के लिए अहमदाबाद, दिल्ली को विशेष रूप से कर्मभूमि बनाया। मगर नगर-महानगर के ठेलमठेल में भी वे ग्रामीण संस्कारों को नहीं भूले बल्कि साहित्य के माध्यम से उन्हें न केवल सुरक्षित रखा अपितु साहित्य कि अन्य विधाओं-गीत, गज़ल, कविता, कहानी, आत्मकथात्मक- संस्मरण, निबन्ध आदि में भी अपने गंवई परिवेश को पिरोते रहे। आंचलिक कथाकार किसी भी अंचल को केन्द्रित करता हुआ वहाँ के जीवन, परिवेश, संस्कृति लोकपरम्परा को इस कला-कौशल से शिल्प-बद्ध कर देता है कि उसमें जीवन्तता का संचार होता है और वह अपने यथार्थ में प्रामाणिकता का अहसास करता है। इसमें डॉ. मिश्र को महारत हासिल है। अतः बीसवीं सदी के अमृतकाल में सदी के ''अमृत-पुरुष'' की अमरगाथा का साक्ष्य पेश करते हैं उनके ये ग्रामांचलीय उपन्यास। ◆

पता : 'साहित्य कुटीर' साइट-2/44, विकासपुरी,
नयी दिल्ली-18
मो. : 9289440642

साहित्य का अव्यय आलोक है मिश्र जी का रचना संसार

चंद्रकला त्रिपाठी

स्वाधीन भारत के उस दौर विशेष में संवेदना, विषय वस्तु, भाषा और शिल्प के साथ-साथ आधुनिक सरोकारों से गहरे जवाबदेह संबंध के साथ विकसित होती हुई रचनात्मक चेतना का स्वरूप उनके रचना संसार में विकसित होता हुआ दिखाई देता है।

रामदरश मिश्र के रचना लोक में हमारे इस समकाल की समग्रता का रंग दिखाई देता है। इसका विस्तार, इसकी गहराई और इसके कई आयाम भी यहां दर्ज हुए मिलेंगे। अपने आप में यह बहुत महत्वपूर्ण बात है। साहित्य के विविध आंदोलनों, प्रवृत्तियों, संवादों और विवादों का भी वस्तुपरक साक्ष्य संदर्भ उनके लेखन और साक्षात्कारों में विश्वसनीय ढंग से उपस्थित है।

स्वाधीन भारत के उस दौर विशेष में संवेदना, विषय वस्तु, भाषा और शिल्प के साथ-साथ आधुनिक सरोकारों से गहरे जवाबदेह संबंध के साथ विकसित होती हुई रचनात्मक चेतना का स्वरुप उनके रचना संसार में विकसित होता हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार उनका रचना समय छायावादोत्तर दौर की हलचल के थिराने के साथ-साथ स्वाधीन भारत में स्वप्न और यथार्थ की जुगलबंदी के नए प्रस्थान का समय भी है। यह स्वाधीन भारत का छठा दशक है जिसमें नई रचनाशीलता आकार ले रही थी। इस पीढ़ी के पास स्वाधीनता की संघर्ष चेतना और गहन इतिहास विवेक से संपृक्त मज़बूत साहित्यिक विरासत थी। साहित्य में यथार्थबोध, उसके भीतर सक्रिय भविष्य दृष्टि, भारतीय जन जीवन की विविधता और लोकचेतना से गहरे जुड़ाव का वृहत्तर संदर्भ अपनी मजबूत शुरुआत ले रहा था। देखा जाए तो इसी के आसपास साहित्य में एक प्रवृत्ति शहरी मध्यवर्ग के खंडित निर्वासित अनुभवों पर केंद्रित मिलती है। इसमें भी ख़ास तरीके का नयापन देखा गया, साथ ही उस विशेष ऐतिहासिक समय में गांव और कस्बों से टूट कर शहर और महानगर में आए हुए मनुष्यों की स्थिति और नियति के उद्घाटन का यथार्थ सामने आया। इसे लेकर जो आत्मपरकता सामने आई वह छायावादी आत्मपरकता यानी उस 'मैं शैली' से बहुत भिन्न थी। यहां घटित होते अभ्यांतर में व्यक्ति और समाज के बीच का द्वन्द्व जटिल और व्यक्ति केंद्रित दिखाई दिया था। प्रयोगवाद की आज़माइशों से निकल

शताब्दी के सहयात्री समारोह में ममता कालिया, स्मिता मिश्र के साथ

कर नयी कविता और नयी कहानी में यह अनुभव भिन्न मुहावरे में ढलता दिखाई दिया। समाज के प्रति भिन्न ढंग की संवेदनशीलता जिस आत्मसजगता का निर्माण कर रही थी उसका एक प्रतिफल वह आत्मनिर्वासन भी था जिसकी वैचारिक सारणी अस्तित्ववादी दर्शन से मिलती-जुलती थी। समाज और सामाजिकता से गहरे अपरिचय से मुकाबले का यह संघर्ष उस निम्नमध्यवर्गीय व्यक्तित्व को अपने से अलग छिटका ही नहीं रहा था बल्कि एक असुरक्षा और त्रास में बंद कर रहा था। एक घातक निस्सहायता थी जो पूरी दुनिया में औद्योगिक पूंजीवादी प्रवृत्तियों का बायप्रोडक्ट थी और भारत में भी भारीपन के साथ घटित हो रही थी। यहां परिस्थितियों के बेगानेपन के चलते भटके हुए से मनुष्य ने विकट बेदखली का अनुभव किया होगा। इन दबावों ने उसे उस निजता में बंद करना शुरु किया होगा जिसमें सामाजिक जुड़ाव और व्याप्ति चाहने वाली सहज आकांक्षाएं सिकुड़ती गई होंगी। यह संदर्भ तेज़ बदलावों में था। ज़ाहिर है कि इससे सामना करने वाले संघर्ष को शक्ति देने वाली जमीन उससे दूर होती जा रही थी। इस संघर्ष के लिए अपनी जड़ों के पास उस पराएपन से जूझने भर नमी तो ज़रुरी थी।

यह लगभग नहीं हो पाया था और हुआ भी तो एक नई धज में हुआ। इसके भीतर मौलिक होने की चेष्टाएं विश्व साहित्य के साहित्यिक नवाचार से खुराक ले रही थीं। यहां बढ़ी-चढ़ी विचारोत्तेजकता का आलम था। साहित्य में आंदोलन अपने मुद्दे तय कर रहे थे। बहसें थीं, संवाद थे, तालमेल वाले साझा उपक्रम भी हुए और ये सब इतिहास में दर्ज़ भी हुए।।

ख़ासकर नयी कविता और उसी तर्ज़ पर नयी कहानी के दौर में सीमित वैयक्तिक अनुभवों के संघनन वाले इस यथार्थ के लिए मुहावरा प्रचलित हुआ था, भोगा हुआ यथार्थ। अनुभव के ये रंग और ये प्रवृत्तियां एक प्रकार से उत्तेजक नएपन में परिभाषित हो रही थीं। आलोचना भी इसे अपेक्षित वस्तुपरक नजरिए के साथ न पहचान कर इसके अनुभववादी असर में बात कर रही थी। यह एक लहर थी, दृष्टि पर छा जाने वाली यह प्रवृत्ति लेखक पाठक और आलोचक की तटस्थता को अपनी ओर घुमा चुकी थी। उस ऐतिहासिक दौर में शहरीकरण से उभरती प्रवृत्तियों से टकराव को देखना और परखना भी प्रभावित हुआ। विसंगति बोध, विडंबना बोध, आत्मनिर्वासन आदि आलोचना में शामिल हुए मूल्य थे। ग्राम्यकथा पिछड़ी और शहर कथा अगड़ी जैसे तत्व दृष्टि में शामिल हो रहे थे। यह जैसे एक विभाजन की तरह ही था जिसने उस संक्रांति काल के भीतर जारी परिवर्तन को वस्तुपरक परिप्रेक्ष्य में समझने नहीं दिया। स्वाधीन भारत के गांव अब नए उभरते शहरों का उपनिवेश बन गए और ऐसे इलाकों से आए मनुष्य शहरों के अजनबीपन की चपेट में आए अपने दिल दिमाग की तकलीफ़ों की खोह में गहरे और गहरे उतर रहे थे। इनके संघर्ष में अपनी जड़ों की स्मृति कम थी। इसी देश-काल के कई रचनाकारों में जड़ों की और ज़मीन की लगन अपनी नई करवट भी खोज रही थी। दूसरी ओर एक प्रवृत्ति वैश्विक बौद्धिकता में मौजूद सृजन के विचारोत्तेजक आयामों से करीबी संबंध भी देख रही थी। इस तरह नव्यता के उभार की कई स्थितियां भी वहां बनती गईं मगर जिसे अपनी ज़मीन की तासीर के साथ रहते हुए परिवर्तित जीवनानुभवों से टकराहट भरे संबंध के साथ गहरे और व्यापक संदर्भों में रचनाशील होना कहते हैं, वह स्थिति तो प्रभावित हुई थी। इस तरह नयी कविता के दौर की ये दो रचनात्मक ज़मीने आपसी संवाद या अर्न्तक्रिया के बिना विचित्र ढंग से समानांतर सी चलीं। जातीय ज़मीन से निकटता के साथ विकसित होने वाले स्वर में आधुनिकता का बौद्धिक आयासों वाला स्वर नहीं था। तो एक विभेद सा वहां दिखाई देता है। यही कारण है कि अस्सी के दशक में लगभग मुनादी पूर्वक जड़ों की ओर लौटने की बात सामने आई थी।

स्वाधीन भारत के उस दौर विशेष में संवेदना, विषय वस्तु, भाषा और शिल्प के साथ-साथ आधुनिक सरोकारों से गहरे जवाबदेह संबंध के साथ विकसित होती हुई रचनात्मक चेतना का स्वरूप उनके रचना संसार में विकसित होता हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार उनका रचना समय छायावादोत्तर दौर की हलचल के थिराने के साथ साथ स्वाधीन भारत में स्वप्न और यथार्थ की जुगलबंदी के नए प्रस्थान का समय भी है। यह स्वाधीन भारत का छठा दशक है जिसमें नई रचनाशीलता आकार ले रही थी।

यह हलचल उस समय के काव्य परिदृश्य में नुमाया हुई थी। केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, नागार्जुन जैसे कवियों की कविता इस प्रवृत्ति का पक्ष बन कर सामने आई, कुछ इस तरह कि जैसे किसी खोई हुई चीज़ को खोज लिया गया है। मज़ेदार है कि यह संवेदना नयी कविता के कवियों में देशज का एक कुलीन सा मुहावरा रच कर विलस रही थी मगर जनपदीयता के इस खांटी लोकरंग से उसमें बड़ा अंतर था।

इस बड़ी भूमिका को रामदरश मिश्र जी के रचनालोक के संदर्भ में उचारने का मेरा अभिप्राय शायद समझा जा सके। रामदरश मिश्र को पढ़ते हुए उनके रचनात्मक विकास में जनपदीय जीवनानुभवों का जो सातत्य रहा है और जिस विवेक के साथ उन्होंने शहरी करण ही नहीं बल्कि उत्तरआधुनिक विमर्श से उभरी प्रवृत्तियों से टकराते हुए अपनी रचनात्मक निजता अर्जित की है, उसका स्वभाव हमेशा बहुत ज़मीनी और वृहत्तर लोक से संपृक्त है। यह इसलिए भी संभव हुआ है कि इस रचनाकार के विपुल लेखन में आधुनिक हिंदी साहित्य की कई पीढ़ियों के साहचर्य का रंग है। ये सारे रंग साथ बहते मिले हैं, साहित्य के साझा संसार की गति के रुप में ही ये निखरते गए हैं। इनमें जो विशिष्ट है, वह है मनुष्य पर उनका विश्वास। गहरे उतरेंगे तो यह मिलेगा कि उनके रचनालोक के ये किरदार अनोखे ढ़ंग से जीवन पर अडिग विश्वास की निर्मितियां हैं। जीवन की सकारात्मकता की अप्रतिहत भाव धारा ऐसे सहज योग भाव में है कि दुनिया पर मनुष्य का विश्वास खंडित नहीं होता। इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके रचे हुए संसार में कल्पित किस्म की अच्छाइयां काबिज़ हैं, बल्कि वहां मनुष्य में क्षरण के विरुद्ध संघर्ष में कायम रहने की दृढ़ता है। यह बहुत अविचलित रंग में है। यहां से मिश्र जी ने जीवन की विसंगतियों को बहुत गहरी और बेधक नजर से देखा है। समकालीन यथार्थ के भीतर मौजूद तमाम जटिलताओं को देखा है और उनके कारण विघटित हुए

जीवन मूल्यों को भी पहचाना है। इस तरह घिरी हुई स्थिति परिस्थिति को वे मनुष्य की यातना से ऊपर मनुष्यता के क्षरण की प्रवृत्तियों में पहचानते हैं। यहां निहत्थेपन की सच्चाइयां कम नहीं हैं, मगर इस कंडीशनिंग से टकराने और जूझने के उसके सत्य को वे अखंडित रुप में रचना चाहते रहे हैं। मनुष्य और मनुष्यता के जय का यह मूल्य उनके लेखक के भीतर की उस गमक को बचाए रखता है जिसमें कोमल सी मानवीय उदासी और भरा-पूरा सा अकेलापन है, जो ख़ासकर हमें उनकी कविताओं में रचा हुआ मिल जाता है।

नामवर सिंह के साथ

रामदरश मिश्र की रचनाशीलता के मूल्यांकन के संदर्भ में मैंने यह लक्ष्य किया था कि उनकी रचनात्मक चेतना के भीतर मौजूद मानवीय अडिगता का गहरा संबंध उस किसानी चेतना से है जो गांव ज्वार के धूसर में हमेशा रची-बसी रही है। किसान चेतना की ऐसी ताकत का स्रोत क्या बताना पड़ेगा। किसान वह है जो प्रकृति के सारे सम-विषम से जूझ कर बना है। ऊसर हो, उर्वर हो, बाढ़ सूखा या प्रलय के रंग की आंधियां हों, बरसातें हों, इन सबसे जूझ कर वह ऐसे निखर कर निकलता है जैसे अगले साफ दिन का सूरज निकलता है। इस सूरज से और इस संघर्ष चेतना से नगरीयता से आक्रांत नव बुद्धिजीवियों का संग साथ छूटता गया था इसीलिए उनकी रचनाशीलता प्रतिकूलताओं के विरुद्ध सीधी टकराहट में नहीं हुई। मगर रामदरश मिश्र के यहां इस सूरज के कई रंग हुए। जिन्हें गांव ज्वार के जीवन हठ का पता नहीं था, उन्होंने एतराज किया कि यह काल्पनिक है, मगर मनुष्य लड़ने की क्षमता का अकूत भंडार है और वह हर अवरुद्ध से निकल लेता है। उसके पास जीवन रस से तरल भाषा है। इसे आजमाए तो कहीं अकेला न पड़े। हां, यह जरुर होगा कि उसकी यह भाषा अपने पुरखों से बहुत मिलती जुलती होगी और उस पर अतिरिक्त वाली पॉलिश न होगी।

रामदरश मिश्र ने सबसे पहले कविताएं लिखीं। नयी संवेदना के उभार को समझने की संवेदनशीलता थी उनमें मगर जो सरल अभिव्यक्ति की तरह उनमें स्वतः जनमा था, उससे किनारा नहीं किया था क्योंकि वही उनकी अपनी सहज ज़मीन थी।

कविताएं लिखीं, कहानियां भी बाकायदा सातवें दशक में सामने आने लगी थीं। जीवन में जय पराजय, नज़दीकी और दूरी वाले अनुभव हिला भी रहे थे। इसे अधिक जानना हो तो उनकी आत्मकथा 'जहां मैं खड़ा हूं' और 'टूटते बनते दिन' पढ़ें। तो जो परिस्थितियां थीं वे नयी कहानी वाले मुहावरों से बांध देने में सक्षम थीं और जरा मरा उदासी भरे असर का हिसाब तो दिखाई दिया, मगर शीघ्र ही जिजीविषा का उन्नत स्वर इसके भीतर से उभरता दिखाई देने लगा। प्रतिकूलताएं कमज़ोर पड़ती दिखीं, और मानवीय सामाजिकता का आधार अपनी शक्ति में दिखाई पड़ता चला गया। एक प्रकार से उनके साहित्य का यही मूल स्वर बना।

रामदरश मिश्र की एक कहानी है 'चिट्ठियों के बीच'। यह कहानी उनके पहले कहानी संग्रह 'खाली घर' में शामिल है। इसमें मुख्य किरदार हैं डॉ. देव। यह डॉ. देव बदले हुए नामों से गांव और शहर की टकराहटों से उपजे विकट द्वंद्व के साथ बदले हुए नामों से तमाम कथाओं और कविताओं में भी मिलता है। कविताओं में यह वाचक के भीतर दार्शनिक हुआ सा मिलता है। तो उस कहानी में पहली बार बड़े ठोस ढंग से गांव के आदमी की पीठ पर लदा उसका परिवार और शहर में उसके कैरियर की जोखिम और चुनौतियां एक दूसरे को जैसे पराजित करने वाली चढ़ा ऊपरी में दिखाई देती हैं।

रामदरश मिश्र की एक कहानी है 'चिट्ठियों के बीच'। यह कहानी उनके पहले कहानी संग्रह 'खाली घर' में शामिल है। इसमें मुख्य किरदार हैं डॉ. देव। यह डॉ. देव बदले हुए नामों से गांव और शहर की टकराहटों से उपजे विकट द्वंद्व के साथ बदले हुए नामों से तमाम कथाओं और कविताओं में भी मिलता है। कविताओं में यह वाचक के भीतर दार्शनिक हुआ सा मिलता है। तो उस कहानी में पहली बार बड़े ठोस ढ़ंग से गांव के आदमी की पीठ पर लदा उसका परिवार और शहर में उसके कैरियर की जोखिम और चुनौतियां एक दूसरे को जैसे पराजित करने वाली चढ़ा ऊपरी में दिखाई देती हैं।

यह जो देव है, शहर में घुल कर गांव भूल जाने वाले मन का नहीं हो पाता।

गांव से आई उदास खबरें उसे हिला देती हैं।
किसी का लिखा अक्सर याद आता है कि
'गांव से शहर को आती है एक पगडंडी

तुम उसका हाल सुनोगे मियां तो रो दोगे'
रामदरश मिश्र ने उसका हाल बार-बार लिखा।

अपनी ग़ज़ल में लिखा है उन्होंने कि

'जमी गांव की साथ लेकर चला था
उगा उसमें कोई शहर धीरे धीरे'

और इस शहर में उनका अपना पता कुछ ऐसा हुआ कि -

'चारों ओर कांटों का जंगल है
और भीतर कहीं डरी हुई लता है।
जाओ, चले जाओ
यही उसके घर का पता है'

डॉ. विवेकी राय ने रामदरश मिश्र को ग्राम बोध का कथाकार कहा है। आधुनिक भारत की छवि से जिस प्रकार गांव ओझल और बेदखल किए गए और शहरीकरण के विस्तार ने भारतीय जीवन के जातीय आधार की समग्रता को जैसे प्रभावित किया उसने साहित्य को भी काफी हद तक जातीयता का शहरी उपनिवेशन किया। यह घातक अनुकूलन था जिसके परिणामों को नवें दशक में समझा भी गया। इसकी शुरुआत एक प्रकार से रेणु को आंचलिक लेखक ठहराने से ही हो गई थी। गांव आधारित यथार्थ बोध की गतिशीलता लिखने वाले कई रचनाकारों में आंचलिक समझ लिए जाने और इसी तरह सीमित समझ लिए जाने का हिसाब किताब था। शिव प्रसाद सिंह, मार्कंडेय आदि नए जटिल जीवनानुभवों के ग्रामीण परिप्रेक्ष्य को लिख रहे थे। अमरकांत भारतीय कस्बाई समाज की मध्यिम अपरिवर्तनीयता को उधेड़ रहे थे मगर इनमें आधुनिकतावादी मुहावरों की गुंजाइश नहीं थी। तो यह एक विरोधाभासी माहौल था जिसके भीतर अपनी ही ज़मीन की उपेक्षा चल रही थी।

रामदरश मिश्र उन दिनों न केवल अपने गांव ज्वार से दूर थे बल्कि अपने गांव के नज़दीक वाले शहरों से भी दूर थे। उसी समय दिल्ली बड़ा साहित्यिक केंद्र बन कर उभरी। उसमें पॉलिटिक्स भी उभरी। उसके परिणाम भी दूर तक गए।

रामदरश मिश्र की कलम ने भारत के बदलते यथार्थ की रूह को उत्तर भारत से दूर व्यावसायिक बदलावों के बावजूद खांटी जातीयता बरतने वाले गुजरात में महसूस किया और भारतीयता की नई कौंध उनमें समाहित हुई। इसी ज़मीन पर पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ, जैसे कई उपन्यासों के बाद उन्होंने दूसरा घर जैसा उपन्यास लिखा।

कई उपन्यास, कई-कई कहानियां और विपुल कविताओं के साथ साथ संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, निबंध और आलोचना में सक्रिय रहे रामदरश मिश्र के लिए लेखन ही जीवन बना रहा।

जीवन के विविध रंग संग्रहीत हुए रुप में उनकी साहित्यिक विधाओं में आए हैं। उनमें अनुभव हैं और एक गहन मानवीय नज़रिया साथ-साथ है।

समय की बेरुखी पर उन्होंने खूब लिखा है। एक उदासी वहां कांपती मिलती है और हमारे भीतर भी उतर जाती है कि समय बहुत बदल गया है। ऐसे समय हम अपना सबके सुख दुःख में घुला हुआ मन कहां रखें! ◆

पता : प्लॉट नं.-59 लेन नं.-8 ई, महामनापुरी कॉलोनी,
एक्सटेंशन, पोस्ट-बी.एच.यू., वाराणसी-221085
मो. : 9415618813

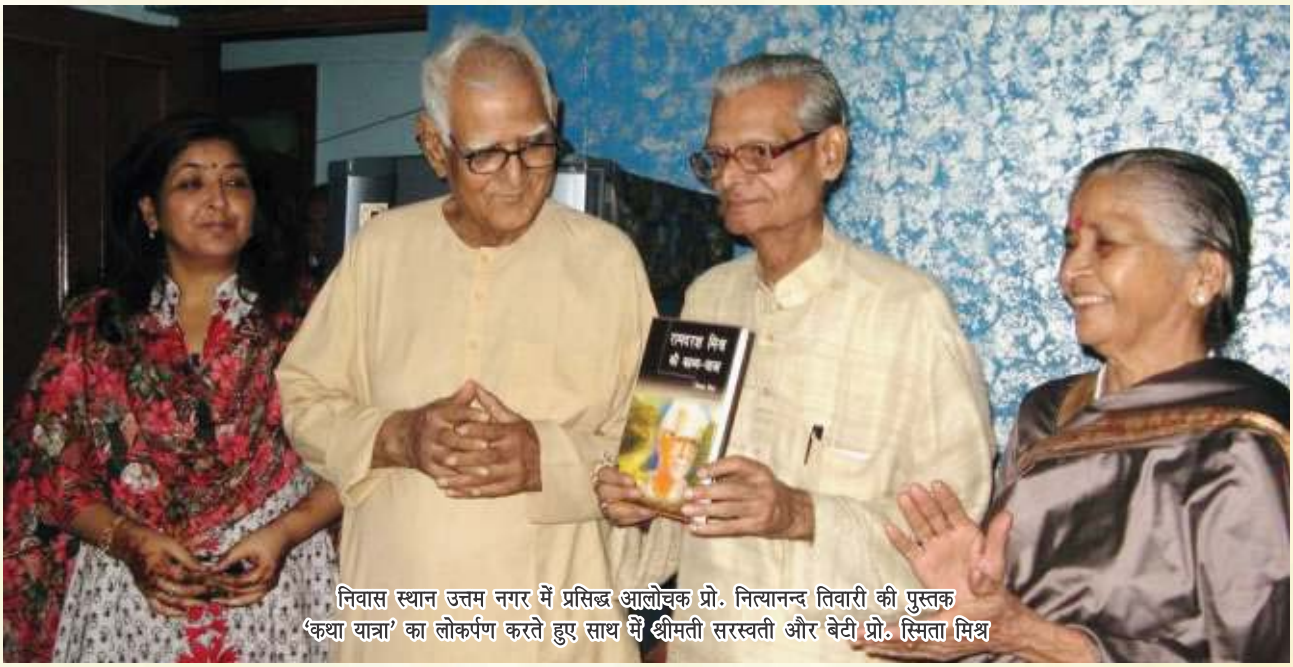

निवास स्थान उत्तम नगर में प्रसिद्ध आलोचक प्रो. नित्यानन्द तिवारी की पुस्तक 'कथा यात्रा' का लोकर्पण करते हुए साथ में श्रीमती सरस्वती और बेटी प्रो. स्मिता मिश्र

सर्जना के साथ चलते रहने से जीवन चलता रहता है

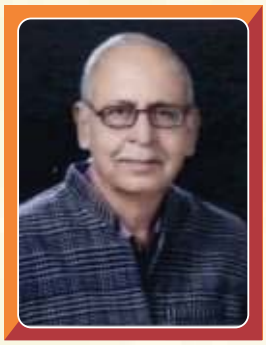

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

उपन्यास विधा से जहाँ अपने समय और समाज का प्रामाणिक दस्तावेज़ बनने की अपेक्षा की गयी है, वहीं ई.एम. फोस्टर जैसे समीक्षकों का विचार था कि 'उपन्यास' सबसे बड़ा काम यह करते हैं कि वे चरित्रों के अन्तर्जगत का उद्घाटन करते हैं।

एक उपन्यासकार के रूप में रामदरश मिश्र जी परिमाण और गुणवत्ता- दोनों दृष्टियों से प्रेमचंद की परिवेश-सजग और मूल्यनिष्ठ परम्परा को अपनी प्रतिभा से समृद्ध करते दिखाई देते हैं। उनके बड़े आकार के उपन्यासों- 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'अपने लोग' को ठोस उपलब्धियों के रूप में रेखांकित किया गया है। डॉ. प्रकाश मनु के विचार में 'ये केवल रामदरश मिश्र के ही नहीं, बल्कि हिन्दी वांड्मय के तीन बड़े और खरे उपन्यास हैं, जिनसे हिन्दी उपन्यास का 'संसार' समृद्ध होता है और उसमें बहुत कुछ नया और मूल्यवान जुड़ता है।' लेकिन उनके 'रात का सफर', 'दूसरा घर', 'आकाश की छत', 'बिना दरवाजे का मकान', 'थकी हुई सुबह' आदि उपन्यास भी जनधर्मी अंतर्वस्तु, जुझारू चरित्र और परिवर्तन-प्रतिश्रुत 'विजन' के फलस्वरूप ध्यान आकर्षित करते हैं।

अपनी रचनाशीलता के उत्तरपर्व में मिश्र जी ने उपन्यास कम लिखे। डॉ. ओम निश्चल के साथ संवाद में उनकी स्वीकारोक्ति है कि 'इधर उपन्यास लिखने का मेरा मन नहीं रहा। चूँकि जानता हूँ कि उपन्यास अपनी निर्मीति के लिए बहुत शक्ति और संयम की माँग करता है किन्तु इधर उपन्यास की लम्बी दौड़ दौड़ने की न तो मेरी इच्छा रही और न शक्ति'। फिर भी गत दो दशकों में 'परिवार', 'बचपन भास्कर का', 'एक बचपन यह भी' और 'एक था कलाकार' लघु उपन्यास छपे हैं और 'जीवन के निज का पुनरावलोकन' की दृष्टि से आश्वस्त करते हैं। स्वयं मिश्र जी ने माना है कि इनकी वस्तु विशिष्ट और मूल्यवान है। यह अवश्य है कि पूर्ववर्ती उपन्यासों के सरोकार, मूल्य, भाषा, कहन, विन्यास न्यूनाधिक इनमें भी जहाँ-तहाँ संश्लिष्ट हैं। इन उपन्यासों में स्मृति का हस्तक्षेप सघन है। स्मृति कहीं 'दंश' है तो कहीं संजीवनी भी।

उपन्यास विधा से जहाँ अपने समय और समाज का प्रामाणिक दस्तावेज़ बनने की अपेक्षा की गयी है, वहीं ई.एम. फोर्स्टर जैसे समीक्षकों का विचार था कि 'उपन्यास' सबसे बड़ा काम यह करते हैं कि वे चरित्रों के अन्तर्जगत् का उद्घाटन करते हैं। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'परिवार' को पढ़ते हुए जहाँ गाँव-कस्बे का संक्रमणशील यथार्थ ध्यान आकर्षित करता है, वहीं इस उपन्यास के दो प्रमुख चरित्रों-बाबूजी और सत्या के अंतर्जगत् की मनःस्थितियों-विशेषतः आत्मसंघर्ष से जुड़ी तकलीफदेह अनुभूतियों की सहज उपस्थिति ने भी इस उपन्यास को महत्वपूर्ण बनाया है।

उपन्यास में स्थूल अर्थ में काशीनाथ जी के परिवार की घटनाएँ, संदर्भ और समस्याएँ हैं। भारतीय गाँवों और कस्बों में 'परिवार' संस्था अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही है। संयुक्त परिवार तो प्रेमचंद के जमाने में ही विघटित हो चला था, काशीनाथ जी जैसे लोग उसके मलबे को एक इमारत की शक्ल देने के प्रयास में टूटते-बिखरते रहते हैं। लेकिन उपन्यास का 'विजन' परिवार नाम की संस्था के बिखराव का शोक मनाने के बजाय परिवार को एक व्यापक और खुला रूप देने की माँग करता है। अपराधी भाई, स्वार्थी परिजन, लगभग विक्षिप्त पुत्र को झेलते काशीनाथ की अपनी समस्याएँ ही उन्हें तोड़ देने के लिए पर्याप्त हैं, फिर वे अपने गाँव के भोला साहु तथा अन्य लोगों के लिए स्वयं को संकट में क्यों डालते हैं?

इसलिए कि उनके परिवार की अवधारणा संकुचित नहीं हैं, उन्होंने अपने परिवार को बड़ा बनाया है - 'इतने गरीब असहाय और बेचारे हैं लोग कि इन्हें देखते ही जी भर आता है और ये सभी लोग हमारे परिवार के अपने लगते हैं....हम लोग भी वहाँ जाते हैं तो यह गरीब बेचारे लोग प्यार से बिछ जाते हैं और इनके जीवन की व्यथा हमारी व्यथा बनकर हमारे भीतर समा जाती है।' जाहिर है, उपन्यासकार के लिए परिवार कुछ रक्त संबंधों का समीकरण भर नहीं है आपसी सद्भाव एक दूसरे का दुःख बाँटने की सदाशयता और विपत्ति से जूझने के लिए एकजुट होने की जरूरत भी है। इसी तरह का मूल्यबोध 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अर्थव्याप्ति तक पहुँचता है और दुनियाभर के शोषितों-उत्पीड़ितों के एक हो जाने का आह्वान भी इसमें व्यंजित होता है। रामदरश जी की रचनाओं की बुनावट में घर-परिवार की बराबर उपस्थिति है और इनके होने अर्थ हैं, अनेक मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं की अपरिहार्यता। चुभन, चोट, प्रतिकूलता के बावजूद सीमित और वृहत् दोनों अर्थों में अभी घर या 'परिवार' अप्रासंगिक नहीं हुआ है। अपनी एक ग़ज़ल में मिश्र जी ने लिखा भी है' 'प्यार-झगड़े, दुख-दुआएँ आपसी बेचैनियाँ/रंग में अपने हज़ारों ही बहुत भाता है घर।'

कतिपय पाठकों को लग सकता है, जब हिन्दी कथा-साहित्य में नारी-विमर्श, दलित-विमर्श, साम्प्रदायिकता-विमर्श जैसे स्वर केन्द्र में हैं, ऐसी स्थिति में 'परिवार' या 'घर' के झगड़ों और चुनौतियों पर लिखना क्या अर्थ रखता है? एक तो मिश्र जी के लिए जो 'परिवार' है, वह 'देश' और पूरे विश्व का भी प्रतीकार्थ देता है। अतः उपन्यास के 'फ्लैप' पर सही कहा गया है- 'यह आप पर है कि आप अपना परिवार कितना बड़ा बनाते हैं'। दूसरी बात यह कि मिश्र जी के पूर्ववर्ती उपन्यासों में ये 'विमर्श' अपने गंभीर एवं व्यापक रूप में उपलब्ध हैं। शायद ही कोई उपन्यास ऐसा होगा जो नारियों की पीड़ा, दलितों-उत्पीड़ितों-वंचितों की तकलीफ से निरपेक्ष हो। इस उपन्यास में भी हमारे समय-समाज की चुनौतियाँ, दुखियों की व्यथाएँ जहाँ-तहाँ संश्लिष्ट हैं, जो उपन्यास को विचारोत्तेजक और परिवेश की प्रामाणिकता से सम्पन्न बनाती हैं। उपन्यास में एक स्थान पर स्पष्ट संकेतक है कि नारी मुक्ति के तमाम प्रयासों और दावों के बावजूद पिछड़े अंचलों में नारी की स्थिति आज भी दयनीय है। अभाव-निर्धनता के चलते अनेक युवतियाँ कुपात्रों के गले का हार बनने को विवश हैं- ''लड़कियाँ भी कितनी निरीह होती हैं.... मां-बाप अपनी गरीबी के कारण यह नहीं देखते कि उनकी बेटी कहाँ जा रही है। बस कहीं जा रही है और उनके सिर से एक भार उतर रहा है। इतना ही उनके लिए काफी होता है।''

इस उपन्यास का एक बड़ा हिस्सा इस चिंता से उद्वेलित है कि आजादी के बाद देश को एक खुशहाल परिवार बनना था, लेकिन हुआ यह कि कुछ लोगों ने सुविधाओं-सुखों पर अधिकार कर लिया और अधिसंख्य देशवासी फटेहाल, निर्धन और असहाय बने रह गए। उपन्यास में आया यह यथार्थ-चित्र पूरे देश की वास्तविकता है- 'ये कुछ जमींदार सम्पन्न इसलिए हैं कि बाकी लोग गरीब हैं या वे गरीब इसलिए हैं कि ये थोड़े से लोग सम्पन्न हैं और यह सम्पन्नता उन गरीबों के खून-पसीने से सिंचित होती रहती हैं।' जो लोग कभी आजादी की लड़ाई लड़े थे, उनमें बहुत से इसी सम्पन्न वर्ग के अंग बन गए। उपन्यास में शिवानंद पांडे ऐसे ही नेताओं के प्रतीक हैं। उपन्यास में आम आदमी के जीवन की दयनीयता का वर्णन पढ़ते हुए बार-बार दुष्यंत कुमार याद आते हैं कि ये लोग जिन्दगी और जनतंत्र के सफर के लिए कितने मुनासिब हैं? सम्पूर्ण स्थिति को इन अभागों का जाड़े में रात्रि-शयन का दृष्य कुछ इस तरह उभारता है- 'लगता है जैसे बिलों में चूहे दुबके हुए हों। शिक्षा-आरक्षण आदि के फलस्वरूप दलितों की स्थिति बहुत सुधरी है, लेकिन दलितों के प्रति मानसिकता बहुत नहीं बदली है। स्वयं दलितों में अपने निम्न होने का बोध भी बना हुआ है। उपन्यासकार ने डिप्टी क्लेक्टर मेवालाल के बहाने से इस विडंबना को भी रेखांकित किया है- '...जातिगत उच्चता और निम्नता का इतना गहरा संस्कार लोगों को पिलाया गया है कि इतना बड़ा दलित अफसर ब्राह्मण परिवार में आकर संकोच अनुभव कर रहा है...।' हर तरह के रूढ़िवाद को उपन्यासकार ने ख़ारिज किया है। काशीनाथ जी रिटायर होकर एक दुकान खोल लेते हैं तो कुछ को लगता है कि वे बनिया हो गए हैं या कुछ ऐसा कर रहे हैं, जो वर्जित है। उपन्यासकार निर्भ्रांत हैं कि जो रास्ता सही लगे, समय की चेतना के अनुरूप हो, उस पर चलना श्रेयस्कर है- 'रूढ़िवादी तो भूँकते रहेंगे, भूँक कर कुछ देर बाद चुप हो जायेंगे और बाद में वे भी महसूस करेंगे कि एक नयी राह बन गयी है।' रूढ़ि-विरोध और व्यवस्था-विरोध की यह दीप्ति पूरे उपन्यास में व्याप्त है।

जिन पाठकों ने रामदरश जी के आत्मवृत 'सहचर है समय' के प्रथम खंड को पढ़ा है, उन्हें यह समझते देर न लगेगी कि 'बचपन भास्कर का' में भास्कर जी के बहाने से मिश्र जी ने अपने ही बचपन के अभाव, संघर्ष, उल्लास, प्रकृति-राग आदि को उपन्यास में विन्यस्त किया है। भास्कर शर्मा छियासिवें जन्मदिन पर याद करते हैं कि उनकी ज़िन्दगी कैसी कटी-फटी रही है? पढ़ाई और नौकरी के लिए कहाँ-कहाँ नहीं भटके? उन्हीं के शब्दों में: छोटे-छोटे रास्ते थे, एक जगह जाकर रुक जाते थे, फिर सोचना पड़ता था कि आगे किस रास्ते से जाया जाये।

सारा उपन्यास काशीनाथ, सत्या और 'नैरेटर' की मनःस्थितियों से गूँथा गया है। खुदाई खिदमतगारी में लहूलुहान होने वाले काशीनाथ जी के व्यक्तित्व की पूरक जैसी है उनकी बेटी सत्या। सत्या में सही-ग़लत का बोध ज़बरदस्त है और वह सही बात के लिए सबसे टकरा जाती है, कोई आहत हो तो हो। पूरा उपन्यास सत्या की स्मृतियों और अनुभूतियों से संबंधित है। 'नैरेटर' को तमाम महत्वपूर्ण सूचनाएँ सत्या से ही प्राप्त हुई हैं और उसे यह सघन संज्ञान हुआ है कि काशीनाथ एक मामूली आदमी हो कर भी अनेक विशिष्टों में अलग से पहचाने जाने वाले व्यक्तित्व थे। इस मामूली आदमी की गैर मामूली कथा को उपन्यासकार ने बहुत संयम और सलीके से कहा है, लेकिन सत्या की तेजस्विता और सक्रियता ने उपन्यास में जो ऊष्मा और धमक पैदा की है, वह उल्लेखनीय है। 'दर्द को झेलने और छिपाने की' अद्भुत

क्षमता, निर्भीकता, संवेदनशीलता आदि गुणों ने सत्या को ही उपन्यास का केन्द्रस्थ चरित्र बना दिया है।

जिन पाठकों ने रामदरश जी के आत्मवृत 'सहचर है समय' के प्रथम खंड को पढ़ा है, उन्हें यह समझते देर न लगेगी कि 'बचपन भास्कर का' में भास्कर जी के बहाने से मिश्र जी ने अपने ही बचपन के अभाव, संघर्ष, उल्लास, प्रकृति-राग आदि को उपन्यास में विन्यस्त किया है। भास्कर शर्मा छियासिवें जन्मदिन पर याद करते हैं कि उनकी ज़िन्दगी कैसी कटी-फटी रही है? पढ़ाई और नौकरी के लिए कहाँ-कहाँ नहीं भटके? उन्हीं के शब्दों में छोटे-छोटे रास्ते थे, एक जगह जाकर रुक जाते थे, फिर सोचना पड़ता था कि आगे किस रास्ते से जाया जाये। आज के बच्चों के सामने प्रायः एक बनाबनाया रास्ता है, सोची-समझी तय मंजिल है। तब सब कुछ अनिश्चित था। प्राकृतिक प्रकोप से अभिशप्त कछार के गाँव माधोपुर में हर बाढ़ के बाद लोगों की गरीबी और घनी हो जाती थी। सभी लोग कर्ज़ में आकंठ डूबे हुए थे। गाँव में धनी कौन था, सभी तो अभाव से अभिशप्त थे'- ऐसे माहौल में बीते बचपन को उपन्यासकार ने टुकड़ों में याद किया है। जहाँ तक संभव हुआ है विस्तार से बचा गया है अतः कहीं-कहीं एक या दो वाक्य अनेक संकेतों, अर्थों के व्यंजक बन गए हैं। 'लगता था जीवन गया-गया कि किसी के सहारे लौट आया। जीवन केवल तन का नहीं, चेतना का भी होता है', 'हर ऋतु के साथ मैं कितना दर्द हाहाकार कर रहा था', 'यह ताकत कभी-कभी बहक जाती है', 'दूसरे की टेट में से खींच कर अपनी टेंट में पैसे रख लेने की अपेक्षा टेट में से पैसे गिरने की क्रिया कितनी सुंदर थी', 'गाँव के सिवान पर खड़ा बचपन उदास भाव से मुझे जाता हुआ देख रहा था'- आदि में अर्जित अनुभवों, देखी-सुनी घटनाओं, जीवन्त रिश्तों से निथरे हुए जीवनसत्य सूत्रबद्ध हो गए हैं। ये खूबसूरत गद्य के उदाहरण हैं, जिसकी खूबसूरती रचनाकार के आत्मसंघर्ष से अद्भुत ऊर्जा से प्रखर और दीप्त हुई है। सामान्य संदर्भों को भी नयी अर्थवत्ता देने का कौशल स्कूल के दिनों में 'गाँव-शहर संवाद' में मिश्र जी द्वारा गाँव की भूमिका निभाने से संबद्ध वाक्यों में देख सकते हैं: 'पंडित जी को पहचान हो गयी थी कि गाँव की भूमिका में मैं ही ठीक रहूँगा और तब से मैं गाँव की भूमिका में ही तो हूँ।'

उपन्यास में जहाँ-जहाँ रूढ़ियों, कुरूपताओं, आडम्बरों पर प्रहार है जो उपन्यासकार के जनधर्मी और परिवर्तन के लिए कृतसंकल्प 'विजन' का बोधक है। भास्कर जी स्वीकार करते हैं कि गाँव में प्रचलित अंधविश्वासों से मुक्त होने में उन्हें समय लगा था। बाद में विवेकशील होने पर वे सामाजिक आडंबरों और पाखंडों को निरंतर लात मारते रहे। भूत-चर्चा के प्रसंग में उनकी स्पष्टोक्ति है: 'फिर भी एक व्यक्ति की दृष्टि विवेकवादी होनी चाहिए... ..उसकी बुनियादी आस्था वैज्ञानिक चेतना में ही होनी चाहिए....।' मिश्र जी के उपन्यासों में नारी की पीड़ा और यातना बहुत जगह घेरती है। 'रात का सफ़र', 'बिना दरवाज़े का मकान' आदि तो पूरी तरह से पुरुष शासित समाज में नारी की नियति पर केन्द्रित हैं। इस उपन्यास में भास्कर जी की बहन की मृत्यु का मार्मिक प्रसंग है और उसे लेकर उनके मन का जो आक्रोश है, वह नारी मात्र के दुःख से जुड़ गया है: '..बहिनिया की मौत एक और की मौत की घटना नहीं है बल्कि हमारे पतित समाज की व्यापक समस्या है। बहिनिया कभी यहाँ दिखाई पड़ रही थी कभी वहाँ, कभी इस घर में, कभी उस घर में, कभी जी-जी के मरती हुई, कभी मर-मर के जीती हुई, ससुराल के चक्रव्यूह में शैतान महारथियों के बीच प्रतिरोधहीन होकर जलते हुए बाण सहती हुई।' मेले में स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार को लेकर भी रचनाकार का आक्रोश फनफना उठा है:' क्या चंद गुंडों की हरकतों की वजह से अपने सारे मानवीय अधिकारों से वंचित हो जाएं? क्या दिन-रात घर की चहारदीवारी के अंदर घूँघट में सड़ती रहें?' उनकी की कविताओं में स्त्री का लंपट पुरुषों को सबक सिखाना संकेत है कि अपने सम्मान की रक्षा के लिए स्त्रियों को भी आगे आना होगा। किसानों के संदर्भ में भी 'जुझारूपन' को सराहा गया है जो रचनाकार की सकारात्मक अंतर्दृष्टि का सूचक है.. ..'लोग इस भय से बार-बार गुज़रे हैं और बार-बार नया भविष्य उनकी आँखों में मुस्कुराया है। वे बार-बार गिरे हैं, बार-बार उठे हैं, बार-बार उन्होंने नियति की चुनौती स्वीकार की है'।

डॉ. स्मिता मिश्र के अनुसार उपन्यास 'एक बचपन यह भी' बचपन के कुछ दृश्य और प्रसंग लेकर आया है। एक लड़की की संवेदना, खिलंदड़पन, ऊर्जा, मूल्यदृष्टि और उसके प्रति पिता का पुत्रवत प्यार और व्यवहार इसमें दीप्त है। यह बचपन सामान्यता से गुजरता हुआ भी कुछ विशेष लक्षित हो रहा है। चेतना अपना नाम चरितार्थ करती लगती है।" मिश्र जी के आत्मवृत्त से परिचित पाठक के लिए यह पहचान कठिन नहीं है कि चेतना जी के माध्यम से श्रीमती सरस्वती मिश्र का बचपन प्रत्यक्ष हुआ है।

उपन्यास में प्रकृति बार-बार आती है और भास्कर के ऋतुप्रेम को उजागर करती है। वसंत और विशेषतः फागुन में उनका मन विशेष रमता है। उपन्यास में ऋतुएँ सूचना या पृष्ठभूमि के रूप में नहीं है। वे ग्रामजीवन के सुख-दुःख से जुड़ी है। भास्कर जी को ही नहीं, पूरे गाँव को फागुन का महीना बहुत प्यारा है : 'गन्ने की तरह पोर-पोर रस से भरा यह महीना उदास गाँवों को कितना कुछ दे जाता था। लेकिन जब किसी वजह से हम फागुन को पूरा जी नहीं पाते थे तब लगता था कि कितना कुछ खो गया है।' कुछ आलोचकों ने ग्रामकेन्द्रित उपन्यासों पर आरोप लगाया है कि उनमें प्रकृति और माटी प्रधान हो जाती है, मनुष्य गौण रह जाता है। 'बचपन भास्कर का' इस असंगति से बचा हुआ है, प्रधान इसमें ग्रामीणजनों का संघर्षमय जीवन ही है, ऋतुएँ' कभी उनकी जिजीविषा का क्षय करती हैं तो अधिकतर उनकी संवेदना और जीवनी-शक्ति को सक्षम बनाती हैं।

डॉ. स्मिता मिश्र के अनुसार उपन्यास 'एक बचपन यह भी' बचपन के कुछ दृश्य और प्रसंग लेकर आया है। एक लड़की की संवेदना, खिलंदड़पन, ऊर्जा, मूल्यदृष्टि और उसके प्रति पिता का पुत्रवत प्यार और व्यवहार इसमें दीप्त है। यह बचपन सामान्यता से गुजरता हुआ भी कुछ विशेष लक्षित हो रहा

है। चेतना अपना नाम चरितार्थ करती लगती है।" मिश्र जी के आत्मवृत्त से परिचित पाठक के लिए यह पहचान कठिन नहीं है कि चेतना जी के माध्यम से श्रीमती सरस्वती मिश्र का बचपन प्रत्यक्ष हुआ है। उपन्यास का प्रारंभ चौरासी वर्षीया चेतना जी की उदरपीड़ा, बाँहपीड़ा के उल्लेख से हुआ है। उपन्यास के 'पूर्व कथन' में उनकी स्वाभिमानी प्रकृति और निर्भीकता, कर्मठता विद्या के प्रति ललक को रेखांकित करते हुए बताया गया है कि वे आमजनों में अपने प्रोफेसर पति से कहीं अधिक ख्यात हैं। उन्नीस सौ चौरासी के उपद्रवों के बीच सिख परिवारों को बचाना उनकी निर्भीकता के प्रति सम्मान जगाता है। यह निर्भीकता उनमें बचपन से ही थी। उनके संवेदनशील पिता और कर्मठ माता से अच्छे संस्कार मिले थे। उपन्यास में चेतना के माध्यम से मिश्र जी का मूल्यनिष्ठ विजन बार-बार अभिव्यक्त हुआ है।

किसी संतान को खो देना एक पिता के लिए मर्मभेदी और असह्य त्रासदी हैं पिता यदि संवेदनशील रचनाकार हो तो उसका दर्द किसी रचना के रूप में फूट पड़ता है, भले ही उस पीड़ा-प्रवाह को थामने में शब्दशिल्पियों को भी असुविधा और असमर्थता ही हाथ लगती हो।' 'मंजुशिमा' (शिव प्रसाद सिंह) 'सुख-दुख' (अमृत राय) 'देहरी के पार' (विवेकी राय) आदि कृतियों की तरह रामदरश जी का उपन्यास 'एक था कलाकार' आपबीती की प्रत्यक्षानुभूति से सिरजा हुआ है। इसे उन्होंने 'प्रिय पुत्र हेमंत' की स्मृति को समर्पित किया है। यही हेमंत इस उपन्यास के केन्द्रीय चरित्र देवेश हैं। मिश्र जी की आत्मकथा 'सहचर है समय', उपन्यास 'दूसरा घर' और कुछ स्मृतिचित्रों से अवगत पाठक जान लेता है कि पुत्र-शोक से व्यथित इस उपन्यास के 'नैरेटर' शिवनाथ जी स्वयं रामदरश जी ही हैं।

उपन्यास में देवेश के अवलोकन बिन्दु से एनएसडी के अन्तरंग परिवेश का परिचय मिलता है। डायरी के रूप में रचित यह अंश इब्राहिम अल्काजी के व्यक्तित्व को प्रभावशाली तरीके से उभारता है। आँधी आने पर बल्ली पकड़कर 'शो मस्ट गो ऑन' कहते और विद्यार्थी के कमरे की सफाई करते अल्काजी अद्‌भुत हैं। नाट्यसंस्थाओं के बनने-बिखरने की विडम्बना की ओर भी इंगित किया गया है। व्यावसायिकता और बाजारवाद के माहौल में अशोक चक्रधर का 'गुलाबड़ी' फिल्म के लिए देवेश के स्वस्थ होने का इंतजार बहुत मानवीय है।

सम्पूर्ण उपन्यास देवेश के निर्भीक, फक्कड़, परदुखकातर, सत्यवादी, अभिनय-कुशल व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द रचा गया है। बचपन से ही वह अन्य बच्चों से इतर स्वभाव का है। बचपन से लेकर युवा और प्रौढ़ अवस्था में भी 'गाँव का मूलभूत संस्कार' उसके भीतर दीप्त रहा। उसने अपने पिता से कहा भी है कि मेरे मन में एक गाँव पुकारता रहता है। भीतर धँसे इस 'गाँव' ने ही उसे प्रकृति-प्रिय बनाया है, सदा सच बोलना सिखाया है, उसे लंपट नहीं होने दिया है, अन्याय के विरूद्ध खड़े हो जाना सिखाया है। उपन्यास में कई प्रसंग ऐसे आये हैं जहाँ देवेश लड़कियों को छेड़ने वाले, नौकर को सताने वाले कुमार्गियाँ को सबक सिखाते देखा गया है। एन.एस.डी. में गोविन्द नामदेव की चुनौती को अकेले ही स्वीकारता है। पढ़ाई की दृष्टि से वह मेधावी नहीं रहा क्योंकि वह किताब की अपेक्षा जीवन को अधिक पढ़ना चाहता है। कई लोगों द्वारा उसके विषय में उसकी परदुःखकातरता, बड़ों के प्रति सम्मान-भाव आदि की प्रशंसा सुन कर माँ-बाप को आश्वस्ति होती है कि अच्छा विद्वान बने न बने अच्छा इंसान तो बनेगा ही। नौकर को सताने वाले बूढ़े को देवेश और उसके दोस्तों द्वारा दण्ड देने के प्रसंग में माँ को उचित ही लगा है कि उसमें इंसानियत की गहरी आभा दीप्त है। देवेश के चरित्र-विन्यास की यह विशेषता है कि यह माँ-बाप की मुग्धता की सृष्टि न होकर सहज चिंतातुरता और वस्तुनिष्ठता से भी संश्लिष्ट है। अपनी शर्तों पर जीने की जिद या कहें स्वाभिमान-भाव देवेश की शक्ति और सीमा दोनों हैं। उपन्यासकार ने उसके जिद्‌दीपन को उसकी आकस्मिक मृत्यु के लिए भी उत्तरदायी माना है। उसका यह विश्लेषण देवेश के आत्महंता स्वाभिमान की सही परख है- 'जिद के साथ ही जीवन जीते रहे और खोते-पाते रहे बल्कि खोते ज्यादा रहे। जीवन और मृत्यु दोनों के रास्ते उन्होंने अपने मन से चुने। जितना उन्होंने किया उससे बहुत ज्यादा अच्छा कर सकते थे, किन्तु उनकी जिद ने उन्हें बहुत मारा'।

देवेश या हेमंत के बहुत अच्छे अभिनेता होने के अनेक प्रमाण उपन्यास में हैं। 'मैला आँचल' (टीवी सीरियल) और 'आषाढ़ का एक दिन' (नाटक) में वे क्रमशः बालदेव और विलोम की भूमिका के लिए तो चर्चित हुए ही, दर्जनों फिल्मों, नाटकों आदि में भी उनकी छोटी-बडी भूमिकाओं को सराहा गया था। उपन्यास में देवेश के अवलोकन बिन्दु से एनएसडी के अन्तरंग परिवेश का परिचय मिलता है। डायरी के रूप में रचित यह अंश इब्राहिम अल्काजी के व्यक्तित्व को प्रभावशाली तरीके से उभारता है। आँधी आने पर बल्ली पकड़कर 'शो मस्ट गो ऑन' कहते और विद्यार्थी के कमरे की सफाई करते अल्काजी अद्‌भुत हैं। नाट्यसंस्थाओं के बनने-बिखरने की विडम्बना की ओर भी इंगित किया गया है। व्यावसायिकता और बाजारवाद के माहौल में अशोक चक्रधर का 'गुलाबड़ी' फिल्म के लिए देवेश के स्वस्थ होने का इंतजार बहुत मानवीय है। गोरखपुर के सुल्तान अहमद ने देवेश पर जो संस्मरण लिखा है, वह उपन्यास में सर्वथा उपयुक्त है। यह देवेश की लगन और प्रतिभा को रेखांकित करने के साथ उन मुश्किलों का बयान भी करता है जो रंगकर्मियों को कानून और व्यवस्था के नाम पर झेलनी पड़ती है। देवेश के माध्यम से कलाकारों के असंयमित जीवन विशेषतः मदिरापान से "कला का जीवन' जीने में बाधा आने का उल्लेख है। उपन्यासकार ने देवेश के मदिरा-पान का महिमा-मंडन नहीं किया है बल्कि उसके असामयिक प्रस्थान के लिए विशेषतः जिम्मेदार ठहराया है। देवेश के पियक्कड़पन को झेलती उसकी पत्नी जया के धैर्य को पति की सदाशयता और समझदारी का कुछ अंश मिल जाता तो देवेश की नियति कुछ भिन्न होती।

अन्य उपन्यासों की तरह मिश्र जी के इस उपन्यास में मूल्यनिष्ठा के साथ परिवेश की प्रामाणिकता भरपूर है। चूँकि उनकी कलम के पीछे श्रम का बड़ा इतिहास छिपा है, कठिनाइयों के अनुभव उनकी रचनात्मकता को 'वस्तु और शक्ति' देते गए हैं तो उपन्यास में जिये हुए परिवेश को होना ही था।

पूर्वांचल का ग्रामीण-प्राकृतिक परिवेश, विशेषतः शिवपुर की रामलीला का वर्णन, गुजरात का शैक्षिक-सांस्कृतिक परिवेश, बाद में महानगरीय विसंगतियाँ आदि उपन्यास में जहाँ-तहाँ आये हैं और विश्वसनीय लगते हैं। जहाँ भी अच्छाई, अपनापन, इंसानियत की उपस्थिति मिली है, उपन्यासकार ने उसे गौरवान्वित किया है। शहर के बाज़ार भव्य हैं, लेकिन उनमें अजनबीपन है, वह अपनापन नहीं है जो शिवपुर बाजार में है। इसी तरह गाँव की रामलीला में जो खुलापन और सौन्दर्य है, वह माडल टाउन की प्रायोजित रामलीला में कहाँ। महानगर के पंजाबी सज्जन की हृदयहीनता की तुलना में बाहर से गंदी लगने वाली पटेलानी और उसके पति का व्यवहार बेहद मानवीय है। इसी तरह कार वाले रईसों के मुकाबले भूखे प्यासे देवेश-फारूख की मदद करने वाले ट्रक ड्राइवर की मनुष्यता आकर्षक है। देवेश ने ऐसे अनुभवों से आदमियों की पहचान की जो बात की है, वह उचित है। उसकी स्वयं की कविताओं और कहानियों में मूल्यों की दीप्ति इन्हीं अनुभवों की देन है। उपन्यास में देवेश की एक कविता दी गई है, जिसमें उसकी जन-पक्षधरता मुखर है- 'मैंने अपने लिए चुन लिए हैं/ हँसिये हथौड़े वाले हाथ/और फटी हथेलियों की पीड़ा समझने लगा हूँ'। ऐसे जुझारू सोच का कवि अपनी दुर्बलताओं पर काबू नहीं कर पाया, सही विकल्प नहीं चुन पाया, इस विडम्बना को उपन्यास में मार्मिक अभिव्यक्ति मिली है।

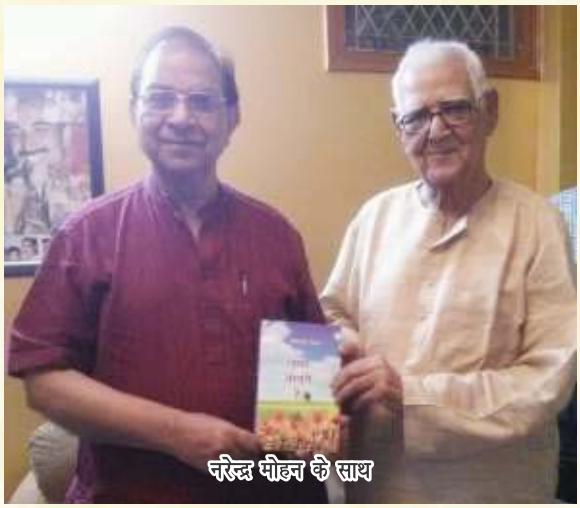
नरेन्द्र मोहन के साथ

ये सभी उपन्यास पारिवारिक विखंडन, अभावग्रस्त किंतु मस्त बचपन और युवा वर्ग की भटकन को उभारते हुए अपने लघु कलेवर में बड़े सरोकारों से संवाद कर रहे हैं। लेकिन ये पाठक के सोच को कुरेदने के साथ-साथ उसकी संवेदना को लगातार स्पर्श करते हैं। उपन्यासकार को मार्मिक स्थलों की पहचान है और स्फीति से बराबर बचा गया है। मिश्र जी के इन उपन्यासों में फालतू शायद कुछ भी नहीं है। कोई प्रसंग, घटना या विवरण में है तो वह कृति के 'विजन' को समृद्ध और पुष्ट करने के लिए ही है। अपनी बहन के सम्मान के लिए बहनोई का हाथ पकड़ता बौड़म भाई, भविष्य बताने वाली बुढ़िया माई, पाकड़ का छतनार पेड़, पालतू बकरी, बसंत पांडेय की मृत्यु, शिव मोहनकुमार का संदर्भ, अलाव की आग-सब के सब साभिप्राय संश्लिष्ट हैं। उपन्यास के समापन के क्षणों में गहरी ठंडक की यथार्थ अनुभूति ने कवि-नैरेटर को स्वप्नलोक की कल्पना को झटक देने के लिए बाध्य किया है। यह संदर्भ भी व्यंजनात्मक और सार्थक है। घर, परिवार, गाँव को लेकर उपन्यासकार किसी 'नास्टेलजिया' या 'यूटोपिया' से प्रेरित-प्रभावित नहीं है, वह ठोस यथार्थ की भूमि पर खड़ा है। अन्तर्जगत् और बाह्य यथार्थ पर उपन्यासकार के समान पहुँच और पकड़ ने उपन्यास को गहराई और व्यापकता-दोनों गुणों से समृद्ध किया है।

ये सभी उपन्यास पारिवारिक विखंडन, अभावग्रस्त किंतु मस्त बचपन और युवा वर्ग की भटकन को उभारते हुए अपने लघु कलेवर में बड़े सरोकारों से संवाद कर रहे हैं। लेकिन ये पाठक के सोच को कुरेदने के साथ-साथ उसकी संवेदना को लगातार स्पर्श करते हैं। उपन्यासकार को मार्मिक स्थलों की पहचान है और स्फीति से बराबर बचा गया है। मिश्र जी के इन उपन्यासों में फालतू शायद कुछ भी नहीं है। कोई प्रसंग, घटना या विवरण में है तो वह कृति के 'विजन' को समृद्ध और पुष्ट करने के लिए ही है।

'बचपन भास्कर का' में भी स्फीति नहीं है, सभी प्रसंग प्रासंगिक हैं। माँ द्वारा अक्षरारंभ, पिता का सैलानीपन, पिटाई से बचने के लिए बरमबाबा से प्रार्थना और फिर भी पिटने पर बरम बाबा की छात्रों द्वारा पिटाई, बहन की मृत्यु, बाढ़ से तबाही, तरकुलहा का मेला, बैल की मृत्यु, नवीन भाई की शादी आदि सभी प्रसंग उपन्यास के विकास, विन्यास और कथारस के प्रवाह में अपनी भूमिका निभाते हैं। भरती की कोई घटना इसमें ढूंढे से नहीं मिलती। अतः कहीं कोई अस्वाभाविकता नहीं है। भाषा की बुनावट लाक्षणिक होते हुए भी संप्रेषण में सक्षम है और आत्मकथात्मक मुद्रा में सम्पूर्ण बयान प्रामाणिक लगता है। अपने लघु आकार में 'एक बचपन यह भी' किसी तरह की स्फीति से मुक्त है। बहुत सहज भाषा और कहन में सारी कथा पाठक तक सहज संप्रेषित हुई है।

'एक था कलाकार' में आया एक वाक्य 'मानवीय संबंधों की ऊष्मा अभी जीवित है' इन सभी उपन्यासों की सकारात्मक अवधारणा है। रामदरश जी का कवि बराबर इस सकारात्मक उपन्यास-यात्रा का सहचर रहा है। उसके साहचर्य में उपन्यासों की केन्द्रस्थ संवेदना प्रभावपूर्ण ढंग से संप्रेषित हुई है। 'एक था कलाकार' में 'बच्चे की अबूझ बीमारी की व्यथा को हमारी तात्कालिक अर्थहीनता ने और भी भारी कर दिया', 'इस भय और आशंका के गहरे अँधेरे में से फूटता हुआ वह बोल सुबह की पहली किरण जैसा लगा' आदि अवतरणों में स्थितियों के साथ मनःस्थितियों की बुनावट देखते बनती है। उपन्यास की कहन वैविध्यपूर्ण है और स्मृति-प्रवाह में तमाम घटनाएँ, अनुभूतियाँ, चरित्र, हादसे आदि डूबते-उतराते चलते हैं और पाठक भी उनके साथ हो लेता है। ये सभी उपन्यास मिश्रजी के इस मंतव्य से प्रेरित हैं कि 'सर्जना के साथ चलते रहने से जीवन चलता रहता है।' ◆

पता : डी-131, रमेश विहार,
अलीगढ़-202001
मो. : 9837004113

हिंदी गीत के इतिहास पुरुष

यश मालवीय

एकदम वैसा ही लग रहा है, जैसे हमारे बुजुर्ग कवि मिश्र जी पालथी मारकर बैठते हैं और आने वाली नस्लों को ज़िन्दगी का आलोक देते हैं। मन भीग-भीग जाता है और उजियारा तरल हो उठता है। रामदरश मिश्र उद्दाम जिजीविषा का जगमगाता हुआ संकल्प थे।

इन दिनों हिमाचल में हूं और हिन्दी गीत की आत्मा के सर्वाधिक जिंदा उद्घोष रामदरश मिश्र के तलस्पर्शी गीतों के सुवासित गलियारे से गुज़र रहा हूं। यह बेसुरा समय ही जैसे लयबद्ध हो उठा है। छंद की छांव, रेशमी धूप से बातें कर रही हैं। आसमान से बातें करता एक पहाड़ सामने है, उस पहाड़ की कुछ सोचती हुई सी मुद्रा कुछ-कुछ रामदरश मिश्र जी जैसी ही है। एकदम वैसा ही लग रहा है, जैसे हमारे बुजुर्ग कवि मिश्र जी पालथी मारकर बैठते हैं और आने वाली नस्लों को जिंदगी का आलोक देते हैं। मन भीग-भीग जाता है और उजियारा तरल हो उठता है। रामदरश मिश्र उद्दाम जिजीविषा का जगमगाता हुआ संकल्प थे। कविता को इस तरह टूटकर चाहने वाला कोई ऐसा कवि तो मैंने अपनी जिंदगी में देखा ही नहीं, जहां कथित बड़े कवि भी कविता का और जीवन का गणित हल करते नज़र आते हों, समीकरणों का स्वभाव जानते परखते रहे हों, रचना के निर्मेय और प्रमेय में फंसे हों, एक कवि केवल लिखता रहा और केवल लिखता रहा और बड़ी विनम्रता से कहता रहा

जहां तुम हो पहुंचे छलांगे लगाकर
वहां हम भी पहुंचे मगर धीरे-धीरे।

याद आता है 2003 का वह वर्ष। मुझे अपने नवगीत संग्रह, उड़ान से पहले, पर निराला पुरस्कार मिला था और उन्हें उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का संभवतः सबसे बड़ा सम्मान, भारत भारती सम्मान प्रदान किया गया था। वो लखनऊ के मोहन होटल में कारीडोर से सामने से आते हुए दिख गए थे। मुझे लगा था जैसे हिन्दी गीत का पौरूषेय बोध ही सामने से चला आ रहा है। एकदम महाप्राण निराला वाली कद काठी। मैंने अभिभूत होकर पांव छू लिए थे। उन्होंने आशीर्वाद की बारिश से जैसे नहला दिया था और बोले थे, तुम तो यश हो ना, उमाकांत मालवीय के बेटे। उमाकांत तो मेरे लक्ष्मण थे। तुम्हें तो अच्छे-अच्छे और प्यारे-प्यारे गीत रचने ही हैं। तुम्हारे तो रक्त में गीत है। गीत लेखन के लिए मिलने वाला मेरी जिंदगी का ये सबसे बड़ा आशीर्वाद था। आज तक मैं उनका उस दिन मिलने वाला आशीर्वाद सहेजे हुए हूं और जब कोई सार्थक और सहज गीत लिखता हूं, तो उनका आशीष याद कर लेता हूं। इस वक्त मैं उनका यह कालजयी गीत याद कर रहा हूं

संध्या में बादल डूबे हैं,मन डूबा सन्नाटे में
यह जाड़े की ठंडी घाटी
पतझर की सांसों में पाटी
सूनेपन के हिमशृंगों से
छाया भरती है झरने सी
अपनी ही परछाईं लेकर घन डूबा सन्नाटे में
यह सुनसान अमलतासों का

ये उजड़ी उजड़ी सी राहें
यह एकाकीपन से घायल
वन डूबा सन्नाटे में।

यह डूबना केवल डूबना नहीं है बल्कि गहरे जंजालों से उबरना भी है। यह कलात्मक गीत अक्सर सूने में बहुत पास आकर बैठ है। इस पास बैठ जाने की भी एक लय होती है, जो गुनगुना उठने के लिए मजबूर सा कर देती है। जीवेम शरदः शतम को तो वो मूर्त कर ही चुके थे, मैं तो उनके लिए राम की नहीं रामकथा की आयु मिलने की कामना करता हूं। आज मिश्र जी नहीं है पर मुझे विश्वास है कि वे अपनी रचनाओं के ज़रिए सदैव हम सबके शीष पर आशीष मण्डल से छाए रहेंगे। ताकि हम भी अपने समय को अपनी रचनाओं में रचते रहें।

जीवन के इस मोड़ पर साक्षात सरस्वती यानी जीवन संगिनी के महाप्रयाण के बाद वह सहसा अकेले रह गए थे, पर उनका रसमय रागबोध सदा उनके जीवन को रससिक्त करता रहा। सरस्वती जी अब तक दिखाई देती थीं, पर अब वह उनमें संगम की धारा के बीच ही समा गई सी लगती हैं, जो लुप्त होकर भी उजागर होती रहेंगी, इसी भरोसे से उनकी यह पंक्तियां आज भी आश्वस्त कर रही हैं

चल रहा हूं क्योंकि गति से पंथ का निर्माण होगा

यह चरैवेति-चरैवेति की अनंत प्यास ही उनके गीतकार को गाती रहेगी, जहां वह कहते हैं

जिंदगी की राह पर पदचिन्ह भरता जा रहा हूं

यह पदचिन्ह वाकई हमारे सिजदा करने के लिए ही हैं। वह अपराजेय गीतधर्म को जीते हुए आज भी कहते हुए से लगते हैं

तूफानों से लड़ता-लड़ता जीवन कभी न हारा।
वो अपने गीतों के लिए बहुत ठसक से कहते आए हैं
नभ में नहीं, धरा ज्वाला में पलते हैं ये गीत हमारे।

मैं उन्हें बचपन से ही हिन्दी गीत के आत्मविश्वास के रूप में देखता रहा हूं और आज भी जैसे इस शुष्क और सूखे समय में भी उनका एक पावस गीत मन प्राण को शीतल कर रहा है और गीली अँगुलियों से सहला रहा है

उमड़ रही पुरवइया कुंतल जाल सी
लहर रहे अंबर में काले काले बदरा।

रामदरश जी छायावाद और आज के हिन्दी गीत को जोड़ने वाली एक मजबूत कड़ी रहे हैं। महाकवि बच्चन और कविवर वीरेंद्र मिश्र की तरह ही

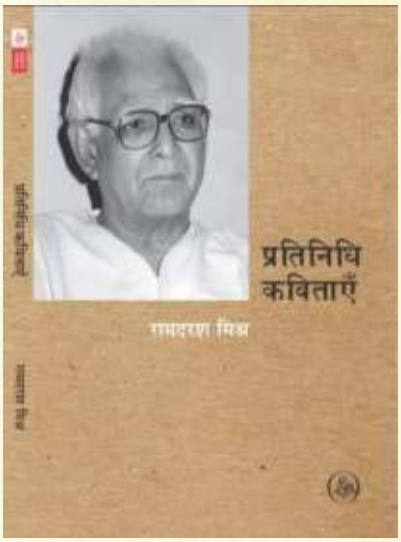

याद आता है 2003 का वह वर्ष। मुझे अपने नवगीत संग्रह, उड़ान से पहले, पर निराला पुरस्कार मिला था और उन्हें उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का संभवतः सबसे बड़ा सम्मान, भारत भारती सम्मान प्रदान किया गया था। वो लखनऊ के मोहन होटल में कॉरीडोर से सामने से आते हुए दिख गए थे। मुझे लगा था जैसे हिन्दी गीत का पौरुषेय बोध ही सामने से चला आ रहा है। एकदम महाप्राण निराला वाली कद काठी। मैंने अभिभूत होकर पांव छू लिए थे। उन्होंने आशीर्वाद की बारिश से जैसे नहला दिया था और बोले थे, तुम तो यश हो ना, उमाकांत मालवीय के बेटे।

वह गीत को बोलचाल की जबान देते रहे हैं। गीत के छायावाद से प्रस्थान बिन्दु पर वह किनारे पर खड़े पेड़ की तरह नज़र आते हैं। कृत्रिम भाषा उन्हें कभी रास नहीं आई। उन्होंने सामान्य जन की बोली बानी को ही अपनी रचना का आधार बनाया और अपने गीतों का ऐसा रस परिपाक दिया कि वह हिन्दी गीत का इतिहास बन गया और इसी अर्थ में वह गीतों के इतिहास पुरुष हैं। वह अपनी प्यास को पहचानते हैं, इसीलिए कहते हैं

मेरी प्यास गरल पी पीकर सुधा
जलद बन जाती
धुआं घटा पी हंसने वाला
मेरा दाह न बांधो

वह इसी रचनाशील अंतर्दाह के उद्भट कवि हैं। उनका कवि सिर चढ़कर बोलता है और समय समाज और जगत की पेचीदा गांठें या गिरह मन की गिरह की तरह खोलता है और नई दिशाएं या नए क्षितिज हमारी संवेदनाओं के उजागर करता है।

मैं गीत के इस भरे पूरे बादल को अपने अनन्त अशेष प्रणाम देता हूं। वे हमारी स्मृतियों में अपने गीतों के साथ सदैव जीवन्त रहेंगे। ◆

पता : A 111 मेहदौरी कालोनी, रामेश्वरम,
इलाहाबाद-211004
मो. : 6307557229

जीवन से निकली सच्ची-सहज कहानियाँ

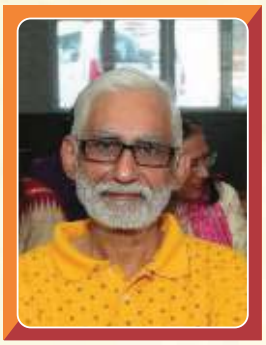

महेश दर्पण

ऐसे बहुत कम कथाकार हैं अब, जो तब से आज तक अपने समय को समझते कहानी लेखन करते चले आ रहे हैं। मूलतः एक कवि के रूप में प्रतिष्ठित और 'कवि' के दस विशिष्ट कवियों में एक रामदरश मिश्र ऐसे वरिष्ठ कथाकारों में प्रमुख हैं।

एक समय हिन्दी कहानी मनुष्य की तरह सरल थी। उसमें छल-छद्म भरी जटिलता के लिए जीवन की तरह कोई स्थान न था। संवेदनशीलता ही मनुष्य की पहचान थी और जीवन में भावनाएं ही उतार-चढ़ाव लाया करती थीं। यह स्थिति छठे दशक के पूर्वार्द्ध तक काफी हद तक बनी रही। ऐसे बहुत कम कथाकार हैं अब, जो तब से आज तक अपने समय को समझते हुए कहानी लेखन करते चले आ रहे हैं। मूलतः एक कवि के रूप में प्रतिष्ठित और 'कवि' के दस विशिष्ट कवियों में एक रामदरश मिश्र ऐसे वरिष्ठ कथाकारों में प्रमुख हैं।

'मनोज जी' जैसी कहानी से कथा में प्रवेश करने वाले रामदरश जी एक सहज कथाकार हैं। यदि 'सहज कहानी' का आंदोलन जड़ें जमा सका होता, तो विष्णु प्रभाकर के बाद वह इसकी प्रमुख पहचान बनते। दीर्घ कहानी-जीवन से जुड़े होने के कारण, इनकी रचनाओं में परिवर्तित हो रहा समय स्वतः मुखरित हो उठा है। जो पाठक उनके कथाकार के मानस को समझना चाहते हैं, वे यदि रामदरश जी के अठारह महत्वपूर्ण कहानी संग्रह न भी पढ़ सके हों, तो उनकी चुनिदां कहानियां पढ़कर बहुत कुछ जान सकते हैं।

जीवन अनुभव इस कथाकार के लिए सबसे बड़ी प्रेरणा है तो उसकी प्रमुख अभिलाषा है अपेक्षित यथार्थ। जो नहीं है, वह क्यों नहीं है और समाज में परिवर्तन आखिर हो कैसे? अपनी पहली ही कहानी से इस चिंता को सामने रखने वाले इस कथाकार की बाद की एक कहानी है- 'ज़मीन'। इसका आठवीं कक्षा का हरिजन छात्र देखता है कि राजनेता जिस समाजवाद की बात करता है, वह वायवी है। समाज में उसके लिए कोई स्थान नहीं। यहां तक की बात होती, तो शायद कोई बर्दाश्त भी कर जाए, लेकिन भूख से व्याकुल यह किशोर फल तोड़कर भी खाने की हिम्मत नहीं जुटा सकता क्योंकि उसका जन्म सवर्ण परिवार में नहीं हुआ है। छीमियां तोड़ते देख ही तो ठाकुरों के लड़के उसे पीट डालते हैं। वह प्रश्न उठाता है- कैसे है ज़मीन सबकी और पानी सबका? कहानी बताती है कि जिसका खेत, उसका पानी, उसी की मछरी। क्यों है ऐसा, क्यों बनी हुई है पाप और पुण्य के आधार पर अगले जन्म की व्यवस्था? मंत्री की आदर्श भरी बातें यह किशोर घर पर आकर बताता है, तो बपई का जवाब वस्तुस्थिति खोलकर रख देता है। उनका कहना है- 'छोड़ इन बातों को। तबसे सुन रहा हूं जब सुराजी झंडा ले के घूमता था।' समाज में ही बराबरी नहीं, तो व्यवस्था में हिस्सेदारी कहां से मिलेगी? कथांत में बपई की चुप्पी और चिलम की बुझती आग की आख़िरी चमक बहुत कुछ कह जाती है। अधिक विस्तार में न जाकर भी कहानी स्पष्ट कर देती है कि अलग है चमरौटी। वह कुत्ते के नंगे और भूखे स्वर को सुनकर कैसे थर्रा उठी है!

स्वतंत्र भारत में बनी व्यवस्था तो जो है, सो है किंतु यदि 'रहमत मियां' सरीखी कहानी का प्रमुख पात्र इंसानियत की मिसाल बनना भी चाहे, तो उसे कैसे संघर्ष करना पड़ता है! यह बेऔलाद दरजी 2 अक्टूबर को जन्मे एक बच्चे को मोहन अली नाम इसलिए देता है कि उसे कहीं यह यक़ीन है कि इस देश में गांधी मार्ग पर चलना अच्छा माना जाएगा, पर उस बच्चे का स्कूल में प्रवेश कराना तक एक टेढ़ी खीर बन जाता है। समाज चाहता है कि यह

बच्चा इंसान से भी पहले किसी हिंदू या मुस्लिम का हो। कथाकार नैरेटर तो रहमत और बच्चे की कहानी लिख गया, पर यह समाज भी लिखेगा कभी? रविंदर यहां एक भविष्य की उम्मीद की तरह है। अब वही लिखेगा सच्ची कहानी, जीवन से निकली। यह लेखक की सदिच्छा है नई पीढ़ी से।

कथाकार को मनुष्य की हर प्रकार की भेद-दृष्टि मनुष्यों के लिए अस्वीकार है। 'सीमा' कहानी में सरल संवेदना व तीव्र बुद्धि वाली इस नाम की लड़की अंगविकृति के कारण असहाय हो जाती है। उसके प्रति समाज के बर्ताव पर कहानीकार आलोचना करना चाहता है। उसके दर्द को बस जन्म देने वाले मां-बाप ही समझ पाते हैं। कहानी बगैर हो-हल्ला किए कह जाती है कि असहाय भी मनुष्य हैं। समाज के लोग उनके प्रति सहृदय हों।

''एक भटकी हुई मुलाकात' उस समय की स्त्री की कथा है, जब वह पुरुष की इच्छा पर ही रहने पर विवश थी। इस कहानी की अंजना, पहली पत्नी की तकलीफ समझता है रचनाकार। उसका सामना अपने ही पति की दूसरी पत्नी से संयोगवश ट्रेन में हो जाता है जिसके साथ उसका बेटा भी है जिस पर कानून ने पिता का हक दिया हुआ है। कहानी घटनाओं के बीच पुरुषसत्ता कानून-व्यवस्था पर प्रश्न खड़ा करती है। पूछती है कि क्या बच्चे और वस्तु में कोई अंतर नहीं? क्या इस समाज में नैतिक अधिकारों के लिए जगह बनेगी? स्त्री की आज़ादी के बारे में तो बहुत बाद में आवाज़ उठनी शुरू हुई, लेकिन रामदरश जी इस पर अरसा पहले से सोच रहे थे। इस कहानी में अंजना का ही नहीं, एक स्त्री के रूप में दूसरी पत्नी सीमा का दर्द भी सामने है, जहां उसे सुधांशु कुछ समझता ही नहीं। स्त्री उसके लिए दोयम दर्ज़े की नागरिक है। उपेक्षा भरे रवैये की मारी। इस सबके बावजूद कथाकार मनुष्य के कमज़ोर मन को खूब पकड़ लेता है, जहां सुधांशु कुछ पूछ तक नहीं पाता। पर कुछ है, जो छूटता नहीं। यह बहुत बारीक-सी चीज़ है। यह बारीक-सी चीज़ संवेदन तंत्र की वह भावुकता है जहां पुराने रिश्ते टूट भले जाएं, खत्म समूल कभी नहीं होते। इसे अंजना द्वारा छोड़े गए उस पैकेट से भी समझा जा सकता है, जो मनोज नामक उसके बेटे के लिए है।

इससे भी अधिक प्रभावशाली है कहानी 'आख़िरी चिट्ठी।' इसकी प्रभा मानवीय सम्बन्धों पर विश्वास रखती है। बेहद संवेदनशील इस चरित्र को परिस्थितियां सहज नहीं रहने देतीं। यह वाचक के ननिहाल की एक पड़ोसी लड़की है, जो उसे अपना भाई मान लेती है। उसके पिता का निधन जिस तरह उसके और मां के जीवन को नरक बना देता है, वह हमारे समाज में स्त्री की वस्तुस्थिति को उजागर करता है। यहां सम्बन्ध बोझ बन जाते हैं क्योंकि उनका आधार अर्थ है, भावनाएं नहीं। स्त्री की इच्छा का यहां कोई महत्व नहीं। न मायके में और न ससुराल में। इसकी नियति तो जो है सो है, उसकी बेटी क्या अपनी राह बनाएगी? प्रभा के विद्रोह की आकांक्षा को सुनता है कथाकार। वाचक का यकीन है कि वह अपनी राह बनाएगी।

यह कहानी का विचार का एक पक्ष है। पर यहां वाचक की आत्मस्वीकृति भी गौरतलब है जहां वह यह महसूस करता है कि वह कुछ नहीं कर सका। वह बस कारणों से बंधा रहकर अपने लिए तर्क खोज लेता है। दरअसल, यहां समाज का वह चेहरा बेनकाब होता है जिसके चलते स्त्री का होना पुरुष की इच्छा पर निर्भर करता है। वाचक अपने जीवन में व्यस्त रह जाता है, पर उसकी यह सदिच्छा जरूर है कि प्रभा की कहानी की पुनरावृत्ति न हो। अपनी कायरता भी वह उजागर कर जाता है कि वह इतना साहसी भी नहीं कि प्रभा की बेटी को अपने साथ ले आये।

इस कहानी की तरह, कथाकार रामदरश की अनेक कहानियां औपन्यासिक बनावट लिए हैं। वहां कथा वर्तमान से प्रारंभ होकर फ्लैशबैक में जाती है। अतीत की स्मृतियां ऐसे में कहानी को आवश्यक विस्तार भी दे देती हैं। उदाहरण के लिए कहानी 'विदूषक' ही लें। यह गांव की स्मृतियों से उभरा चरित्र है। बचपन का साथी जोगीराय खिलदंड़ स्वभाव का है। सबका तरह-तरह से मनोरंजन करता है। उसका यह स्वभाव किंतु स्थितियों की मार में बिला जाता है। वाचक श्रीधर उसके जीवन पर सोचता है तो पाता है कि अवसर मिलता तो जोगीराय भी परसाई की तरह कुशल व्यंग्यकार बन पाता।

इस कहानी की तरह, कथाकार रामदरश की अनेक कहानियां औपन्यासिक बनावट लिए हैं। वहां कथा वर्तमान से प्रारंभ होकर फ्लैशबैक में जाती है। अतीत की स्मृतियां ऐसे में कहानी को आवश्यक विस्तार भी दे देती हैं। उदाहरण के लिए कहानी 'विदूषक' ही लें। यह गांव की स्मृतियों से उभरा चरित्र है। बचपन का साथी जोगीराय खिलदंड़ स्वभाव का है। सबका तरह-तरह से मनोरंजन करता है। उसका यह स्वभाव किंतु स्थितियों की मार में बिला जाता है। वाचक श्रीधर उसके जीवन पर सोचता है तो पाता है कि अवसर मिलता तो जोगीराय भी परसाई की तरह कुशल व्यंग्यकार बन पाता। उसे तो सातवीं तक की पढ़ाई ही नसीब हो सकी। और फिर करनी पड़ी रेलवे में खलासी की नौकरी। परिवार ऐसा खड़ा हुआ कि बेटियों की शादी के बोझ ने उसे दबाकर रख दिया। किस्सा-दर-किस्सा बुनी गई यह कहानी पढ़ने में एक ओर रसमय लगती ज़रूर है, पर इसका संबन्ध जोगीराय के जीवन की त्रासदी से गहरा है। उसके इकलौते बेटे का होली के दिन लगाई आग में एक बच्चे को बचाने के प्रयास में निधन हो चुका है। अब जोगीराय के साथ बेटे के लगाव की यादें हैं। वह भैंसों को बहुत प्यार करता था, इसलिए उन्हें बेच भी नहीं पाता। मित्र श्रीधर के गांव पहुंचने पर लंबे समय बाद होली हो रही है। इस दौरान वाचक यह समझने की चेष्टा करता है कि जोगीराय के उल्लास से दर्द फूट रहा है या दर्द से उल्लास! कथांत इतना मार्मिक है कि जैसे यहां पहुंचकर कहानी एक नई ही ऊंचाई पा जाती है।

जीवन स्थितियों की विवशता में फंसे पात्र रामदरश जी की कहानियों में बार-बार आते हैं। 'निर्णयों के बीच एक निर्णय' में भी मध्यवर्गीय

विवशताओं के बीच कैसे एक व्यक्ति सहज नहीं रह जाता और उपेक्षा का शिकार होने लगता है! कवि होते हुए भी, कवियों के बीच भी उसे यही देखना पड़ता है। यही नहीं, उसे अपने ही सिद्धांतों से हटकर दूसरी राह पकड़नी पड़ जाती है। मार्क्सवाद से हटकर, वह न सिर्फ 'कल्याण' पढ़ता है, उसके आधार पर विवाद तक करने लगता है। उसका व्यवहार शरीफ लोगों के प्रति भी आक्रामक हो उठता है। रचना का उसका मार्ग ही परिवर्तित हो जाता है। बाहर तो बाहर, घर तक में कोई उसे सहजता से स्वीकार नहीं कर पाता। खुद उसे भी पत्नी पर यकीन नहीं रह जाता। वह विचित्र फेंटेसी में जीने जरूर लगता है, पर उसे यह बर्दाश्त नहीं कि कोई औरतों को छेड़ता फिरे।

यह कहानी, दबाव में बने मनुष्य के मनोविज्ञान को समझती है। दरअसल, यह ज्ञान नाम का व्यक्ति जीवन में खुद पर लाद दिए गए निर्णयों को भोगने पर अभिशप्त है। उनमें उसकी कोई सहभागिता ही नहीं रही। यहां तक कि उसका विवाह भी उस पर लादा गया एक निर्णय ही है। यही कारण है कि वह दूसरे विवाह के बारे में सोचने लगता है। पर वह खुद पर भी निर्णय नहीं ले पाता। ऐसे में लोगों की दृष्टि में बेचारा बन जाता है। यह स्थितियां उसे दिखावे के व्यवहार पर खींच लाती हैं। यहां आते-आते वह मनोवैज्ञानिक असंतुलन से घिर जाता है। अपनी स्थिति से असंतुष्ट होते हुए भी प्रधानमंत्री तक के कहने पर भी उसका मैनेजर बनना स्वीकार नहीं करता। ख्यालों में ही सही, अपनी इच्छा पर जीता है।

इस कहानी का दूसरा पक्ष वाचक का है, जिसे दुःख है कि वह अपने मित्र के लिए ही कुछ न कर सका। पर कथांत में उसे उन लोगों से वितृष्णा हो आती है जो ज्ञान का उपहास करते हैं। वह कार में उनके साथ बैठा होकर भी ज्ञान से जोर-जोर से बात कर यह जाहिर करता है कि उसे साथ के लोगों की कोई परवाह ही नहीं। यदि व्यक्ति समाज की एक इकाई है, तो समाज के लिए वह उपहास का पात्र भला कैसे हो सकता है! हम उसकी तकलीफ के कारणों को समझने और उन्हें दूर करने की कोशिश के बजाय उससे या तो कन्नी काटने लगते हैं या उसे नगण्य समझ लेते हैं। यह एक तरह का गंभीर स्टडी स्केच भी है।

रामदरश मिश्र का कथाकार अपने समय और उसके प्रभावी कारकों की पहचान भी बड़ी गंभीरता से करता है। बताता है कि कैसे जेनुइन को तो महत्व मिलता नहीं और नेता गण प्रमुख बन बैठते हैं! 'नेता की चादर' जैसी कहानी बताती है कि शिक्षा संस्थानों के अतिथि गृह में भी पढ़े-लिखे व्यक्ति की सुविधा का ध्यान कोई नहीं रखता, जबकि नेता को उसकी मनचाही सुविधाएं बराबर मिलती रहती हैं। यह कहानी ऐसे समाज सेवकों की असल छवि भी उजागर करती चलती है। अच्छी बात यह है कि ऐसे चरित्रों के प्रति आम आदमी की वितृष्णा भी सामने हो आती है।

इसी क्रम में वह एक बुजुर्ग की एक दिन की डीटेल्ड डायरी लिखते हैं- 'आज का दिन भी' में। यहाँ अपनी डेढ़ वर्षीय पोती का साथ है और हैं दिन भर के तमाम कार्य व्यापार। पोती मिट्ठू की इन कार्यों के बीच एक रसवान उपस्थिति है। प्रथम पुरुष की इस कहानी का वाचक यांत्रिक ढंग से बंधकर काम करना नहीं चाहता। लेखक अवश्य है, पर अपने अब तक के लेखन पर ही संतुष्ट है। उसे यह भ्रम नहीं दूसरों की तरह कि अभी उसका श्रेष्ठ लेखन आना शेष रह गया है। उसके लिए मिट्ठू की बाल मुद्राएं रिलीफ का काम करती हैं। कथा का यह वाचक साहित्य, समाज और उसके चलन पर आलोचना दृष्टि रखता है। उसे छोटे-छोटे व्यवधानों से उलझन हो जाती है, पर वह तटस्थ आत्मालोचना भी करता दीखता है कि कुछ को वह उपेक्षा-भाव से क्यों देखता है! उसकी मान्यता है कि लेखन सरल कार्य नहीं, साधना है। उसका समूचा दिन इसी सब में निकल जाता है। पोती सो रही है, तो उसके उठने की फिक्र होने लगती है। फिर एक ख्याल प्रकाश फैलाता है कि लिखना-पढ़ना ही तो सब कुछ नहीं होता, पोती का साथ भी तो हर घड़ी जीवंतता का एहसास कराता है!

यही है रामदरश जी की सहजता। यह जीवन से गहरे जोड़ती है। जहां जीवन के सहज लक्षण नहीं, विमुख हो जाती है। 'उत्सव' ऐसी ही कहानी है। यहां उत्सवहीनता, दिखावे और अनुत्साह को वाचक एक्सपोज़ करता है। वह पाता है कि रंगीन भ्रमों की चमक में सत्य खो जाता है। उसके भीतर का सरल, अकृत्रिम देहात कसमसाता है, लेकिन माहौल की निष्प्राणता और दिखावटी भंगिमाओं में झूठ खुलता जाता है और मुखौटे अनावृत्त होते रहते हैं। अपरिचय के इस माहौल में मुख्य चरित्र खुद को असहज पाता है। उसे लगता है कि सर्वनामों की एक लंबी भीड़ में वह भी एक सर्वनाम बन गया है। उसे घुटन महसूस होने लगती है। अपरिचित भीड़ से वह जल्दी से जल्दी मुक्त हो, निकल जाना चाहता है। उत्सव उसके लिए जैसे एक बोझ में बदल गया है।

रामदरश जी की कहानियों में कहीं चरित्र तो कहीं स्थितियां स्मरणीय बन जाती हैं। वह प्रायः उपलब्ध यथार्थ से असंतुष्ट दीखते हैं। उनके साथ गांव, कस्बे, शहर और महानगर के अनुभवों का एक बड़ा संसार है, पर उनकी कथा-दृष्टि उस जीवन को परिवर्तित करने की पक्षधर है जो संकट में जीने को विवश है। बोधगम्य कथा भाषा में वह खोते जा रहे शब्दों को सहेजते दिखाई देते हैं जो अलग ही तरह से आकर्षित करते हैं और गवंई होते हुए भी अपनी ठसक के साथ चमकते हैं।

काम की खोज में गाँव से शहर गए कथा-नायक की कथा रामदरश जी के यहाँ बार-बार और अलग-अलग रूपों में आई है। इस दृष्टि से 'माँ, सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो' कुछ हटकर है।

कथानायक यहाँ माँ का क्रियाकर्म करके गाँव से लौटा है। अपने परिवार के साथ ही गाँव में जैसी दुर्दशा, भुखमरी, सूखा और उदास खालीपन उसने देखा है, वह शहर तक उसके साथ चला आया है। गाँव में हालत ये है कि बाढ़ आये तो मुश्किल और न आये तो मुश्किल। परिवार के संकट के साथ ही समूचे परिवेश के संकट की फिक्र इस कहानी को बड़ा बनाती है। दुःखद वातावरण के बीच मंत्री का दौरा कथा में कंट्रास्ट उत्पन्न करता है। शहर में अपनी विवशता और माँ की स्मृतियाँ हैं कथा-नायक में। पिता में गाँव के प्रति प्यार है और यह दुःख कि माँ बेटे को अंतिम समय में बगैर देखे ही गुज़र गई। गाँव का जर्जर जीवन है और व्यवस्थाहीन परिवेश जहाँ इलाज के अभाव में जान जा रही है। कहानी दिखावटी और खोखली व्यवस्था के प्रति

विक्षोभ तो व्यक्त करती ही है, समाज के ढोंग को भी बखूबी बेनकाब करती है। दुघई से कथा-नायक की मुलाकात बताती है कि पूरे गाँव में जीवन नहीं, मृत्यु की उदासी पसरी पड़ी है। लोग जीवित रहने के लिए पेड़ की छाल तक खाने पर विवश हैं। और बाजार में समर्थ बाबू साहब की खरीदारी चल रही है। घर से बाहर और घर के भीतर के रुलाने वाले दृश्य ही नहीं, दुघई की मौत बताती है कि मरना एक साधारण बात है। विपरीत स्थितियों में भी महापात्रों का विधान कथानायक को अस्वीकार है। वह माँ की सारी क्रिया संक्षेप में करता है। पड़ोस की बीमार चाची की आंखों में उसे माँ की दृष्टि, करुणा, व्यथा और आर्द्रता नज़र आती है। पिता के साथ पुरातन मूल्य संरक्षित हैं- पुश्तैनी चीज़ें कहीं बेची जाती हैं! इस सबके बीच रेडियो एक बड़ा झूठ उगल रहा है। कथानायक द्वारा उसे बंद कर देना और ज़रूरी काम निबटाने में लग जाना एक नागरिक प्रतिक्रिया है। यह अपने समय की व्यवस्था के प्रति विरोध जताना है।

'खाली घर' में कथानायक साल भर बाद घर आया है। गाँव से दूर वह प्रेस की नौकरी में होने के कारण जल्दी घर नहीं आ सकता। उसका अपना पक्ष है और भाभी का अपना- "जल्दी-जल्दी आया करो बाबू। जाते हो तो आने का नाम ही नहीं लेते।"

प्रथम पुरुष में यह कहानी नायक के गाँव के करीब पहुंचते-पहुंचते अपनी आत्मीय पकड़ बना लेती है। आम के पेड़ के नीचे खड़ा बीनू कथानायक को उसके अतीत का स्मरण करा देता है। अंतर बस यह है कि बीनू की यह प्रतीक्षा एक अबोध प्रतीक्षा है जिसमें वह दिवंगत माँ का इंतजार कर रहा है। चाचा से हुआ उसका संवाद भावुक कर देता है। यह संवाद उसमें बड़ों के प्रति विश्वास और मां के प्रति गहरा लगाव प्रगट करते हैं। कहानी बताती है कि घरनी के बगैर घर कैसा हो जाता है। माँ की अनुपस्थिति में चंपा का समय से पहले बड़ा हो जाना ही नहीं, घर के हर कोने में कथानायक को भाभी के होने का एहसास और जीवन के कठोर यथार्थ के बीच चंपा का पिसते देखना मारक है। सहजता और खुशी परिवार से गायब है। मर मर कर मरी है निमोनिया में भाभी। जैसे उसे अपनी मौत से अधिक परिवार की चिंता हो। बीनू के लिए माँ को खोना असह्य यथार्थ है। पिता विमाता न लाने की ठान बैठे हैं। स्थितियाँ ऐसी हैं कि कथानायक एक बोझ के साथ शहर लौट रहा है। इस बोझ में एक खाली घर है। उसका लौटना भी लाज़मी है और परिवार के दुःख को महसूस करना भी।

परिस्थितिजन्य विवशता ही नहीं, संस्कारजनित पुरुष सत्ताक कठोरता भी रामदरश की कहानियों में खूब प्रकट होती है। 'लड़की' तब की कहानी है जब स्त्री विमर्श का शोर नहीं था। कथानायक शहर से अपने भतीजे के यहाँ आया है। उसका आना ही इस परिवार की समूची व्यवस्था को खोल कर रख देता है। पता चलता है कि एक घर में बेटा-बेटी दो अलग-अलग स्तरों पर जी रहे हैं। बेटे को हक मिला हुआ है कि वह बहन को परेशान करता रहे। बेटी परेशान हो, पर प्रतिरोध न करे। करे तो डपटी जाये। पढ़ने वाली होकर भी भाई के मुकाबले उसे दबकर रहना है। काम से लदी रहे। घर वाले उसकी पढ़ाई के प्रति बेपरवाह हैं। उनकी सोच है कि वह पढ़-लिख कर करेगी क्या? यहाँ तक कि दोनों के भोजन तक में फर्क है। यह परिवार में एक स्वीकृत व्यवस्था है, जहां लड़की होने का अर्थ है- सहना। अधिकार की माँग न करना। तानाकशी बर्दाश्त कर स्वयं को बेवज़ह कुलच्छिनी स्वीकार कर लेना। खामोश रह, बस आदेश पालन करते चले जाना।

कथानायक के साथ इस घर की बेटी का संवाद हिला देता है। यह बताता है कि लड़की को इस व्यवस्था में कुछ भी बुरा नहीं लगता, क्योंकि वह लड़की है।

ठीक इसी प्रकार कहानी 'पिता-पुत्री' भी साफ कह जाती है कि हमारे समाज में बेटी की मर्जी का कोई अर्थ नहीं। गूंगे शिवनाथ की बेटी राधा की शादी उसकी मर्जी के खिलाफ करवा दी जाती है। सामाजिक दायित्व के निर्वाह के ढोंग में यह एक सोची-समझी साज़िश ही है। राधा तो माँ के गुज़रने के बाद अपने पिता का सहारा बने रहना चाहती थी। वह पट्टीदार हरिहर और उनके अनुज कुबेरनाथ के मन के खोट को पहचान न सकी। विवाह के बाद यह खोट उजागर हुआ तो राधा को पिता के साथ-साथ जायदाद से भी हाथ धोना पड़ गया। अच्छी बात यह है कि कथांत में राधा की दृढ़ता के चलते षड्यंत्रकारियों की पोल खुल जाती है। राधा के मन में सूनापन भले फैल गया हो, बदले हुए गाँव के बदले हुए लोग एक्सपोज़ तो हो ही जाते हैं।

रामदरश मिश्र की कहानियाँ घर-परिवार से बाहर की दुनिया को भी अपना विषय बनाती दीखती हैं। अजाने लोगों से दूरी बनाने का भाव उनमें नहीं है। 'एक वह' का अस्सी वर्षीय बुजुर्ग अभावों के बीच किसी तरह जीवन-यापन कर रहा है। अपने इर्द-गिर्द उसे बहुत कुछ बदलता नज़र आता है। पर वह उस बदलाव को देखता भर रह जाता है। अपने में लौट आने की नियति है उसकी। मानस-पाठ उसे वर्तमान की आलोचना की सलाहियत देता है। यह बुजुर्ग अपने वर्तमान से त्रस्त ही नहीं, क्षुब्ध भी है। गरीब का जीना मुहाल कर रही व्यवस्था के बीच वह वोटर नागरिकों पर हँसता है। विभिन्न दलों के चुनाव चिन्ह वाले पोस्टर कहानी में काल का भान करा देते हैं। इस समयविशेष में एक गरीब द्वारा 'गरीबी हटाओ' का नारा पढ़ना और अपनी हैसियत आंकना अपने समय की गहरी आयरनी से जुड़ना है। भतीजे द्वारा गाँव आने का आग्रह का लिखा पत्र लिए ही यह बुजुर्ग चल बसता है! कथांत में उसकी लाश से चिपका पोस्टर बहुत कुछ ध्वनित करता है।

नगर जीवन की कथा में भी रामदरश मिश्र का कथाकार वंचितों का पक्ष लेता दीखता है। 'मुर्दा मैदान' को ही लें! कूड़ा बीनने वालों का एक ठिकाना है राजधानी का एक डंपिंग एरिया। यहाँ शहर भर के कूड़ा-करकट के साथ मरे हुए जानवर तक फेंक दिए जाते हैं। इस जगह से दुर्गंध के कारण गुज़रना भी मुश्किल है, पर गरीब-बेसहारा लोगों के लिए यह एक मुफीद ठिकाना है। हो मुर्दा मैदान, तो हो। कूड़ा बीनते लड़कों की लड़ाई, प्यार और दोस्ती ही नहीं, कठिन जिंदगी के सबक भी यहाँ खूब देखने को मिलते रहते हैं। परिस्थितिवश पढ़ाई छूट जाने और बहन लक्ष्मी के मर जाने पर भी पुलिस कान नहीं देती। वह बाबू को ही दोषी करार देती है। मलखा इस जनविरोधी व्यवस्था से लड़ना चाहता है जिसमें गरीब के लिए कोई स्थान नहीं। और तो और, मंत्री के दौरे के समय ये

सड़क पर आ तक नहीं सकते। यह एक यथार्थमय कथा-रिपोर्ताज़ है जिसमें हमारे समय की कड़वी सच्चाई सामने है।

जो स्थिति वंचित की शहर में है, गाँव में भी उससे बेहतर नहीं। 'सर्पदंश' का गोकुल हरिजन साँप के काट लिए जाने के बावजूद ऊँची जाति वालों के लिए सहानुभूति का पात्र नहीं। साँप के काटे का गाँव में कोई इलाज करने वाला नहीं, इसलिए झाड़-फूंक का सहारा लेना ज़रूरी है। ठीक होने पर उसका आत्मस्वीकार मार्मिक है। उसे अपने मर्द और पिता होने पर लानत महसूस होती है। इस विवशता का मूल कहानी में (प्रधान का जालसाज़ी से गोकुल की जमीन हथिया लेना) खुलता है तो पाठक की सहानुभूति गोकुल को मिलने लगती है। विपरीत परिस्थिति में जहाँ वह साँप के काटे जाने पर मौत स्वीकारने को तैयार था, वहीं बेटे को देख उसमें संघर्ष की शक्ति पैदा होने लगती है। वह प्रधान से साफ़ कहता है कि वह हलवाहा है, गुलाम नहीं। उसके अंत के बाद उसका बेटा अपने जाति भाइयों के साथ मिलकर संघर्ष का मन बना लेता है। वह भावुक हो, पिता की लाश के पास नहीं बैठ जाता। यहाँ कहानी वंचितों में मानसिक परिवर्तन की धमक की पहचान कर एक बड़ा काम करती है।

प्रभावित करने वाली कहानी है- 'वसंत का एक दिन'। कुकुहीवादक की इस कथा को पढ़ते हुए रेणु सरीखा कथा-रस मिलता है। वही गहन संलग्नता, वही प्रवाहमयता और वही प्रभाव। अपने ही गाँव से अलग होने पर विवश जयराम अपनों की ही धूर्तता का मारा है। चाचा-चाची के बर्ताव ने उसका सर्वस्व छीन लिया है। अपने परिवेश से गहरा लगाव ही उसे प्रतिरोध पर विवश करता है। उसका यह प्रतिरोध अपनी ही तथाकथित ऊंची जाति का मानमर्दन करता है। जयराम हरिजन कोदई के घर का जल-अन्न ग्रहण करता है। उसके संवाद ऐसे हैं कि बड़े लोगों की कलई ही खुल जाए। धर्म की आड़ में उनका अधर्म बेपर्द होता है यहाँ।

गाँव की वस्तुस्थिति उजागर करने में कोदई-जयराम संवाद बड़ी भूमिका निभाता है। गाँव में हरिजन टोली को अपने अस्तित्व की पहचान हो चुकी है। वह अब दबाव में नहीं आती। बदले हुए इस गाँव में छोटी जातियों में जीने की आग उत्पन्न हो चुकी है। गोमती सरीखी लड़कियाँ आत्मरक्षा में सक्षम हैं। पर कहानी यही नहीं है। असल कथा है जयराम-फुलवा की। फुलवा के गाने से जयराम उसके प्रति आकर्षित हो जाता है। वह उससे चोरी से नहीं, जाहिरा प्रेम करता है। इस मामले में वह ऊंची जात वालों से अलग है। अपने जीवन के अनुभवों से फुलवा खुद को पापी समझ बैठी है। अपना जैसा दर्द जयराम में लगता है उसे। इसी से वह मन की बात उससे कह बैठती है। उसे जयराम पर यकीन है। बस, अपनी छोटी जात का भय है। जयराम उस पर मर-मिटने को तैयार है। पर उसके चाचा-चाची को यह कतई मंजूर नहीं कि मल्लाह की विधवा बेटी से उसका संबंध हो।

ठीक इसी प्रकार कहानी 'पिता- पुत्री' भी साफ कह जाती है कि हमारे समाज में बेटी की मर्ज़ी का कोई अर्थ नहीं। गूंगे शिवनाथ की बेटी राधा की शादी उसकी मजर्ज़ी के खिलाफ़ करवा दी जाती है। सामाजिक दायित्व के निर्वाह के ढोंग में यह एक सोची-समझी साज़िश ही है। राधा तो माँ के गुज़रने के बाद अपने पिता का सहारा बने रहना चाहती थी। वह पट्टीदार हरिहर और उनके अनुज कुबेरनाथ के मन के खोट को पहचान न सकी। विवाह के बाद यह खोट उजागर हुई तो राधा को पिता के साथ-साथ जायदाद से भी हाथ धोना पड़ गया।

कहानी में जयराम का प्रतिरोध और अपनी बात पर अडिग रहना, प्रेम का सार्वजनिक इज़हार और अपना हिस्सा मांगना समाज में अपराध की तरह देखा जाता है। गाँव की स्थिति यह है कि कोई उसके अन्यायी चाचा का विरोध नहीं करता। यहीं से इस चरित्र में तिक्तता भरती चली जाती है। फुलवा का संघर्ष उस पर नज़र गड़ाए बहनोई से है। जयराम एक इंसान की भांति जीने का इच्छुक है। पर गाँव के जाति-सम्मान को यह स्वीकार नहीं। फुलवा का विवाह जबरन एक मल्लाह से करा दिया जाता है। साल भर में वह चल बसती है। इस औपन्यासिक मिजाज की कहानी में बड़े सहज ढंग से यह खुलता है कि पलाश फूलने पर जयराम हर साल गाँव क्यों आता है! यह फुलवा की याद है उसमें। दुखांत इस कहानी में जयराम का अंत भी गाँव में ही लिखा था। वह नेकी करते हुए मृत्यु को प्राप्त होता है। रेणु के कथा-चरित्रों की भांति जयराम-फुलवा पाठक के मन में सदा के लिए घर कर जाते हैं। कुल मिलाकर रामदरश मिश्र की कहानियाँ पढ़ना एक बड़े कालखण्ड की वास्तविकता को समझना है।

आप इन कहानियों को पढ़ेंगे, तो रुलाई को चांपना, छूत छुड़ाना, हूंसा देना, भरभट्ट हो जाना, फिलासफी पहनकर घूमना, हूल सी मारना, डंक मारती हुई सुबहें, चमोरने बैठ जाना, झझक्क में सब कुछ डूब जाना, भेंट अंकवार, जोरू की करनी, हबसकर रोना, कोइरी ससुर पढ़ने चले हैं सरीखे अनेक प्रयोग कथा भाषा को समृद्ध करते नज़र आएंगे। यहां बनावटी भाषा नहीं, जीवन-व्यवहार से उपजी सहज-सरल ज़बान है जिसका मूल रूप हिन्दुस्तानी ज़बान में बसा है।

रामदरश मिश्र ऐसे कहानीकार हैं जिनकी रचनाओं में अऔत्रिम बोलचाल, सहज संवाद, ध्वनि आधारित देसज उच्चारण और प्राकृतिक स्वर की गंध भाषा एक अलग ही प्रकार का प्रभाव सृजित करती है। शब्दों की माकूल रंगत इसे और गहरा कर देती है। उनका व्यवहार सजह भाव से अपना अर्थ ध्वनित करता जाता है। भाषा में वह जीवन से साक्षात करते हुए, वहीं से स्फूर्त भाव से शब्द उठा लेते हैं। लपसती, तिजहर, जोगाड़, गोबरहा, चिरई-चुरमुन, जड़इया, लट गईं, परसंग, तउवा, गियानी, कइसे, अफसरवन, झांय-झांय, दरद, सरऊ, तिर तितें तिर तेतें, फु-फु-फु-रे-ए-ए, कमिसनर, छीमियाँ, हियाव, ससरू, कलट्टर, पइसा, लेहाज, थुड़ी, जिनगी, दुरदसा, मुँहझौंसे, बामन जैसे शब्द जिस आत्मीय लहर का वातावरण बनाते हैं वह आज की कृत्रिम शहरी कहानी में दुर्लभ ही है। ◆

पता : सी-3/51, सादतपुर, दिल्ली-110090
मो. : 9013266057

समय के सहचर

नीलम चतुर्वेदी

जीवन के आठ दशक लिखने-पढ़ने में गुज़ार देने के बावजूद डॉ. रामदरश मिश्र का अपनी मिट्टी से नाता गहरा ही हुआ है। बीसवीं से इक्कीसवीं शताब्दी तक के उनके रचनात्मक सफर में दोहराव नज़र नहीं आता।

साहित्य अकादमी और सरस्वती सम्मानों से सम्मानित हिन्दी साहित्य संसार के बहुआयामी रचनाकार डॉ. रामदरश मिश्र, रेणु और प्रेमचंद के बाद की पीढ़ी के ग्रामीण सम्वेदना के अत्यंत महत्वपूर्ण लेखक हैं। 15 अगस्त, 1924 को गोरखपुर, उत्तर प्रदेश में जन्मे रामदरश जी का कृतित्व 100 से ज्यादा कृतियों में विन्यस्त है।उनकी खिली-खुली मुस्कुराहट दो शताब्दियों में फैले उनके रचना-संसार के वैविध्य की सम्पूर्णता-संतुष्टि की परिचायक है।

डॉ. रामदरश मिश्र के समग्र लेखक व्यक्तित्व पर विचार करते समय साहित्य के तमाम प्रतिमान सामने आ खड़े होते हैं। उनका निजी व्यक्तित्व, कवित्व, किस्सागोई, गज़लगोई, गद्य-वैभव, संस्मरण, ललित निबंध, यात्रा-वृत्तांत और उनके गीत। सब मिलकर एक ऐसे लेखक की तस्वीर बनाते हैं जिसमें सदियों की पीड़ा, आह्लाद, उत्सव, रोज़ बदलती दुनिया के अनुभव और साहित्य के प्रगतिशील मूल्य एक साथ मौजूद हैं।

जीवन के आठ दशक लिखने-पढ़ने में गुज़ार देने के बावजूद डॉ. रामदरश मिश्र का अपनी मिट्टी से नाता गहरा ही हुआ है। बीसवीं से इक्कीसवीं शताब्दी तक के उनके रचनात्मक सफर में दोहराव नज़र नहीं आता। शिल्प का तिलिस्म रचने के बजाय रामदरश जी की रचना शैली अनुभव की सघनता अपनी सादगी की सम्पन्नता से पाठक को बांध लेती है। हर साल कुछ नयी किताबें लिखने को निरंतर आतुर। उम्र को अपने ऊपर हावी होने देने के बजाय वे जीवन के हर पल को एक उम्र की तरह जीते नज़र आते रहे। यह लिखना-पढ़ना-विमर्श कभी उन्हें रीतने नहीं देता था।

आवास पर नवोदित कवियों के साथ

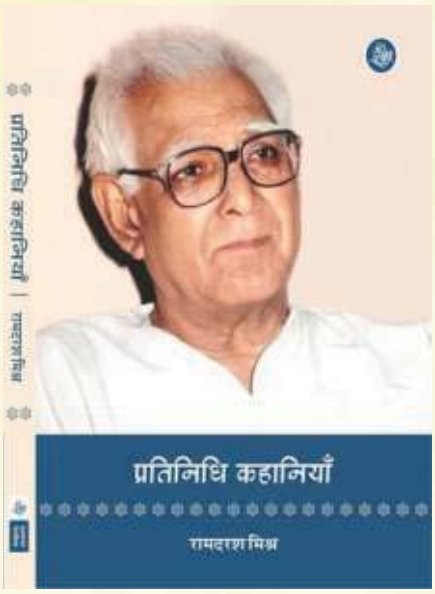

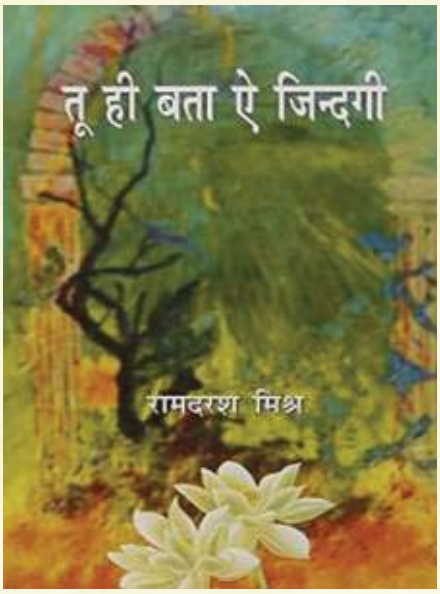

डॉ. रामदरश मिश्र के समग्र लेखक व्यक्तित्व पर विचार करते समय साहित्य के तमाम प्रतिमान सामने आ खड़े होते हैं। उनका निजी व्यक्तित्व, कवित्व, किस्सागोई, गज़लगोई, गद्य-वैभव, संस्मरण, ललित निबंध, यात्रा-वृत्तांत और उनके गीत। सब मिलकर एक ऐसे लेखक की तस्वीर बनाते हैं जिसमें सदियों की पीड़ा, आह्लाद, उत्सव, रोज़ बदलती दुनिया के अनुभव और साहित्य के प्रगतिशील मूल्य एक साथ मौजूद हैं।

रचना के विभिन्न पड़ाव :

डॉ. रामदरश मिश्र पर प्रेमचंद के बाद सबसे ज्यादा शोध प्रबंध लिखे गए हैं। लगभग पौने चार सौ के आस-पास। उनकी स्वयं की 80 से ज्यादा किताबें विभिन्न विधाओं में प्रकाशित हैं। कहानी, कविता, उपन्यास, गज़लों के बावजूद मूल सम्वेदना उनमें प्रमुख है। रामदरश जी बोलते हैं तो लगता है कि साहित्य की एक सदी बोल रही है। अपने संस्मरणों को उन्होंने 'सहचर है समय' नाम दिया था। वास्तव में वे समय के सहचर हैं।

डॉ. रामदरश मिश्र की रचनात्मक दुनिया में सैंकड़ों कहानियाँ व दर्जनों उपन्यास शामिल हैं। 1950 के आस-पास कहानियों में आए मिश्र जी ने किस्सागोई की प्रेमचंद वाली लीक अपनायी। उनके निकट कहानी का अर्थ पठनीयता थी। समाज के सुख-दुःख को रचना में सहेजते रहे। उनकी कहानियाँ प्रेमचंद के बाद के गाँव का आईना हैं। हर स्थिति में उनका कथाकार गरीबों, बदहालों, बूढ़ों, स्त्रियों, दलित पात्रों का पक्षधर बना दिखाई देता है। 'जमीन', 'सर्पदंश', 'एक वह', 'नेताजी की चादर', 'सड़क', 'विदूषक', 'माँ', 'सन्नाटा' और 'बजता हुआ रेडियो' उनकी बहुचर्चित कहानियाँ हैं। रामदरश मिश्र की कहानियों की परिधि व्यापक है, उनकी चिंताओं का फलक विस्तृत है लेकिन एक बात पर उनका ज़ोर बराबर बना रहा-कहानी की पठनीयता पर। उनकी कहानियाँ उस पाठक वर्ग को भाएँगीं जो कहानी में आज भी किस्सागोई को ढूंढ़ते हैं।

'तना हुआ इंद्रधनुष', 'भोर का सपना', 'पड़ोस की खुशबू' उनके यात्रा वृत्तांत हैं। 'स्मृतियों के छंद' में अनेक वरिष्ठ लेखकों, गुरुओं, मित्रों आदि के आत्मीय संस्मरण हैं। डॉ. रामदरश मिश्र ने आलोचना, कविता और कथा के विकास तथा उनके पड़ावों की गहरी पड़ताल की है। कुछ उल्लेखनीय शीर्षक हैं- 'हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा', 'हिंदी कहानी : अंतरंग पहचान', 'हिंदी कविता : आधुनिक आयाम', 'छायावाद का रचनालोक'। ये उनकी महत्वपूर्ण समीक्षात्मक किताबें हैं। ललित निबंध भी लिखे हैं जो 'कितने बजे हैं?', 'बबूल' और 'कैक्टस' में संग्रहीत हैं।

डॉ. रामदरश मिश्र मूलतः कवि थे। स्वभाव से भी और रचनात्मक रूप से भी। 1951 में उनका पहला काव्य संग्रह 'पथ के गीत' प्रकाशित हुआ। अब तक नौ कविता संग्रह प्रकाशित हैं। कुछ प्रमुख शीर्षक हैं- 'बैरंग-बेनाम चिट्ठियाँ', 'पक गई है धूप', 'कंधे पर सूरज', 'दिन एक नदी बन गया', 'जुलूस कहाँ जा रहा है', 'आग कुछ नहीं बोलती', 'बारिश में भीगते बच्चे' और 'हंसी ओठ पर आँखें नम हैं'।

इस प्रकार यह अनूठा रचनाकार पिछली सदी की तमाम बड़ी घटनाओं का साक्षी रहा है और इस शताब्दी के दो दशकों में भूमंडल के तमाम बदलावों को देखा-जाना है। उनके व्यक्तित्व का तेज और वाणी का ओज किसी भी युवा को मात दे सकता है। धीरे-धीरे लम्बी रचनाओं का स्थान कविताओं और गज़लों ने ले लिया। गाहे-ब-गाहे वे छंद का प्रयोग करते भी नजर आते हैं। परम्परा का जो भी अवदान है, उसके प्रति वे अपना रचनात्मक आभार व्यक्त करने से नहीं चूकते। कहते हैं उम्र बढ़ने के साथ-साथ जीवन में बचपन की वापसी भी होती है। रामदरश मिश्र में नए के प्रति उत्सुकता और पुराने को सहेजने का अद्भुत संतुलन दिखाई देता है। उनकी स्मृति में गीत-गज़लों की पूरी फसल सुरक्षित नज़र आती है :-

था गाँव में तो देखता था शहर का सपना
लगा पुकारने सा गाँव जब शहर आया!
मेरी अजीब जिंदगी मुझे दे अब आराम
मुझे दिए थे काम जो-जो वे मैं कर आया!

गज़लें और रामदरश मिश्र :

बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे
खुले मेरे ख़्वाबों के पर धीरे-धीरे!

कविताएँ रामदरश मिश्र की रचनात्मकता का पुराना ठीहा हैं तो गजलें उनके कवित्व का नया विस्तार। हिंदी गजलों का रुख़ जो दुष्यंत कुमार ने मोड़ा और उससे जो एक नयी परम्परा का आगाज़ हुआ, उसी परम्परा की एक कड़ी हैं- रामदरश मिश्र। अब तक उनके कई गज़ल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं- 'बाजार को निकले हैं लोग', 'हँसी ओठ पर आँखें नम हैं', '51 गजलें व तू ही बता दे ऐ जिंदगी', 'सपना सदा पलता रहा', 'दूर घर नहीं हुआ', 'ऐसे में जब कभी'। 'बाजार को निकले हैं लोग' के साथ वे गजलों की दुनिया में दाख़िल हुए। गज़लें लोकप्रिय हुईं। गीतों से फोकस गज़लों पर आ गया :-

आज प्यासी खड़ी इमारत है
कल यहीं था कोई कुआँ यारों!
दुनिया की बेशुमार दौलतें लिए हुए
रोटी को परेशान सी इक्कीसवीं सदी!

समय के बदलते मिजाज़ को रामदरश जी ने एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया और खूब डूबकर लिखा। एक नज़र उनके गज़ल संग्रहों के शीर्षकों पर डाली जाए तो उनकी दृष्टि और सृष्टि की मौलिकता को रेखांकित किया जा सकता है। गहरी मानवीय सम्वेदना, शब्दों की सादगी, जीवन के मामूली से लगते प्रसंगों में सार्थकता पकड़ती उनकी दृष्टि :-

आया था जिस गुफा से निकलकर उसी में क्यों
पूछो तो आज लौट के जाता है आदमी!
जोड़ता बचपन को था पशु-पक्षियों की पीर से
आज नानी और दादी का फसाना है कहाँ?

ग़ज़ल इधर जिंदगी की दुश्वारियों से रू-ब-रू हुई है। वह सत्ताधारियों की कारगुज़ारियों पर काँटे की तरह चुभती है। तभी वे एक गज़ल में कहते हैं- जी हाँ, जी हाँ वहाँ एक चौपाल थी/देखिए अब वहाँ कारखाना हुआ और जब सियासत के शिकारी गाँवों में सफेदपोश बनकर दाख़िल होते हैं तो जनता के भीतर से जो भय उठता है, रामदरश जी उसे इस तरह बयां करते हैं :-

दादा जी इन दिनों गाँव में कुछ शरीफ जन आए हैं
ना जाने क्यों इन्हें देख कर लोग बहुत घबराए हैं!
सहम-सहम के बह रहा है नदी का पानी
हवा बहार की कैसी डरी-डरी-सी है!

उनकी गज़लों के विषय बहुरंगी हैं। जीवन के कार्य-व्यापार से जुड़ी छोटी-बड़ी अनुभव यात्रा के कुछ बहुत चुभते हुए प्रसंगों को उन्होंने गज़लों में जगह दी है :-

बस गया हूँ दोस्तो, दिल्ली शहर के बीच यों तो
घर मेरा अब भी वहीं का वहीं, गोरखपुर जिला है!
हम हैं तुम हो, तुम हो हम हैं
छोटे-छोटे सुख क्या कम हैं!

रामदरश मिश्र की ग़ज़लों का संसार ख़ासा भरा-पूरा हो चुका है। गज़लों की खूबी यह है कि जो पढ़ता है, उसमें अपनी बात पाता है। इस मायने में उनकी ग़ज़ल-यात्रा ग़ज़ल के मूल प्रवाह की सहयात्री कही जा सकती है। वक़्त को बहुत नज़दीक से बहुत लम्बे समय तक देखने के बावजूद रामदरश जी अपनी सादगी से उसके झँझावातों के प्रहार झेलते आए हैं। जीवन जीने की उनकी यह अदा स्पृहणीय थी!

व्याप जाती है घुटन जब जिंदगी की साँस में
अपनी कविताओं के पंखों से हवा करता हूँ मैं!
हम मिटाते रहे समय के निशान
तुमने यादों भरी सदी दी है!

◆

पता : एम49-बी, अडानी सम्सारा,
सेक्टर-60, गुड़गाँव-122001
मो. : 7042151049

डॉ. रामदरश मिश्र मूलतः कवि थे। स्वभाव से भी और रचनात्मक रूप से भी। 1951 में उनका पहला काव्य संग्रह 'पथ के गीत' प्रकाशित हुआ। अब तक नौ कविता संग्रह प्रकाशित हैं। कुछ प्रमुख शीर्षक हैं- 'बैरंग-बेनाम चिट्ठियाँ', 'पक गई है धूप', 'कंधे पर सूरज', 'दिन एक नदी बन गया', 'जुलूस कहाँ जा रहा है', 'आग कुछ नहीं बोलती', 'बारिश में भीगते बच्चे' और 'हंसी ओठ पर आँखें नम हैं'।

असम के पूर्व गवर्नर भीष्म नारायण सिंह के साथ

जीवन को समग्रता में देखता लेखन

योगीन्द्र द्विवेदी

हिन्दी साहित्य सेवा के लिए साहित्य अकादमी का प्रतिष्ठित पुरस्कार भले ही उन्हें कविता के लिये मिला हो, अपने उपन्यासों में भी डॉ. रामदरश मिश्र जी का लेखन पूरी तरह मुखरित है।

साहित्य विशेषकर उपन्यास की चर्चा चली नहीं, मानों आप एक समूचे समाज, कालखण्ड और इसके आरोह-अवरोह से परिचित हो रहे हों, उसमें डूब-डूब रहे हों। कबीर के शब्दों में 'जो डूबा सो पार' को आत्मसात कर रहे हों। इस विराटता को सहेजना और शब्द देना सामान्य लेखन-कर्म नहीं है, पर जो अपने आख्यान को उपन्यास जैसे विस्तारित फलक पर अभिव्यक्ति देने में सफल होते हैं, उनकी गणना कालजयी लेखकों में होती है। 'गोदान' हो या 'झूठा सच', 'मानस का हंस' हो या 'चित्रलेखा', 'रागदरबारी' हो या 'शेखर : एक जीवनी', 'वैशाली की नगरवधु'/ 'वयंरक्षामः' आदि- हिन्दी साहित्य की ये औपन्यासिक कृतियां स्वयं में किसी मील स्तम्भ से कम नहीं है। हिन्दी ही नहीं, भारतीय भाषाओं विशेषकर बांग्ला में 'गणदेवता' हो या 'देवदास', 'थैंक्यू मिस्टर ग्लाड' या ऐसे ही अन्य मराठी/अन्य भाषाभाषी उपन्यास-भारतीय भाषाओं के औपन्यासिक संसार का यह सिलसिला दूर तक जाता है। इतना विविधतापूर्ण कि समेटे न सिमटे। एक ही समय में साहित्य की गरिमा, लोक संस्कृति और परम्परा की विविधताएं और मनुष्य की ऊँचाइयों व पतन के बीच मानवीय रास्ते की तलाश।

यह क्रम अनवरत जारी है। वैश्विक ही नहीं, विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपन्यासों की न केवल भरी-पूरी परम्परा है बल्कि वर्तमान में भी इसे समृद्ध बनाने में कुछ उठा नहीं रखा जा रहा है। वैसे तो साहित्य की मूलभूत विशेषता ही है तमाम अंधेरों के बीच भी उजाले की तलाश, उसमें विश्वास बनाये रखना, परन्तु मानना होगा कि उपन्यास शैली में इसकी मुखरता प्रायः अपनी मिसाल आप हुआ करती है। वरिष्ठ साहित्यकार और हिन्दी सेवी स्वर्गीय श्रीनारायण चतुर्वेदी जी को कई दशक पहले जब पद्मभूषण से सम्मानित किया गया, तो अपने

धर्मपत्नी सरस्वती के साथ

समाचार पत्र दैनिक 'अमृत प्रभात' के लिए मुझे उनसे बातचीत का अवसर मिला था। बातचीत इसलिए क्योंकि वे साक्षात्कार के दौरान लिखने नहीं देते थे। इसके दौरान जब मैंने उनसे पूछा कि हिन्दी साहित्य को आप किस तरह देखते हैं, तो उनका प्रतिप्रश्न था- 'साहित्य का मतलब समझते हो? मैंने बात बनायी कि मालूम होता, तो आपसे क्यों पूछता। बहरहाल, उन्होंने कहा कि साहित्य का मतलब होता है अपने समय का गवाह होना। है हिन्दी में कोई ऐसी रचना, जो इस कसौटी पर खरी उतरे। मेरी ख़ामोशी को देखते हुए उन्होंने जवाब दिया - यशपाल का 'झूठा-सच', जिसमें भारत-पाक विभाजन की त्रासदी अपनी पूरी कड़ुवी सच्चाइयों के साथ मौजूद है। उपन्यास के बड़े प्रभा मण्डल में ज़मीनी सच्चाइयां ज़्यादा बेहतर ढ़ंग से मुखर होती हैं। यह और बात है कि यह काम साहित्यकार के लिए आसान नहीं होता। उपन्यास का कैनवास बड़ा होता है और उसमें सामाजिक सरोकारों को अभिव्यक्ति की पूरी छूट मिली होती है, हो सकता है इस कारण भी उपन्यास विधा विशेष रूप से चर्चित रही हो।

जाने-माने आलोचक नामवर सिंह ने भी अपने एक आलेख में उपन्यास विधा पर अत्यंत परिपक्व टिप्पणी की है। वे लिखते हैं कि साहित्य का मुख्य सरोकार सामाजिक है। समाज से कटकर रची गयी साहित्य की कोई भी विधा सार्थक नहीं हो सकती और उपन्यास भी इसका अपवाद नहीं है। भारतीय उपन्यास परम्परा के आधुनिक शुरूआती दौर में ही यानि 19वीं सदी के अंत में (जब हिन्दी साहित्य का पुनर्जागरण काल विकसित हो रहा था) अंग्रेज़ी ढ़ंग के नावेल और भारतीय ढ़ंग के उपन्यास के अंतर को लेकर तीखी बहस चल रही थी। अंग्रेज़ी ढ़ंग के नावेलों में लाला श्री निवासदास का उपन्यास परीक्षा गुरु (सन् 1882) काफी चर्चित भी रहा। जहां तक भारतीय परम्परा की बात है, ठाकुर जगमोहन सिंह का उपन्यास 'श्यामा स्वप्न' उस दौर का महत्वपूर्ण उपन्यास है। महान बांग्ला लेखक बंकिमचन्द उस भारतीय उपन्यास परम्परा को अपने कालजयी उपन्यासों - दुर्गेश नन्दिनी 1865, कपाल कुण्डला 1866 व मृणालिनी 1869 आदि द्वारा बहुत मज़बूती से आगे बढ़ाते हैं, जो मूलतः संस्कृत से आयी है और जिसकी नींव प्राचीन कादम्बरी, कथा सरित सागर और पंचतंत्र आदि में देखना कठिन नहीं है। उस दौर में कहना न होगा कि ऐसे उपन्यास/कथा साहित्य के अन्तर्गत भारतीय परम्परा का विकास उपनिवेशवाद का भी तिरस्कार है, जिस पर आगे चलकर भारतीय साहित्य की समूची धारा ही आज़ादी के संघर्ष में भी सहायक बनती है।

रामदरश मिश्र की उपन्यास परम्परा इन्हीं सामाजिक सरोकारों का परिवर्ती रूप है। वर्तमान में हिन्दी में 'तमस' और 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' जैसे अनेकानेक प्रतिष्ठित उपन्यासों के लिए जिन महान रचनाकारों को वर्तमान में अप्रतिम औपन्यासिक योगदान के लिए याद किया जाता है, ऐसे वरिष्ठ रचनाकारों में डॉ. रामदरश मिश्र किसी स्थूल परिचय के मोहताज नहीं है।

रामदरश मिश्र की उपन्यास परम्परा इन्हीं सामाजिक सरोकारों का परिवर्ती रूप है। वर्तमान में हिन्दी में 'तमस' और 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' जैसे अनेकानेक प्रतिष्ठित उपन्यासों के लिए जिन महान रचनाकारों को वर्तमान में अप्रतिम औपन्यासिक योगदान के लिए याद किया जाता है, ऐसे वरिष्ठ रचनाकारों में डॉ. रामदरश मिश्र किसी स्थूल परिचय के मोहताज नहीं है।

2024 उनका जन्मशताब्दी वर्ष था। सच तो यह है कि लगभग सात दशक की अपनी साहित्य यात्रा में लगभग हर शैली पर उन्होंने अपनी कलम चलायी, उसे जिया। क्या कविता, क्या कहानी और क्या उपन्यास/संस्मरण/यात्रा वृत्तांत और क्या साक्षात्कार/ आलोचना आदि - सभी को उन्होंने अपनी लेखनी से गौरवान्वित किया। विधा उनके निकट गौड़ रही, अपनी बात कहने के लिए जब जहां जो विधा उन्हें बेहतर मिली, उसमें शब्दों को पिरोया।

हिन्दी साहित्य सेवा के लिए साहित्य अकादमी का प्रतिष्ठित पुरस्कार भले ही उन्हें कविता के लिये मिला हो, अपने उपन्यासों में भी डॉ. रामदरश मिश्र जी का लेखन पूरी तरह मुखरित है। उनके चर्चित कुछ उपन्यास हैं-पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ, सूखता हुआ तालाब, अपने लोग, रात का सफर, आकाश की छत, आदिम राग, बिना दरवाज़े का मकान, दूसरा घर, थकी हुई सुबह, बीस बरस, परिवार, बचपन भास्कर का, एक बचपन यह भी और एक था कलाकार आदि। वैसे तो उनकी साहित्य सेवा का मूल स्वर ही आंचलिकता, स्त्री चेतना और हद दर्जे की गरीबी/शोषण ग्रामीण परिवेश है, पर उपन्यासों में उनकी मुखरता देखते ही बनती है। सामाजिक-आर्थिक विषमताएं उनके निकट आरोपित नहीं है। उनके पात्र आम जनजीवन के निकट अधिक हैं। अपनी तमाम कमज़ोरियों के बीच मनुष्यता की डोर से बंधे, उसके लिए संघर्ष करते हुए। उनके पात्रों का यह संघर्ष बदलते जागरूक समाज की भी अभिव्यक्ति है।

आंचलिकता हो या मानवीय सरोकार, कहना न होगा कि बाज़ारवाद के चलते आज इन पर सर्वाधिक पहरे हैं। सच तो यह है कि बाज़ार की ताकतें ऐसे समाज का निर्माण कर रही हैं, जिनमें अपने शोषण के खिलाफ बोलना लगभग खत्म हो रहा हो, आंचलिकता की सादगी और निजता वही तक स्वीकार है, जहां तक वह बाज़ार के मुनाफे में बाधक नहीं बनती। बाज़ार की ताकतें अब इतनी चालाक हैं कि वे जनता के तमाम सवालों/परम्परागत उपलब्धियों को भी इस तरह पेश कर रही हैं मानो खुद उनका विकास कर रही हो, परन्तु कड़ुवी सच्चाई यही है कि वे सिर्फ और सिर्फ ऐसा समाज चाहती हैं जो उनके मुनाफे और उसके लिए ज़रूरी तंत्र को मज़बूत करने में सहायक हो। आप विसंगतियों के कारणों की पड़ताल न कर सके, इसके लिए हर जतन - संस्कृति/इतिहास - से लेकर कला विषयों की बढ़ती उपेक्षा सम्बन्धी परिवेश आदि को प्रदूषित करने में कुछ उठा नहीं रखा जा रहा है। ज़ाहिर है कि ऐसे में परम्परागत क्षेत्रों/कमज़ोर वर्गों के संघर्ष आदि का महत्व और बढ़ जाता है और इन्हें सार्थक शब्द देते हुए रामदरश मिश्र जैसे वरिष्ठ लेखक अपनी पूरी साहित्य-यात्रा के दौरान आज भी प्रासंगिक हैं।

डॉ. रामदरश मिश्र जी के समूचे लेखन में आंचलिकता, स्त्री के संताप और आम आदमी के सुख-दुःख पग-पग पर दिखते हैं, परन्तु उपन्यासों में इसे पूरी मुखरता के साथ महसूस करना आह्लादित करता है। उनके उपन्यासों में जीवन के यह तमाम सरोकार औपचारिक ढंग से नहीं, बल्कि स्वाभाविक ढंग

से आते हैं और पाठक को भुलाये नहीं भूलते। लगभग आधी सदी पूर्व का उनका चर्चित उपन्यास है 'पानी के प्राचीर'। वैसे तो यह उपन्यास आजादी के संघर्ष विशेषकर 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के आस-पास बुना गया है, परन्तु इसमें जिस तरह से अत्यंत स्वाभाविक ढ़ंग से उन्होंने आंचलिकता, शोषण और आम आदमी के जागरण-प्रसंगों आदि को शब्द दिये हैं, वे अपनी मिसाल आप हैं। उपन्यास भले ही स्वतंत्रता आंदोलन को समर्पित हो, उन्होंने इसे राप्ती नदी की हर साल आने वाली उन बाढ़ के नाम समर्पित किया है, जो पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण जनजीवन को विशेष रूप से पिछली सदी में प्रभावित करती रही है। इस उपन्यास में पूर्वी उत्तर प्रदेश की आंचलिकता और ग्रामीण क्षेत्रों में ज़मींदारों/पुलिस और सरकारी कर्मियों के उत्पीड़न आदि को इस तरह से शब्द दिये गये हैं, वे देखते ही बनते हैं। यहां तक कि ग्रामीण क्षेत्रों में बोली जाने वाली भोजपुरी को उसी तरह उपन्यास में संजोया गया है, जैसे वे व्यवहार में आती हैं। पाठक को असुविधा न हो, इसके लिए अलग से उसका खड़ी बोली हिन्दी में कई जगह पर अनुवाद कथ्य को असाधारण ऊँचाइयां देता है। उदाहरण के लिए ज़मींदारों के शोषण के खिलाफ लड़ते हुए मारे जाने वाले शानधारी की पत्नी सारी लोकलाज भूलकर घर से दौड़ी हुई आती है और कटे हुए पेड़ की तरह लाश पर धड़ाम से गिर पड़ती है। होश आता है तो आंसुओं में भीगे चेहरे के बीच कहती है - 'आरे ए मोर रजवा/रजवा हमके बिसारि/ कहवा गईले रे रजवा/चारों ओरियां चितई ले/तुँहके रे रजवा/कहूँ नाहीं तोके/देखत बाटीं रे रजवा।'

उनका चर्चित उपन्यास है 'पानी के प्राचीर'। वैसे तो यह उपन्यास आज़ादी के संघर्ष विशेषकर 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के आस-पास बुना गया है, परन्तु इसमें जिस तरह से अत्यंत स्वाभाविक ढंग से उन्होंने आंचलिकता, शोषण और आम आदमी के जागरण-प्रसंगों को शब्द दिये हैं, वे अपनी मिसाल आप हैं। उपन्यास भले ही स्वतंत्रता आंदोलन को समर्पित हो, उन्होंने इसे राप्ती नदी की हर साल आने वाली उन बाढ़ के नाम समर्पित किया है, जो पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण जनजीवन को विशेष रूप से पिछली सदी में प्रभावित करती रही है।

आज़ादी के आंदोलन के दौरान के अनेक आख्यान उपन्यास में अपनी पूरी मार्मिकता, कथ्य और संघर्षों के बीच पढ़ते ही बन पड़ते हैं। जिस तरह से आज़ादी मिलती है, देश की समूची जनता की उम्मीदें मुखर होती हैं, उसे इस उपन्यास में पूरी ईमानदारी के साथ डॉ. रामदरश मिश्र ने जो शब्द दिये हैं, वे अपनी मिसाल आप हैं और साहित्य के किसी भी गम्भीर अध्येयता के लिए उनके ऐसे उपन्यासों को पढ़ना और आत्मसात करना लगभग अनिवार्य है। इस उपन्यास का अंत आज़ादी की घोषणा से होता है और ऐसे में कैसे शोषक ताकतें रंग गिरगिट की तरह रंग बदलती हैं, गांधी बाबा की जय बोलने के लिए आगे आने की कोशिश करती हैं, ऐसे प्रसंग भी उपन्यास की उपादेयता और बढ़ाते हैं। 'पानी के प्राचीर' शीर्षक एक ओर जहां राप्ती नदी की विभीषिका को सामने रखता है, वहीं अंग्रेज़ों और उनके देशी तंत्र के शोषण की समाप्ति का उद्घोष सरीखा है। लेखक अपने उपन्यासों की भाषा प्रवाह और कथानक के कसाव को लेकर

कितना सर्तक हो सकता है, इसका उदाहरण भी यह उपन्यास है। इसके दूसरे संस्करण को उन्होंने काफी परिवर्तित किया है, जो प्रायः कम होता है।

उनका एक और चर्चित उपन्यास है रात का सफ़र। सामाजिक विसंगतियों पर चोट उनके लेखन की मौलिकता है, स्वाभाविक और आम ज़िंदगी के उतार-चढ़ावों से भरपूर। सो इसमें भी मध्यवर्गीय एक परिवार का चित्रण है, जिसमें उच्च सरकारी पद पर कार्यरत पिता अपनी पढ़ी लिखी बेटी ऋतु के हाथ पीले करने के लिए डॉक्टर दामाद का चयन करता है। बेटी का वैवाहिक जीवन शुरू से ही कांटों के बीच से गुज़रता है। पति-पत्नी के बीच एक 'दूसरी' भी थी पहले से ही, इसलिए। वैसे डॉक्टर पति उसकी सुख सुविधा का पूरा ध्यान रखता, पर उसके होने का कोई अर्थ नहीं था पारस्परिक सम्बन्धों की अनुपस्थिति में। ऋतु को अक्सर याद आती एक लोक गीत में मुस्काते उस वैवाहिक जीवन की, जिसमें पत्नी कहती है - 'आगि लागि, घरि जरिगा, बड़ा सुख दीन्हि/पियू के हाथ घयलवा भर-भर दीन्हि।' साथ-साथ पारिवारिक जीवन को सफल/सुरक्षित बनाना तो दूर, यहां तो उसकी याद भी उसे आंसुओं में भिगो जाती। फिर ख़ुद ही स्वयं को दिलासा देती - 'वक्त ने हमारा साथ नहीं दिया, लेकिन वक्त सबके साथ हमेशा कहां रह पाता है? इतने बड़े देश में जो लाखों अभागे आंखों में अभिशाप की काली छाया लिए घूमते हैं, क्या वक्त उनके साथ हैं? जो लोग जब परिणीता बहुओं को छोड़कर पेट भरने के लिए सात समुंदर पार का निर्वासन सहते हैं, वक्त उनके साथ होता है? ऋतु, तू अपने को भाग्यशाली समझ कि 22 साल तक वक्त ने तुम्हारा साथ दिया है। वह हर ऋतु में तेरा हमजोली बन कर खेतों में, बगीचों में, स्कूलों में, कॉलेजों में तेरे साथ खेलता रहा है, वह तेरे लिए फूल लाता रहा है, हंसता-खिलखिलाता रहा है, गाता रहा है और भविष्य के सपने सजाता रहा है।'

डॉ. रामदरश मिश्र अपने अधिकांश उपन्यासों में इस 'सफ़र' को मानो नया आयाम देते लगते हैं। हर उपन्यास के साथ ताज़गी का एहसास, हर रचना के साथ मानो बांहे फैलाये खड़ा जीवन, अपनी तमाम विसंगतियों के बावजूद उसकी जीत में विश्वास लिए। वह अपने लेखन में डूब-डूब जाते हैं। अनुभव रहा है कि जब आप किसी महान लक्ष्य के लिए समर्पित होते हैं, तो प्रायः उसकी उपलब्धियां अपनी मिसाल आप होती है।

समझौते करते-करते हारने के बाद अंत में वह अपने वैवाहिक जीवन की त्रासदी से आख़िरकार छुटकारा लेती है और मायके लौट रही है। पिता के साथ बनारस। रात्रि-यात्रा के छः घंटे हों या वैवाहिक जीवन यात्रा के छः साल, उसे विश्वास है कि आख़िरकार सुबह होगी। ट्रेन गन्तव्य पर पहुंचेगी और जीवन के भी नये क्षितिज खुलेंगे। क्या होगा, भविष्य तय करेगा, पर वह धारा के विपरीय तैरने का साहस करती है। ठीक 'देवदास' की पार्वती की तरह। जो जीवन में क्या-क्या नहीं सहती, पर आख़िरकार एक दिन जब अपना वादा पूरा करने के लिए 'देवदास' उसकी ससुराल पहुंच जाता है, उसके ज़मींदार पति की हवेली के सामने पीपल के पेड़ के नीचे आख़िरी सांस लेता है, तो उसका ही नहीं मानो समूची स्त्री जाति का धैर्य वर्जनाएं तोड़ता है। पार्वती चीखती और रोती हुई 'देवदास' कहते हुए घर के बड़े से फाटक की ओर भागती है और उतनी ही तेजी से जमींदार के आदेश पर वह बंद भी हो जाता है। फाटक बंद भले ही हो गया हो स्त्री जाति पर लगे तमाम पहरो का प्रतीक बन कर, फिर भी उसका विद्रोह तब भी अमर था, आज भी है।

जीवन और उसकी ऊँचाइयों के प्रति विश्वास कभी ख़त्म नहीं होता, तमाम झंझावातों के बीच भी 'रात के सफ़र' की बात चली तो याद आता है यशपाल का चर्चित उपन्यास 'बारह घंटे'। यहां भी दो स्त्री पुरुष साथ-साथ एक रात बिताते हैं। शाम को उनकी मुलाकात एक सिमेट्री में होती है। दोनों उसके बाहर के कमरे में अपने-अपने प्रियजन की समाधि पर फूल चढ़ाने के बाद उनकी यादों में खोये। दोनों एक दूसरे का परिचय लेते हैं और अपने-अपने प्रियजन की कहानी सुनाते हुए कई घंटे बिता देते हैं। रात गहराने लगती है। स्त्री को कही दूर जाना है। वैसे भी पति के बिना उसके लिए घर अर्थहीन अधिक है, फिर भी एक सीमा से अधिक दुःख की अभिव्यक्ति नहीं। अचानक पुरुष निकट के ही अपने आवास पर रात में रुक जाने का अनुरोध करता है। स्त्री मान जाती है। रात के 12 घंटों में फिर दोनों अपनी अधूरी जीवन यात्रा दोहराते हैं। समान दुःख की नज़दीकियां, बस इतना ही। अगली सुबह फिर दोनों अपनी-अपनी दुनिया में लौट जाते हैं। यह उपन्यास भी जिस तरह रात के 12 घंटों के 'सफ़र' में जीवन के सतत प्रवाह को शब्द देता है, अद्भुत है।

डॉ. रामदरश मिश्र अपने अधिकांश उपन्यासों में इस 'सफर' को मानो नया आयाम देते लगते हैं। हर उपन्यास के साथ ताज़गी का एहसास, हर रचना के साथ मानो बांहे फैलाये खड़ा जीवन, अपनी तमाम विसंगतियों के बावजूद उसकी जीत में विश्वास लिए। वह अपने लेखन में डूब-डूब जाते हैं। अनुभव रहा है कि जब आप किसी महान लक्ष्य के लिए समर्पित होते हैं, तो प्रायः उसकी उपलब्धियां अपनी मिसाल आप होती है। यह लक्ष्य रामदरश मिश्र जी के लेखन ख़ासकर उपन्यासों पर भी प्रभावी होता है। उनके 15 उपन्यासों में चार काफी विस्तारित है और 11 छोटे भले ही हो, अपनी बात कहने में पूरी तरह सक्षम है। पाठक उनमें डूबता-उतराता है, पर कथा का प्रवाह कहीं बाधित नहीं होता। विभिन्न भारतीय भाषाओं में उनके कई उपन्यासों मसलन अपने लोग, बिना दरवाज़े का मकान और रात का सफ़र आदि के अनुवाद हो चुके हैं। आंचलिकता में डूबे, जीवन के तमाम कहे-अनकहे पहलुओं के साथ और सबसे अधिक मानवीय सरोकारों की अभिव्यक्ति के साथ खड़े दिखते हैं उनके उपन्यास। एक ऐसा समर्पित लेखन जो स्वाभाविक है और मानवीय गरिमा की जीत में विश्वास रखता है, उसे शब्द देने में पूरी तरह सफल भी। यही ऊँचाइयाँ डॉ. रामदरश मिश्र के समूचे साहित्यिक व्यक्तित्व को भीड़ में भी अलग से उजागर करती हैं। उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि, नमन। ◆

पता : 355/123ख, आलमनगर, लखनऊ
मो. : 9305894597

पानी के प्राचीर और जल टूटता हुआ

आंचलिक सौन्दर्य की चटख़ तस्वीर

प्रदीप उपाध्याय

भारत की आत्मा आज भी उसके गांवों में ही बसती है। बेशक महानगरीय जीवन की चकाचौंध और आपाधापी ने हमारे जीवन मूल्यों, नज़रिये और सोच को आक्रांत कर रखा हो लेकिन गांव और कस्बे में ही असली हिंदुस्तान का दिल धड़कता है।

वरिष्ठ साहित्यकार रामदरश मिश्र के सुदीर्घ जीवन के धनी रहे। विगत छियासठ वर्षों से अधिक समय से चल रहा उनका लेखन अनवरत जारी रहा- सितार के विलम्बित राग की तरह जिसकी झंकार और मद्धम स्वर लहरियां बेशक आपके कानों तक न पहुंची हों लेकिन वह राग और उसके अस्फुट स्वर ज़रूर आपके कानों में रस घोलते चले आ रहे होंगे। बगैर किसी वाद-विवाद अथवा गुटबाजी में पड़े रामदरश जी लगातार लिखते रहे हैं। उन्होंने अनेक उपन्यास लिखे हैं लेकिन उनकी जो ख्याति और पहचान -पानी के प्राचीर' तथा 'जल टूटता' हुआ की सर्जना के उपरांत बनी, वह आज भी अमिट और चिर स्थायी है। चाहे फणीश्वर नाथ रेणु का 'मैला आंचल' रहा हो या फिर राही मासूम रज़ा का 'आधा गांव' अथवा गुलशेर खान शानी का 'काला जल', हिंदी साहित्य में आंचलिक उपन्यास हरदम छाये रहे। इन्होंने अपने कथ्य और शिल्प से एक अनूठे संसार की छवि प्रस्तुत की। इसी श्रेणी में आप बेहद सम्मान और अपनापे के साथ 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' को शामिल कर सकते हैं। यह दोनों उपन्यास पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले की ग्रामीण पृष्ठभूमि को बेहद प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। पानी के प्राचीर का काल स्वाधीनता आंदोलन से पूर्व का है जबकि जल टूटता हुआ आज़ादी के बाद के दौर की कथा है।

भारत की आत्मा आज भी उसके गांवों में ही बसती है। बेशक महानगरीय जीवन की चकाचौंध और आपाधापी ने हमारे जीवन मूल्यों, नज़रिये और सोच को आक्रांत कर रखा हो लेकिन गांव और कस्बे में ही असली हिंदुस्तान का दिल धड़कता है। रामदरश जी हिंदी के उन रचनाकारों में से हैं, जो अपने सृजन में सदैव ग्राम चेतना से जुड़े रहे। भारतीय ग्राम्य जीवन के प्रति उनका असाधारण आकर्षण रहा। उनकी रचनाओं विशेषकर उपन्यासों तथा कहानियों में ग्रामीण जीवन के यथार्थ का निरूपण देखने को मिलता है। रामदरश मिश्र का पहला उपन्यास पानी के प्राचीर 1961 में प्रकाशित हुआ था। जल टूटता हुआ, सूखता हुआ तालाब और बीस बरस उनकी अन्य प्रमुख कृतियां हैं जिनमें ग्रामीण पृष्ठभूमि देखने को मिलती है। पानी के प्राचीर में गोरखपुर जिले की दो नदियों राप्ती और गौर्रा के मध्य स्थित कछार क्षेत्र के एक गांव की दारुण कथा से पाठकों का साक्षात्कार होता है। यह कहानी आज़ादी के पहले से शुरू होकर स्वाधीनता प्राप्ति तक पहुंचती है। इसमें पांडेपुरवा नामक गांव की अभावग्रस्त दशा, वहां व्याप्त गरीबी, पिछड़ापन, ज़मींदारी राज की कुरीतियों तथा अमानवीय शोषण का चित्रण किया गया है।

पानी के प्राचीर का प्रमुख ध्येय कछार के दुःख-दर्द को जीवंतता के साथ प्रस्तुत करना रहा होगा। यह अधिक रागात्मक और प्रामाणिक इसलिए भी लगता है क्योंकि यह उनके जन्म स्थान से जुड़ा हुआ है। रामदरश जी मूल रूप से गोरखपुर के रहने वाले हैं। पानी के प्राचीर का केंद्रीय पात्र नीरू है। नीरू जहां जाता है कथानक उसी दिशा में मुड़ जाता है। इस उपन्यास की कथा होली के प्रसंग के साथ शुरू होती है। होली का प्रसंग अपने भीतर अनेक

छोटे-मोटे प्रसंग समेटे हुए है। कहीं निरबल तेली की कथा है तो कहीं कहार रामदीन के भूतों के टीले के प्रसंग के साथ पांडेपुरवा और पकडिहा के लोगों की सालों से चली आ रही अदावत के किस्से मौजूद हैं। चित्थू बाबा की उप कथा है तो नीरू-गेंदा के प्रसंग भी, नीरू और संध्या के बीच प्रेम का चित्रण नज़र आता है, साथ ही गेंदा-महेश के बीच लुकाछिपी देखने को मिलती है। महेश द्वारा नीरू का अपमान, उसकी गरीबी का मज़ाक उड़ाना समेत अनेक उपकथायें मौजूद नज़र आती हैं। वैसे इस उपन्यास में घटनाओं के क्रम में तारतम्य नहीं नज़र आता बल्कि एक किस्म का बिखराव ही देखने को मिलता है। अलबत्ता एक केंद्रीय पात्र के रूप में पूर्वांचल के एक अभावग्रस्त और पिछड़े हुए गांव की छवि जरूर उभरती है। यही इसे आंचलिकता का पुट प्रदान करता है। यही इस उपन्यास का केन्द्रीय तत्व है।

होली के प्रसंग में निरबल तेली के गोहरे चुराने की कहानी का जिक्र मिलता है। होली में जलाने के लिए महेश के नेतृत्व में बालक निरबल तेली के गोहरे चुराते हैं। जिन लोगों की गंवई पृष्ठभूमि है, वे इस प्रथा के बारे में जानते होंगे। होलिका दहन से पूर्व अक्सर गांव और कस्बे के लड़के गोबर के उपले जिन्हें गोहरा भी कहा जाता है, लकड़ियां सम्मत में डालते रहे हैं। गांवों में अक्सर शरारती तत्वों द्वारा गरीबों के पुराने छप्पर भी नोच लिए जाते थे और उसे सम्मत के हवाले कर दिया जाता था। लेखक ने इसे एक कुप्रथा के तौर पर चित्रित करते हुए लिखा है- उफ यह क्या परम्पराएं। लोग त्यौहारों की असली खुशियों को भूलकर ऊपरी धिंगा-धिंगी में फंस गए हैं। जिनसे औरों की रोटी छिनती है, उन्हें दर्द होता है। बूढ़े कहार रामदीन को होली में झोंक देते हैं। गांव के उत्तरी टीले पर भूतों के रहने की बात का वर्णन करके लेखक ने यह चित्रित किया है कि तब ग्रामीण जीवन में कितना अंधविश्वास फैला हुआ था।

होली के प्रसंग में निरबल तेली के गोहरे चुराने की कहानी का ज़िक्र मिलता है। होली में जलाने के लिए महेश के नेतृत्व में बालक निरबल तेली के गोहरे चुराते हैं। जिन लोगों की गंवई पृष्ठभूमि है, वे इस प्रथा के बारे में जानते होंगे। होलिका दहन से पूर्व अक्सर गांव और कस्बे के लड़के गोबर के उपले जिन्हें गोहरा भी कहा जाता है, लकड़ियां सम्मत में डालते रहे हैं।

नीरू पर मुखिया का कर्ज़ चट्टान की तरह लदा हुआ है। वह बेबस है। इसी बहाने रामदरश मिश्र ने पांडेपुरवा की ग़रीबी का चित्रण किया है। ग़रीबी के अंधकार में अनेक बेबस चेहरे तड़पते नज़र आते हैं, आंसुओं से भींगी उनकी आखें, धूप में खड़े याचना करते बच्चे और झोंपड़ियों में बिलखते लोग। नीरू कर्ज़ से लदा है लेकिन वह स्वप्नजीवी है। बेहतर ज़िंदगी का सपना उसकी आंखों में हरदम तैरता रहता है। तमाम कठिनाइयों के बावजूद वह केशव को पढ़ाना चाहता है और लीला का अच्छा विवाह करना चाहता है। कई प्रसंगों में लेखक भावुक नज़र आता है लेकिन अगले ही पल वह चौंककर सचेत हो जाता है। कथानक में चाहे विकराल बाढ़ का वर्णन हो या फिर सास-बहू के झगड़े लेखक प्रामाणिक और वास्तविक नज़र आता है। कहीं किसी किस्म की नाटकीयता नहीं दिखाई देती है। गांवों को सुधारने की दिशा में जुटे क्रांतिधर्मा लोगों के प्रति सहानुभूति, जात पांत, छुआछूत तथा ऊंच नीच का फर्क सब कुछ मौजूद है यहां। गांव शहर नहीं बन सकते, तरक्की की दौड़ में वे पिछड़े ही रहेंगे, इसी सोच के साथ संध्या गांव से शहर आ जाती है। वह गांव को भूल जाती है। संध्या नीरू से कहती है-गांव में रखा क्या है, लोग चोरी करते हैं, आपस में एक दूसरे की शिकायतें करते रहते हैं। औरतें हमेशा एक दूसरे की पोल खोलने में मज़ा लेती हैं। रामदरश मिश्र जी रोमांटिक अथवा आदर्शवादी हुए बगैर वास्तविक धरातल पर खड़े ज़्यादा दिखाई देते हैं। उनके लेखन में ग्रामीण जीवन की अच्छाइयों तथा बुराइयों का समान रूप से उल्लेख हुआ है। वे सिर्फ अच्छाई को नहीं देखना चाहते हैं। पानी के प्राचीर को ही लें, वहां घायल शामधारी इलाज के अभाव में दम तोड़ देता है। मिश्र जी का साहित्य सामाजिक अन्याय के विरुद्ध और प्रकृति तथा व्यवस्था की दोहरी मार खाने वाले के पक्ष में कार्यवाही होने का पक्षधर है। यही वह कसौटी है जिसपर आज भी राजनीति और दर्शन को धर्म, संस्कृति को अनुभव, विचार को जीवन मूल्यों से परखा जा सकता है। इसमें जो भी मूल्य गांवों के हित में हैं; वे ही मानवीय मूल्य हैं। चंद सम्पन्न लोगों के पास अनीति और अनाचार के बल पर इकट्ठा किया गया चकाचौंध करके रख देने वाला कितना ही तेजस्वी प्रभा मंडल क्यों न हो लेकिन है तो वह मानव विरोधी ही। पानी के प्राचीर में शोषित समाज की पीड़ा व्याप्त है। वहां हमें आश्वस्त दृष्टि और सुखद भविष्य नहीं नजर आता है। उपन्यास में संघर्ष लड़ाई के स्तर पर चित्रित होता है। नायक ग़रीबी के कारण मजबूरी में वर्तमान समय नहीं देख पाता। आलोच्य कृति में व्यवस्था के खिलाफ सीधी कार्रवाई के रूप में संघर्ष का चित्रण लेखक का अभिप्रेत भी नहीं है। उसका संवेदनात्मक रूप अधिक गहराई लिए हुए है और उसकी व्यंजना भी सांकेतिक है। कथा का नायक नीरू सोचता है हालांकि उसके सोचने से कुछ ख़ास नहीं होता। अमानवीय शोषण तथा यातनाओं को सहने वाला व्यक्ति नीरू गजेन्द्र सिंह के यहां नौकरी करता है। किसानों पर बेतहाशा जुल्म ढाने वाले किसानों के ही बेटे हैं। ज़मींदारी प्रथा की कुरीतियों ने इनका सत और विवेक हर लिया है। नीरू भी उसी व्यवस्था का अंग बन चुका है। उसकी मानवीय संवेदनाएं सूख जाती हैं लेकिन वह अपने आपको इस व्यवस्था से छुड़वा लेता है। नीरू इस व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष की नयी दिशा चुनता है। शताब्दियों की परतंत्रता के बाद मिली आज़ादी लोगों के मन में चेतना का निर्माण करती है। नीरू की दृष्टि कुछ समय के लिए ओझल हो जाती है लेकिन मलिन नहीं होती।

रामदरश मिश्र ऐसे रचनाकार रहे हैं जिन्हें गांव की मिट्टी से गहरा प्रेम है, जिन्हें वहां के नदी नालों, तालाबों, खेत खलिहानों, बाग बगीचों, तीज त्यौहारों, हाट मेलों के प्रति गहरा आकर्षण है। उनके लगाव का एकमात्र कारण यह है कि यह सब उन्हें मनुष्य के साथ जुड़ा हुआ महसूस होता है। प्रकृति

और व्यवस्था के साथ वे गहराई के साथ जुड़े हुए हैं। उन्होंने आंचलिक तत्वों के प्रति गहरे आकर्षण के बावजूद मनुष्य की केंद्रीय स्थिति को कभी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया है। वे यह मानते हैं कि सम्पत्ति का संचय शोषण का मूल कारण है। गांव के जीवन का कठोर यथार्थ वर्ण व्यवस्था से जुड़ा हुआ है। इस उपन्यास में जातीय विभेद और अछूतों पर होने वाले अन्याय को प्रमुखता के साथ चित्रित किया गया है। रामदरश जी यह प्रतिपादित करते हैं कि वर्ण व्यवस्था का मूल कारण सम्पत्ति और साधनों का असमान तथा अन्यायपूर्ण वितरण है। ग्रामीण जीवन के विविध रीति रिवाज़ों, उत्सवों, भाषा, मुहावरों तथा बोलियों, सामाजिक-राजनीतिक बदलावों को वे बेहद कुशलता के साथ अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। पानी के प्राचीर के वाक्यों के गठन की बानगी देखें, ''इन किसानों के घर पर दर्द से टूटती हुई एक अर्धनग्न नारी है, जवानी के भार से माती और अभावों के श्रृंगार से बोझिल एक बेटी है। टूटी मड़ैया के नीचे बड़े पेट वाला एक लड़का झटपटाकर रो रहा है। (पृष्ठ 209)।''

पानी के प्राचीर में घटनायें बहुत आती हैं तेज गति से भागते चलचित्र की तरह। इन्हीं घटनाओं के माध्यम से पाठकों के समक्ष समूचा वितान खड़ा किया गया है जिससे गोरखपुर के गौर्रा और राप्ती नदियों के बीच स्थित अभावग्रस्त कछार इलाका सहसा जीवंत हो उठता है। गांव के सभी नौजवान नौकरी के लिए शहर जा रहे हैं। समाज में महात्मा गांधी और संत विनोबा भावे की विचारधारा भी प्रवाहित है जो भूदान, ग्राम सुधार और स्वदेशी से प्रेरित है। यह नवयुवकों से गांवों और कस्बों में रहकर ही रोजगार के वैकल्पिक साधनों को ढूंढने पर ज़ोर देती है लेकिन शहरों की चकाचौंध, वहां मौजूद रोज़गार के अनगिनत साधन, कल कारखाने युवकों को ज्यादा लुभा रहे हैं। वे कत्तई गांवों में रुकने को तैयार नहीं हैं। उन्हें लगता है कि यहां उनके सामने ज़िंदगी बर्बाद हो जाने का ख़तरा है। शहरीकरण और उसके प्रलोभन उन्हें लगातार गांव की सरहदों से बाहर निकलकर शहरों में नया ठौर ठिकाना बनाने के लिए बेचैन कर रहे हैं। लेखक ने लोगों की इन धारणाओं को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। गांवों में होने वाले झगड़ों, जात पात, आर्थिक विषमताओं के साथ ही प्रकृति का मनोहारी वर्णन मौजूद है- ''हवा का हर झोंका किसी न किसी देवता के स्पर्श के लिए झरझरा रहा है। डिम डिम डिम आरे मइया कवने कसुरवा एतना देरिया लगवले उहुहू ..... डिम डिम डिम। चांदनी रात भी भयावनी लग रही है। लगता है कि अभी घर से बाहर निकला नहीं कि किसी देवता की सवारी से टकरा गया। चारों ओर लाल लाल टेसू लाल सेमल भवानी की ध्वजा की तरह आकाश में जल रहे हैं।'' रामदरश जी ने पानी के प्राचीर द्वारा आंचलिकता का एक नया प्रतिमान गढ़ा जो उनके परवर्ती उपन्यासों ख़ासकर जल टूटता हुआ में साफ नज़र आता है। यह पांडेपुरवा की कथा है जिसमें समूचा गांव ही उभरकर सामने आया है। इस उपन्यास में घटनाओं का अभाव है पर काल का जबर्दस्त प्रवाह है। पांडेपुरवा के सामूहिक जीवन को चित्रित करने के लिए अभिनव शिल्प अपनाया गया है। पानी के प्राचीर से राम दरश मिश्र की हिंदी साहित्य में प्रारंभिक पहचान बनती है जो जल टूटता हुआ से और पुख़्ता होती है। उनकी यही पहचान आज भी बरकरार है।

रामदरश मिश्र ऐसे रचनाकार रहे हैं जिन्हें गांव की मिट्टी से गहरा प्रेम है, जिन्हें वहां के नदी नालों, तालाबों, खेत खलिहानों, बाग बगीचों, तीज त्यौहारों, हाट मेलों के प्रति गहरा आकर्षण है। उनके लगाव का एकमात्र कारण यह है कि यह सब उन्हें मनुष्य के साथ जुड़ा हुआ महसूस होता है। प्रकृति और व्यवस्था के साथ वे गहराई के साथ जुड़े हुए हैं। उन्होंने आंचलिक तत्वों के प्रति गहरे आकर्षण के बावजूद मनुष्य की केंद्रीय स्थिति को कभी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया है।

जल टूटता हुआ में गोरखपुर जिले के अविकसित तथा पिछड़े हुए गांव तिवारीपुर के दर्शन होते हैं। इस गांव के आस-पास कुछ और गांव बसे हुए हैं मसलन भाटपुर, सिंहपुर, खानपुर, सोनइचा आदि। यह सभी गांव एक-एक, दो-दो मील के अंतर पर बसे हुए हैं। पूर्वांचल के गंवई समाज में दूरियां मील और कोस से नापने का चलन रहा है, आज़ादी के बाद जब आधुनिक शिक्षा पद्धति प्रभावी हुई तो किलोमीटर पैमाना बना। यह सारे गांव पांच मील के विस्तार में फैले हुए हैं अर्थात सात से आठ किलोमीटर के मध्य की औसत दूरी। सारी कथा इसी भूभाग के विस्तार में घूमती है। यह उपन्यास स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय समाज के गांव के संबंधों तथा मूल्यों के तनाव, विघटन एवं उसके जीवन संघर्षों तथा व्यथा की कथा है। आज़ादी के पांच साल तक लोगों ने धैर्यपूर्वक उसके सुपरिणामों की प्रतीक्षा की। सुग्गन मास्टर के मन में भी ऐसी ही एक तस्वीर थी। आज़ादी के बाद शताब्दियों का अज्ञान, गरीबी, बेकारी, सबके सब नष्ट हो जाएंगे। एक नयी भोर की नयी तस्वीरें उभर रही थी जिसमें मौजूद थे लहलहाते खेत, बाढ़ की छाती पर दौड़ती हुई सड़कें, अभयदान की मुद्रा में खड़े हुए अस्पताल, प्रेम के रस से सींचे हुए देश के गांव-गांव से उठते हुए समवेत कंठों के गान, दूर-दूर तक फैली हुई जड़ता की चट्टानों को बेध-बेध कर जगह-जगह से झरते हुए ज्ञान और विद्या के झरने जिसके कारण यहां के सामाजिक जीवन का कायाकल्प हो जाएगा पर दिन गुज़रते गए और जैसे-जैसे प्रजातंत्र के प्रभाव गांवों का स्पर्श करते गए, वैसे-वैसे ये सपने खण्ड-खण्ड होकर छितराने लगते हैं। पंचवर्षीय योजनाओं के नाम पर विकास और निर्माण का जैसा बदरूप सामने आया और चुनाव पद्धति के नाम पर जो कुछ इस देश में चला तथा चल रहा है उसने कुछ ऐसा विषाक्त वातावरण बनाया कि जिसमें तिवारीपुर जैसे अनेक गांवों का दम घुटने लगा। वहां के लोगों का जीना दूभर हो गया अर्थात उनकी ज़िंदगी का जल टूटने लगता है। ग़रीबी और अभाव के चलते ज़िंदगी यूं ही सुख-दुःख के साथ कट रही थी, ऊपर से राजनीति और उसमें व्याप्त मूल्यहीनता का बज्रघात, सर्वत्र स्वार्थ, षडयंत्र और शोषण की सरगर्मी।

तिवारीपुर भी अजीब गांव है। इसे समस्याओं का अजायबघर माना

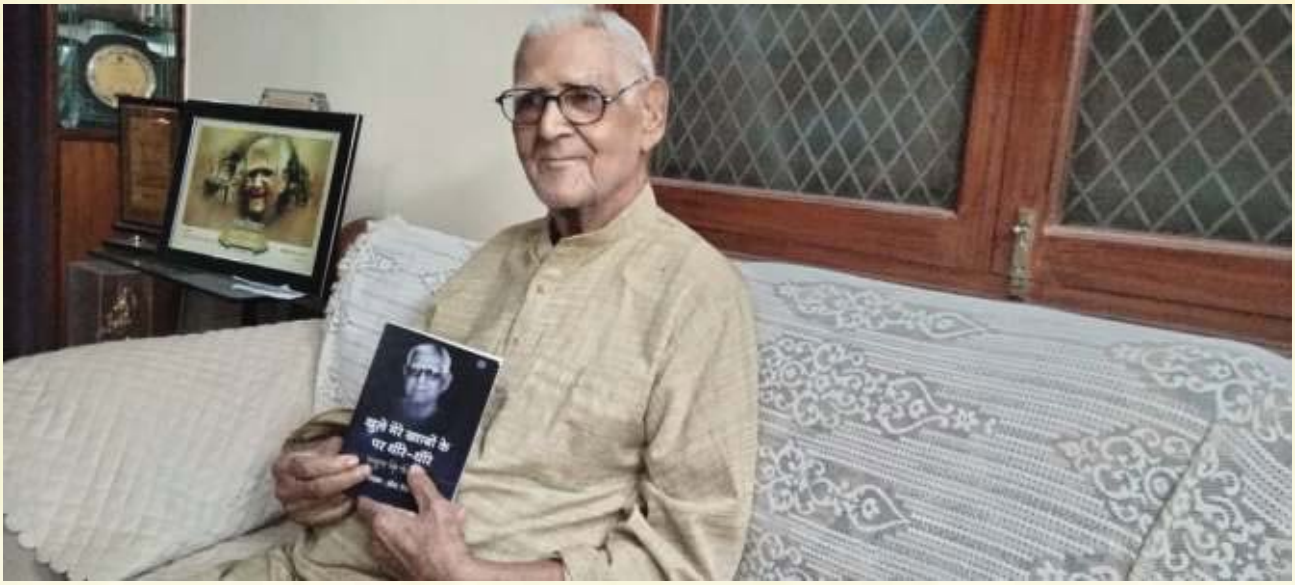

जा सकता है। किसिम-किसिम के लोगों और उनसे जुड़ी समस्यायों से हमेशा धधकते रहने वाला यह गांव एक पल को भी चैन की सांस नहीं ले पाता है। यहां ज़मींदार हैं, सेठ-साहूकार हैं, ब्राह्मण-क्षत्रिय हैं, हरिजन (दलित)-कहार हैं, किसान-मजदूर हैं, पढ़े-बेपढ़े हैं, भले-बुरे हैं। इनमें नेता और उनके टोले, गुंडे, लठैत, चोर, बदमाश, लुच्चे, लफंगे सभी तरह के लोग हैं। इन सबसे जुड़ी हुई बेशुमार समस्यायें हैं। बेटा बाप को आंखें तरेर रहा है, भाई-भाई पर हाथ उठा रहा है। समूचा गांव आपसी रंजिश और स्वार्थ की लड़ाई में डूबा हुआ है। दहेज और ग़रीबी की समस्या है, मारपीट और हत्याओं की दिक्कत है, प्रेम और व्यभिचार का चलन है, बेकारी और काहिली व्याप्त है, ऊंच-नीच और शोषण का बोलबाला है। आज़ादी के बाद जैसे ही गांवों में पंचायती राज कायम होता है उसका रंग-ढंग बदलने लगता है। पंचायतों के चुनाव नज़दीक आने पर गांवों में दांव पेच, षडयंत्र, मूल्यहीनता और घटिया राजनीति का दौर शुरू हो जाता है। इस चुनाव ने गांव के जल को इतना हिलोरा कि पेंदे की सारी कीचड़ ऊपर आ गयी और उसमें पूरा पानी सन गया। कोई ऐसा आदमी नहीं रहा जो इस कीचड़ से बचा हुआ हो। पूरा गांव मानो हिल उठा हो। रामकुमार सतीश से मिल रहा है। फेंकू बाबा कुंजू को लिए वहां पहुंच जाता है। जग्गू हरिजन (दलित), झिलमिट तेली, रघुनाथ सभी मिल रहे हैं वहां। दीनदयाल, हरसिंगार को लेकर महावीर से मिल आए हैं। मास्टर सुग्गन को सहेज आए हैं और अब चले गए हैं बाबू महीप सिंह के यहां। हर आदमी यहां अपनी-अपनी गोटी फिट करने में जुटा हुआ है। चुनावी राजनीति ने गांव को गांव नहीं रहने दिया बल्कि भूतखाने में बदल दिया है। भले लोगों की तो बात ही छोड़ दें पुलिस का दरोगा तक तौबा कर गया है। जल टूटता हुआ में गंवई ज़िंदगी के यह सारे विद्रूप आपको एक साथ नजर आएंगे। गांव की बढ़ती बदसूरती का आइना मान सकते हैं आप इसे। कुंजू के चुनावी भाषण को देखें, ''पंचायत राज कायम होने वाला है, इसमें अब पंचों को सरकार की ओर से मजिस्ट्रेट के अधिकार दिए जाएंगे। इसलिए जो अब तक ब्रिटिश सरकार के पिट्ठू ज़मींदार, मुखिया और दलाल रहे हैं वे इस बहती गंगा में हाथ धोना चाहते हैं। वे आज देशभक्त हो गए हैं। वे पंच सरपंच बनकर अपना उल्लू सीधा करने को और लोगों से बदला लेने की सोच रहे हैं। पंच बनने के लिए तरह-तरह की बुरी चालें चलते हैं। कहीं किसी का खेत कटवा रहे हैं। कहीं किसी को व्यभिचार में फंसवा रहे हैं। कहीं और तरह से बदनाम कर रहे हैं।''

कहा जा सकता है कि जल टूटता हुआ के आंचलिक जीवन की खुली हवाओं के सौंदर्य को आज़ादी के उपरांत उभरी राजनीति की कड़वाहट के घने कोहरे ने लील लिया है। प्रजातंत्र, चुनाव पद्धति और वोट के नाम पर प्राप्त यह ग्राम राज्य की राजनीति इस अधोगति को प्राप्त होगी इसकी कल्पना शायद किसी ने नहीं की थी। यह राजनीति, क्या गांव और क्या शहर ...जहां भी पहुंची वहां के जीवन को इसने बुरी तरह से प्रदूषित किया।

सतीश गांव में रात के अंधियारे में खड़ी फसलें कटती देखकर कहता है पंचायत की शुरुआत भी नहीं हुई कि ये सब इंसाफ शुरू हो गए। महीप सिंह को देखो और देखो इस दलाल दीनदयाल को। आज़ादी के दुश्मन हैं ये, जनता के दुश्मन हैं ये, मगर देखो अधिकार पाने के लिए कब से पैंतरे बदल रहे हैं। सारा गांव जानवर हो गया है। इस पंचायत के चुनाव को लेकर ग़रीब मारा जा रहा है। उसका न कल कोई था, न आज ही कोई है। ये गंदे जानवर कल भी राज करते थे और आज भी राज करने के लिए हाथ-पांव मार रहे

हैं। डाढ़ में आदमी का खून जो लगा है। मास्टर सुग्गन जिस पर देश की भावी पीढ़ी के निर्माण का दायित्व है और पिछले तीन महीने से तनख़्वाह नहीं मिली है, ज़िंदगी के तमाम अभावों से घिरा हुआ है। नहीं चाहते हुए भी वह ज़मींदार महीप सिंह की मिजाज़पुर्सी में लगा हुआ है क्योंकि वे कांग्रेस के नेता हैं, जिला बोर्ड के सदस्य हैं। उसे डर है कि कहीं भाटपुर से उसका तबादला किसी दूर के स्कूल में न हो जाए। अपने छोटे-छोटे स्वार्थ एवं जीवन की अकिंचन सुविधाओं के कारण वह बंधी बंधाई ज़िंदगी जीने के लिए विवश है। अंत में वह एक किस्म की टूटन और निराशा का शिकार होता है। यह पात्र पूरे उपन्यास में मूक और तटस्थ बना रहता है। उसे अकेलेपन और असम्मान की ज़िंदगी जीनी पड़ती है। सोशलिस्ट रामकुमार गंवई ज़िंदगी में ज़हर घोलने का उत्तरदायी माना जा सकता है। एक पढ़ा लिखा आदमी, जिससे अपेक्षा थी कि वह गांव को सही दिशा में आगे बढ़ने की प्रेरणा देगा, अपने स्वार्थ के कारण बिक जाता है। नतीजा यह निकलता है कि ग्रामीणों में शिक्षा और समाजवाद दोनों के प्रति अविश्वास पैदा हो जाता है। महीप सिंह और दीनदयाल जन्मजात गंदी मछलियां हैं जो तिवारीपुर के जीवन रूपी जल को निरंतर गंदला कर रही हैं। ऊपर से नेता, पुलिस तंत्र तथा सरकारी मशीनरी ने मिलकर लोगों का जीवन और दुरूह बना दिया है। कोढ़ तो गांव को पहले से ही मिला था, ऊपर से यह खाज भी। नेताओं को गांव के विकास से कोई सरोकार नहीं है। वहां प्रतिवर्ष बाढ़ आ रही है, फसलें चौपट हो रही हैं, गांव के गांव भुखमरी और दरिद्रता से बुरी तरह बजबजा रहे हैं। अस्पताल के अभाव में गांव का आदमी असमय दम तोड़ रहा है। शिक्षा के लिए पर्याप्त स्कूल नहीं हैं, ज़रूरी संसाधनों का अभाव है। पटवारी, दरोगा और हाकिम सबके सब लाश पर टूटने वाले गिद्धों का रूप ले चुके हैं। एमएलए कालीप्रसाद पाण्डे के कान पर जूं तक नहीं रेंगती। उन्हें अपने ही हितों से मतलब है। जीवन के प्रत्येक स्तर पर साज़िशों से भरा यह गांव पल प्रतिपल गर्त की ओर बढ़ता जा रहा है।

कहा जा सकता है कि जल टूटता हुआ के आंचलिक जीवन की खुली हवाओं के सौंदर्य को आज़ादी के उपरांत उभरी राजनीति की कड़वाहट के घने कोहरे ने लील लिया है। प्रजातंत्र, चुनाव पद्धति और वोट के नाम पर प्राप्त यह ग्राम राज्य की राजनीति इस अधोगति को प्राप्त होगी इसकी कल्पना शायद किसी ने नहीं की थी। यह राजनीति, क्या गांव और क्या शहर ...जहां भी पहुंची वहां के जीवन को इसने बुरी तरह से प्रदूषित किया। वहां जातिवाद, वैमनस्य, ईर्ष्या भाव, फूट और स्वार्थ की कीच में लोग आकंठ धंसते हुए चले गए। राम राज्य को आदर्श मानकर जिस राजनतिक शुचिता और खुशहाल ज़िंदगी की कल्पना की गयी थी वह मानों कहीं गुम हो गयी। यह शोषण, दमन और स्वार्थ पूर्ति का ज़रिया बन चुकी है। इसकी आंच में जीवन की सहज संवेदना और आत्मीयता के स्त्रोत सूखते चले जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि मनुष्य की जीवन शक्ति ही समाप्त होती जा रही है। जिन्हें त्यागी और जनसेवी समझकर लोग चुनाव जितवाते रहे, वह सारी की सारी जमात ही दगाबाज़ निकल गयी। उन लोगों के लिए अपना चुनाव क्षेत्र मन बहलाव के लिए पिकनिक स्पाट बनता चला गया। वे लगातार अपने पद या ओहदे को भुनाने में लगे हैं। सतीश की स्थिति की यह भयावहता विचलित करती है। ओह पूरा देश खाने पीने में लगा है, पता नहीं क्या होगा। राजनीति की यह हवा ही कुछ ऐसी बही है कि इसने अंचल के जन-जन की मानसिकता को प्रभावित किया है। इसके प्रभाव ने न अफसर को छोड़ा है न ही छोटे कर्मचारी को। इसकी लपेट से न नेता बच पाये न ही ही सार्वजनिक कार्यकर्ता। सबके सब आदर्शहीन जिंदगी जी रहे हैं। दूसरों को भी इसी दिशा में आगे बढ़ने के लिए लगातार ठेल रहे हैं। आज गांवों में उनकी आवाज़ सुनी जा रही है जो छल कपट में पटु हैं, राजनीति के जाल बुन सकते हैं। ऐसे बदमाश, ढोंगी, पैसे वाले स्कूलों, पंचायतों, अस्पतालों तथा अन्य संस्थाओं में मनमानी कर रहे हैं। गुंडई बढ़ रही है और गुंडे राज कर रहे हैं। रामदरश जी ने गांवों के इसी दुःख दर्द को समूची प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है। उन्होंने गंवई ज़िंदगी के दर्द को, उसके मन की इस वेदना को, निराशा और मायूसी को तटस्थता के साथ चित्रित किया है। जल टूटता हुआ में भी अंचल विशेष उभरकर सामने आता है अपनी समूची विद्रूपता और कुरूपता के साथ। हालांकि लेखक आशा की डोर से बंधा हुआ है। इसी के सहारे वह समूची मानवता को प्रकाश की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है। उसमें साहस और शक्ति का संचरण करता है। रामदरश जी आशावादी है।

उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र सतीश कहता है, ''वहां सब कुछ टूट रहा है, मूल्य टूट रहे हैं, सत्य टूट रहा है, कोई किसी का नहीं, सभी अकेले हैं, एक दूसरे के तमाशाई मगर नहीं एक नया गांव भी बन रहा है। वह है किसानों-मजदूरों का। यही आशा की डोर प्रतिविम्बित हो रही है।'' गांव के इस घने घटाटोप अंधियारे में भी सतीश जो एक दमकती किरण देख रहा है, जिसका मूल है जगपतिया, बदमी और लवंगी के विद्रोह में। सतीश का पंचायत चुनाव में जीतना और उसके सामने महीप सिंह का हारना इस बात का साक्षी है कि जो सत्य की नींव पर खड़े हैं, मूल्यों की रक्षा के लिए जूझ रहे हैं और जिनके पास निःस्वार्थ सेवा और त्याग की पूंजी है; उनके आगे एक न एक दिन गलत ताकतों को झुकना ही पड़ता है। सतीश के पास गज़ब की संकल्प शक्ति है जो उसे हर वक्त प्रकाश की ओर बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करती है। सुग्गन मास्टर से चर्चा के दौरान वह कहता है, ''अंधकार में प्रकाश की खोज मेरा उद्येश्य रहा है, कई बार गिरा हूं, अंधकार में सना हूं, लेकिन उसमें से निकला हूं प्रकाश पाने की तड़प लेकर। मैंने पतन और बेबसी को अपना स्वभाव नहीं बनने दिया। उपन्यास के अंत में अपने कलेक्टर भाई को देख गांव वालों में उपजे सहज विस्मय का शमन करते हुए उसका यह कहना जिस दिन इस गांव में वह कलेक्टर होकर लौटेगा, मैं समझूंगा मेरा भाई मुझसे छिन गया। इसमें भी उसकी जिजीविषा ही बोल रही है। उसका यह विश्वास है कि जीवन की सार्थकता स्वार्थी तत्वों से ऊपर उठकर उसके सार्वजनिक बने रहने में ही है। यही वास्तविक तत्व है, सत्य है, जो टूटते हुए मनुष्य, समाज और मूल्यों को बचा सकता है। उन्हें परस्पर जोड़े रख सकता है। ◆

पता : 1/74 विराज खंड, गोमतीनगर, लखनऊ-226010
मो. : 9695232888

ज़िन्दगी की पीड़ा के मुखर रचनाकार

डॉ. शोभनाथ शुक्ला

रामदरश मिश्र जी का रचना संसार काफी विस्तृत व व्यापक है... उन्होंने साहित्य की अन्यान्य विधाओं में कलम आज़माइश की है और इस मायने में उनका लेखन सौभाग्यशाली ही कहा जायेगा कि उनकी कृतियों को पाठकों/समीक्षकों का भरपूर स्नेह और प्यार मिला...।

गोरखपुर जिला के डुमरी गाँव के नितान्त अभावग्रस्त परिवार में 15 अगस्त, 1924 जन्में रामदरश मिश्र भले ही अब अपनी पार्थिव देह के साथ हमारे बीच न हों लेकिन जीवन पर्यन्त उनकी रचनात्मक सक्रियता उनका साहित्यानुरागी भाव व लगन हिन्दी साहित्य के रचनाकारों व प्रेमियों के लिए सुखद तो है ही, यह कम गौरव की बात नहीं है....। कविता से अपनी रचना यात्रा शुरू कर छठें दशक से कहानी लेखन से जुड़ने के बाद उनकी इस क्षेत्र में बढ़ी रचनाशीलता सातवें दशक में परवान चढ़ीं और फिर तो कहानी के साथ-साथ उपन्यास व अन्य विधाओं में उनकी पैठ गहरी होती चली गई। नितात्त आभावग्रस्त ग्रामीण परिवेश में रहते हुए उन्होंने बचपन से ही गाँव के जीवन-यथार्थ के विविध रूपों से उनका परिचय हुआ, घर-परिवार में इस अभाव को स्वयं झेलते हुए, उससे संघर्ष करते हुए उनकी विकसित होती चेतना में गाँव की यह छवि गहरे तक बैठी और फिर वह आगे चलकर उनकी रचनाओं का प्रतिपाद्य बन गई। बचपन से देखे भोगे गये इस ग्राम-यथार्थ के दबाव को अपनी रचना में महसूस करते हुए उन्हें स्वयं लिखा है कि 'जब मैंने कहानी लेखन की यात्रा शुरू की तो ग्राम-यथार्थ के विविध आयाम मेरी चेतना पर दस्तक देने लगे और कहानियों में रूप पाने लगे...।' उनके रचनाकर्म का विस्तार सिर्फ ग्रामीण जीवन व वहाँ के परिवेश रहन-सहन तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि गाँव की जिंदगी से निकल कर शहरी जीवन में आकर उनका रचनात्मक विस्तार नगरीय-जीवन की विसंगतियों जीवन मूल्यों- वहाँ के रहन-सहन संवेदना व मूल्यों के विश्लेषण तक पहुँचा...। पर उनकी नगरीय जीवन-बोध पर आधारित कहानियों में भी किसी न किसी रूप में गाँव उपस्थित रहा...। उन्होंने स्वयं लिखा है कि 'गाँव को जीकर जब मैं शहरों की यात्रा करने लगा, तब नगर-जीवन-यथार्थ से भी रूबरू होता गया और मेरी अनेक कहानियों में वह यर्थाथ रूपांतरित हुआ है; लेकिन शहर में रहने के बावजूद मेरे मन में बार-बार गाँव मेरे आता रहा...।'

रामदरश मिश्र जी का रचना संसार काफी विस्तृत व व्यापक है... उन्होंने साहित्य की अन्यान्य विधाओं में कलम आज़माइश की है और इस मायने में उनका लेखन सौभाग्यशाली ही कहा जायेगा कि उनकी कृतियों को पाठकों/समीक्षकों का भरपूर स्नेह और प्यार मिला...। लगभग 70 वर्षों से अधिक के लेखनीय जीवन में उनका रचना संसार कहानी, उपन्यास, कविता, ललित निबन्ध, आत्मकथा, यात्रावृत्तान्त, डायरी, समीक्षा आदि विविध विधाओं में फैला हुआ है जिसमें 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'अपने लोग', 'सूखता हुआ तालाब', 'आकाश की छत', 'रात का सफ़र', 'आदिम राग, 'बिना दरवाज़े का मकान', 'दूसरा घर', 'बीस बरस', 'थकी हुई सुबह', 'परिवार', 'बचपन भास्कर' का सहित 14 उपन्यास, 'खाली घर', एक वह, सर्पदंश, दिनचर्या, बसत्त का एक दिन, इकसठ कहानियाँ, मेरी प्रिय कहानियाँ, चर्चित कहानियाँ, अपने लिए श्रेष्ठ आंचलिक कहानियाँ, आज का दिन भी, एक कहानी लगातार, अकेला मकान, फिर कब आयेंगे, विदूषक, मेरी कथा यात्रा, दिन के साथ, आख़िरी चिट्ठी, अकेली स्वपन में सहित 22 कहानी संग्रह, 20 कविता संग्रह, 5 ललित निबन्ध, 2

आत्मकथा, यात्रावृत्तान्त, डायरी एवं 11 समीक्षा पुस्तकें व 14 खण्डों में रचनावली...यानी कि विपुल साहित्यकार रचना कर्म के धनी रामदरश मिश्र का कृतित्व उनके व्यक्तित्व को साहित्य जगत में एक ख़ास मुकाम प्रदान करता है...। उनका लेखन, नई कहानी के दौर से शुरू होता है और यह लेखन आगे सचेतन कहानी, जनवादी कहानी, सक्रिय कहानी जैसे कहानी आन्दोलनों में निरन्तर चलता रहा, लेकिन इन आदोलनों के पीछे की राजनीति उन्हें कभी पसन्द नहीं आई...दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर पद पर रहते हुए और बाद में सेवामुक्त होने से अब तक उनका लेखन धीमा भले हुआ हो पर रुका नहीं है... यह उनकी प्रबल, जिजीविषा और साहित्य कर्म के प्रति उनके अगाध लगाव का ही परिणाम है शायद...। ग्राम-जीवन के प्रति संवेदनशीलता ही प्रमुख कारण रहा है। रामदरश मिश्र जी ने स्वयं अपने बारे में लिखा है-'मैं बचपन से ही अपने अस्तित्व की वांछनीयता और अवांछनीयता के प्रति बहुत संवेदनशील रहा हूँ। मुझे जहाँ अपनी उपस्थिति अवांछनीय लगती है वहाँ मैं नहीं जाना चाहता, जिस कार्य में मैं छोटा अनुभव करने लगता हूँ उससे बचता हूँ। इस मायने में मैं ज़्यादा संवेदनशील हूँ।'

'इकसठ कहानियों' की भूमिका में इसे और खोल कर लिखा है कथा साहित्य के लेखन के बारे में मेरी उन्मुखता सम्भवतः मेरी सामाजिक ज़िंदगी के प्रति लगाव का ही परिणाम था...।'

सामाजिक जीवन के प्रति यह लगाव उनके निजी व्यक्तित्व विकास में सहायक तो रहा ही, उनकी रचना धर्मिता को भी गहरे तक प्रभावित करता रहा है। बचपन से लेकर काफी लम्बे समय तक रामदरश मिश्र का जीवन उस गाँव-जवार से गहरे तक जुड़ा रहा जहाँ अभावों, अकाल से तड़पते-मरते, कछार की वीरानगी और हाँड़ तोड़ मेहनत करने के बावजूद गोबर के दानों से भूख मिटाने की विवशता पसरी रहती थी... कभी बाढ़ तो कभी अकाल...कभी हरियाली तो अधिकांश समय सूखा...कभी-कभार चूल्हें में जलती आग तो प्रायः बुझे आग से ठन्डे चूल्हे... भूख से बिलबिलाते बच्चों-बड़े, बूढ़ों की बेबस आंखों में छाया अंधकार.... इनके इर्द गिर्द फैला सच था... इन स्थितियों ने लेखक को गहरे तक बेचैन किया है और फिर उनकी रचनाएं इस सच को कैसे नकार सकती थीं....। कहानी जिस परिवेश-भौगोलिक अंचल से निकलती है उसकी प्रस्तावना में उस स्थान विशेष की सोंधी गंध का होना तो ज़रूरी होता ही है...., यह गंध ही कहानी की विश्वसनीयता को सुरक्षित रखती है और प्राथमिक तौर पर अपनी पहचान सुरक्षित व मजबूत किये रहती है। किसी योग विशेष की स्थानीयता, बातचीत, भाषा-बोली, खानपान-रहन-सहन के तौर तरीके, और ख़ासकर वहाँ की सांस्कृतिक विरासत का उल्लेख किसी भी कहानी को जीवंत बना देता है...। यह आंचलिकता ही कहानी की पहचान निर्मित करती है और एक खास अंचल-क्षेत्र विशेष के जीवन संघर्षों में मनुष्य जीवन की जिजीविषा ही किसी के लिए भी प्रेरणा स्रोत बनती है। रामदरश मिश्र जी की अधिकांश कहानियाँ इसी आंचलिक परिदृश्य को चिन्हित करती हैं। श्री मिश्र की कहानियाँ जिस भौगोलिक परिवेश में जन्मती-बढ़ती हैं उसके चप्पे-चप्पे से लेखक का करीबी नाता है, यही कारण है कि लेखक की कहानियों की अधिकांश घटनाएं-पात्र जिनके इर्द-गिर्द कहानी बुनती चलती हैं उनके मध्य लेखक की उपस्थिति किसी न किसी रूप में पाठक को महसूस होती रहती है। श्री मिश्र के पात्र तो सबसे अधिक पाठक को अपने आसपास चलते-फिरते महसूस होते रहते हैं। रामावतार शर्मा (अप्रैल 22) के वक्तव्य से यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि 'रामदरश मिश्र ने ग्रामीण अचंल को अपनी पैनी नज़रों से पहचाना और शब्द दिये जो कि आज भी सार्थक हैं...हर कहानी के पात्र हर जगह घूमते फिरते नज़र आते हैं।'

श्री मिश्र की कहानियाँ जिस भौगोलिक परिवेश में जन्मती-बढ़ती हैं उसके चप्पे-चप्पे से लेखक का करीबी नाता है, यही कारण है कि लेखक की कहानियों की अधिकांश घटनाएं-पात्र जिनके इर्द-गिर्द कहानी बुनती चलती हैं उनके मध्य लेखक की उपस्थिति किसी न किसी रूप में पाठक को महसूस होती रहती है। श्री मिश्र के पात्र तो सबसे अधिक पाठक को अपने आसपास चलते-फिरते महसूस होते रहते हैं। रामावतार शर्मा (अप्रैल 22) के वक्तव्य से यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि 'राम दरश मिश्र ने ग्रामीण अंचल को अपनी पैनी नज़रों से पहचाना और शब्द दिये जो कि आज भी सार्थक हैं...हर कहानी के पात्र हर जगह घूमते फिरते नज़र आते हैं।'

रामदरश मिश्र जी का कथा संसार दो धाराओं के बीच निर्मित होता है शायद उनका जीवन भी दो धाराओं के साथ पलता-बढ़ता और अन्ततः विकास की चरम ऊँचाई तक पहुँचता है... अभावग्रस्त ग्रामीण अचंल से उनका बालमन व किशोर मन जो प्रभाव ग्रहण करता है और उस माटी से जो तात्विक रस प्राप्त करता है उसका प्रभाव लेखक के मन, मस्तिष्क पर अन्त तक बना रहता है...। 'प्रिय कहानियाँ' की भूमिका में लेखक ने स्वीकारा है कि 'मैंने बपचन में गाँव के जीवन-यर्थाथ के विविध आयामों को न केवल देखा वरन् गहरे भोगा भी। गाँव का अभाव, उसकी जिजीविषा, उसका संघर्ष, उसमें और उसके चारों ओर व्याप्त प्रकृति का सौन्दर्य मेरे अनुभव में समा उसके अनेक रंगों वाले चरित्रों की छवियाँ मुझमें व्याप्त थीं।' इस तरह राम दरश मिश्र की कहानियाँ ग्राम जीवन-यर्थाथ की अनुभूति और उस परिवेश में व्याप्त मनुष्य की पीड़ा की प्रवक्ता बन गई...उनके कथा रचना की यह धारा रहीं अधिक विश्वनीय व प्रामाणिक रूप में पाठकों को गहरे तक छू गई...। ग्राम जीवन-यर्थाथ की अनुभूतियों और वहां से प्राकृतिक सौन्दर्य-बोध के आपसी तालमेल से निःसृत जिजीविषा, कभी न हारने वाली मनःस्थितियों के बीच नये जीवन मूल्यों का सृजन करती रहीं इनकी कहानियाँ...शायद यही कारण रहा है कि उनका कहानियों का कथा रस अपने प्रवाह में कभी कमज़ोर नहीं पड़ा...। ऐसी कहानियों की एक लम्बी फेहरिस्त है पर खाली घर, एक औरत : एक जिन्दगी, सर्पदंश, अकेला मकान, सड़क, बंसत्त का एक दिन, विदूषक, माँ सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो, लड़की... सहित कई एक कहानियाँ अपने ग्राम जीवन की विसंगतियों, जटिलताओं,

आशा-निराशा-उत्साह, महत्वाकांक्षाओं और प्रतिरोध के भाव की प्रस्तुति के कारण पाठकों-आलोचकों का ध्यान खींचने में समर्थ हैं।

लेखक का अनुभव संसार जितना विस्तृत और गहरा होगा जीवन में जिये क्षणों घटनाओं और परिस्थितिजन्य विवशताओं में भोगे समय की कटुता जितनी गहरी और व्यापक होगी...लेखक की रचना उतनी ही विश्वसनीय व प्रामाणिक होगी...। श्री मिश्र की रचनाओं की यही विशेषता एक श्रेष्ठ रचनाकार के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित करती है, एक तरफ शोषित लोगों के प्रति उनकी सहानुभूति है तो दूसरी तरफ दबंगों के अत्याचार-व्यभिचार व उनकी अराजकता का विरोध करते हैं...। वे किसी पार्टी पॉलिटिक्स के पैरोकार कभी नहीं बने... और न ही स्वर्ण मानसिकता के पोषण का उन्होंने कभी समर्थन किया...उनकी रचनाओं की ज़मीन शोषण, गरीबी, अत्याचार और यंत्रणा से अटी-पड़ी है...इसीलिए वे रचनाओं में अपाहिज मानसिकता व कृत्रिमता के मुखौटे से बचते हैं और बहुत खुले तौर पर शोषित पीड़ित आमजन के पक्ष में खड़े दिखाई पड़ते हैं। 'माँ, सन्नाटा और बजता हुआ रेडियों' में लेखक की यह सच्चाई समाज के कटु यर्थाथ का आइना है-'पेड़ की छाल आदमी खाता है कितना अमानुषिक! उफ! लेकिन मेरे लिए मानव की यह बेबसी नई नहीं है...गोबरहा पशुओं के गोबर में से अन्न के दाने निकाल कर खाना क्या कम बेबसी है? हमारे यहाँ के हलवाहे खाते हैं और हम समाजवाद, मानवतावाद, प्रजातंत्र आदि का नारा लगाते नहीं थकते...।' यहाँ भी माँ की मृत्यु से उत्पन्न सन्नाटे व अकेलेपन के बीच दुधई और नायक की पीड़ा जीवन का अभिशाप बन कर उभरती है। 'खालीघर' में बीनू और उसके चाचा की जो पीड़ा उभर कर सामने आती है। वह क्या कम दारुण है इलाज के अभाव में, बीनू की माँ को न बचा पाने से उत्पन्न स्थितियां लेखक के लिए सबसे बड़ी त्रासदी है कि ग्रामीण जीवन की त्रासदी यही है कि नौकरी के लिए जो बाहर गया वह जल्दी वापस नहीं आता और जो गाँव-जवार में है उसे अभाव कभी छोड़ता ही नहीं...।'

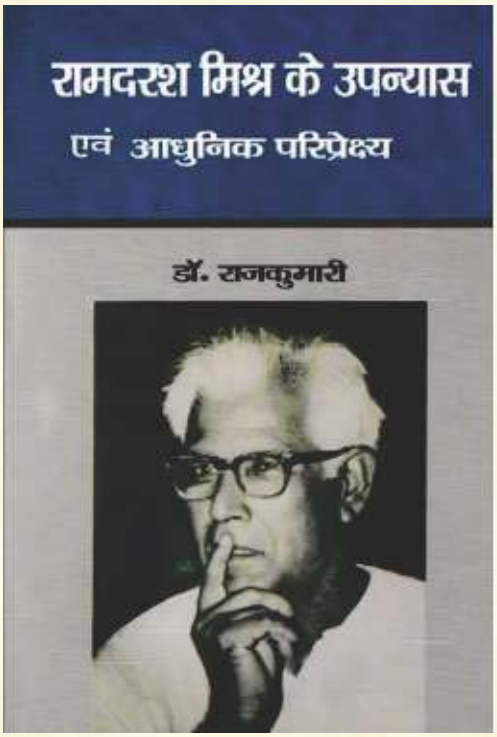

लेखक का अनुभव संसार जितना विस्तृत और गहरा होगा जीवन में जिए क्षणों घटनाओं और परिस्थितिजन्य विवशताओं में भोगे समय की कटुता जितनी गहरी और व्यापक होगी...लेखक की रचना उतनी ही विश्वसनीय व प्रामाणिक होगी...। श्री मिश्र की रचनाओं की यही विशेषता एक श्रेष्ठ रचनाकार के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित करती है, एक तरफ शोषित लोगों के प्रति उनकी सहानुभूति है तो दूसरी तरफ दबंगों के अत्याचार-व्यभिचार व उनकी अराजकता का विरोध करते हैं...।

गाँव-जवार के अभावों की चक्की में पिसते पात्रों का संघर्ष और उनकी पीड़ा की प्रस्तुति में रामदरश मिश्र बेजोड़ हैं बिना किसी अतिरिक्त रोगन व जादुई कारीगरी के पाठक मन तक उसे पहुँचा देते हैं। 'एक औरत : एक ज़िन्दगी' की विधवा औरत भवानी है या सावित्री (सड़क), 'अकेला मकान' की जगरानी बुआ हों या सुमित्रा (सरकारी मकान), 'बसन्त का एक दिन की फुलवा... ग्रामीण जीवन में व्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों व सामाजिक जीवन से निर्वासित पितृसत्ता की निर्मित अंधेरी गुफा में फँसी प्रेम और सम्मान से वंचित ये स्त्रियाँ जीवन के कठोर से कठोर समय को जीती हुई समाज-परिवार के लिए संघर्ष की मिसाल बन जाती हैं। इन सभी पात्रों ने स्त्री विमर्श की जो अनजान कहानी गढ़ी है...वे तब भी प्रांसगिक रही हैं और आज भी उन पर विमर्श जारी रखने की पूरी गुंजाइश बाकी है...अभावों और चौतरफा दबंग-स्वार्थी लोगों से घेर कर पराजित किये जाने के षडयंत्रों के बीच मृत्युंजय बनी ये स्त्रियाँ न रहने के बाद भी पाठकों के दिलादिमाग में मशाल बन कर जलती रही हैं। मौत से आँखें लड़ाते हुए मुकाबला करना इनके लिए उतना महत्वपूर्ण नहीं रहा है, महत्वपूर्ण तो यह है कि इन स्त्रियों के लिए जिस समाज ने जिस ज़मीन ने बदतमीज़ियों, आरोपों और निंदाओं लांछनों के पहाड़ खड़े किये, उसी समाज, उसी ज़मीन को इन सबने अपनी कर्मभूमि बना दिया... जीवन जीने की कला का एक नमूना स्थापित कर दिया यह संघर्ष की मिसाल बनी समाज की चुनौती स्वीकार करती रही...।

रामदरश मिश्र की कहानियों की दूसरी धारा नगरीय जीवन यथार्थ से रूबरू होती है.... हालांकि नागरीय जीवन बोध पर केन्द्रित कहानियों में गांव की उपस्थित बराबर बनी रही है। यह और बात है कि ऐसी कहानियों में ग्रामीण और नगरीय संवेदना और मूल्यों में टकराव देखने को मिलता है। अधिकांश पात्र गांवों का जीवन, गंवई मानसिकता वर्ग चरित्र और रहन-सहन लिये शहरों का हिस्सा बनते हैं तो इस तरह के अर्न्तद्वन्द्व स्वाभाविक हैं यह द्वन्द्व और टकराहट 'सरकारी मकान' की सुमित्रा और पुत्र बनवारी और बहू कुसुम के बीच हैं, 'लाल हथेलियाँ' में सुभाष, ममता और ज्योत्सना के बीच दिखाई पड़ता है। 'शेषयात्रा' की पार्वती का दर्द 'रहमतमियाँ' की औलादविहीन रहमत की पत्नी का दर्द कहाँ अलग हो पाया है। रामदरश मिश्र जी की रचनाओं में सामाजिक परिवेश अपनी आर्थिक तंगी के बावजूद प्राकृतिक वातावरण के बीच सरल और जीवन्त हो उठा है...खेती-बाड़ी, सूखा-बारिश, होली-दीवाली

सहित गाय-गोरू के बीच मानव जीवन अपने उत्थान और उमंग के बीच जीवंत ही बना रहता है....विरोध.....आशा-निराशा लिये कहीं से भी हिम्मत हारने जैसी स्थितियां नहीं आतीं.... रोज़ी-रोटी की तलाश में अभावग्रस्त गाँवों से शहरों की ओर भागते लोंगों की पीड़ा अलग है पर शहरों में खप न पाने से पुनः गाँवों की ओर वापस भी पीड़ादायक है पर किंचित सुकून भरी होती है....जहाँ भी माटी-हवन-पानी, खेत-खलिहान, बाग-बगीचे, गाय-गोरू और अपनों के बीच होने का अहसास राहत देता है... गाँव-गाँव ही होता है जहाँ अभावों में भी उल्लास और उमंग कभी कम नहीं होती...टी.एस. इलियट ने (1943) अपनी एक कविता से इस महत्व को रेखांकित किया है-'आदमी का ठिकाना होता है/उसका अपना गाँव, उसका अपना चूल्हा और उसकी घरवाली की रसोई/अपने दरवाज़े के सामने बैठना दिन ढले/अपने और पड़ोसी के पोते को/एक साथ धूल में खेलते निहारना...। रामदरश मिश्र की कहानियों में यही भाव भरपूर मात्रा में मौजूद है।

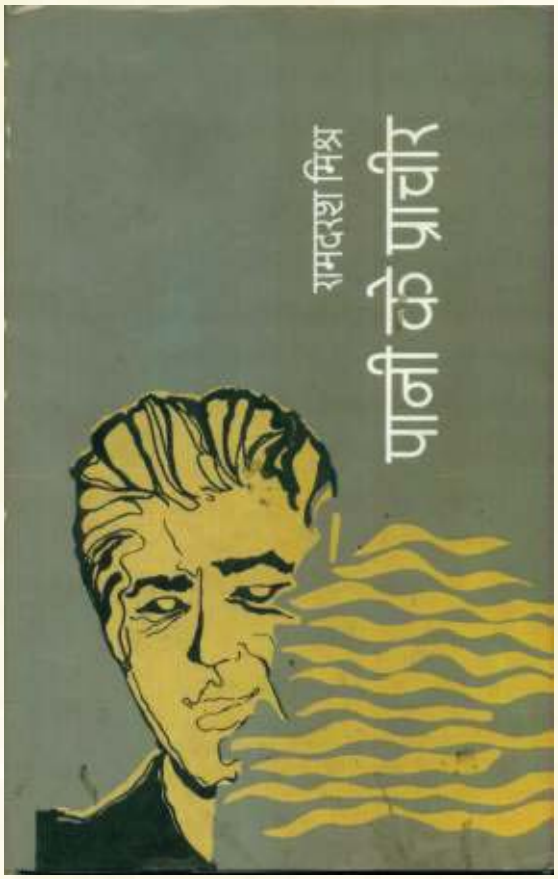

पर दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि आज़ादी के बाद भी शोषण की समर्थ व्यवस्था के अवशेष आज भी मौजूद हैं.... बिचौलियों की पौ बारह है और लोकतांत्रिक व्यवस्था को ये धुन की तरह खोखला कर रहे हैं। लेखक ने इस व्यवस्था द्वारा शोषित ग्रामीणों में विरोध के स्वर को एक सीमा तक मुखर किया है....लेखक जानता है कि उसके हक़ पर डाका डाला जा रहा है पर ग़रीबों की सामूहिकता-प्रतिरोधी भाव मजबूरियों के चलते दब जाता है....वे इस सच को अपनी एक महत्वपूर्ण कविता के ज़रिये व्यक्त करते हैं-'हमेशा आकाश से झरती है एक नदी/और कहने को आकाश से नदी झरती है....।' यही समूची धरती की प्यास/व्यथा श्री मिश्र के सम्पूर्ण साहित्य के केन्द्र में मौजूद है। रामदरश मिश्र के बारे में डॉ. गुरूचरण सिंह के विचार महत्वपूर्ण है-'...वह व्यक्ति की पीड़ा सिर्फ भावनात्मक स्तर पर ही अनुभव नहीं करता, बल्कि पीड़ा कैसे दूर की जा सकती है, इस पर भी विचार करता है। यही मानवीय चेतना श्री मिश्र को मनुष्य के साथ गहराई से जोड़ती है। वे समयगत सच्चाई से जूझते हैं इसी कारण समय, परिवेश और उसका यर्थाथ प्रामाणिक तथा ईमानदारी के साथ उनकी कहानियों में उभरता है....।'

व्याकरण सम्मत भाषा की सजगता उनकी कहानियों को समर्थ करती है। कहानियों की भाषा...और दृश्य निर्माण में उसका उपयोग शिल्पगत बारीकी की खूबी है। घटना और पात्रों के बीच परिवेश की मौजूदगी भी कहानी का अनिवार्य तत्व है...गाँव की तरफ बार-बार लौटना या वापस आकर पुराने माहौल को आत्मसात करना सिर्फ औपचारिकता भर नहीं है बल्कि अतीत में छूट रहे सम्बन्धों, बदल चुके मूल्यों और छीज रही अभिलाषाओं के पुर्नमूल्यांकन की जद्दोजहद भरी कशमकश से भी जुड़ा है। एक ख़ास आंचलिक क्षेत्र के जीवन से बार-बार रूबरू होना लेखक की नियति नहीं है बल्कि अतीत और वर्तमान के बीच छूट गये समय के पड़ताल की कवायद भी है.....। सांस्कृतिक-सामाजिक सामूहिकता ही गाँव का केन्द्रक है....पर इसकी चूलें हिला कर रख देने की कोशिशें जारी है.....व्यभिचार, भ्रष्टाचार और लम्पटई राजनीति की चाशनी है, इस चाशनी ने समाज के सारे समीकरण गड़बड़ा दिये हैं....रामदरश मिश्र की कहानियों में इसके संकेत मात्र हैं क्योंकि वे जानते हैं कि ग़रीबी में हाँड़तोड़ मेहनत के बाद दो रोटी दिखाई पड़ती है.....ऐसे में विद्रोह के स्वर ज्वाला बन कर नहीं बल्कि राख में पड़ी मद्धिम चिन्गारी की तरह ही चहक सकते हैं....।

रामदरश मिश्र जी की कहानियाँ सम्बन्धों, संवेदनाओं और मूल्यों से मुठभेड़ करती हुई अपने छोटे से कथानक में मानवीय त्रासदी का बड़ा वितान तानती दिखाई पड़ती हैं....। इनकी कहानियाँ प्रायः मानवीय करुणा भाव को पहचानने और नैतिक मूल्यों व इन्सानियत को समझते-जानने की प्रवृत्ति से भरी हैं.....। शायद यही कारण है कि अपने अन्दर आत्मसात कर चुके गाँव को वे कभी भी ठेंगा नहीं दिखा सके.....अन्यथा देश की राजधानी में दिल्ली विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठित नौकरी और भौतिक सुखों के बीच उन्हें गाँव क्योंकर याद आते.....। वे अभिशप्त ज़िन्दगी की पीड़ा को ऐसे चित्रकार हैं जिनकी अभिव्यक्ति में उन्हें भौतिक रंगों का नहीं आत्मीय रंगों का ही सहारा लेना पड़ता है....। उनकी कहानियों में सैद्धान्तिक पक्ष कम व्यावहारिक व आत्मीय पक्ष अधिक उभर कर आता है जहाँ दिल को विचलित कर देने वाली पीड़ा मन को भी उद्वेलित कर देती है....। उनका रचना संसार अभिशप्त ज़िन्दगी की पीड़ा का मुखर आख्यान है.....। उन्हें शत-शत नमन। ◆

पता : साक्षी विला, 1274/28, बढ़ैयावीर, सिविल लाइन्स,
सुल्तानपुर-228001 (उ.प्र.)
मो. : 9415136267

रामदरश मिश्र की कहानियां : पीर पराई जानिए

आनन्द प्रकाश त्रिपाठी

समाज के हाशिए पर जीने वाले लोगों की संघर्षमय ज़िन्दगी, उनकी व्यथा-कथा कहती उनकी कहानियां हमारे भीतर वेदना और करुणा का भाव जागृत करती हैं। दरअसल पीड़ा और करुणा का भाव सबसे बड़ा मानवीय मूल्य है।

हिंदी साहित्य-जगत् में रामदरश मिश्र की पहचान एक समर्थ कथाकार और कवि के रूप में है। 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटा हुआ', 'बिना दरवाज़े का मकान', 'अपने लोग', 'आदिम राग' जैसे उपन्यासों के लिए चर्चित रहे रामदरश मिश्र ने गद्य की विविध विधाओं-संस्मरण, आत्मकथा, निबंध, डायरी, व्यंग्य, समीक्षा आदि में भी अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियां रची हैं जिसे पाठकों ने बहुत पसंद किया है। इनके एक दर्जन से अधिक कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं- 'खाली घर', 'अपने लिए', 'दिनचर्या', 'सर्पदंश', 'वसंत का एक दिन', 'इकसठ' कहानियां, मेरी प्रिय कहानियां, चर्चित कहानियां, श्रेष्ठ आंचलिक कहानियां, आज का दिन भी, एक कहानी लगातार, फिर कब आएंगे और प्रतिनिधि कहानियां। इन संग्रहों की अमूमन सभी कहानियों का परिदृश्य गांव से लेकर शहर तक विस्तृत और वैविध्यपूर्ण है। उत्तर भारतीय ग्रामीण जीवन और परिवेश के साथ ही शहरी-जीवन-परिवेश तथा उसके प्रभाव की प्रचुर कहानियां रचकर कथाकार ने समाज में व्याप्त शोषण, अन्याय, उत्पीड़न, नाना विपदाओं, विसंगतियों और रूढ़िवादी मान्यताओं से घिरे मनुष्य की पीड़ा को बड़ी सहजता और मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। समाज के हाशिए पर जीने वाले लोगों की संघर्षमय जिंदगी, उनकी व्यथा-कथा कहती उनकी कहानियां हमारे भीतर वेदना और करुणा का भाव जागृत करती हैं। दरअसल पीड़ा और करुणा का भाव सबसे बड़ा मानवीय मूल्य है। भारतीय जीवन-दर्शन की मूल भावना भी यही है। पीड़ा का तथ्य नैतिकता से संबद्ध है जो पीड़ित लोगों के प्रति हमारे दायित्वों की प्रकृति से जुड़ा हुआ है। इसी दायित्व बोध का निर्वहन हमारा लेखक अपनी संवेदनात्मकता के साथ साहित्य में करता है। निस्संदेह साहित्य और कलाएं जीव-जगत तथा प्रकृति की समस्त पीड़ाओं की सार्थक और जीवंत अभिव्यक्तियां हैं।

पंद्रहवीं सदी के वैष्णव भक्त कवि नरसी मेहता द्वारा रचित भजन की प्रथम पंक्ति बहुचर्चित है- ''वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड़ पराई जाने रे।'' अर्थात् दूसरों की पीड़ा को समझना वैष्णव जनों के लिए अपरिहार्य है। महात्मा गांधी भी नरसी मेहता और उनके भजन की इस पंक्ति को सुनकर प्रभावित हुए थे और जीवनपर्यंत करुणाशील बने रहे। वास्तव में भारतीय समाज पीर पराई जानिए के भाव को अपने लिए प्रेरणा का अजस्र स्रोत मानता है। महात्मा गौतम बुद्ध के वैराग्य भावोद्भव का मूल कारण सांसारिक पीड़ा थी।

हमारे संत व भक्त कवियों के जीवन और वाणी में पीड़ा की सहज अभिव्यक्ति हुई है। संत कबीरदास तो बहुत स्पष्ट शब्दों में कहते हैं-

सुखिया सब संसार है खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागै अरु रोवे।।

कबीर का जागना और रोना मानव को सांसारिक दुःख से उबारने के लिए रहा है। सीयराममय सबजग जानी ''कहकर तुलसीदास ने संसार की पीड़ा के निवारणार्थ रामचरितमानस रचा और उसका गायन किया। उनकी दृष्टि में कविता सभी का हित करने वाली होनी चाहिए- ''कीरति भनिति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सब कहं हित होई।''

वास्तव में चाहे संत-भक्त कवि रहें हों या आध्यात्मिक सृजनचेता व्यक्तित्व, दोनों ही मानवता के उत्थान हेतु कृतसंकल्पित होकर समस्त सांसारिक व्याधियों को पार करते हुए जागरण के प्रहरी की भूमिका निभाते रहे हैं। जीवन-मुक्ति के लिए सारी ज्ञान-साधनाओं की उपयोगिता रही है। अज्ञानता ही हमारे सारे पापकर्मों और पीड़ा का मूल रहा है। इसी दुःख और मनोविकारों से मुक्ति ही साहित्य का परम लक्ष्य माना गया है। आधुनिक युग में भी हमारे साहित्यकारों के जीवन और लेखन में पीड़ा का सामंजस्य बना हुआ है। सुमित्रानंदन पंत की प्रसिद्ध काव्य पंक्तियां हैं-

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
निकलकर नयनों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।

जनमन की 'आह' सृजन की उत्सभूमि और रचनाकर्म का मर्म है। समाज में हमें उसी गान को प्रोत्साहित करना चाहिए जो मानवता के हित से जुड़ा हुआ हो। भारतीय साहित्य में विश्व-मंगल की अटूट भावना परिव्याप्त है। मानवता के प्रति सजग कथाकार रामदरश मिश्र का साहित्य मानवीय पीड़ा की गहन अनुभूति से संवलित और मुक्तिभाव से संस्कारित रहा है। अपनी एक बातचीत में उन्होंने कहा भी है- ''.....सारे वैविध्य के बावजूद सब का मूल तो मनुष्य का कल्याण ही है न, जैसा कि तुलसीदास ने कहा है'' परहित सरिस धर्म नहिं भाई। ''कबीर ने ढाई आखर कहकर प्रेम की परिभाषा की। अन्य विचारकों ने भी मानव मूल्यों की बात कही है। पीर पराई जानना हर विचारधारा का मूल है, की वर्ड है। कोई भी धर्म या विचारधारा मनुष्य के अहित की बात नहीं करती है।'' स्पष्ट है कि मिश्र जी के लेखन और उनकी वैचारिकी का की-वर्ड है पीर पराई जानना है। उनकी पूरी लेखकीय साधना पीर पराई जानने के लिए हुई है। उनका संपूर्ण लेखन इस पीर पराई का ही गवाह है। गांधी का प्रेरक व्यक्तित्व और उनका जीवन-दर्शन मिश्र जी के लेखन की पृष्ठभूमि में रहा है। उनके कथा पात्र गांव और शहर के जीवन में देशज मनुष्यता को बचाये रखने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। इस शताब्दी के सबसे बड़े मानवीय संकट की ओर कहानीकार ने 'आरंभ' कहानी में संकेत किया है- ''इस देश में कैसे-कैसे लोग हैं। हर आदमी चाहता है कि बस उसी का काम हो, दूसरा जहन्नुम में जाए। पता नहीं देश के लोगों को समाज में जीना कब आएगा?'' (दिनचर्या, पृष्ठ 87) यह चिंता रामदरश मिश्र जैसे संवेदनशील साहित्यकारों को लगातार परेशान करती रही है। दरअसल उनके साहित्य का मूल उत्स ही पीड़ाभाव है। हर तरह के शोषण और अन्याय का प्रतिकार करती उनकी कहानियां मानवता को सहेजने का सुंदर प्रयास कही जायेगी। केवल करुणा का भाव ही नहीं आक्रोश और विरोध के स्वर को उभारने में भी मिश्र जी की कहानियों की अहम् भूमिका है।

पंद्रहवीं सदी के वैष्णव भक्त कवि नरसी मेहता द्वारा रचित भजन की प्रथम पंक्ति बहुचर्चित है- ''वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड़ पराई जाने रे।'' अर्थात् दूसरों की पीड़ा को समझना वैष्णव जनों के लिए अपरिहार्य है। महात्मा गांधी भी नरसी मेहता और उनके भजन की इस पंक्ति को सुनकर प्रभावित हुए थे और जीवनपर्यंत करुणाशील बने रहे। वास्तव में भारतीय समाज पीर पराई जानिए के भाव को अपने लिए प्रेरणा का अजस्र स्रोत मानता है। महात्मा गौतम बुद्ध के वैराग्य भावोद्भव का मूल कारण सांसारिक पीड़ा थी।

रामदरश मिश्र की कहानियों में चित्रित गांव के खंड-खंड चित्र उनके उपन्यासों में व्यापक स्वरूप में अंकित हुए है। उनकी संपूर्ण सृजनशीलता के मूल में करुणा का भाव विद्यमान है। अपने उपन्यासों के संदर्भ में कही गई उनकी यह बात उल्लेखनीय है-''उपन्यासों में कोई न कोई ऐसा पात्र आया है जो अपने दर्द से दूसरों में दर्द जगाता है।'' इस दृष्टि से उनके उपन्यास ही नहीं, अपितु कहानियों को भी परखना चाहिए। कहानियों में शताधिक ऐसे स्त्री और पुरुष पात्र चित्रित हैं जिनका जीवन अभिशप्त है। वे दुःख को जीवन में सिमिटाये हुए जी रहे होते हैं। मिश्र जी ''समकालीन मनुष्य के संकट को ठीक-ठीक पहचान सके हैं और उनके सवालों तक पहुंचने की कोशिश कर पाये हैं जो ऊपर से आसान दिखते हैं मगर होते नहीं।'' (फिर कब वे आयेंगे, प्राक्कथन) उनकी कहानियों में हमें दर्द का सैलाब दिखाई देता है जिसमें डूबते-उतराते स्त्री और पुरुष पात्र अपना कर्म और प्रारब्ध लिए जी रहे होते हैं। वे सभी मनुष्य संघर्षों की राह पर कदम-दर-कदम अपनी मंज़िल पाने को कोशिश में संलग्न दिखाई देते हैं। उनके कथा पात्रों के पीड़ामय-संसार के लिए आर्थिक और सामाजिक विषमताएं ज़िम्मेदार हैं। इस दृष्टि से कहानियों में पिछड़े और शोषितवर्ग के तमाम जीते-जागते चेहरे दिखाई देते हैं जिनके प्रति लेखक की अपार सहानुभूति और संवेदनाएं जुड़ी रही हैं।

आज के आपाधापी भरे समय और स्वार्थपरता से सनी ज़िंदगी जीने की विवशता व्यक्ति को मनुष्यता के घेरे से बाहर निकलने को बाध्य करती है। तमाम तरह के हादसे जीवन में जिस तेज़ी से बढ़ रहे हैं वह मानव समाज के लिए चिंता का विषय हैं। आज हर आदमी तमाशबीन बना हुआ है। विरोध की दबी-घुटी आवाज़ विषम परिस्थितियों में कहीं गुम हो जाती है। लेखक महानगरीय परिवेश में हो रहे हादसों से दुःखी है। 'सवेरे सवेरे' कहानी में हम सोचने के लिए विवश होते हैं - ''इसे पता नहीं कि बच्चे के रोने का क्या अर्थ होता है। उसमें मनुष्य के दर्द को झकझोर देने की कितनी गहरी क्षमता होती है। ये लड़के तो गहरे मानवीय संदर्भों और संवेदनाओं को अपने हलके-फुलके मनोरंजन का साधन बनते जा रहे हैं।'' (एक कहानी लगातार, पृ 114) अपनी ज़मीन से उखड़ने का दर्द लेखक ने बराबर महसूस किया है। उसे मुक्ति का कोई मार्ग नहीं सूझता है। 'एक वह पराया शहर' कहानी में गांव के उस व्यक्ति की पीड़ा की अभिव्यक्ति हुई है जो शहर की भीड़ में ठोकरें खाते हुए कराह रहा है। दिल्ली महानगर में ठोकर खाये व्यक्ति की स्थिति है कि ''नामहीन इस भीड़ के किनारे वह पड़ा-पड़ा कराह रहा है।'' (पृ 43)

इस ज़माने में हम सभी के लिए आपसी प्रेम, रिश्तों की गरमाहट और मेल-मुलाहिजा आदि सब चकनाचूर हो गये हैं। इस रिलेशनशिप को बचाए रखने के लिए हमें जाति, संप्रदाय, प्रांतीयता से बाहर निकलना होगा। शहरी जीवन में पारिवारिक संबंधों की डोर टूटने लगती है, छद्मावरण में जीने की आदतें शहरी जीवन जीने वाले व्यक्तियों को मानसिक रूप से दुर्बल बना देती हैं। अपनी पहचान से दूर कर देती हैं। बनावटीपन आदमी को घेर लेता है और जीवन में सहजता गायब हो जाती है। 'एक वह' कहानी में संबंधों के निर्वाह में आई ढील की ओर संकेत है। 'संबंध' कहानी का शील छले जाने पर सोचने के लिए विवश होता है- ''कैसे-कैसे लोग होते हैं जो संबंधों को भुनाने के सिवा और कुछ जानते ही नहीं। और एक वह बेवकूफ है जो हर संबंध की पीड़ा को अपनी पीड़ा बना लेता है।'' (पृ 120) यही पीड़ा मिश्र जी की कहानियों का केंद्रीय मर्म है और यही लेखक का सच्चा अनुभव भी है।

गांव में जन्में, पले-बढ़े और संस्कारित हुए रामदरश मिश्र ने अपने कथापात्रों को शहरी परिवेश के विषाक्त वातावरण तथा छलछद्म के दंश से उबारने की कोशिश की है, लेकिन ऐसा संभव नहीं हो पाया है। एक पात्र के मार्फत उनकी पीड़ा व्यक्त हुई है- ''.... दर्द उभरता है कि ये मुझे क्यों नहीं समझते ? क्यों नहीं समझते कि मैं अपने और गांव के बीच उठी हुई पर्तों को तोड़ना चाहता हूं।'' (खाली घर, एक और यात्रा, पृ 146) 'टूटे हुए रास्ते' कहानी का रामजी शहर में अपनी पहचान बनाने के लिए व्याकुल होता है, किंतु ''इस शहर में वह निरा अजनबी है, अकेला खोया हुआ। किसी से काम मांगने जाता है तो वह आदमी पहले तो उसे ऊपर से नीचे देखता है, पहचानना चाहता है कि यह आदमी है या चोर। ''फिर डांटकर कहता है-'' जाओ यहां से, चले आते हैं काम लेने। न जाने कहां-कहां के चोर-उचक्के काम के बदले टोह लेने चले आते हैं।'' (सर्पदंश, टूटे हुए रास्ते, पृ 50) शहर में आकर अपना रूपया-पैसा लुटा बैठा रामजी गांव लौट जाने के लिए बेचैन हो उठता है, परंतु समस्या है- ''वह घर कैसे लौटे ? क्या बीतेगी घर वालों पर ? कर्ज़ देने वाले अभी तक तो भुलावे में होंगे, असलियत खुलते ही जान खाने को दौड़ेंगे, जीना मुश्किल कर देंगे। ऊंचे लोग ताना मारेंगे, सो अलग। वह किस मुंह से घर लौटे...।'' (वही, पृ 61) इस अर्न्तद्वन्द्वग्रस्त मनःस्थिति में व्यक्तित्व की सारी क्षमता इसी तनाव में छीज जाती है। 'फिर कब आयेंगे?' कहानी की प्रस्तावना में कहा गया कथन मिश्र जी की कहानियों के संदर्भ में सत्य प्रतीत होता है- ''वास्तव में रामदरश मिश्र की कहानियों से गुज़रना एक भरे-पूरे अनुभव-संसार से गुज़रना है। इनकी कहानियों में एक चिर-परिचित, जाना-बूझा संसार देखने को मिलता है। जीवन का यथार्थ एवं संश्लिष्ट अनुभव है जिसे मिश्र जी उसके पूरे अंतर्विरोधों के साथ प्रस्तुत करते हैं।'' (फिर कब आयेंगे, प्रस्तावना से)

स्पष्ट है कि मिश्र जी के लेखन और उनकी वैचारिकी का की-वर्ड है पीर पराई जानना है। उनकी पूरी लेखकीय साधना पीर पराई जानने के लिए हुई है। उनका संपूर्ण लेखन इस पीर पराई का ही गवाह है। गांधी का प्रेरक व्यक्तित्व और उनका जीवन-दर्शन मिश्र जी के लेखन की पृष्ठभूमि में रहा है। उनके कथा पात्र गांव और शहर के जीवन में देशज मनुष्यता को बचाये रखने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं।

इंसानियत के घटते जाने की चिंता कहानीकार को है। एक स्त्री पात्र अत्यंत व्यथित होकर कहती है- ''हे राम, अब किसी पर कोई कैसे विश्वास करें? इस तरह तो किसी की मदद करने की इच्छा ही मर जायेगी।'' (एक कहानी लगातार, प्रपंचः पांच कहानियां, पृ 30) शहर में रहने के लिए किराए पर मकान मिलने की समस्या प्रमुख है। मकान, पराया शहर, एक अधूरी कहानी, उलझन, पिंजड़ा, एक वह, दिनचर्या, चक्र, टूटे हुए रास्ते, झगड़ा आदि कहानियां शहर में मकान की समस्या से जूझने की पीड़ा को रेखांकित करती हैं। शहर में आकर गांव का घर और वहां का अपनत्व भरा वातावरण उसे याद आता है। 'पराया शहर' कहानी के पंकज के लिए शहर में आकर मकान ढूंढ़ना सिरदर्द बन गया है। वह सोचता है कि ''कहां है उसका घर ? उसका घर तो एक दूसरे प्रदेश के गांव में है, सैकड़ों मील दूर।'' (वसंत का एक दिन, पराया शहर, पृ 48)

सर्पदंश 'कहानी के माधव और गोकुल भयंकर ग़रीबी के शिकंजे में फंसे हुए हैं। इनके जीवन में मानो सुख का सूरज उदय ही नहीं हुआ। माधो अपने बीते हुए दिनों को याद कर करता है- ''बचपन से ही उसने जो दुनिया देखी है, उसमें अफाट गरीबी, अपमान और यातना के सिवा पाया क्या है ? एक बीघा खेत, उसमें साग-सब्ज़ी उगाते हुए बापू-माई, बहनें और वह बाढ़ में उसकी बीवी भी। उसने हमेशा बाबू और भाई को फटे-पुराने कपड़ों में ही देखा। बहनों और उसे भी कहां अच्छे कपड़े नसीब हुए। वह पढ़ना चाहता रहा। दर्ज़ा चार तक पढ़ा भी। लेकिन मास्टर साहब उसकी किसी ग़लती पर बार-बार यही गाली देते-कोइरी ससुर पढ़ने चले हैं, अरे जाकर साग-सब्ज़ी उगाओ और बाज़ार में बेंचो। पढ़ाई-लिखाई तुम्हारा काम नहीं है। फिर घर की हालत ने सचमुच उसे साग-सब्ज़ी की दुनिया में ला पटका। (आज का दिन भी, दक्षिणा, पृ 20)

महानगरीय समाज में फुटपाथ पर फटेहाल ज़िंदगी गुज़र बसर करने वाले मज़दूरों और भिखारियों की कोई गणना नहीं होती है। उनके दुःख दर्द का एहसास कम लोगों को होता है। शहरों में फुटपाथ पर रहने वालों की जिंदगी का यथार्थ पीड़ादायक है जिसे एक सहृदय लेखक ही महसूस करता है। रामदरश मिश्र ने महानगर दिल्ली में फुटपाथ पर रहने वाले लोगों की मैली-कुचैली ज़िंदगी को बहुत करीब से देखा और उनकी तकलीफ को सही तौर पर समझा है। 'टूटे हुए रास्ते' कहानी के रामजी का आश्रयस्थल फुटपाथ है। भाड़े पर गुदड़ी लेकर सोने वालों के दर्द को एक संवेदनशील मसिजीवी ही समझ सकता है। एक मर्मांतक चित्र प्रस्तुत है ''..... कहीं कोई रो रहा था। कोई बुरी तरह खाँस रहा था, खांसते-खांसते बेदम हो रहा था। कोई बच्ची भूख से रो रही थी तो उसकी मां समझाते-समझाते उसे पीटने लगी थी। कोई

किसी से झगड़ा कर रहा था, कोई शेखी बघार रहा था कि देख लूंगा साले को कल। उसे लगा कि एक दुनिया में न जाने कितनी अलग-अलग दुनिया है।'' (पृ 55) सोहागी के प्रति किए जाने वाले अत्याचार पर लेखक चुप नहीं रह सकता है। वह विचार करता है, अगर कहीं अच्छी जगह का रहने का प्रबंध हो गया होता तो शायद सुहागी की ज़िंदगी बर्बाद होने से बच सकती थी। 'एक वह' के ताऊ की फुटपाथी ज़िंदगी बेकद्र बनी हुई है, उसके ऊपर ग़रीबी की मार भयानक है। उस बूढ़े के पास अपना गुज़र-बसर करने के लिए कुछ भी तो नहीं है। दिल्ली महानगर की कॉलोनी के एक गोल चक्कर पर बैठकर कभी मूंगफलियां, कभी भुट्टा, कभी चने-मुरमुरे बेचता है। उसके पास काठ का एक बक्सा और एक टूटी हुई चारपाई है, वही गोल चक्कर उसका घर है और वही दुकान भी। 'दिनचर्या' कहानी के पति-पत्नी का बसेरा भी फुटपाथ पर ही है। फुटपाथ पर सोना और झोपड़ी में थोड़ा बहुत सामान। इसी तरह 'गपशप' कहानी का पूरा परिवार फुटपाथ पर बसेरा किए हुए है। ''झोपड़ी क्या है ईट खड़ी कर उसे पर टीन का एक पातर डाल दिया गया है।'' (पृष्ठ 10) 'छूटता हुआ नगर' कहानी में कहानीकार ने बेबसी का लोमहर्षक चित्र खींचा है- ''होटलों के पास बड़े-बड़े गंदे बालों और चीथड़ों से ढंके, खाज भरे कुत्तों से देह खुजलाते लोग आने-जाने वालों की ओर बेबस हाथ फैलाए दिखाई पड़ते थे।'' (खाली घर, पृ 163) उपर्युक्त कहानियों के परिप्रेक्ष्य में मनु शर्मा का यह कथन महत्त्वपूर्ण है- ''आम आदमी के दुःख-दर्द, करुणा और संवेदना की एक अकथ कहानी भी उनके साथ चलती गई जिसे व्यक्त करने की उनकी प्यास कभी बुझी नहीं।''

उनकी कहानियों में हमें दर्द का सैलाब दिखाई देता है जिसमें डूबते-उतराते स्त्री और पुरुष पात्र अपना कर्म और प्रारब्ध लिए जी रहे होते हैं। वे सभी मनुष्य संघर्षों की राह पर कदम-दर-कदम अपनी मंज़िल पाने को कोशिश में संलग्न दिखाई देते हैं। उनके कथा पात्रों के पीड़ामय-संसार के लिए आर्थिक और सामाजिक विषमताएं ज़िम्मेदार हैं। इस दृष्टि से कहानियों में पिछड़े और शोषितवर्ग के तमाम जीते-जागते चेहरे दिखाई देते हैं जिनके प्रति लेखक की अपार सहानुभूति और संवेदनाएं जुड़ी रही हैं।

गांव के लोगों की संकीर्ण धार्मिक मनोवृत्ति पर लेखक को कथमपि आश्चर्य नहीं है, क्योंकि वह गांव को अच्छी तरह से जानता है। आस्था की डोर से बंधे लोगों के जीवन में अंधविश्वास जब घर कर लेता है तब बेला जैसी युवतियों को मरने के लिए मजबूर होना पड़ता है। बेला रूढ़ियों और अंध मान्यताओं का शिकार हो गई है। 'कहां जाओगे' कहानी का ओझा गांव के लोगों को बेवकूफ बनाता है और उसके जाल में फंसे हुए लोग उसका शिकार बनते हैं। बरम बाबा के चक्कर में लोग फंसे हुए हैं। प्रेत का संकट भी गांव के लोगों को झेलना पड़ता है। ऐसी ही अनेक अंधविश्वास की बातें और घटनाएं हैं जो गांव के लोगों की मानसिक परेशानी का सबब बनी हुई हैं। अंधमान्यताओं के बीच में जीवन जीने को मजबूर गांव के लोग शिक्षा से बहुत दूर हैं। 'वसंत का एक दिन' की फुलवा डायन का पर्याय मान ली गई है। गांव के लोगों ने फुलवा को अपने भाई, बाप और पति की मौत के लिए ज़िम्मेदार मान लिया है। लोगों के ताने सुन-सुनकर फुलवा जयराम से कहती है कि दुनिया की गाली खाते-खाते मैं ख़ुद भी यही मानने लगी हूं कि मैं डायन हूं, जहां जाती हूं किसी को खा जाती हूं (पृ 121) 'अकेला मकान' की जगरानी फुआ बांझन और टोनहिन उपनाम से बदनाम कर दी गई हैं। 'साढ़े साती' कहानी में तंत्र-मंत्र और गंडा-ताबीज़ धारणकर नायिका अपनी मुसीबतों को ठेल देना चाहती है। 'इज्ज़त' कहानी में महेश सिंह की पतोहू को चुड़ैल समझ लिया जाता है। 'आधुनिक' शीर्षक कहानी में भूत-प्रेत, अंधश्रद्धा और धार्मिक रूढ़ियों व मान्यताओं में उलझे लोग सुखी की लड़की को ओझा और बाबा के स्थान पर ले जाते हैं और वहां तंत्र-मंत्र करवाते हैं।

जातिगत भेदभाव और सांप्रदायिकता की समस्या ने भारतीय समाज की सद्भावना और आपसी एकता का ताना-बाना छिन्न-भिन्न कर दिया है। इस समस्या की ओर लेखक ने दुःख भरी नज़रों से देखा है।

'सर्पदंश' कहानी का गोकुल ज़हरीले सांप से तो बच जाता है, परंतु दो पैरों वाले मनुष्य रूपी सांप से नहीं बच पाता है। क्योंकि वह ग़रीब है, मजदूरी करता है और निम्न जाति का है। उसका जीना या मरना बड़ी जाति के लोगों के लिए कोई मायने नहीं रखता है। अपनी जाति से उठकर विद्रोह करने की ताकत गोकुल में थी, जिसे प्रधान नहीं सहन कर सकता है। 'इज्ज़त' कहानी की राजमतिया भी छोटी जाति की है और उसकी इज्ज़त से खेलने वाले लोग ऊंचे लोग हैं। 'ज़मीन' कहानी का बालक मोहन स्कूली छात्र है। अपने लिए जातिसूचक गलत शब्द कहे जाने पर उसके हृदय को दुःख पहुंचता है। भूख भी उसके लिए बड़ी समस्या है, पर उच्चवर्ग की गलियां उससे भी अधिक पीड़ा पहुंचाती है। वह अछूत जाति का है, होनहार विद्यार्थी मोहन भूमिहीन है। भूमिहीनता भी उसकी समस्या का एक बड़ा कारण है।

मानवीय संवेदनाओं से सराबोर रामदरश मिश्र का साहित्य और उनकी मानवतावादी दृष्टि पीड़ित और दुःखी जनों के साथ आत्मीय संवाद ही नहीं स्थापित करती है, बल्कि उनकी समस्याओं को पूरी ईमानदारी और प्रखरता के साथ समाज के सामने रखती है। उन्होंने लिखा है कि ''मेरी कहानियों में अपने परिवेश के सामाजिक जीवन का यथार्थ ही अधिक व्यक्त हुआ है। वैसे मैं अपने गांव-जवार से बाहर निकल कर एक शहर से दूसरे शहर तक घूमता रहा और इन नगरों के परिवेश में जितना जी सका उतना उनका चित्रण भी अपनी कहानियों में किया। किंतु, लगता है मेरे भीतर सदा मेरा गांव ही जीत रहा है। यह गांव कछार का गांव है, दो नदियों के बीच घिरे हुए एक बहुत बड़े कछार अंचल का गांव। इस गांव के सारे अभाव, विडंबना, अवमानना, प्राकृतिक प्रकोप के आधार और जिजीविषापूर्वक उनसे

आंचलिक कथाकार विवेकी राय और धर्मपत्नी स्व. सरस्वती मिश्र के साथ

मनुष्य का संघर्ष, पाखंड को मैंने देखा ही नहीं, जिया भी है। (रामदरश मिश्र व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं जगन सिंह, स्मित मिश्र, पृ 177)

गांव की बेरंग और हादसों से भरी ज़िंदगी का सच लेखक ने अपनी कई कहानियों में चित्रित किया है उसे पता है कि गांव का हर बड़ा आदमी अपने से छोटी जाति वालों को दबोचने की कोशिश में लगा रहता है। यह यथार्थ 'गांव का बड़ा आदमी' कहानी में व्यक्त हुआ है। 'वकील साहब' कहानी भी पैसे के ज़ोर पर अपमानित करने की प्रवृत्ति का खुलासा करती है। एक ब्राह्मण युवक ने शहर में हरिजन लड़की से शादी कर ली तो गांव में भरपूर विरोध हुआ। पंचायत ने ऐसे मामलों का निर्णय करते हुए कहा कि ''इस परिवार का छुआ न कोई खाएगा न पानी पीयेगा। इनके भोज-भात, मरण-जीवन, शादी-ब्याह में कोई सम्मिलित नहीं होगा। ये लोग सार्वजनिक कुएं से पानी नहीं भरेंगे। अगर बहिष्कृत होने से बचाना है तो उसे हरिजन लड़की को छोड़ना होगा। शास्त्रानुसार प्रायश्चित करना होगा।'' रामदरश मिश्र ने हमेशा संकीर्ण मान्यताओं और रूढ़िवादी परंपराओं का विरोध किया है। हरिजनों के प्रति गहरी सहानुभूति और प्रगतिशील सोच के तहत लेखक ने अपनी कहानियों में उच्चवर्ग द्वारा किए जा रहे शोषण और प्रताड़ना का विरोध करने वाले पात्रों को मानसिक रूप से तैयार किया है। वे मज़बूती से अपनी बात कहते हैं। यह बात अवश्य ही कि उनकी हर आवाज़ हर वक्त नहीं सुनी जाती है। उदाहरण के लिए 'सहयात्री' कहानी में ब्राह्मण युवक और हरिजन ज्योति के प्रेम विवाह को मान्यता दी गई है।

वास्तव में रामदरश मिश्र की कहानियों में समाज के दबे-कुचले, निरीह, अपमानित, उपेक्षित और सर्वप्रकारेण पीड़ा झेल रहे स्त्री व पुरुष पात्रों की एक बड़ा हिस्सा है है जिनके हिस्से का दुःख-दर्द उन्होंने अनुभव किया है तथा उनके पक्ष में आवाज़ उठाई है। सुरेन्द्र तिवारी का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है- '' रामदरश जी ने ऐसे ही पात्रों को अपनी कहानियों में उतारा है जो उपेक्षित हैं, दलित हैं, पीड़ित हैं। एक तरफ ग़रीबी है तो दूसरी तरफ शक्तिशाली उच्च वर्ग का शोषण भी। धनी ही नहीं, जाति की श्रेष्ठता भी किस तरह सामाजिक अत्याचारों अनाचारों की पोषक है, यह भी इन कहानियों में देखा जा सकता है।'' (रामदरश मिश्र : रचना समय, वेदप्रकाश अमिताभ, पृ. 141) रामदरश जी ने कहा है कि ''तरह-तरह के अभिशप्त और उदास चेहरे हमारे सामने उपस्थित हुए हैं। शायद इन्हीं बिंबों ने मुझे कथा साहित्य की ओर धकेल भी दिया।''

आर्थिक संकट की पीड़ा को भोग रहे लोगों के बहुतेरे चित्र रामदरश जी की कहानियों में अंकित हुए हैं। 'मुर्दा मैदान' कहानी के पात्र श्रमिक वर्ग के हैं। दिन-रात मेहनत-मजदूरी करने वाले हैं। यह कथन द्रष्टव्य है- ''देखा है न, तेरी मां बिना दवाई के मर गई। ज़िंदगी भर बनते हुए मकान के लिए

ईंट-गारा ढोती रही और एक दिन ईंट-गारा ढ़ोकर जाड़े की शाम को घर लौट रही थी तो पानी बरसने लगा रास्ते में। किसी ने अपने बरामदे में बैठने तक नहीं दिया। वह एक पेड़ के नीचे बैठी रही। उसे निमोनिया हो गया। दवाई के पैसे नहीं थे। तड़प-तड़प कर मर गई ।" 'गपशप' कहानी का नायक और उसका परिवार फुटपाथ पर सर्दी, गर्मी, बरसात के दिन काटता है। वह टीवी का मरीज है। उसका पुत्र है और एक स्त्री, जो किन-किन उपायों से खाने-पीने का जुगाड़ करती रहती है।

'चिट्ठियों के बीच' कहानी का पात्र देव आर्थिक संघर्षों के बीच छटपटाता है। उसका परिवार गांव में उसके माता-पिता भाई बहनों की आर्थिक ज़िम्मेदारी उठाने में असफल है। उसकी पीड़ा को लेखक ने बखूबी समझा है। आर्थिक अभावों में ज़िंदगी की यातनाएं झेलते ग्रामीण स्त्री-पुरुष पात्रों की आंतरिक पीड़ा का उद्घाटन अनेक कहानियों में हुआ है। नित्यानंद तिवारी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि "गांव और शहर के दोनों संदर्भों से जुड़े चरित्रों के जीवन की व्यथा, विवशता और संघर्ष को प्रामाणिक रूप से चित्रित कर सकने में कहानीकार के व्यक्तित्व को वहीं पर स्पष्ट पहचाना जा सकता है। किस तरह विवशता में संबंध टूटते जा रहे हैं और उस टूटन से दर्द किस प्रकार अभिशाप की तरह जीवन को ग्रसता जा रहा है। इस ट्रैजेडी की सही पहचान रामदरश जी में है। "(खाली घर, प्रस्तावना) 'मां, सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो' गरीबी और आर्थिक विपन्नता को प्रदर्शित करती कहानी है। भूख की भयावहता इंसान को किस तरह परेशान करती है जिसका चित्रण करते हुए लेखक ने लिखा है-" मेरे लिए मानव की यह बेबसी नयी नहीं है। मैंने उसके कई रूपों-रंगों के बीच से यात्राएं की हैं। गोबरहा पशुओं के गोबर में से अन्न के दाने निकाल कर खाना क्या कम बेबसी है और हम समाजवाद मानवतावाद प्रजातंत्र आदि का नारा लगाते नहीं अघाते।" (पृ 43) इंसान के लिए भूख सबसे बड़ी बेबसी है। इस वेदना को चाची समझती हैं- "बीमारी तो एक दिन की है, बच्चा, लेकिन भूख तो कई दिन की है।" (मां, सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो, पृ 47) 'लाल हथेलियां' कहानी के नायक के अहं के कारण उसकी पहली पत्नी मर जाती है। 'मुक्ति' कहानी की तीन युवा बहनें अपनी इच्छाओं को दबाकर, सपनों को कुचल कर निरंतर काम में लगी रहती हैं और असमय बुढ़ापे को न्योता दे देती हैं। टूटती हुई आस्थाओं और मशीनी युग का इससे बड़ा उदाहरण क्या हो सकता है कि व्यक्ति अपने आप को भूलकर मशीन बन जाए। इस विचार एवं यांत्रिकता को नोचती हुई चंदा कहती है- "सब चाहते हैं कि मैं भी इस मकान के लिए उन्हीं की तरह मशीन बन जाऊं।" 'एक औरत की ज़िंदगी' की भवानी गांव में आई बाढ़ में अपना सर्वस्व गंवा बैठी है, किंतु दोबारा कठिन परिश्रम करके अपने परिवार को संभालती है। आर्थिक अभाव से जूझती भवानी अपनी बदहाली पर लगातार पर्दा डालती रहती है। यहां हमें 'सर्पदंश' कहानी के गोकुल की पुनः याद आती है जो कम से कम विपरीत परिस्थितियों से मुठभेड़ करने की बात सोचता है- "लेकिन नहीं, मुझे मरना नहीं चाहिए। मैंने सांप काटने की बेहोशी में बचवा को लिपटकर रोते हुए देखा तो मेरे भीतर जीने की इच्छा जाग पड़ी और मैं सांप के ज़हर से लड़ने लगा। मैं जिऊंगा, मैं अपने परिवार के लिए जिऊंगा। जिस खेत को मैंने पसीने से सींचा है उसकी फसल काटूंगा, वह फसल मेरी है।" (पृ 25)

रामदरश मिश्र की कहानियों में पीड़ा का पाट बहुत चौड़ा है। समाज में जहां भी लेखक की दृष्टि जाती है पीड़ा का पारावार दिखाई देता है। पीड़ा की भावभूमि पर ही मिश्र जी की कहानियों में जीवन का विधान रचा गया है। यह पीड़ा हिंदू और मुसलमान के पारस्परिक रिश्तों के बिगड़ने की चिंता से भी जुड़ती है। हिंदू और मुसलमानों के बीच सांप्रदायिक सौहार्द बनाए रखने पर केंद्रित कहानियां हैं- रहमत मियां, चक्र, एक कंठ विषपायी आदि। 'एक कंठ विषपायी' सामान्य जन की पीड़ा के एहसास से भरी हुई है।

मानव-जीवन की सार्थकता लोक-कल्याण की भावना में निहित है। एक चिकित्सक का अपने पेशे के प्रति समर्पण के साथ मरीज के प्रति मानवीय दृष्टि का होना अपेक्षित है। 'चिकित्सक' शीर्षक कहानी में एक मां अपने चिकित्सक पुत्र को नसीहत देती है- "मैं चाहती हूं कि तुम बीमार को केवल डॉक्टर की दृष्टि से मत देखो, मनुष्य की दृष्टि से देखो। .....लेकिन पता नहीं क्यों बेटा तुम्हारी यह मां उनकी गंदगी और उसके भीतर छिपी हुई गरीबी तथा लाचारी को देखकर थर्रा उठती है। उनके चेहरों पर सदियों से पुती हुई उदासी और आंखों में लिखा हुआ डर का सन्नाटा देखती है तो जी न जाने कैसा-कैसा होने लगता है।" (एक कहानी लगातार, पृष्ठ 43) लेखक की सोच बहुत व्यापक है। उसके लिए दुःखी और पीड़ित जन के दुःख-दर्द को समझना ज़रूरी है। इसी तरह 'प्यास' कहानी में ग़रीब आदमी की अभावग्रस्त ज़िंदगी का चित्रण है।

युवावर्ग की समस्याओं की ओर भी लेखक का ध्यान गया है। बेरोज़गारी सबसे बड़ी चुनौती है युवाओं के लिए। रोटी का संकट उसे लाचार और कुंठित बना देता है। 'रोटी' नामक कहानी में एक शिक्षित युवक की लाचारगी, भूख, आंसू और बेबसी को उभारा गया है। एक फैक्टरी में उसे मजदूरी करके अपना पेट पालना पड़ता है। 'एक रात' कहानी भी युवक की गरीबी और बेरोज़गारी का यथार्थ चित्रण है। यह कथन विचारणीय है-"एक बाप की बेटी को कौन पूछता है ? यहां तो खाने के लिए लाले पड़े हैं, दहेज कहां से दिया जाता ?" 'एक वह' कहानी के वृद्ध की ग़रीबी भरी ज़िंदगी को देखकर कहानीकार विचलित होता है। वह लिखता है कि "वह बुड्ढा दीवार पर लगे पोस्टर पढ़ता है- ग़रीबी-ग़रीबी-ग़रीबी इसके सिवा उसने देखा ही क्या है ?"

रामदरश मिश्र की कहानियों में पीड़ा का पाट बहुत चौड़ा है। समाज में जहां भी लेखक की दृष्टि जाती है पीड़ा का पारावार दिखाई देता है। पीड़ा की भावभूमि पर ही मिश्र जी की कहानियों में जीवन का विधान रचा गया है।

यह पीड़ा हिंदू और मुसलमान के पारस्परिक रिश्तों के बिगड़ने की चिंता से भी जुड़ती है। हिंदू और मुसलमानों के बीच सांप्रदायिक सौहार्द बनाए रखने पर केंद्रित कहानियां हैं- रहमत मियां, चक्र, एक कंठ विषपायी आदि। 'एक कंठ विषपायी' सामान्य जन की पीड़ा के एहसास से भरी हुई है। सांप्रदायिकता विरोधी है रहमत मियां। रहमत मियां के बोल सुनकर सुकून मिलता है। वह कहता है- "मैं हिंदू हूं ना मुसलमान मैं इंसान। 'मैं और मेरी दुकान' में भी हिंदू हैं न मुसलमान, सब मेरे भाई हैं। बेगुनाहों का खून बहाने निकले हो, कुछ तो शर्म करो।" (आज का दिन, पृ. 17)

स्त्री के शोषण और उसके प्रति अन्याय की अनेक कहानियां भी रामदरश मिश्र ने रची हैं। ढेरों कहानियों में गांव, कस्बे और महानगर की नारियों के जीवन की त्रासद स्थितियों को उकेरा गया है। बेला निर्धन पिता की संतान है जो गांव वालों के ताने सुनकर तंग हो जाती है। पिता उसकी शादी एक अति सामान्य, अशक्त, रुग्ण, उम्र में काफी छोटे युवक से करवा देता है। 'आख़िरी चिट्ठी' का जीवन दुःख के महासागर में डूबा हुआ है। 'अधूरी कहानी' की सोहागी का दर्द भी भुलाया नहीं जा सकता है। उसका पति कमाई के लिए सात साल से सिंगापुर में है। यहां गांव में सोहागी अकेलापन झेल रही है। वह अपने अरमान चूल्हे की अग्नि में जलाने पर मजबूर है। 'डर' कहानी की पद्मा की पीड़ाभरी ज़िंदगी हमें दहशत से भर देती है। ससुराल में पति द्वारा प्रताड़ित की जाती है और अंततः उसकी मृत्यु हो गई। पद्मा के पिता कहते हैं- "तुम लोग खा गए मेरी बेटी को।" लेकिन वह असमर्थ है, स्थितियां उसके ख़िलाफ़ हैं।

मिश्र जी ने अपनी कहानियों में पारिवारिक संबंधों में आये उतार-चढ़ाव के बहाने सामाजिक मूल्य-संक्रमण को रेखांकित किया है। एक रात, खाली घर, घर लौटने के बाद, लाल हथेलियां, ऊंची इमारत, पिता, चिट्ठियों के बीच घर, दूरियां आदि कहानियां संबंधों के दरकने-मिटने को रेखांकित करती हैं। लोगों की आर्थिक तंगी के लिए ज़िम्मेदार है आर्थिक व्यवस्था और और सामाजिक ताना-बाना।

मां, सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो, मां, एक बिखरा हुआ दिन, खाली घर आदि कहानियां भारतीय मां की वेदना को स्वर देने वाली कहानियां हैं। सच तो यह है कि रामदरश मिश्र की कहानियों में आधी आबादी का दुःख-दर्द पर्याप्त मात्रा में व्यक्त हुआ है। कथाकार स्त्रीवादी अवधारणा के तहत स्त्री समाज की समस्या से रू-ब-रू नहीं होता है। वह उन कारणों पर आघात करता है जिनसे स्त्री जीवन कष्टमय हो गया है। कहानीकार पाठक के मन में परिवर्तन का संदेश देने में पीछे नहीं रहा है। ग्रामीण समाज में औरत की ज़िंदगी दुःख से आक्रांत है। इसका मूल कारण पितृवादी घृणित सोच, लिंग- भेदभाव और शोषण है। किंतु, रामदरश जी की कथानारियां तमाम विपत्तियों के बावजूद अपने अस्तित्व को बचाये रखने का प्रयास करती हैं। 'एक औरत एक ज़िंदगी' की भवानी पुरुषवादी समाज में प्रतिरोध का एक मुखर चेहरा है। ग़रीब, निस्सहाय ब्राह्मण विधवा भवानी अपने अथक परिश्रम एवं दृढ़ मनोबल के बूते समाज से टकराती है।

मिश्र जी ने अपनी कहानियों में पारिवारिक संबंधों में आये उतार-चढ़ाव के बहाने सामाजिक मूल्य-संक्रमण को रेखांकित किया है। एक रात, खाली घर, घर लौटने के बाद, लाल हथेलियां, ऊंची इमारत, पिता, चिट्ठियों के बीच घर, दूरियां आदि कहानियां संबंधों के दरकने-मिटने को रेखांकित करती हैं। लोगों की आर्थिक तंगी के लिए ज़िम्मेदार है आर्थिक व्यवस्था और और सामाजिक ताना-बाना। 'ऊंची इमारत' के मधुबन का परित्याग उसकी पत्नी सिर्फ इसीलिए कर देती है कि वह अपाहिज होने के कारण बेकार हो गया है। रोटी, नौकरी एक रात जैसी कहानियां युवाओं की बेरोज़गारी की समस्या से जुड़ी हुई हैं। 'नौकरी' कहानी का महेश पांच वर्ष पहले पीएच-डी. कर चुका है और नौकरी के लिए भटक रहा है। क्योंकि चापलूसी, पैसा, सिफारिश की योग्यता उसके पास नहीं है।

रामदरश मिश्र की संपूर्ण कहानियों के अनुशीलन से सुरेन्द्र तिवारी ने जिन दो बातों की ओर संकेत किया है उनमें एक तो यह कि उनकी कहानियों में समाज के शोषण उपेक्षित वर्ग के जीवन का यथार्थ अधिक व्यक्त हुआ है और दूसरा यह है कि उनकी कहानियों में एक पीड़ा दिशा बराबर बना रहता है। (रामदरश मिश्रः व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं जगन सिंह, पृ. 176)

समग्रत : कथाकार रामदरश मिश्र के कहानी-संसार में पीड़ा का ऐसा साम्राज्य विद्यमान है जिसमें मनुष्यता लगातार प्रभावित हो रही है। उनमें तार-तार होते मानव मूल्यों को बचाये रखने की गहरी चिंता है। पीड़ित व्यक्तियों के पक्ष में सन्नद्ध कथाकार जीवन के हर मोर्चे पर साथ खड़ा हुआ दिखाई देता है। उनके मानसिक जख्मों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार कर उनके मनोबल को टूटने से बचाता है। आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित व कमज़ोर लोगों के समर्थन में खड़ा हुआ कथाकार अपनी संवेदनशीलता को बरकरार रख सका है। किसी भी समस्या का कोई समुचित समाधान कहानीकार के पास नहीं है। जहां कहीं व्यक्ति-जीवन और समाज में पीड़ा व छटपटाहट है वहां व्यवस्था और आर्थिक रूप से समर्थ एवं अधिकारसंपन्न लोगों को ज़िम्मेदार ठहराया गया है। निश्चय ही रामदरश मिश्र का समग्र कहानी साहित्य पीर पराई जानिए का मार्मिक आख्यान है। जहां विचारों की मद्धिम रोशनी में पीड़ित मनुष्यों को जीवन का यथार्थपाठ रचा गया है। पीर पराई को समझने और समाज को चैतन्य करने के उद्देश्य से कथाकार रामदरश मिश्र ने अपना पूरा जीवन लेखन के लिए अर्पित कर दिया है। ◆

पता : डाक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
मो. : 9425656284

रामदरश मिश्र : बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे

अजय तिवारी

हमारा सौभाग्य रहा कि 1974 से 1976 में एम.ए. करते हुए रामदरश जी हमारे शिक्षक थे। वे आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी की पांडित्य परंपरा से दीक्षित होकर आये थे और डॉ. नगेन्द्र के बसाये और बनाए हिंदी विभाग में रहकर वे स्वाधीन चेतना के रचनाकार बने। उन्हें मूलतः मानवतावादी रचनाकार और मनुष्य कहना उपयुक्त है।

जिस समय भारत अपनी स्वतंत्रता की हीरक जयंती मना रहा था, उस समय डॉ. रामदरश मिश्र अपने जीवन की शतवार्षिकी मना रहे थे। जीते जी शतवार्षिकी मनाने वाले हमारे समय के वे अकेले हिंदी के लेखक थे। सम्भवतः अन्य भाषाओं में भी दूसरा कोई नहीं है। यह स्वयं एक उपलब्धि है।

लोग किसी को शुभकामना देते हैं कि 'शतायु हों!' डॉ. रामदरश मिश्र ने इस 'आशीर्वाद' को चरितार्थ कर दिया है। हमारे समय में ऐसे दो व्यक्तित्व हुए हैं जिन्होंने जीवन के सौवें वर्ष में प्रवेश किया। दोनों राजनीति से सम्बद्ध है। पूर्व प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई और केरल के लोकप्रिय नेता पूर्व मुख्यमंत्री अच्च्युतानंदन। मोरारजी ने सौ वर्ष पूरे नहीं किये, अच्च्युतानंदन और रामदरश जी शतंजीव हुए।

रामदरश जी 15 अगस्त को जन्मे थे। तब भारत पराधीन था। संयोग देखिए, भारत की आज़ादी के लिए वही तिथि चुनी गयी। रामदरश जी हमारी आज़ादी की तरह जाज्ज्वल्यमान रहे, बस, अपने जीवन के सौवें वर्ष में धर्मपत्नी सरस्वती देवी को खोकर वे एकाकी रह गए है। फिर भी अपनी अडिग जीवन आस्था से वे आजीवन सृजनरत् रहे थे।

हमारा सौभाग्य रहा कि 1974 से 1976 में एमए करते हुए रामदरश जी हमारे शिक्षक थे। वे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की पांडित्य परंपरा से दीक्षित होकर आये थे और डॉ. नगेन्द्र के बसाये/बनाए हिंदी विभाग में रहकर वे स्वाधीन चेतना के रचनाकार बने। उन्हें मूलतः मानवतावादी रचनाकार और मनुष्य कहना उपयुक्त है। वे न कभी बहुत चर्चा में रहे, न विवादों में। अध्यापक के रूप में छात्र-वत्सल होते हुए भी वे लोकप्रिय नहीं कहे जायेंगे। विद्यार्थी उनकी आज्ञा का पालन करने को उत्सुक रहते लेकिन वे आज्ञा देने को तत्पर नहीं रहते थे। पता नहीं क्यों, विद्यार्थियों का उनके घर आने-जाने का विशेष सिलसिला भी कभी नहीं रहा। विश्वविद्यालय में भी विद्यार्थियों के बीच आकर बैठने का उनका स्वभाव नहीं था। हम लोगों को कभी-कभार बातचीत के लिए बिठा लेते थे। एमए के बाद की बात होगी, एक दिन साथ बैठ गए। उसके पहले दिल्ली के मॉडल टाउन में अकस्मात् बाढ़ आ गयी थी। जहाँ विश्वनाथ त्रिपाठी और रामदरश जी ही नहीं, तब बहुत-से लेखक और प्राध्यापक रहते थे, उन हफ्ते-दस दिनों वहाँ नाव चल रही थी। इसके कुछ समय बाद की बात है। मैं अपने सहपाठी और अभिन्न मित्र हरियश राय के साथ था। रामदरश जी ने कहा, किसी दिन तुम लोग घर आओ तो मॉडल टाउन की बाढ़ पर उपन्यास लिखा है, सुनाऊँगा। वह अवसर नहीं आया।

एम.ए. के दिनों का एक प्रसंग बड़ा दिलचस्प है। विश्वविद्यालय के दक्षिण परिसर में रामदरश जी सप्ताह में एक दिन पढ़ाने आते थे। मैं उत्तर परिसर में था और हरियश दक्षिण परिसर में। हरियश से मेरी मित्रता ऐसी थी कि परसाई जी कहते थे, 'इनमें एक के बिना

दूसरे की कल्पना असंभव है।' तो दक्षिण परिसर में एक दिन रामदरश जी हम लोगों के पास बैठ गए। उन्होंने सुमित्रानंदन पन्त से जुड़े दो मज़ेदार प्रसंग सुनाये। जब पन्त जी के महाकाव्य 'लोकायतन' पर चर्चा हो रही थी तो किसी ने विजयदेव नारायण साही से उनकी राय पूछी। साही बोले, 'लोकायतन न मैंने पढ़ा है, न पढ़ूँगा!' यह प्रसंग इलाहबाद में सुन चुका था लेकिन रामदरश जी सुना रहे थे, यह अद्‌भुत था। कम-से-कम सार्वजनिक रूप में वे ऐसी गप्पों से बचते थे। दूसरा, वे कहने लगे कि पन्त जी हैं तो स्त्री लेकिन पैदा हो गए पुरुष! हम लोग खूब हँसे।

रामदरश जी से विश्वविद्यालय में मिलना-जुलना पहले भी था, बाद को भी रहा। विद्यार्थी जीवन में एमए के दौरान हम लोगों ने, मतलब हरियश ने, दक्षिण परिसर में निराला जयंती पर बोलने के लिए अज्ञेय जी को बुलाया था। वह भी रामदरश जी के कहने पर। अज्ञेय उन्हें कहीं मिले थे। उन्होंने अज्ञेय से बात कर ली थी। उसी आधार पर हरियश पहले अज्ञेय जी को आमंत्रित करने उनके घर गए। वहाँ कुछ ऐसा हुआ कि दो दिन बाद सुबह-सुबह मुझे हरियश के साथ अज्ञेय जी के घर जाना पड़ा। यह थोड़ा अप्रिय प्रसंग है इसलिए इसकी चर्चा कभी स्वतंत्र रूप में। लेकिन अज्ञेय जी ने इस बात पर हरियश की शिकायत रामदरश जी से की थी। बहरहाल, रामदरश जी ने केवल ज़िक्र किया, नाराज़गी नहीं जताई।

रामदरश जी के घर मेरा आना-जाना अध्यापक बनने के बाद शुरू हुआ जब वे वाणी विहार के अपने मकान में रहने लगे थे। वहाँ आसपास ललित शुक्ल, रमाकांत श्रीवास्तव, शोभनाथ यादव आदि अनेक प्राध्यापक रहते थे। दिल्ली विश्वविद्यालय शिक्षक संघ के चुनाव के लिए प्रचार करने या शिक्षक आन्दोलन के किसी मौके पर बातचीत के लिए उन इलाकों में जाना होता था जहाँ अनेक अध्यापक इकठ्ठा रहते हैं। रामदरश जी के यहाँ अलग से जाने में एक संकोच था। हालाँकि वे न अपेक्षा करते थे, न शिकायत मिलनसार होते हुए भी वे बहुत घुलते-मिलते नहीं थे। आपस में मिलते होंगे लेकिन विद्यार्थियों से

घर आने-जाने में संकोच कुछ इसलिए भी था कि एक तो वे गंभीर अध्यापक थे, दूसरे उनके बड़े पुत्र हेमंत मिश्र, जो एक श्रेष्ठ रंगकर्मी थे, वे किरोड़ीमल कॉलेज में मेरे एक वर्ष कनिष्ठ रह चुके थे। मैं जब एम.ए. में गया था, तब हेमंत बीए ऑनर्स तृतीय वर्ष में थे। मैं भी छात्र आन्दोलन में था, हेमंत भी। मैं एआईएसएफ में था, हेमंत एसएफआई में। एक भाकपा का छात्र संगठन था, दूसरा माकपा का। उन दिनों सम्पूर्ण क्रांति का आन्दोलन चल रहा था। भाकपा जेपी आन्दोलन के विरुद्ध थी, माकपा उसके साथ। हेमंत से इस बारे में बहसें हो जातीं।

सतर्क सम्बन्ध रखते थे। निकटता और सावधानी का उनका ढंग सोचा-समझा हुआ था या सहज, इस बारे में मैं नहीं कह सकता।

घर आने-जाने में संकोच कुछ इसलिए भी था कि एक तो वे गंभीर अध्यापक थे, दूसरे उनके बड़े पुत्र हेमंत मिश्र, जो एक श्रेष्ठ रंगकर्मी थे, वे किरोड़ीमल कॉलेज में मेरे एक वर्ष कनिष्ठ रह चुके थे। मैं जब एमए में गया था, तब हेमंत बी.ए. ऑनर्स तृतीय वर्ष में थे। मैं भी छात्र आन्दोलन में था, हेमंत भी। मैं एआईएसएफ में था, हेमंत एसएफआई में। एक भाकपा का छात्र संगठन था, दूसरा माकपा का। उन दिनों सम्पूर्ण क्रांति का आन्दोलन चल रहा था। भाकपा जेपी आन्दोलन के विरुद्ध थी, माकपा उसके साथ। हेमंत से इस बारे में बहसें हो जातीं। लेकिन वे बहसें अधिक से अधिक पढ़ने और तीखे से तीखे तर्क रखने वाली थीं। हमारा परिचय अच्छा था लेकिन बहसें भी अच्छी थीं। रामदरश जी प्रकटतः इस आन्दोलन के न साथ दिखते थे, न खिलाफ़। उनका मानवतावाद नेहरू से प्रभावित लगता था। इसलिए हमारी समझ से वे जेपी के खिलाफ़ थे और हेमंत को इस अस्पष्टता से असुविधा होती थी। हेमंत ने उन्ही दिनों कविता लिखी थी 'फिर से दहाड़ो, वनराज!' हेमंत के जन्म पर रामदरश जी ने एक बहुत सुन्दर कविता लिखी थी, हेमंत ने अपने युवाकाल में पिता की सिंहगर्जना का आह्वान किया था। लेकिन रामदरश जी सिंहगर्जना वाले लेखक नहीं थे वैसे अध्यापक भी नहीं थे। शायद यह कारण हो उनके निर्विवाद रहने का।

वे निष्ठापूर्वक पढ़ाते थे, उसी तरह निष्ठापूर्वक लिखते थे। अपने अनुभवों पर उनका विश्वास था, राजनीति उनके लेखन में ज़्यादा नहीं रही। लेकिन उनका रचनात्मक दृष्टिकोण मूलतः मानवतावादी था और वे सृजन के अनवरत संघर्ष में विश्वास करते हैं। उनकी एक कविता की अमिट छाप मन पर पड़ी है, जिसमें उनके व्यक्तित्व को समझने के महत्वपूर्ण सूत्र निहित हैं। कवि अपने कक्ष में बैठा लिख रहा है, वहाँ एक चिड़िया तिनका लेकर आती है और घोंसले के लिए किसी जगह खोंस देती है। कवि तिनके को फेंक देता है।

चिड़िया फिर तिनका लेकर घोंसला बनाने आ जाती है। यह क्रम कई बार घटित होता है। लेकिन 'रंगभूमि' के सूरदास की तरह चिड़िया हार नहीं मानती, हर बार फेंके हुए तिनकों की उजाड़े गए घर की परवाह न करके फिर तिनके बटोरती है। अंततः कवि कहता हैं चिड़िया के आगे मैं हार गया हूँ! प्रशंसा और उपेक्षा से विचलित न होकर निरंतर सृजनरत् रहने की शक्ति रामदरश जी को प्रेरित करती है। इसीलिए जब वे कहते हैं कि 'जहाँ आप पहुँचे छलाँगे लगाकर/वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे', तब वे एक मूल्यवान सूत्र भी देते हैं।

विपुल साहित्य सृजन के बावजूद आलोचकों का ध्यान उन्होंने कम ही खींचा, इसका यह एक कारण था। आलोचक अधिकांशतः प्रगतिशील विचारों के थे। इसीलिए प्रगतिशील साहित्य के विरोधियों को अपने खेमे के आलोचकों से पर्याप्त महत्व मिलने के बावजूद यह शिकायत बनी रही कि उनकी उपेक्षा हुई। रामदरश जी को अगर ऐसी शिकायत रही भी हो तो वह साधारणतः व्यक्त नहीं हुई। वे स्वयं किसी खेमे में नहीं थे। न प्रगतिशीलों के, न प्रयोगवादियों के और न रीतिवादियों के। साहित्य की विचाधारात्मक प्रवृत्तियों में भी वे अपने ढंग के थे। न दक्षिणपंथी, न वामपंथीय बल्कि वे 'राष्ट्रीय लेखक संघ' के संस्थापकों में थे। कहते हैं कि इस संगठन को इंदिरा गाँधी का परोक्ष आशीर्वाद प्राप्त था। मुझे इस विषय में ज़्यादा नहीं पता। हालाँकि मैं छात्र जीवन से वामपंथी राजनीति में सक्रिय था लेकिन प्रगतिशील लेखक संघ में कभी नहीं रहा। मैं बुद्धिजीवियों के अलग संगठन 'अनुशीलन' का संयोजक था जिसके कार्यकारिणी सदस्यों में इतिहासकार डी.एन. झा, पी.के. शुक्ल, वरिष्ठ लेखक और पत्रकार बद्रीनाथ तिवारी, क्रन्तिकारी संस्कृतिकर्मी अनूप चौधरी, सुमंत शरण, अनिल राजिमवाले, हरियश राय इत्यादि थे। उधर 'राष्ट्रीय लेखक संघ' में महीप सिंह, नरेंद्र मोहन और संभवतः श्रीकांत वर्मा प्रभृति लोग थे। महीप सिंह, प्रताप सहगल, हरदयाल, डॉ. विनय इत्यादि रामदरश जी के निकट मित्र थे। ये सभी प्रभावशाली लोग थे। इनमें रामदरश जी सबसे अधिक प्रतिभाशाली थे। मेरा मन नहीं मानता कि इन सबकी सामूहिक उपेक्षा प्रगतिशीलों ने की या ऐसी उपेक्षा के कारण ये सब साहित्यिक विमर्श के केंद्र में नहीं रह सके। निराला, केदारनाथ अग्रवाल और अमरकांत से अधिक उपेक्षा किस लेखक की हुई? लेकिन ये सभी अपनी रचना की शक्ति से उपेक्षा को उपेक्षित करते हुए परिदृश्य पर उभर आये।

विपुल साहित्य सृजन के बावजूद आलोचकों का ध्यान उन्होंने कम ही खींचा, इसका यह एक कारण था। आलोचक अधिकांशतः प्रगतिशील विचारों के थे। इसीलिए प्रगतिशील साहित्य के विरोधियों को अपने खेमे के आलोचकों से पर्याप्त महत्व मिलने के बावजूद यह शिकायत बनी रही कि उनकी उपेक्षा हुई। रामदरश जी को अगर ऐसी शिकायत रही भी हो तो वह साधारणतः व्यक्त नहीं हुई। वे स्वयं किसी खेमे में नहीं थे। न प्रगतिशीलों के, न प्रयोगवादियों के और न रीतिवादियों के। साहित्य की विचारधारात्मक प्रवृत्तियों में भी वे अपने ढंग के थे। न दक्षिणपंथी, न वामपंथीय बल्कि वे 'राष्ट्रीय लेखक संघ' के संस्थापकों में थे।

यह बात अवश्य देखनी चाहिए कि अपने अन्य मित्रों से पृथक रामदरश जी बराबर पाठकों और गंभीर आलोचकों का ध्यानकेंद्र बने रहे हैं। वे न सिर्फ अपनी मित्र-मंडली में अधिक प्रतिभाशाली थे बल्कि निष्ठापूर्वक निरंतर साहित्य-सृजन में लगे रहने वाले थे। इसीलिए देर से सही लेकिन रामदरश जी की साहित्य सेवा का सम्मान अकादमी पुरस्कार के रूप में हुआ जबकि उनके अधिकांश साथी या तो चुक गए या भुला दिए गए। इसलिए रामदरश जी की साधना से यह शिक्षा मिलती है कि खरगोश की दौड़ ज़रूरी नहीं है, कछुए की चाल भी महत्वपूर्ण है, अगर लगन और निरंतरता हो। 'वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे'!

यह सही बात है कि डॉ. नामवर सिंह रामदरश जी की मित्र मंडली को लगभग नापसंद करते थे। लेकिन रामदरश जी के एक उपन्यास पर 'आलोचना' में उन्होंने एक विस्तृत और गंभीर समीक्षा प्रकाशित की थी। उसके लेखक थे हिंदी के श्रेष्ठ आलोचक नित्यानंद तिवारी। लेकिन नामवर जी ने उसमें बनारसी शैली की एक खुराफात कर दी थी। नित्यानद जी ने शीर्षक दिया था, 'भावुकता के बावजूद'। प्रकाशित होने पर शीर्षक था, 'लिजलिजी भावुकता के बावजूद'! साहित्य संसार में इस तरह की क्रीड़ाएँ हुआ करती हैं। लेकिन रामदरश जी न वैसी खुराफात करते पाए जाते हैं, न ऐसी क्रीड़ाएँ। यद्यपि नामवर सिंह और रामदरश जी दोनों बनारस से जुड़े थे लेकिन उनकी अभिरुचियों और दृष्टिकोणों में काफी अंतर था। वे इस बात का उदहारण हैं कि खुराफात और क्रीडा से दूर रहकर भी निरंतर सृजन किया जा सकता है जिसमें मूल्यवान भी होगा। इसका निर्णय भविष्य को करना है कि क्या और कितना मूल्यवान है, लेकिन यह तो सभी रचनाकारों के लिए है।

रामदरश जी का लेखन बहुमुखी है। एकांगी या एकायामी नहीं। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना, गीत इत्यादि सभी विधाओं में पर्याप्त और उल्लेखनीय लिखा हैय अब तो वे ग़ज़ल में भी सफल प्रयोग कर रहे हैं। उपन्यासों में उन्होंने आंचलिक से लेकर प्रयोगधर्मी तक, अनेक शैलियों में लिखा है। अपने को किसी एक विधा से, किसी एक शैली से बाँधने की जगह साहित्य के बेहद्दी मैदान में निर्द्वन्द्व प्रयोग करना रामदरश जी को न केवल अपने निकट मित्रों से बल्कि दूसरों से भी विशिष्ट और महत्वपूर्ण बनाता है। ◆

पता : बी-30, श्रीराम अपार्टमेंट्स, प्लाट-32,
सेक्टर-4, द्वारका, नयी दिल्ली-190078
मो. : 9717170693

रामदरश मिश्र : डुमरी के अमूल्य डायमण्ड

धन सिंह मेहता 'अन्जान'

गाँव में जन्म लेना गौरव की बात मानने वाले मिश्र जी ने गाँव की माटी, माटी की महक और जल-वायु को विषय वस्तु बनाकर एक जीवन्त रचनाकार के रूप में अद्वितीय प्रदेयता के कारण उपरोक्त वर्णित विधाओं के साथ विविध छवियों को एक साथ जीने में सफलता अर्जित की है।

हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग के अग्रगण्य साहित्यकार रामदरश मिश्र जी कविता, गीत, ग़ज़ल, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना, संस्मरण, यात्रा वृतांत, डायरी और आत्माकथा के अप्रतिम रचनाकार हैं। गाँव में जन्म लेना गौरव की बात मानने वाले मिश्र जी ने गाँव की माटी, माटी की महक और जल-वायु को विषय वस्तु बनाकर एक जीवन्त रचनाकार के रूप में अद्वितीय प्रदेयता के कारण उपरोक्त वर्णित विधाओं के साथ विविध छवियों को एक साथ जीने में सफलता अर्जित की है।

समकालीन आधुनिक हिन्दी साहित्य को गढ़ने में उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिला गोरखपुर का विशेष योगदान रहा है, प्रसिद्ध शायर रघुवीर सहाय 'फिराक' गोरखपुर की शान समझे जाते हैं, कथा सम्राट मुंशी प्रेमचन्द्र ने गोरखपुर को अपनी कर्मस्थली बनाया, महान संत कबीर का इस धरती से विशेष लगाव रहा, गोरखपुर 'गगहा' कस्बे में जन्मे भगवान सिंह ने सत्य के अन्वेषक महात्मा बुद्ध को महापुरुष के रूप में विश्व पटल पर प्रस्तुत किया। महिला विमर्श, श्रमिकों व शोषितों के पक्ष में खड़ी होकर कवयित्री कात्यानी ने अपनी लेखनी से कुव्यवस्था के दुर्ग को भेदने की सराहनीय पहल की है। गुरू गोरखनाथ की इसी पावन व उर्वरा भूमि की महक को साहित्य सृजन के माध्यम से रामदरश मिश्र जी ने राष्ट्रीय फलक प्रदान किया है।

रामदरश मिश्र जी का जन्म 15 अगस्त, सन 1924 में गोरखपुर जिले के डुमरी नामक गाँव में स्मृति शेष रामचन्द्र मिश्र व श्रीमती कमलापति मिश्र के घर में हुआ। मिश्र जी प्रारम्भिक शिक्षा गोरखपुर में ही समपन्न हुई, उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आ गये, वहीं से हिन्दी विषय से एम.ए. और पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की तदुपरांत मिश्र जी सन् 1956 में सयाजी राव गायकवाड़ विश्वविद्यालय बड़ौदा में अध्यापन का कार्य करने लगे। सन् 1958 में गुजरात विश्वविद्यालय अहमदाबाद में संबद्ध हो जाने के बाद मिश्र जी ने लगभग आठ साल तक हिन्दी प्राध्यापक के पद पर कार्य किया, सन् 1964 में दिल्ली विश्वविद्यालय में आ गये छः साल सेवायें देने के बाद सन 1970 में वहीं से प्रोफेसर के पद से सेवानिवृत हुए और दिल्ली के होकर रह गये।

रामदरश मिश्र आध्यात्म व नैतिकता के पक्षधर हैं, वे तार्किकता, वैज्ञानिकता व वैश्विक सोच के साथ जड़ता पर प्रहार करते हुए कवि व कविता का पथ बुहारते हैं, उनका यह भी मानना है कि परम्परा की परवाह और आधुनिक दृष्टि साहित्य को श्रेष्ठता की ओर अग्रसर करती है, परम्पराओं से रचना को निखारने की उर्जा भी मिलती है। संवेदना के साथ साहित्यकार जब आधुनिकता से जुड़ता है, तो नई विषय वस्तु से नये शिल्प को गढ़ता है, परम्परा व आधुनिकता की संतुलित संधि रामदरश मिश्र जी को अन्य रचनाकारों से पृथक कर श्रेष्ठता प्रदान करती है।

प्रगतिवाद से होकर नई कविता से जुड़ने आधुनिक हिन्दी कविता के युग पुरुष रामदरश मिश्र जी की कविता के सौन्दर्यबोध के निर्मल, निर्विकार निखार से परिचित होने का अभिप्राय है साहित्य की सादगीपूर्ण सदी परिचित होना। गाँव के गीत, रीति तीज-त्यौहार, पर्व-परम्पराओं को साहित्य में लपेट-समेट कर अपना हम सफर बनाने वाले रामदरश मिश्र जी की डुमरी गाँव

से देश की राजधानी दिल्ली तक की यात्रा में इन सब की उपस्थिति देख कर मन प्रफुल्लित हो जाता है। मिश्र जी के रचे ऋतुओं के गीत कभी हमें एक साहित्यकार की फ़ागुन में गेहूँ और सावन में धान बनने की कोमल कामना से परिचित करते हैं, तो कभी नैतिक मूल्यों की निष्काम, निःसंकोच छाया में-"बार-बार बाँसुरी बजाओ न पिया, लहरों के पार से बुलाओ न पिया का विनम्र निवेदन करते सुनाई देते हैं। रामदरश मिश्र जी उजड़ते गाँव के वैभव, गाँव की पगडंडियों का भटकाव तथा धूल, धुंए से दूषित वातावरण के डरावने चेहरे को अपने साहित्य में चित्रित करते हुए सच -सच बोलने वाले गवाह के रूप में नई पीढ़ी के सम्मुख खड़े नज़र आते हैं...

"जब वह गाँव से आया / तब वह कवि था/उसके शरीर मे खेत की चमक थी और मन में मिट्टी की खुशबू / वह सही देखता था /वह सही कहता था/वह खुलकर हँसता था/और गंगा के पानी में घंटों बहता था/धीरे-धीरे उसमें से गाँव झड़ने लगा/ वह गंगा की जगह बन्द बाथरुम में नहाने लगा/और नहाते- नहाते योजनाएं बनाने लगा"

आधुनिक साहित्य को तर्क, विवेक और बौद्धिकता की कसौटी पर रखकर देखा जाता रहा है जिसमें रसास्वादन गौण है, किन्तु मिश्र जी के साहित्य में रस प्रचुर मात्रा में विद्यमान है, साहित्य को लोक जीवन की अनुभूतियों के साथ जोड़कर देखने की काव्य दृष्टि मिश्र जी के पास है, उनके साहित्य का आधार ही 'लोक' व 'प्रकृति' है।

रामदरश मिश्र जी के पास सन्तुलित सत्यान्वेषी दृष्टि है, जिस कारण वे दुराग्रहों व पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर सत्य का संबल पाकर अपने सृजन को स्वयं सुधारने व शुद्ध से विशुद्ध करने में सदा संलग्न रहे हैं। साहित्य में सामाजिक सद्भाव व सद्विचारों को समाहित करने की जो तत्परता उनके द्वारा दिखाई गई है वह विशेष है, वर्तमान में रामदरश मिश्र जी को समझना भारतीयता के सार तत्व को समझना जैसा ही है। मिश्र जी का सम्पूर्ण साहित्य सृजन मानव जाति के लिए उपयोगी व लाभकारी है।

सादगी व सौम्यता की प्रतिमूर्ति मिश्र जी का साहित्य पेट की आग, आँखों की रोशनी और नीति-नीयत्ताओं की अनदेखी से उपजे जनमानस के दुखते गहरे घावों की पीड़ा को शब्द देकर गम्भीर विमर्श प्रस्तुत करता है, सुधारवादी दृष्टिकोण के साथ समस्याओं के समाधान पर लेखनी चलाकर सुलझाव की राह सुझाते हुए मिश्र जी नई चेतना व नवजागरण के नये मंत्रों को हिन्दी साहित्य की नई पीढ़ी को सौंपते नज़र आते हैं ....

"एक नीम- मंजरी मेरे आँगन झरी/कांप रहे लोहे के द्वार/आज गगन मेरे घर झुक गया/भटका सा मेघ यहाँ रुक गया/रग-रग में थरथरी सन्नाटा आज री/ रहा मुझे नाम ले पुकार। एक बूँद में समुद्र अँट गया/ एक निमिष में समय सिमट गया/वायु-वायु बावरी किसकी है भाँवरी/ साँस-साँस बन रही फुहार।"

रामदरश मिश्र जी का साहित्य भाषा की सरलता, शिल्प की सहजता व मानवीय भावों की समग्रता के साथ संवेदनाओं से भरा साहित्य है, जो निष्ठाओं की मज़बूत पकड़ से लोकजीवन की ज़मीन को पकड़े हैं।

रामदरश मिश्र जी ने लगभग पांच दर्जन से अधिक प्रकाशित साहित्य संग्रहों में प्रकृति, पर्यावरण, गाँव, महिला विमर्श, दलित विमर्श, बाल विमर्श के साथ-साथ देश में राजनेताओं की भूमिका को अपने अनुशीलन का विषय बनाया है, डुमरी गाँव गोरखपुर से देश की राजधानी दिल्ली तक के विभिन्न आयामों, व्यापक अनुभवों व सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों को उकेरने का सद्प्रयास किया है। मिश्र जी की सरल भाषा, सहज शिल्प व सरस शैली से उनकी साहित्यिक कृतियों के प्रति 'लोक' का विश्वास बढ़ा है यह एक साहित्यकार की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

प्रगतिवाद से होकर नई कविता से जुड़ने आधुनिक हिन्दी कविता के युग पुरुष रामदरश मिश्र जी की कविता के सौन्दर्यबोध के निर्मल, निर्विकार निखार से परिचित होने का अभिप्राय है साहित्य की सादगीपूर्ण सदी परिचित होना। गाँव के गीत, रीति तीज-त्यौहार, पर्व-परम्पराओं को साहित्य में लपेट-समेट कर अपना हम सफर बनाने वाले रामदरश मिश्र जी की डुमरी गाँव से देश की राजधानी दिल्ली तक की यात्रा में इन सब की उपस्थिति देख कर मन प्रफुल्लित हो जाता है।

रामदरश मिश्र जी कविताओं में पेड़ हैं, पत्ते हैं, मंजरी है, फूल हैं। ऋतुओं में बसंत हैं, फ़ागुन की बहकी हवा है, जेठ की भोर है, पावस की बरसात है, शरद की शीतल चाँदनी है, ये विषय वस्तु मिश्र जी का प्रकृति प्रेमी होने का प्रमाण है। मिश्र जी अपने सृजन में अकेले नहीं हैं, माँ है, बच्चा है, परिवार है, घर-मकान है, आँगन है, चिड़िया है। इनका साहित्य कन्धे में सूरज को लेकर गतिमान है। बैरंग, बेनाम चिट्ठियाँ हैं, पोस्ट कार्ड हैं, दौड़ है, बहती नदी है, राजधानी एक्सप्रेस है।

मिश्र जी अपने साहित्य में निर्भीक होकर यह सच भी उद्घाटित करते हैं कि:-

"सत्य है दुबका कहीं, पर आदिवासी गाँव सा,
झूठ हँसता-खिलखिलाता, राजधानी की तरह।"

साहित्य में रचनाकार, आलोचक व पाठक की महत्वपूर्ण भूमिका है, आलोचक को साहित्य की 'तीसरी दृष्टि' कहा गया है, तीसरा नेत्र नहीं। साहित्यकार से जो कुछ भी अच्छा सृजन से छूट जाता है, जिसे पाठक वंचित रहता है, आलोचक आलोचना विधा के माध्यम से निरपेक्ष भाव से पाठक व रचनाकार के सामने उसे प्रस्तुत करता है, और साहित्य से संवाद करता है जिसके परिणाम सुखद होते हैं। जब आलोचक द्वेष भावना से साहित्य के बजाय साहित्यकार से संवाद करता है, तो वाद-विवाद उत्पन्न हो जाता है, आलोचक सृजित साहित्य की कमियों के बजाय साहित्यकार के गुण-दोष को सामने लाने की ललक दिखाता है, तो साहित्यकार व आलोचक के बीच कटुता उत्पन्न हो जाती है, अक्सर यह पढ़ने, देखने व सुनने में आया करता है। रामदरश मिश्र जी द्वारा सृजित साहित्य के साथ किसी भी आलोचक ने ऐसी संकुचित व संकीर्ण विभाजन रेखा नहीं खींची है, यह बहुत ही विरल साहित्यकारों के साथ हुआ है, रामदरश मिश्र जी उनमें से एक हैं।

यहाँ पर इस तथ्य का उल्लेख किया जाना प्रासंगिक होगा कि रामदरश

मिश्र जी के साहित्य का मूल्यांकन विलम्ब से हुआ लगभग साठ बसन्त आत्मसात करने के उपरान्त उनके साहित्य को पुरस्कृत व सम्मानित किया गया, ये सम्मान व पुरस्कार उन्हें पहले मिल जाने चाहिए थे, जिसके वे वास्तविक हकदार भी थे, इस विषय को लेकर मिश्र जी की शालीन मुखरता सामने आती है-

"जहाँ आप पहुँचे छलांगें लगाकर,
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे।
किसी को गिराया न खुद को उछाला,
कटा ज़िन्दगी का सफ़र धीरे-धीरे"।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के सामने जितनी भी चुनौतियाँ, आयी उनका सहर्ष सामना रामदरश मिश्र जी ने किया, अपने दीर्घ जीवनकाल में उन्होंने उपभोक्तावाद, बाज़ारवाद, विज्ञापनवाद, जातिवाद, धर्मवाद, आतंकवाद, अतिवाद व भयवाद को बहुत नज़दीक से देखा, समझा और इन सब वादों के ताप-तेवर व तासीर को महसूस भी किया है। बीसवीं व इक्कीसवीं सदी के अनुभवों की कोख से उपजा रामदरश मिश्र जी का साहित्य सृजन का संसार सचमुच में बड़ा व्यापक है जो मनुष्यता के प्रति मरते विश्वास को प्राणवायु देकर जीवित रखने की महत्वपूर्ण पहल करता है। इसलिए निःसन्देह मिश्र जी कविता के प्रति आभार प्रकट करते दिखाई देते हैं:-

"आभारी हूँ कवि ने, तुमने इस तृप्त समय में भी मुझे भिगो दिया, भीतर तक और मैं, गति स्पंदित जीवन राग की रचना के लिए अपने को तैयार कर सकूं।" कविता को मनुष्यता का राग मानने वाले मिश्र जी का प्रकृति के प्रति अटल विश्वास है, उनका मानना है कि प्रकृति का कोई भी नियम मानव जीवन के लिए अहितकारी नहीं है इसलिए साहित्य प्रकृति के प्रत्येक रहस्य, रस,रूप व गंध को अनिवार्य मानवीय गुणों में मिलाकर आत्मीयता पैदा करने की सार्थक पहल करता है, और मनुष्य व प्रकृति के अगाध प्रेम की नीति का उद्घाटन करता है।

भौतिकवाद की रूमानी रोशनी की चकाचौंध में कई भटक जाते हैं, कुछ बिछुड़ जाते हैं, और कुछ बिखर जाते हैं। बनारस की साहित्यिक परम्परा के अनेक वाहक रहे हैं आदिकवि वाल्मीकि से आधुनिक युग के रामदरश मिश्र जी तक के अग्रगण्य विद्वानों की लम्बी स्वर्णिम श्रृंखला है, प्रत्येक युग, काल, वाद तथा विधा को बनारस की जिस विशुद्ध साहित्यिक परम्परा ने स्तुत्य योग्य बनाया है, इस परम्परा से जुड़ा एक नाम रामदरश मिश्र जी का भी है, जो अनन्तकाल तक जुड़ा रहेगा।

रामदरश मिश्र जी की विचारधारा में किसी भी प्रकार की मिलावट व बनावटीपन नहीं है, उनके विचारों के अविरल प्रवाह में हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधायें एक साथ प्रवाहित हैं, जिसमें अभाव व विपन्नता में जीवनयापन्न कर जनमानस की घबराहट, सम्पन्न लोगों के द्वारा छले गये जनमानस की पीड़ा, हताशा व संघर्ष को चिर चैतन्य भाव से उतारने की ललक है। भौतिक वाद की स्तरहीन चकाचौंध से प्रभावित जनमानस के अन्तर्द्वन्द्व को विषय वस्तु बनाकर तथ्यों को तात्पर्यपूर्ण तरीके से साहित्य में समाहित करने वाले रामदरश मिश्र जी जीवन की शतकीय पारी में भी सृजन की निरंतरता बनाये हुए हैं। डुमरी के इस अमूल्य डायमण्ड को नमन। ◆

पता : 44ए, एस.टी.पी. रोड लोनापुर
गोमती नगर, लखनऊ।
मो. : 9336488805

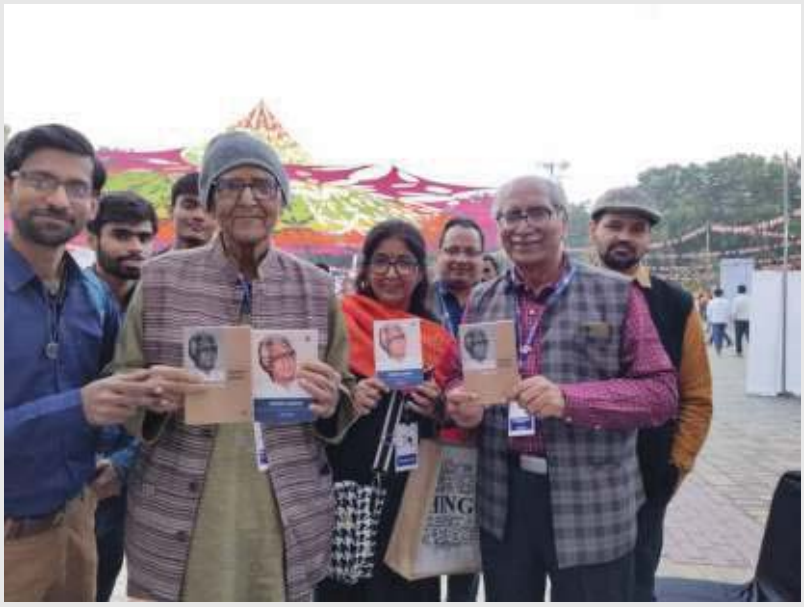

साहित्य आजतक में प्रो. रामदरश मिश्र

हिंदी के वयोवृद्ध रचनाकार प्रो रामदरश मिश्र आजतक के बुलावे पर 25 नवंबर, 2023 को एक विशेष सेशन "बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे" में दस्तक दरबार में पधारे। उनसे एंकर चित्रा त्रिपाठी ने बातचीत की। रामदरश जी ने अपनी साहित्यिक यात्रा को श्रोताओं से साझा किया तथा अपनी सुपरहिट गज़ल "बनाया है मैंने यह घर धीरे-धीरे" के साथ अन्य अनेक कविताएं सुनाई। यह एक ऐतिहासिक घटना बन गई जब कि अपनी जन्म शताब्दी मना रहे हिंदी के सबसे वयःश्रेष्ठ कवि कथाकार ने आजतक के मंच को सुशोभित किया।

इस अवसर पर वे अपने प्रकाशकों से मिलते हुए घर लौटे। इन चित्रों में वे राजकमल प्रकाशन के स्टाल पर अभिवादन स्वीकार करते हुए यहां से प्रकाशित संकलन प्रतिनिधि कविताएं। प्रतिनिधि कहानियां को अपने हाथों में प्रदर्शित करते हुए।

रामदरश मिश्र के काव्य में किसान और मजदूर

रविशंकर सिंह

समाज व्यवस्था में किसान का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा है। वही महत्त्वपूर्ण घटक कई बार साहित्यकारों से भी दूर रह जाता है। मिश्र जी की सूक्ष्म दृष्टि उसे वंचित नहीं रहने देती।

कवि रामदरश मिश्र जी बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। युग सापेक्ष दृष्टि, जन जीवन की आशा-आकांक्षा, उनकी सभ्यता, संस्कृति तथा शाश्वत, मूल्यों की युगीन जीवन के धरातल पर प्रतिष्ठा कराना रामदरश मिश्र जी का प्रमुख लक्ष्य रहा। उनका कहना है कि जन-जीवन का यथार्थ चित्रण साहित्य में आना अनिवार्य हैं इसलिए साहित्यकार को समाज का अंग बनकर जीना आवश्यक है। कवि की दृष्टि युग सापेक्ष है। मिश्र जी कहते हैं कि हर युग की अपनी एक अलग साहित्यिक और युगीन जीवन दृष्टि होती है। उसकी अपनी कुछ विशिष्टताएं होती हैं, कुछ परंपरागत धाराएं होती हैं, अतः हर सच्चा कवि पोषित को पोषित नहीं करता। युग चेतना की सापेक्षता में नया सृजन करता है।

समाज व्यवस्था में किसान का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा है। वही महत्त्वपूर्ण घटक कई बार साहित्यकारों से भी दूर रह जाता है। मिश्र जी की सूक्ष्म दृष्टि उसे वंचित नहीं रहने देती। किसान के दुःखों का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि, किसान सबका पालनकर्ता होकर भी आज वह भूखा है। कभी बाढ़ की तो कभी लूटमार का आतंक उन्हें सहना पड़ता है। फिर भी वह नियति का खेल समझकर चुप रहता है और हँसी-खुशी में गाते-गाते धरती में बीज बोता हैं। मिश्र जी ने यहाँ 'किसान- गीत' में उनके दुःख का वर्णन किया है। किसान कहता है-

"गाढ़े गए दिन बीत रे, बेला बाएं से औ औं !
माँ का हरा कचनार मन मुरझाया हुआ है।
धुआँ चिता का ताल में अभी छाया हुआ है।

सिओल दक्षिण कोरिया में रामदरश मिश्र उनकी पत्नी साथ में
हाँगकुक विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रो. उंगुली एवं उनकी धर्म पत्नी

पर न नई यह रीति रे, बैला चाँद से
औ आँ !"

देश का किसान मेहनती होकर भी उसे ठगा जाता है। दिन-रात मेहनत करके भी उसके हाथ कुछ नहीं आता। इसलिए मिश्र जी अपनी ग़ज़ल के एक शेर में कहते हैं-

"हाथ कुछ आया न, तू फसलें उगाता रहा गया
चर गये पशु खेत, तू पंछी उड़ाता रहा गया"

इस प्रकार कृषि और उसका जनक किसान दोनों की स्थिति बहुत बिगड़ती हुई नज़र आती है। अन्नदाता किसान आज ठोकरे खाते-खाते संघर्षमय, दुःखद और पीड़ित जीवन जी रहा है।

मिश्र जी का परिवर्तन में विश्वास है। स्वयं शिक्षक रहे मिश्र जी शिक्षा के कारण समाज में बदलाव लाने के पैरोकार हैं। उनके काव्य में परिवर्तन संबंधी कई उदाहरण दृष्टिगत होते हैं। समता के अधिकार के कारण सामान्य आदमी भी अपने अधिकार के प्रति सचेत हुआ। वह अपने अन्याय के विरोध में झगड़ने लगा हैं। इन सभी परिस्थितियों के प्रति जो असजग रहा है। उसे भी उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से सजग करने का प्रयास किया है। मिश्रजी की 'अजनबी ठण्डी हवाएँ', 'लाशों के बीच', 'फिर वही लोग' , 'डर' आदि कविताओं में इसकी स्पष्ट झलक दिखाई देती है।

शुरू से ही मिश्र जी सामंती मानसिकता के विरोधी रहे हैं। विद्वानों का कहना है कि थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ इतिहास की पुनरावृत्ति होती है। आज समाज में वही हाल नजर आ रहा है। अगर किसान खेती छोड़ कर मज़दूरी शुरू करता है तो वहाँ भी उसका शोषण ही हो रहा है।

इन्होंने 'अजनबी ठण्डी हवाएँ' कविता में परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन करने का संदेश दिया है तो 'लाशों के बीच' तथा 'फिर वही लोग' कविताओं में भ्रष्टाचार के प्रति सजगता, तथा 'डर' कविता में मिश्र जी ने क्रांति की ओर संकेत किया है। समाज में कृषक वर्ग सबसे बड़ा वर्ग है। उन्हें अशिक्षा तथा अज्ञान के कारण ठगा जाता है। उन्हें भी उनके अधिकार के प्रति सजग करते हुए मिश्र जी कहते हैं-

"हाथ कुछ आया न, तू फसलें उगाता रह गया
चर गये पशु खेत तू पंछी उड़ाता रहा गया।"

देश में कृषकों का सबसे बड़ा वर्ग होकर भी वह असंघटित होने के कारण वह अपने अधिकारों को प्राप्त नहीं कर सका। इसलिए एक अन्य शेर में मिश्र जी कहते हैं-

"निकली है सुबह नहाके आँख मल के देखिये
बैठे हुए हैं आप, जरा चल के देखिए।"

इस प्रकार मिश्र जी ने अपने काव्य के माध्यम से कृषकों को तथा अन्य सभी लोगों को अपने अधिकार के प्रति सजग करने का प्रयास किया है।

भारतीय संविधान ने हमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता दी है, लेकिन समाज का कृषक वर्ग अवांछनीय जीवन जीने के लिए विवश है। वर्तमान स्थिति में स्वार्थ-लिप्त मानवी जीवन के कारण व्यक्ति चेतना सोयी नज़र आती है। उसे जगाने का कार्य कवि रामदरश मिश्र जी अपने काव्य के माध्यम से करते हैं। मिश्र जी अपनी एक ग़ज़ल में कहते हैं-

"सुबह ये कैसी ? रात के बदन की बू तो नहीं ?
पड़ा है कौन सड़क पर मरा-सा, तू तो नहीं ?"

मिश्र जी के ग़ज़लों का प्रत्येक शेर अपना स्वतंत्र अर्थ देने में सक्षम हैं। यहाँ स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भारतीय किसानों की जो स्थिति बनी हुई है उसी का जिक्र किया गया है। जहाँ सड़क पर कोई जानवर मरा पड़ा रहे कोई फर्क नहीं पड़ता वैसे ही किसान की मौत पर भी किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता किसान की स्थिति भी सड़क पर मरे पड़े जानवर जैसी हो गई है।

शुरू से ही मिश्र जी सामंती मानसिकता के विरोधी रहे हैं। विद्वानों का कहना है कि थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ इतिहास की पुनरावृत्ति होती है। आज समाज में वही हाल नज़र आ रहा है। अगर किसान खेती छोड़ कर मजदूरी शुरू करता है तो वहाँ भी उसका शोषण ही हो रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात कल-कारखाने श्रमिकों के बल पर पूँजी इकट्ठा करते रहें। दिन-रात श्रम करके भी श्रमिकों को उनके श्रम का पूरा लाभ नहीं मिला। पूँजीपति कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों का शोषण तथा अत्याचार करते रहें। जैसा कि राजा-महाराजाओं के काल में होता था। वर्तमान काल में लाभ सिर्फ अमीरों को ही होता हुआ दिखाई देता है। वे अपनी पूँजी के बल पर आम आदमी को लूटते रहें और उसका शोषण भी करते हैं। मिश्र जी की 'नदी बहती है', 'फिर वही लोग' आदि कविताओं में सामंती

सरस्वती जी का साथ

मानसिकता का चित्रण मिलता है। मिश्र जी अपनी कविता में कहते हैं कि-

दिन-दहाड़े उल्लू बोलते हैं, आदमी चुप है,
खाइयों और गुफाओं में उजाला है
मैदानों में अंधेरा धूप है
बड़े खेत छोटे खेतों को खा रहे हैं बीन बीन

इस प्रकार समाज में सामंती मानसिकता चरम सीमा पर पहुँच गई है। उनमें अमीर, जमींदार, उद्योगपति आते हैं उनकी मनोदशा का यथार्थ चित्रण मिश्र जी के काव्य में मिलता है।

संघटित समाज में असीम शक्ति होती है लेकिन वर्तमान कृषि समाज असंघटित होने के कारण वह क्षीण हो गया है। उसे व्यवस्था ने अंदर से खोखला बनाया है। मिश्र जी इस स्थिति के बारे में चिंन्तित हैं। उनकी कई कविताओं में इस बात का जिक्र आया है। 'गलियाँ और सड़कें' कविता में आम जनता के दुःख का वर्णन करते हुए वे कहते हैं-

'एक गली..... दो गली ...
गलियाँ ही गलियाँ
जब-जब इन्हें देखता हूँ
अपने को बेहद दुखने लगता हूँ

कवि रामदरश जी प्रगतिशील कवि हैं। वे सदैव यथार्थ पर उँगली उठाते रहे हैं। वे शोषण बर्दाश्त नहीं करते। आज के समाज की वही हालत है। लोग शोषण के विरोध में आवाज़ उठा रहे हैं। अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रहे हैं। मिश्र जी के काव्य में भ्रष्टाचार और शोषण के प्रति विद्रोही भावना का स्वर रहा है। शासन कोई सा भी हो उन्हें भ्रष्टाचार ने जकड़ लिया है। जिसके कारण समाज अपाहिज बन गया है।

और मेरी आवाज़
जो किसी तक पहुँचे बिन ही
गुब्बारे-सी फट जाती है
पूछती है रू कब तक ये गलियाँ
अलग-अलग बँटी हुई
ऐसी ही सहती रहेंगी होने की पीड़ा'

इस प्रकार समाज के असंघटित रूप का भी चित्रण उनके काव्य में स्पष्ट रूप से मिलता है।

कवि रामदरश जी प्रगतिशील कवि हैं। वे सदैव यथार्थ पर उँगली उठाते रहे हैं। वे शोषण बर्दाश्त नहीं करते। आज के समाज की वही हालत है लोग शोषण के विरोध में आवाज उठा रहे हैं। अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रहे हैं। मिश्र जी के काव्य में भ्रष्टाचार और शोषण के प्रति विद्रोही भावना का स्वर रहा है। शासन कोई सा भी हो उन्हें भ्रष्टाचार ने जकड़ लिया है। जिसके कारण समाज अपाहिज बन गया है। इसलिए मिश्र जी अपनी 'कलम' कविता में कहते हैं। उनका कवि मन किसी व्यवस्था की चापलूसी नहीं करता वह आक्रमक और विद्रोही हो उठता है-

हमारे हाथ में सोने की नहीं
सरकंडे की कलम है।
सरकंडे की कलम
खूबसूरत नहीं, सही लिखती है
वह विरोध के मंच लिखती है
प्रशस्ति-पत्र नहीं लिखती है
हम कठघरे में खड़े हैं, खड़े रहेंगे
और कठघरे में खड़े हर उठे हुए हाथ को
अपने हाथ में ले लेंगे
राजा कौरव हों या पांडव
हम तो सदा वनवास ही झेलेंगे।

स्वभाव से शांत रहने वाले मिश्र जी अपने साहित्य में समाज के दबे हुए हिस्से को सामने लाने के लिए उसे मुख्य धारा में लाने के लिए निरंतर अपनी कलम चलाते रहे हैं। उनके समूचे साहित्य में किसान और प्रकृति गहरे से समाए हुए हैं। जिन्हें भिन्नात्मक दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। ◆

पता : बी-126, शीषमहल एन्क्लेव, प्रेमनगर-तृतीय, किराड़ी
सुलेमाननगर, दिल्ली-110086
मो. : 8851607721

मानवता के सशक्त स्वर हैं मिश्र जी

अजय महताब

जिस तरह हमारा धर्म सनातन है उसी प्रकार मानवतावाद की सोच और भावना भी सनातन है जो वेद कालीन समाज से चली आ रही है। मानवतावाद के केंद्र में मानव तथा उसकी भलाई होती है।

नीरज की ये पंक्तियां मानवता की शिक्षा का ककहरा हैं। यह जगत अनेक विरोधाभासों के सामंजस्य से चल रहा है। रात है तो उसकी समाप्ति के लिए सुबह, अंधेरा है तो उजाला, अधर्म है तो धर्म, पाप है तो पुण्य और पशुता है तो उसके विरुद्ध उससे संघर्ष करती तथा उसे हराती मानवता तथा मानवतावाद की सोच एवं उसका चिंतन।

जिस तरह हमारा धर्म सनातन है उसी प्रकार मानवतावाद की सोच और भावना भी सनातन है जो वेद कालीन समाज से चली आ रही है। मानवतावाद के केंद्र में मानव तथा उसकी भलाई होती है। मानवतावाद के चिंतन ने यदि सबसे अधिक किसी वर्ग को प्रभावित किया है तो वह है साहित्यकारों का वर्ग। उसमें भी कवियों को इस चिंतन में सबसे अधिक छुआ है। चाहे तुलसी हों या सूर, कबीर हों या कवि गुरु रवीन्द्र नाथ टैगोर सभी ने अपने-अपने काव्य में मानवता के स्वर को मुखरित किया है-

परहित सरिस धर्म नहीं भाई।
परपीड़ा सम नहीं अधमाई।।

-तुलसीदास

खुद के हित को त्याग कर परहित की सोचना व्यक्ति को बिना पूजा और भजन के ही ईश्वर के समीप ले जाता है। आज आधुनिक काव्य धारा के कवि अपनी कविताओं में खीझ, रोष, नारे और प्रतिक्रियाएँ तो दर्ज़ करते हैं मगर वे मानवतावाद के इस पुनीत और लोक कल्याणकारी चिंतन से कोसों दूर हैं। जब हम रामदरश मिश्र की कविताओं को पढ़ते हुए उनकी वेदना से होकर गुज़रते हैं तो वे हमें मानवतावाद की पताका थामे हुए दृढ़ता पूर्वक खड़े नज़र आते हैं। उनकी कविताओं में एक ओर जहाँ समाज में हो रहे अन्याय व अराजकता पर सवाल उठाया जाता है वहीं दूसरी ओर समाज के भविष्य की चिंता भी नज़र आती है -

हमेशा आकाश से झरती है एक नदी
और हमेशा ऊपर ही ऊपर कोई पी लेता है
धरती प्यासी की प्यासी रहती है

दै. जागरण के कार्यकारी सम्पादक अनन्त विजय के साथ

और कहने को आकाश से नदी बहती है।

(नदी बहती है।)

नदी, समुद्र, पेड़-पौधे, प्राणवायु, धूप-छाँव इन सभी पर समाज के हर एक व्यक्ति का समान अधिकार होता है अर्थात् यह सारी प्रकृति प्रदत्त वस्तुएँ हैं जो संसाधन के रूप में लोक कल्याण के लिए होती हैं। यदि किसी व्यक्ति या संस्थान द्वारा इन पर कब्ज़ा जमा लिया जाएगा या कब्ज़ा ज़माने की कोशिश की जाएगी तो सबसे पहले कवि ही अपनी कविताओं में उसके विरुद्ध आवाज़ उठाएगा। वर्तमान में सरकार की ओर से जनता के लिए जो भी लोक कल्याणकारी योजना चलाई जाती है वह एक नदी की तरह ही होती है जिसका उद्गम केंद्र सरकार या प्रस्तावित योजना का दफ्तर होता है मगर जनता तक उस धार के पहुँचने से पहले ही बिचौलिए उस अमृत को पी जाते हैं। जनता बेचारी प्यासी ही रह जाती है जबकि वह योजना रूपी नदी उन्हीं के लिए ही बहाई गई है।

यहाँ हर कोई खुद का हित और स्व का अर्थ साधने में लगा-भिड़ा हुआ है। जब एक कवि मानव के लिए चिंतनशील होता है तब वह मानवतावाद के करीब पहुंच जाता है।

क्योंकि रामदरश मिश्र मानवतावाद के पक्ष में खड़े हैं इसलिए उन्हें मानव ही नहीं अपितु पशु-पक्षियों का दुःख भी दिखाई पड़ता है। पशु-पक्षी भी हमारे समाज का ही एक अंग हैं अतः एक संवेदनशील कवि को उनके प्रति संवेदना होनी ही चाहिए तथा यह चिंता भी होनी चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति की संवेदना इन मासूम और बेजुबानों के संग हो। शायद इसलिए वह कलम के माध्यम से अपनी इन पंक्तियों द्वारा अपनी संवेदना जनता तक पहुँचाकर उन्हें संवेदनशील बनाना चाहते हैं-

चिड़िया फिर टाँग गई है तिनके
घोंसला बनाने के लिए
और मैं फिर उजाड़ दूँगा
मैं कितना असहाय हो गया हूँ
इस लड़ाई में उसके आगे
मुझे कमरे की बाँझ सफाई की चिंता है
और उसे अपने आने वाले बच्चों की।

(मकान)

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया"। हम इस श्लोक की परंपरा से जुड़े हुए हैं फिर मानवतावाद के दर्शन की परिधि से एक नन्हीं, मासूम चिड़िया भला बाहर कैसे रह सकती है। यदि किसी चिड़िया ने अपने अंडे देने और घोंसला बनाने के लिए कोई घर चुना है तो वह उस घर की खुशकिस्मती है। मानवतावाद उस चिड़िया को ऐसी स्थिति में मानव के हाथों असहाय होकर संघर्ष करने की अनुमति नहीं देता। यह कविता समाज से प्रश्न अवश्य करती है कि इस चिड़िया का अपराध आख़िर क्या है ? साथ ही यह कविता 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' की भावना का समर्थन भी करती है मगर वर्तमान सामाजिक ढाँचा और हमारे जीवन जीने का कायदा कुछ ऐसा हो गया है कि सामाजिक संरचना और सामाजिक उत्थान का यह सूत्र वाक्य हम भुलाए बैठे हैं। विकास की अंधी दौड़, विनाश की आंधी बनकर हमारे भीतर के महामानव को रेत की तरह न जाने किस अनजान मंज़िल की ओर उड़ाये लिए जा रही है। किसी का दुःख ही किसी के सुख का साधन बन गया है। सच्चाई, मानवता, मानव कल्याण की भावना ये सारे गुण ख़त्म तो नहीं हुए हैं मगर डरे-सहमे अवश्य हैं। चारों ओर व्याप्त इस निराशा को देखकर मानवतावाद का पैरोकार डरे नहीं तो क्या करे, समाज कल्याण की अभिव्यक्ति देते हुए कलम न काँपे तो क्या करे। इस मनःस्थिति की अभिव्यक्ति कवि कुछ इस तरह देता है-

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया"। हम इस श्लोक की परंपरा से जुड़े हुए हैं फिर मानवतावाद के दर्शन की परिधि से एक नन्हीं, मासूम चिड़िया भला बाहर कैसे रह सकती है। यदि किसी चिड़िया में अपने अंडे देने और घोंसला बनाने के लिए कोई घर चुना है तो वह उस घर की खुशकिस्मती है।

चारों ओर काँटों का जंगल है
और भीतर कहीं
एक डरी हुई लता है
जाओ, चले जाओ
यही उसके घर का पता है।

(पता)

सचमुच! वर्तमान परिस्थितियाँ कांटों का जंगल उगने जैसी हैं। ऐसे में लता जैसी सृजनात्मक शक्तियों का डरा हुआ होना स्वाभाविक है। निस्संदेह! आज मानवतावाद पर खतरा मंडरा रहा है, नकारात्मक शक्तियाँ समाज में सकारात्मक शक्तियों पर इस कदर हावी हो गई हैं कि मानवतावाद की पताका थामे हुए हाथ आज डर से काँप रहे हैं। यह कविता उन परिस्थितियों की ओर इशारा कर रही है।

सचमुच! वर्तमान परिस्थितियाँ कांटों का जंगल उगने जैसी हैं। ऐसे में लता जैसी सृजनात्मक शक्तियों का डरा हुआ होना स्वाभाविक है। निस्संदेह! आज मानवतावाद पर खतरा मंडरा रहा है, नकारात्मक शक्तियाँ समाज में सकारात्मक शक्तियों पर इस कदर हावी हो गई हैं कि मानवतावाद की पताका थामे हुए हाथ आज डर से काँप रहे हैं। यह कविता उन परिस्थितियों की ओर इशारा कर रही है। आज विश्व की सबसे बड़ी त्रासदी युद्ध है। पूरा विश्व आज शांति छोड़ युद्ध तथा सृजन छोड़ विनाश में लगा हुआ है। हर एक गोली और बम मानवतावाद के ग्रंथ के एक-एक पन्ने को छिन्न-भिन्न करता हुआ न सिर्फ मानव बल्कि मानवतावाद की हत्या करता जा रहा है। यह कविता उस ओर भी इशारा करती है।

मानवतावाद स्पष्ट रूप से कहती है कि इस संसार को युद्ध की नहीं प्रेम की आवश्यकता है। यही और इतनी छोटी-सी बात दुनिया नहीं समझ पा रही है। आज रामदरश

मिश्र जैसे मानवतावादी कवि अपनी कविताओं में रो-रोकर यही पीड़ा व्यक्त कर रहे हैं। दुनिया को रोटी की ज़रूरत है और उसे गोलियाँ खिलाई जा रही हैं, उसे पानी की ज़रूरत है और उसके समक्ष खून पेश किया जा रहा है। इस विडंबना को रामदरश मिश्र अपनी कविता में बड़े ही प्रभावी ढंग से दिखा रहे हैं-हर चौराहे पर

दुर्घटनाग्रस्त होकर तड़प रहा है एक देश
और हम
डॉक्टर के बदले
पुलिस का इंतज़ार कर रहे हैं।

(इंतज़ार)

आज हमारी इस धरती की जो हालत हो गई है, ऐसी हालत में अगर ईश्वर भी इस धरती को देखता होगा तो उसे खुद पर शर्म आती होगी कि उसने यह कैसा जीव और कैसी धरती बनाई! एक ऐसा जीव जो सिर्फ विनाश करना जानता और पसंद करता है, एक ऐसी धरती जो फूलों से नहीं खून और लाशों से पटी पड़ी है। जहां से धूप, अगरू और लोबान की खुशबू की जगह बारूद और सड़ती हुई लाशों की बू आती है।

हम प्रेम, पुस्तकों और कविता-कहानियों से जितना दूर हुए उतने ही बम, गोली, टैंक और बंदूकों के पास होते गए। आज मनुष्य अपना वास्तविक रूप खोकर एक ऐसा भयंकर जीव बन गया है जो दीमक की तरह अपनी सभ्यता और संस्कृति को ही चाट जाना चाहता है, चूहा बनकर मानवता की पुस्तकों को ही कुतर डालना चाहता है। कवि ऐसी अप्रिय स्थिति से मानव सभ्यता को सावधान करना चाहता है-सावधान !

चूहे फिर उतरा गये हैं सड़क पर
जल्दी ही घरों में प्रवेश करेंगे
अपनी-अपनी किताबें संभाल लो
ये गोदाम या तिजोरी नहीं काटते
केवल किताबें काटते हैं
क्योंकि उनमें इनसे बचने
या मारने के उपाय लिखे होते हैं।

(चूहे)

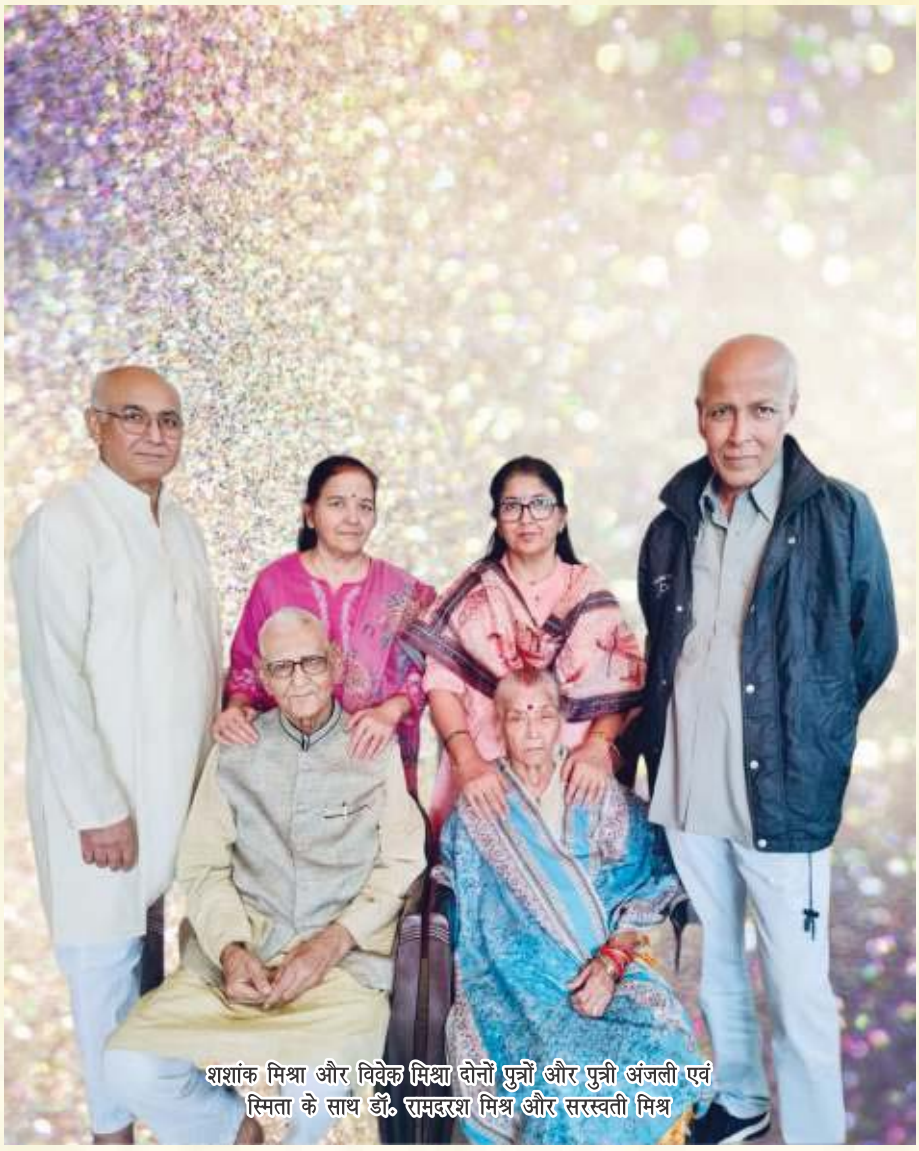

शशांक मिश्रा और विवेक मिश्रा दोनों पुत्रों और पुत्री अंजली एवं स्मिता के साथ डॉ. रामदरश मिश्र और सरस्वती मिश्र

वास्तव में हमें अब सावधान हो ही जाना चाहिए मानवता के ख़त्म होने से पहले, प्रेम की स्रोतस्विनी के सूख जाने से पहले, आँसुओं के निर्झर से संसार डूब जाने से पहले। जो स्वर्ग ना बन सकी उस धरती के नर्क बन जाने से पहले और मानवतावाद के दर्शन के विलुप्त होने से पहले क्योंकि रामदरश मिश्र जैसे मानवतावादी दर्शन की मुखरित ध्वनि का प्रतिनिधित्व करने वाले कवि अब अँगुलियों पर गिने जा सकते हैं। ◆

पता : रोड नं.-3, कृष्णा नगर, गौड़ बस्ती, पोस्ट
ऑफिस रोड, मानगो, जमशेदपुर-831012
मो. : 7766892854, 8651788290

एक नीम मंजरी मेरे आँगन में उतरी
काँप उठे लोहे के द्वार

मधु शुक्ला

जीवन और सृजन की इस सुदीर्घ यात्रा में "डॉ. रामदरश मिश्र जब 15 अगस्त, 2023 को उम्र के सौवें सोपान पर पहुंचे थे तो उसका स्वागत पूरा हिन्दी जगत पूर्ण उत्साह और कृतकृत्य भाव से किया। साहित्य प्रेमियों के लिए ये निश्चित रूप से हर्ष और गर्व का विषय रहा।

"बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे,
खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे
किसी को गिराया न खुद को उठाया,
कटा जिंदगी का सफर धीरे-धीरे
जहाँ आप पहुंचे छलांगें लगाकर,
वहाँ मैं भी पहुंचा मगर धीरे-धीरे।"

'चरैवेति-चरैवेति' के मूल मंत्र के साथ साहित्य साधना की पूरी सदी तय करने वाले देश के मूर्धन्य साहित्यकार "प्रो. रामदरश मिश्र" आज उपलब्धियों और प्रतिष्ठा के ऐसे शिखर पर अवस्थित हैं, जहां प्रायः लोग छलांगें लगाकर नहीं पहुंच पाते।

जीवन और सृजन की इस सुदीर्घ यात्रा में "डॉ. रामदरश मिश्र जब 15 अगस्त, 2023 को उम्र के सौवें सोपान पर आ पहुंचे थे तो उसका स्वागत पूरा हिन्दी जगत पूर्ण उत्साह और कृतकृत्य भाव से किया। साहित्य प्रेमियों के लिए ये निश्चित रूप से हर्ष और गर्व का विषय रहा।

आज हमारे बीच ऐसे बहुत कम रचनाकार शेष हैं, जो देश की गुलामी और आज़ादी दोनों के साक्षात् दृष्टा रहे हों और स्वतंत्रत भारत के भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक और संस्कृतिक परिवर्तनों के दौर से गुज़रे हों।

डॉ. रामदरश मिश्र के साहित्य से पढ़ना परिवर्तन के उस पूरे युग से होकर गुज़रना है जो हिन्दी के पाठकों के लिए जिज्ञासा का विषय रहा है।

मिश्र जी ने आठ दशकों की सृजन यात्रा में 100 से अधिक अमूल्य कृतियाँ सृजित की हैं। उनकी सृजन यात्रा अनेक उतार-चढ़ावों और मोड़ों से होकर गुज़री है, जिस पर ये मात्र विहंगम दृष्टि डालने का प्रयास भर है।

ऐसे रचनाकार प्रायः कम होते हैं जो अपने लिखे हुए पर अक्षरशः खरे उतरते हों, परंतु डॉ. रामदरश मिश्र ऐसे विरले व्यक्तित्व हैं जिन्होंने अपनी कविता के शब्द-शब्द को जिया है, अक्षर-अक्षर को महसूस किया है और उसे जीवन में अर्थ के साथ उतारा है। वे सच्चे साहित्य साधक हैं। यही कारण है कि जब उन्हें "के.के. बिड़ला फाउंडेशन द्वारा 2021 के "सरस्वती सम्मान" प्रदान किये जाने की घोषणा हुई तो पूरे साहित्य समाज ने उसका दिल खोलकर स्वागत और समर्थन किया, साथ ही सम्मानों के प्रति उनका खोया विश्वास भी वापस लौट आया, क्योंकि ये उस प्रतिभा का सम्मान था जो सम्मानों की दौड़ में कभी शामिल ही नहीं थी।

मिश्र जी को देश का सर्वोच्च सरस्वती सम्मान उनके कविता संग्रह- "मैं तो यहां हूँ"

(2015) के लिए प्रदान किया गया। जिसमें उनकी जीवन, जगत, एवं सामाजिक सरोकारों से जुड़ी हुई 74 कविताएँ दर्ज़ हैं।

मिश्र जी, लोक चेतना के कवि हैं, प्रकृति उनके काव्य का मुख्य तत्व है। वे आस्थावान हैं परन्तु रूढ़िवादी नहीं। वे ईश्वर को मंदिर की मूर्तियों में समाधिस्थ न मानकर चिर नवीन प्रकृति के बिखरे रंगों में देखते हैं। जहां वह उन्हें अपने चेतन रूप में पुकार रही है, "मैं तो यहाँ हूँ"

ऊब कर मन्दिर से बाहर निकला/तो देखा
चारों ओर पुष्पित खेत खिलखिला रहे थे
चहचहाती चिड़ियों का महारास मचा था
हवाएँ खुशबू में नहा रहीं थीं
और जड़-चेतन की त्वचा पर/
स्पन्दन की कहानी लिख रही थी
प्रतीत हुआ जैसे चारों ओर/
एक आवाज़ गूँज रही है/
मैं तो यहाँ हूँ।"

15 अगस्त, 1924 को गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) जिले के कछार अंचल के 'डुमरी' गाँव में जन्में रामदरश मिश्र की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के ही माध्यमिक विद्यालय में हुई, उच्च शिक्षा के लिए वे वाराणसी गये, जहां से उन्होंने हिंदी में एम.ए. एवं पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। सन् 1956 में उनकी नियुक्ति बड़ौदा (गुजरात) में प्राध्यापक के रूप में हुई, सन् 1958 में वे गुजरात विश्वविद्यालय से संबद्ध हो गये और आठ वर्ष तक गुजरात में रहने के पश्चात 1964 में दिल्ली विश्वविद्यालय में आ गये, जहाँ से 1990 से सेवा मुक्त होकर अपनी सृजन साधना में पूरी तल्लीनता से रत हो गये।

ऐसे रचनाकार प्रायः कम होते हैं जो अपने लिखे हुए पर अक्षरशः खरे उतरते हों, परंतु डॉ. रामदरश मिश्र ऐसे विरले व्यक्तित्व हैं जिन्होंने अपनी कविता के शब्द- शब्द को जिया है, अक्षर-अक्षर को महसूस किया है और उसे जीवन में अर्थ के साथ उतारा है। वे सच्चे साहित्य साधक हैं। यही कारण है कि जब उन्हें "के.के. बिड़ला फाउंडेशन द्वारा 2021 के "सरस्वती सम्मान" प्रदान किये जाने की घोषणा हुई तो पूरे साहित्य समाज ने उसका दिल खोलकर स्वागत और समर्थन किया, साथ ही सम्मानों के प्रति उनका खोया विश्वास भी वापस लौट आया, क्योंकि ये उस प्रतिभा का सम्मान था जो सम्मानों की दौड़ में कभी शामिल ही नहीं थीं।

कविता के प्रति प्रबल अनुराग और आकर्षण उनमें बचपन से ही था, ये संस्कार उनके भीतर ईश्वर प्रदत्त था। चौथी-पांचवीं कक्षा से ही पाठ्य पुस्तकों की कविताएँ पढ़ते हुए उनके भीतर कविता लिखने की तीव्र इच्छा या आकुलता उठने लगती थी, छठवीं कक्षा में आते-आते उन्होंने कविता लिखना प्रारम्भ भी कर दिया था और मिडिल पास करते-करते वे कई कविताएँ लिख चुके थे।

बनारस आकर उनकी इच्छा को जैसे पंख मिल गये, उन्हें वहाँ कविता का परिवेश भी मिला और प्रेरणा भी, शंभूनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, नामवर सिंह, बच्चन सिंह, त्रिलोचन जैसे कवि मित्रों का सान्निध्य मिला, तो आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे गुरूजनों का आशीर्वाद और प्रोत्साहन भी मिला, इस नये परिदृश्य में उनके सक्रिय लेखन की शुरुआत हुई, उनकी भाषा और शिल्प में नया निखार आया। 1960 के आस पास उन्होंने गद्य लिखना भी शुरू कर दिया था, उनका पहला उपन्यास 'पानी के प्राचीर', 1961 में प्रकाशित हो चुका था।

मिश्र जी के लिए कविता शौक नहीं जीवन का सपना था, उनके अंदर से उठती आत्मा की आवाज़ थी।

कविता ने उन्हें कभी हताश या निराश नहीं होने दिया, वह एक सपने और शक्ति की तरह उनके भीतर मौजूद रही, जिसे लेकर वह बालक गाँव से निकला था। अपने उसी दौर के अनुभवों को उन्होंने "उसके भीतर एक सपना था" कविता में बहुत मार्मिकता से व्यक्त किया है-

"कच्चे टूटे मकान में/
तमाम हकीकतें फैली हुई थीं/
कभी भूख-प्यास बनकर/
कभी तन का नंगापन बनकर/
इसी के बीच उसका बचपन/
चलता रहा नंगे पाँव/
पाँवों में काँटे चुभे/पत्थर टकराये/
घोर शीत ने गलाया/प्रचंड ग्रीष्म ने जलाया/
लेकिन उसके भीतर/
सदा एक सपना पलता रहा/
जिससे वह हकीकतों में होकर भी/
उनके पार/देखा करता था/
गाँव में शिक्षा की एक मंज़िल थी/उसका मन हमेशा/
उसके पार/कुछ देखा करता था/
कुछ स्पष्ट तो नहीं था/पर था ज़रूर/
कभी-कभी लगता था/वो खो गया है/
नंगी हकीकतों के विराट विस्तार में/
लेकिन तभी कोई गुनगुनाने लगता था/
धीरे-धीरे ज्ञात हुआ/वो कविता थी/
ऐसे ही चलती रही/उसकी जीवन यात्रा/
गाँव के सहयात्री रुकते चले गये/
कोई यहाँ रुका/कोई वहाँ रुका/
लेकिन "उसके भीतर एक सपना था"

जो उसे ठेलता गया/हक़ीकत के भीतर/
और वह यहाँ तक आ गया/
आज लगता है कि/कठोर हक़ीकतें/
तो गुम हो गईं/लेकिन उसका सपना/
हकीकत बनकर व्याप्त है/
यहाँ से वहाँ तक।''

आज मिश्र जी का वही सपना बृहद साहित्य के रूप में हमारे सामने है। नित नये रंगों में ढलता हुआ वह ''सपना'' आज भी उनके साथ चल रहा है। और उम्र के इस पड़ाव में भी ठहरने की अनुमति नहीं देता।

निकला था सालों पहले
घर से गठरी लिए सफर की
अब भी कल के लिए

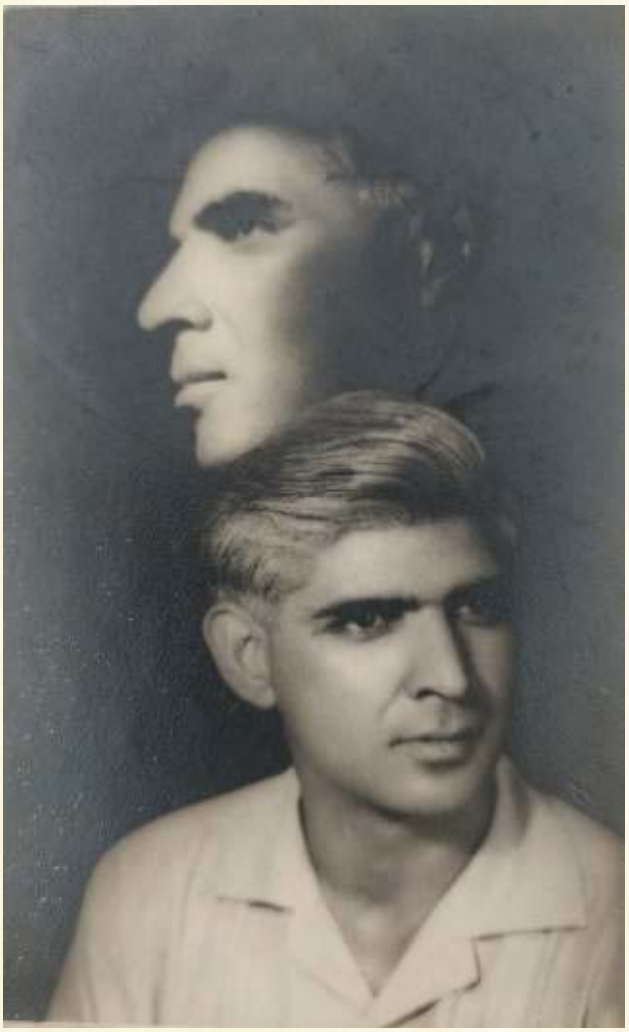

रात में नये- नये सपने बुनता हूँ।

हिन्दी साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर डॉ. रामदरश मिश्र जी बहुआयामी प्रतिभा सम्पन्न रचनाकार हैं, उन्होंने गद्य और पद्य की प्रायः सभी विधाओं में लेखन किया है। आठ दशकों से अनवरत जारी उनकी सृजन यात्रा ने हिंदी को विपुल और श्रेष्ठ साहित्य से समृद्ध किया है। उनकी अब तक सौ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनमें बत्तीस गीत एवं कविता संग्रह, पंद्रह उपन्यास, तीस लघु कथा संग्रह, साहित्यिक आलोचना की पंद्रह पुस्तकें, पाँच निबंध संग्रह, यात्रा वृतांत, आत्मकथा, संचयन, साक्षात्कार एवं संस्मरण आदि सम्मिलित हैं।

साथ ही मिश्र जी ने विभिन्न मंत्रालयों में हिंदी सलाहकार समितियों के रूप में भी काम किया है। उनके उत्कृष्ट अवदानों के लिए उन्हें सरस्वती सम्मान सहित अनेक सम्मानों से अलंकृत किया जा चुका है, जिसमें साहित्य अकादमी सम्मान, व्यास सम्मान, भारत- भारती सम्मान एवं शलाका सम्मान प्रमुख हैं। उनके साहित्य पर अब तक 300 से अधिक शोध प्रबंध एवं अनेक आलोचनात्मक कृतियां प्रकशित हो चुकी हैं।

डॉ. राम दरश मिश्र की सृजन यात्रा समय के कई मोड़ों से गुजरी है, उन्होंने बदलाव के कई रंग देखे, परिवर्तन की कई आंधियां देखीं, कई उतार-चढ़ावों से गुजरे परंतु बिना किसी धारा में बहे, बिना किसी रंग में ढले वे अपनी राह चलते रहे, क्योंकि उनके स्वाभिमानी व्यक्तित्व को किसी झंडे या विचार के फंदे से बंधना स्वीकार नहीं था, प्रगतिशील स्वभाव के कारण वे सदैव नवीनता के आग्रही रहे और समय के साथ आये सहज परिवर्तन को स्वीकारते गए।

मिश्र जी जितने समर्थ कवि हैं, उतने ही सशक्त कथाकार और उपन्यासकार भी हैं, अतः ये तय करना बहुत मुश्किल होता है कि वे कवि बड़े हैं या कथाकार। उन्होंने जिस भी विधा को अपनाया उसके साथ बहुत दूर तक चले और पूरी तरह डूबे, परंतु उनकी मूल संवेदना गीतों से ही बँधी रही, क्योंकि उनके भीतर लोकजीवन के संस्कार, ग्राम्य परिवेश, प्रकृति का अनुपम सौंदर्य और माटी की वह खांटी गंध है जो गीत की उर्वर ज़मीन तैयार करती है। उनके गीत अपनी रागात्मकता और भाव प्रवणता के कारण पाठक के हृदय में गहरी अनुगूंज छोड़ते हैं।

इसी धरातल का उनका एक भाव प्रवण गीत दृष्टव्य है-

बार-बार बाँसुरी बजाओ न पिया।
लहरों के पार से बुलाओ न पिया।
गाते हो तुम मेरा मन गमगमा रहा
लगता है जैसे कुछ प्राण में समा रहा
सपनों से मन को गुहराओ न पिया।

मिश्र जी ने अपनी काव्य यात्रा गीत विधा से प्रारम्भ की, और गीतों का सुंदर छतनार संसार रचा, परंतु जैसे-जैसे वे गद्य लेखन में प्रवृत्त होते गए,

आज तक साहित्योत्सव में सुप्रसिद्ध कवयित्री अनामिका, प्रभात रंजन एवं छोटी बेटी प्रो. स्मिता मिश्र के साथ

गीत रचना की गति मंद होती गई, कालांतर में समय के मिजाज़ के साथ वे नयी कविता के साथ जुड़ गये, जिसका प्रभाव उनके गीत सृजन पर पड़ा, परंतु गीतों से उनका लगाव कम नहीं हुआ, गीतों के साथ ही उन्होंने छन्द की दूसरी विधाओं-गज़ल और मुक्तक को भी अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, इस तरह वे मुक्त छन्द की धारा में बहते हुए भी छन्दों की लय से सदैव बँधे रहे।

वे स्वयं स्वीकारते हैं-''मैंने सभी विधाओं में लेखन लिया है, पर गीत और कविता को छोड़ कर नहीं, अपितु कविता के साथ-साथ।''

यद्यपि उनका गीतकार पक्ष अनदेखा ही रहा क्योंकि उन्हें प्रायः सभी सम्मान गद्य या कविता

(आग की हँसी, आम के पत्ते, मैं तो यहाँ हूँ) की पुस्तकों पर ही मिले हैं।

जबकि उन्होंने एक से एक भाव प्रवण, सम्प्रेषणीय गीत हिन्दी जगत को दिये हैं। भावों की गहराइयों और दर्शन की ऊँचाइयों की अन्विति के साथ सहज-सरल शिल्प में बँधा एक गीत यहाँ प्रस्तुत है-

यह भी दिन बीत गया
पता नहीं जीवन का यह घड़ा
एक बूँद भरा कि एक बूँद रीत गया।
उठा कहीं, गिरा कहीं, पाया, कुछ खो दिया।
पता नहीं इन घड़ियों का हिया
आँसू बन ढलका या कल का बन गीत गया।
एक लहर और इसी धारा में बह गई
एक आस यूँ ही बंशी डाले रह गई
पता नहीं दोनों के मौन में
कौन कहाँ हार गया, कौन कहाँ जीत गया।

मिश्र जी का पहला गीत संग्रह 'पथ के गीत' 1951 में प्रकाशित हुआ, दूसरा संग्रह ''बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ'' 1952 में आया, जिसमें गीतों के साथ कविताएँ भी संग्रहित हैं। इसके अतिरिक्त ''पक गई है धूप'', ''कंधे पर सूरज'', ''दिन एक नदी बन गया'', ''मेरे प्रिय गीत'', जुलूस कहाँ जा रहा है, आग कुछ बोलती नहीं, बारिश में भीगते बच्चे, ऐसे में जब कभी, संग्रहों में दर्ज होते रहे।

मिश्र जी के समग्र गीतों में-लोक जीवन के संस्कार उल्लास, त्यौहार, प्रेम, प्रकृति, जीवन के दुःख दर्द, अभाव पीड़ा और संघर्षों के बीच आशा और उम्मीद का स्वर सुनाई देता है। इन गीतों के रचनाकाल में लम्बा अन्तराल होने के कारण संवेदना और विचार के स्तर पर बदलाव दिखाई देता है। समय के साथ भावुकता की जगह कवि के गीतों में लोकोन्मुखता का पक्ष गहराता चला गया।

मिश्र जी के इन्हीं गीतों ने इन्हें प्रगतिशील कवियों की श्रेणी में पहुंचा दिया, उनके कुछ गीत नवगीत श्रेणी में भी दर्ज़ किये गये, पर वे कभी गीत-नवगीत के फेर में नहीं पड़े।

''पथ के गीत'' में जहां उन्होंने अपने निजी अनुभवों, सम्वेदनाओं को समय और परिवेश में मौजूद संघर्ष, शोषण, विसंगतियों, चुनौतियों, आशा-आकांक्षाओं, प्रकृति और प्रेम को चित्रित किया है, वहीं ''बैरंग-बेनाम चिट्ठियाँ'' के गीतों में उन्होंने यथार्थ से हुए साक्षात्कार को अपने जीवनानुभवों के साथ पूरी प्रासंगिकता से उजागर किया है, यहाँ पहुंच कर कवि का स्वर व्यष्टि से समष्टि में समाहित हो जाता है। प्रारंभिक गीतों में समकालीन रचनाकारों का स्वाभाविक प्रभाव भी परिलक्षित हुआ है-''मैं आषाढ़ का पहला बादल मेरी राह न बांधो ''पढ़ते हुए'' हम पक्षी उन्मुक्त गगन के ''डॉ. शिव मंगल सिंह सुमन का गीत स्मरण हो आता है-

मैं आषाढ़ का पहला बादल, मेरी राह न बांधों।
जन-जन के डर का कोलाहल पीकर मैं आता हूँ।
मधुर कल्पना सा फिर नभ में उड़ता लहराता हूँ।
फिर भी दूर नहीं मुझसे जीवन की पगडंडी
धरती के अधरों पर बनकर बूँद उतर आता हूँ।
मेरी प्यास गरल पी-पीकर सुधा जलद बन जाती
धुँआ- घटा पी हँसने वाला, मेरी दाह न बांधो।

रामदरश मिश्र जी ऐसे रचनाकारों में से हैं, जो अपने सृजन में सदैव भारतीय ग्राम चेतना के साथ जुड़े रहे हैं, ग्राम जीवन के प्रति उनका असाधारण आकर्षण रहा है, जिसका यथार्थ निरूपण उनके सम्पूर्ण साहित्य चाहे गीत और कविता हो या उपन्यास सभी में मिलता है।

मिश्र जी ने गाँव बहुत कम उम्र में छोड़ दिया था, पर उसकी स्मृतियों और अनुभवों की पोटली वे आज तक अपने साथ सहेजे हुए हैं। उनका मन ग्राम जीवन की सुखद स्मृतियों में बार-बार लौट आता है, रेती पर रचे हुए समय के चिन्हों को ढूंढ़ता हुआ-

रच रेती पर चित्र पवन से
चले गये वे दिन उन्मन से
कमल पत्र पर मरी मछलियाँ
रख कर चली गयी जल परियाँ
उतर रहे हैं गिद्ध गगन से।

मिश्र जी के गीतों में विषय वैविध्य होते हुए भी संवेदना के स्तर पर एक समानता, एवं उनमें भावों और विचारों की सुन्दर संयुक्ति दिखाई देती है। मिश्र जी मूलतः प्रकृति और लोक जीवन के चितेरे हैं, उनकी संवेदना गाँवों से जुड़ी है। प्रकृति के रूप, रंग, गंध, नाद और स्पर्श को उन्होंने बहुत बारीकी से देखा और परखा है, इसीलिए उनके पूरे सृजन में प्रकृति अपने पूरे रंग और उल्लास के साथ उतरी है। कभी बिम्ब प्रतीक बनकर तो कभी उद्दीपन और अवलंबन बनकर।

उनके गीतों में नदी, तट, कछार, बादल, बरखा, शरद, बसंत, फागुन, नीम महुआ, आम, सेमल, हरसिंगार, खेत, फसलें, धान, पिपहरी, सारस, मोर, तितलियां, फूल और धूप-छांव के तमाम रंग प्रकृति का महारास रचाते दिखाई देते हैं।

"पीली बेला में कछार की, सरसों का वन फूला है।" एवं तालों के पंक हँसी कास, शरद आई है' व "पके धान सी धूप झरी पतझर आया।" जैसे अनेकानेक गीतों के मोती उनके संग्रहों में टके हैं, जिसमें बसंत का रंग कुछ अधिक ही गाढ़ा चढ़ा हुआ है- "खींच कर घर से एक बहकी हवा फागुन कल, बीच चौरस्ते मुझे भटका गए है।"

बसंत का बीतना और फागुन का रीतना उनके भीतर अवसाद और उदासी का सहज भाव भर जाता है। इन गीतों की सबसे सुंदर प्रतिक्रिया वहाँ दिखाई देती हैं, जहां वे अपनी रागात्मक भावानुभूतियों को प्रकृति के सुंदर प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से आंचलिक शब्दावली में गूंथ कर लोकधुनों में पिरोते हैं-

"रात-रात भर मोरा पिहँके, बैरिन नींद न आये।
बड़े भोर सारस केंकारे, नदियां तीर बुलाये।
कांपे नदी, कछार, हवाओं में भर हौले-हौले
जल पाखी-सा उड़-उड़ कूके सन्नाटा थर्राये।"

मिश्र जी के गीतों में बिम्बों और प्रतीकों की सुंदर योजना दिखाई देती है, जो उनकी अद्भुत कल्पना शक्ति सूक्ष्म परख दृष्टि और शैल्पिक प्रतिभा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन्होंने अपने गीतों में नये-नये बिम्बों का विधान रचा है।

हवा के कमरे में आने का सुंदर बिम्ब उपस्थित करता ये गीत-

खिड़की से एक हवा आयी,
पोर-पोर कमरे की कांप गई।
टंगी हुई तारीखें भीत पर,
पाँव फड़फड़ाती सी उड़ गई
आकृतियाँ चित्रों में वंदिनी,
हिली और कई मोड़ मुड़ गई
उलट गयी पर्दे को द्वार से,
खुला हुआ नंगापन ढाँप गई।

इसी तरह "एक नीम मंजरी" के प्रतीक के माध्यम से प्रथम प्रणयानुभूति के उद्दीपनों को बहुत सूक्ष्मता से अभिव्यक्त किया है-

एक नीम मंजरी मेरे आँगन झरी
कांप उठे लोहे के द्वार
आज गगन मेरे द्वार तक झुक गया
झटका सा मेघ यहां रुक गया।
रग-रग में थर-थरी, सन्नाटा आज री !
रहा मुझे नाम से पुकार।

बिम्बों और प्रतीकों के साथ ही इन गीतों में शब्दों का बहुत सधा और सुंदर प्रयोग हुआ है।

जिसके कारण इनकी अर्थ व्यंजना और सघन हुई है। भाषा पर मिश्र जी का एकाधिकार है।

फणीश्वरनाथ रेणु के "मैला आँचल" के बाद देश में मिश्र जी ही एक मात्र ऐसे लेखक हैं, जिनकी ख्याति आंचलिक उपन्यासकार के रूप में अंकित है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से पानी की विकराल समस्या को उठाया है। उनके तीनों आंचलिक उपन्यास "पानी के प्राचीर", "जल टूटता हुआ", और "सूखता हुआ तालाब" पानी के विषय को लेकर केंद्रित है।

मिश्र जी लिरिकल कवि हैं, उन्होंने अपने गीतों के विषय में लिखा है कि- ''इसमें ग्राम जीवन की कहीं लय है, और कहीं लय और प्रवाह दोनों!'' वे अनुभवों की मजबूत ज़मीन पर भाषा का नया मुहावरा और नये प्रतीक गढ़ते हैं, उनके ये गीत कथ्य और शिल्प की दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं।

अपनी रचनाओ में वैयक्तिक राग और प्रकृति के प्रति अनुराग को पिरोने वाले मिश्र जी के गीतों में सामाजिक सरोकार और मानवीयता का स्वर भी मुखरित होता रहा है। वे सतही यथार्थ की जगह अन्वेषी यथार्थ के सर्जक हैं, उनकी रचनाएँ समकालीन यथार्थ बोध से संपृक्त हैं, उनके गीतों में कवि दृष्टि का उन्मेष शिखर पर है।

मिश्र जी ने गीत और कविता में अपनी सृजनात्मक प्रतिभा की प्रभावशाली अभिव्यक्ति के साथ-साथ ग़ज़ल में भी अपनी सार्थक उपस्थिति रेखांकित की है। उनके कई ग़ज़ल संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं।

मिश्र जी को लम्बी उम्र का वरदान सम्भवतः इसीलिए मिला है कि उन्होंने एक-एक पल को सहेजा, उसके मूल्य को समझा और समय के सहचर बनकर उसे अपनी मुट्ठियों से कभी छूटने नहीं दिया, उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन साहित्य सृजन को समर्पित किया है। कविता उनका कर्म भी है और धर्म भी। नित्य कुछ न कुछ लिखना और नया जोड़ना उनकी दिनचर्या में शुमार है। उम्र के चलते अनेक शारीरिक शिथिलताओं के बावजूद वे अपने अवसाद और उदासी के पलों को छोटी-छोटी कविताओं में दर्ज़ करते रहते हैं।

''बाज़ार को निकले हैं लोग'', हँसी ओंठ पर आँखें नम हैं, तू ही बता ज़िंदगी, दूर घर नहीं हुआ, बनाया है मैंने ये घर धीरे- धीरे। गीतों की अपेक्षा उनकी ग़ज़लों में यथार्थ बोध का स्वर अधिक मुखर हुआ है। सहज-सरल भाषा, कहन की सादगी, एवं कथ्य की ताज़गी से ये गज़लें बहुत लोकप्रिय हुई हैं और प्रायः कोड की जाती हैं। ''बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे'' उनकी पहचान की ग़ज़ल बन गई है।

कुछ ग़ज़लों के शेर प्रस्तुत हैं-

एक नन्हा ख़्वाब मेरा खो गया जाने कहाँ
गाँव देखा, शहर देखा, राजधानी देख ली।
फूल से बचपन के शिर, देखा बुढ़ापे का पहाड़
आँसुओं की आँच में गलती जवानी देख ली।

बाज़ारवाद पर एक गज़ल-

कल यहाँ था बाग, बिक कर कारखाना हो गया।
खेत था जो, अब शहर का आशियाना हो गया।
कल तलक तो घर-घरों में पैठ बतियाते रहे
हाट का अब तो घरों में आना जाना हो गया।

और इसका आख़िरी शेर कि-

है अभावों से घिरा लेकिन कलम है हाथ में
जिंदगी जीने का सुंदर सा बहाना हो गया।

मिश्र जी की प्रवृत्ति मूलरूप से सृजनात्मक है, जिसके चलते उनकी लेखनी सदैव गतिशील रहती है, सृजन उनका स्वभाव है। वे कवि के साथ ही ख्यात उपन्यासकार कथाकार, निबंधकार आलोचक, आत्म कथा एवं संस्मरण लेखक हैं। उनके पास गद्य साहित्य की विशाल थाती है। उपन्यासकार के रूप में उन्होंने बड़ी प्रतिष्ठा अर्जित की है एवं हिंदी साहित्य को 15 उपन्यासों का अमूल्य उपहार दिया है, जिसमें आंचलिक और सामाजिक दोनों श्रेणियों के उपन्यास हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु के ''मैला आँचल'' के बाद देश में मिश्र जी ही एक मात्र ऐसे लेखक हैं, जिनकी ख्याति आंचलिक उपन्यासकार के रूप में अंकित है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से पानी की विकराल समस्या को उठाया है।

उनके तीनों आंचलिक उपन्यास ''पानी के प्राचीर'', ''जल टूटता हुआ'' और ''सूखता हुआ तालाब'' पानी के विषय को लेकर केंद्रित है।

इन उपन्यासों में गाँव के जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है, जिसमें दो नदियों के बीच कछार अंचल में फैले गाँव में बाढ़ और सूखे की विभीषिका से जूझते ग्रामीण जनों के दुःख दर्द, अभाव, ग़रीबी और त्रासदी के साथ उनसे जुड़ी अन्य समस्याओं को भी गहराई से उभारा है।

मिश्र जी के अन्य उपन्यास-'बीच का समय', 'अपने लोग', 'रात का सफर', 'आकाश की छत', 'बिना दरवाज़े का मकान', 'दूसरा घर', 'थकी हुई सुबह' आदि सामाजिक उपन्यासों की श्रेणी में आते हैं, आंचलिक उपन्यासों की तरह इनमें भी 'परिवेश' ही नायक की तरह जीवन के विविध आयामों को प्रदर्शित करते हुए आगे बढ़ता है, लेखक ऐतिहासिक घटनाओं का सहारा न लेकर, नवीन सन्दर्भों से जोड़कर कथा का सृजन करता है, जो कि कहीं न कहीं अंचल से जुड़ जाता है।

मिश्र जी के सृजन का मूल अभिप्राय मालवीय मूल्यों की स्थापना रहा है जिसके लिए वे सदैव प्रतिबद्ध दिखाई देते हैं। शोषितों, पीड़ितों, दलितों और विशेष कर स्त्रियों के प्रति उनके मन में विशेष सहानुभूति और संवेदना रही है। वे स्वयं कहते हैं-''गाँव में मैंने स्त्रियों को बहुत पीड़ित होते देखा है, उनकी पीड़ा, उनका दर्द मुझे बहुत सालता रहा है, मैंने अपने परिवार में, और अपनी बड़ी बहन को ससुराल में सताये जाते देखा है, उसकी सारी पीड़ा और दर्द आज भी मेरे भीतर है। इसी तरह मेरा मन दलितों और पीड़ितों के प्रति सदा आकुल होता रहा।''

यद्यपि आज स्त्रियों की स्थिति में सुधार आया है, पर गाँवों में उनकी

दशा कमोवेश वही है। गांवों के साथ-साथ वे शहर की दोहरी ज़िम्मेदारी का बोझ उठाने वालीं आज की शहरी स्त्रियों के प्रति भी अपनी गहरी संवेदना व्यक्त करते हैं-

मुर्गा बोला कहीं शहर में,
उठो सुहागिन चार बज गये।
क्या सोना आख़िरी पहर में
उठो सुहागिन चार बज गये।
चौका छोड़ जात पर जाना
इतना ही विश्राम तुम्हारा
घर के हर स्पन्दन में अंकित-सा
रहता है नाम तुम्हारा।
थोड़ा सो लेना तिजहर में
उठो सुहागिन चार बज गये।

मिश्र जी ने अपनी जीवन यात्रा के साथ साहित्य का लम्बा सफ़र तय किया है। अपने अदम्य साहस और जिजीविषा से राह के तमाम अवरोधों और प्रतिरोधों को पार करते हुए वे उस मुहाने तक आ पहुंचे हैं, जहां आते-आते कई नदियां सूख जाती हैं, पर उनकी संवेदना का अजस्त्र स्रोत आज भी जस का तस है, कविता संजीवनी की तरह आज भी उनके साथ चल रही है, जिसका उत्स उनके बचपन का वह गाँव और गाँव का वह बच्चा है जो आज भी उनके भीतर मौजूद है, स्मृतियों का वह गाँव उन्हें आज भी माँ की तरह पुकारता है।

वे गाँव के उन कष्टों और अभावों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने उन्हें अनुभवों की अपार संपदा दी, जीने की शक्ति दी, दूसरे के दुःखों को समझने की संवेदनात्मक दृष्टि और सर्जनात्मक उर्वरता दी। वे स्वयं कहते हैं-"मेरा कवि हमेशा महसूस करता रहा है कि अनुभव सबसे बड़ी ताकत होती है, कवि की विचार धारा एक विजन है, दृष्टि है, जो अनुभव को रचती है, बनाती नहीं, अनुभवों ने मुझे बहुत बल दिया है।"

मिश्र जी को लम्बी उम्र का वरदान सम्भवतः इसीलिए मिला है कि उन्होंने एक-एक पल को सहेजा, उसके मूल्य को समझा और समय के सहचर बनकर उसे अपनी मुट्ठियों से कभी छूटने नहीं दिया, उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन साहित्य सृजन को समर्पित किया है।

कविता उनका कर्म भी है और धर्म भी। नित्य कुछ न कुछ लिखना और नया जोड़ना उनकी दिनचर्या में शुमार है। उम्र के चलते अनेक शारीरिक शिथिलताओं के बावजूद वे अपने अवसाद और उदासी के पलों को छोटी-छोटी कविताओं में दर्ज़ करते रहते हैं-

"पूछते हो, इन दिनों फ़ुरसत में क्या करता हूँ मैं
वक्त का अपने फटा दामन सिया करता हूँ मैं
व्याप जाती है घुटन जब जिंदगी की साँस में
अपनी कविताओं के पंखों से हवा देता हूँ मैं।"

सहज-सरल परंतु दृढ़ व्यक्तित्व के धनी मिश्र जी जितने बड़े साहित्यकार हैं उतने ही बड़े इंसान है। सहजता, साफगोई, आत्मीयता के साथ संतुष्टि उनके स्वभाव का मुख्य गुण है। वे अपने जीवन और सृजन से पूर्णतया संतुष्ट हैं। और अपने सफर को कुछ इस तरह याद करते हैं-

"एक लम्बा सफर था मेरे दोस्तों
राह चलती रही, मोड़ खाती हुई
साथ हो ली हवा आग बन के कभी
और कभी प्यार से महमहाती हुई
कंटकों ने किये चाक जब भी बसन
छा गये फूल बनकर वसन देह पर
थक के बैठा जब भी मौत के पास मैं
जिंदगी आ गयी गुनगुनाती हुई।"

शतक की देहरी पर खड़े इस युग पुरुष ने साहित्य साधना की पूरी सदी तय की है और अपने अमूल्य अवदानों से हिंदी साहित्य को उपकृत किया है। उनका जीवन और सृजन हम सभी के लिए प्रेरणा स्रोत है। ◆

लंदन प्रवास के दौरान कवि जगदीश चतुर्वेदी के साथ

पता : 6-साई पैलेस, साई हिल्स, कोलार रोड
भोपाल-462042 (म.प्र.)
मो. : 9893104204

एक संवेदनशील रचनाकार को पढ़ना

कुमकुम शर्मा

यह सभी के लिए सौभाग्य की बात है कि बीत गई सदी का साक्षी रहा एक लेखक अपनी पूरी ऊर्जा और संवेदनशीलता के साथ 102 वर्ष तक हमारे बीच बना रहा। साहित्यकाश पर उनकी उपस्थिति वरेण्य है।

रामदरश मिश्र जी पर विशेषांक करने के दौरान ओम निश्चल जी से अक्सर बातचीत होती रही। उन्होंने एक घटना का जिक्र किया कि अभी किसी साहित्यिक समारोह में रामदरश जी सम्मिलित हुए। वे मात्र साहित्य सृजन में ही नहीं सक्रिय हैं बल्कि गोष्ठियों एवं सभा समारोहों में आते जाते भी हैं। यह सभी के लिए सौभाग्य की बात है कि बीत गई सदी का साक्षी रहा एक लेखक अपनी पूरी ऊर्जा और संवेदनशीलता के साथ 102 वर्ष तक हमारे बीच बना रहा। साहित्यकाश पर उनकी उपस्थिति वरेण्य थी। रामदरश मिश्र जी पर लिखते हुये यह स्पष्ट होता है कि लेखन की कोई विधा ऐसी नहीं है जिसमें उन्होंने लिखा न हो। कविता, ग़ज़ल, गीत, ललित निबंध, आलोचना, कहानी, उपन्यास सभी विधाओं में उन्होंने समृद्ध अवदान दिया है। उनकी कविताएं, गीत हमें पढ़ते ही याद हो जाते हैं।

वे एक ऐसे जीवन्त रचनाकार हैं जो भीतर बाहर एक से हैं। सहज, सरल और सुस्पष्ट उनके समस्त साहित्य से गुजरते हुए एक ऐसे व्यक्तित्व से मुलाकात होती है जो समाज के हर तबके से जुड़ा हुआ अपना-सा लगता है। अपनी रचनात्मकता की शुरुआत वे कविताओं से करते हैं जो आगे चलकर उनकी गज़लों में विस्तार पाती हैं। हिन्दी ग़ज़ल की बुनियाद कभी दुष्यन्त कुमार ने रखी थी वे उसी कड़ी के ग़ज़लकार दिखाई पड़ते हैं।

रामदरश मिश्र के कथा साहित्य के केन्द्र में मनुष्य है, उनकी पीड़ा और दुःख की दारुण कथा उनकी लगभग सभी कहानियों में मनुष्य की चिन्ता देखी जा सकती है। रामदरश जी ने गांव की ज़िन्दगी भी देखी है और नगर महानगर भी देखे हैं। उनके जीवन के अनुभव व्यापक हैं। मनुष्य मात्र के साथ जुड़े हुये सुख-दुःख उनके लेखक मन को भीतर तक विचलित करते हैं। वे व्यक्ति की पीड़ा सिर्फ भावनात्मक स्तर पर ही अनुभव नहीं करते हैं बल्कि पीड़ा कैसे दूर की जा सकती है इस पर भी विचार करते हैं। यही मानवीय चेतना उन्हें मानवता से गहराई से जोड़ती है। वे प्रत्येक समय की सच्चाई से जूझते हुये कहानियाँ रचते हैं जो उनकी कहानियों में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उनका रचना संसार विपुल है। गाँव से उनका गहरा नाता है इसीलिए उनकी कहानियाँ ग्रामीण यर्थार्थ से जुड़ी होती हैं। स्त्री मन की कथा को लिखते समय वे संवेदना की हदें पार कर जाते हैं। गाँव के विभिन्न चरित्रों को ज्यों का त्यों उद्घाटित कर देते हैं, जिससे प्रत्येक पात्र के समस्त अन्तर्भाव सहजता से व्यक्त हो उठते हैं। 'सीमा' कहानी की विकलांग लड़की सीमा समाज की हिकारत भरी दृष्टि बरदाश्त करती है लेकिन अकाल में माँ के क्रियाकर्म के बाद लौटते हुये चाची में माँ की दुर्लभ छवि पाकर खुश हो उठती है।

एक औरत एक ज़िन्दगी की भवानी हो या 'हद से हद तक' की ठुकराई औरत,दोनों के दुःख एक से हैं। 'वसन्त का एक दिन' को फुलवा और जयराम का प्रेम किस जातीय घृणा की बलि चढ़ जाता है। फुलवा की जिन्दगी से हँसी छिन जाती है, प्रभा की आख़िरी चिट्ठी

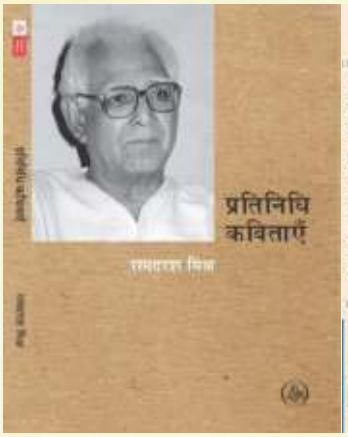

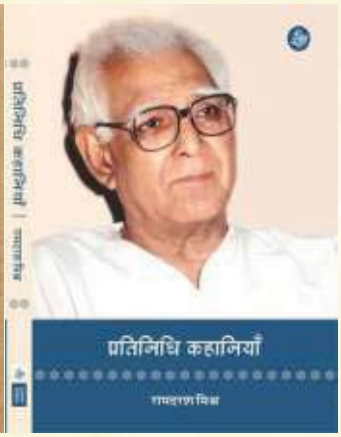

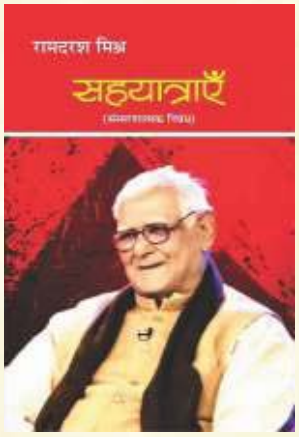

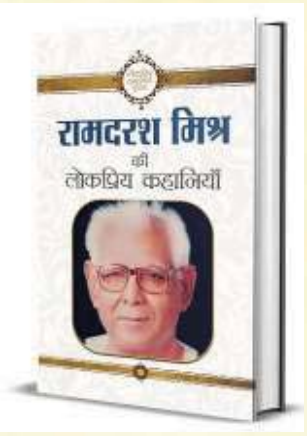

भावुक कर जाती है पाठक को अपने दर्द को कविताओं और चित्रों में उकेरती हुये वह दुनिया से विदा हो जाती है और कहानी में एक रुदन छोड़ जाती है। एक कहानीकार के रूप में रामदरश जी अति संवेदनशील भावुक कथाकार के रूप में अपनी रचनाओं में व्याप्त दिखाई देते हैं। उनकी कहानियाँ गाँव और समाज के चित्रण में प्रेमचंद के पद चिन्हों पर चलती हुई नज़र आई हैं। वे समाज के निर्धन सर्वहारा समाज की चुनौतियाँ बावजूद मज़बूती से अपने आदर्शों सिद्धान्तों पर खड़े रहने और उच्च वर्ग की ढ़ंकी दबी गंदगी ईमानदारी से उद्घाटित करते चलते हैं। समय-समय पर वे स्पष्ट वक्ता की तरह यह जताते चलते हैं कि आधुनिकता और भूमण्डलीकरण के चलते समाज में बहुत कुछ बदल गया है किन्तु अभी भी मनुष्य का चरित्र नहीं बदल पाया है ऊँच-नीच का भेदभाव अभी भी है। इन कहानियों को जितनी भी बार पढ़ते हैं उतनी ही बार ये अपने एक नए कथ्य के रूप में सामने आती हैं।

रामदरश मिश्र के कथा साहित्य के केन्द्र में मनुष्य है, उनकी पीड़ा और दुःख की दारुण कथा है। उनकी लगभग सभी कहानियों में मनुष्य की चिन्ता देखी जा सकती है। रामदरश जी ने गांव की ज़िन्दगी भी देखी है और नगर महानगर भी देखे हैं।

रामदरश जी ने अपने लेखन की शुरुआत साठ के पूर्व कर दी थी। मूलतः वे कवि हैं पर उनकी कहानियाँ पढ़ने के बाद यह कहना मुश्किल लगता है कि वे कवि पहले हैं या कथाकार। सन् 1960 के साहित्यिक जगत में ही उनकी अलग जगह बननी प्रारम्भ हो चुकी थी जो उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। कथा सम्राट प्रेमचंद की तरह ही रामदरश जी भी ग्रामीण अंचल से वहाँ के परिवेश पर आधारित कहानियाँ रचते हैं। उनके पात्र उनके ही जीवन से उठाए गये पात्र हैं जो पाठक से तुरन्त जुड़ जाते हैं। प्रेमचंद की ही तरह उनकी कहानियों में पठनीयता और सहनता बनी रहती है। वे कथाशिल्प में शब्दों की जादूगरी की जगह भावों की प्रधानता को महत्व देते हैं। ग्रामीण परिवेश पर लिखने वाले उनके समय में प्रेमचन्द की परम्परा में फणीश्वर नाथ रेणु, मार्कण्डेय, शिव प्रसाद सिंह और अमरकांत जी जैसे कथाकार आते हैं।

प्रत्येक कथाकार का अपना नज़रिया होता है समाज को देखने समझने का लेखक की इसी अन्तर्दृष्टि से उसके सरोकार प्रभावित होते हैं। अपने आस-पास का परिवेश प्रेरित करता है और वही अभिव्यक्ति का केन्द्र बिन्दु भी बनता है। रामदरश जी के साथ कुछ ऐसा था कि उनका बचपन गाँवों में गुज़रा तो युवावस्था से ही उन्होंने शहर की ज़िन्दगी भी देखी। यही वजह है कि उनकी कहानियों में गाँव और शहर दोनों दिखाई पड़ते हैं, उनकी कहानी ''माँ सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो'' शहर से माँ की मृत्यु पर अपने गाँव लौटे एक ग्रामीण युवक की कहानी है। मां का क्रियाकर्म करने के बाद वह शहर लौट आया है और वहां की कठिनाइयों को याद करता है, उसके मन में एक अजीब सन्नाटा अंटा पड़ा है। वह याद करते हुए कहता है, ''जनता का मनोबल बहुत ऊँचा है अपनी सारी कठिनाइयों के बावजूद वह बड़ी बहादुरी के साथ अजीब कठिनाइयों से जूझ रही है, मैं जनता के इस वीर भाव से बहुत प्रभावित हूँ।'' गाँव की समस्याओं के साथ ग्रामीण चित्रण जगह-जगह एक गम्भीर व्यंग्य और तीखा कटाक्ष मुखर हो उठता है। चाहे वह सूखे की समस्या हो या बाढ़ की। सूखे से फटी हुई ज़मीन पर चलते हुये वे कहता है ''जाड़े की इस उदास दोपहरी में खाली फटी हुई ज़मीन लेटी है और उदास पगडंडियों से सरकता जा रहा हूँ... माँ मर गई है..... मन की उदासी इस विशाल भूभाग की उदासी के साथ मिलकर गाढ़ी हो रही है।'' पूरी कहानी एक उदास मनःस्थिति और गाँव के माहौल को हूबहू बयान करती चलती है।

रामदरश जी ने यों तो अनेक उत्कृष्ट कहानियाँ लिखीं हैं जो ग्रामीण और शहरी समाज का दर्पण हैं पर उनकी कुछ कहानियों पर यदि विस्तृत बातचीत हो तो उनकी कहानियों का मूल वैशिष्ट्य उजागर होता है। ग्रामीण परिवेश पर आधारित ''एक औरत एक जिन्दगी'' कहानी नरेश की बहू पर

केन्द्रित है। वह एक बदमाश और असभ्य परिवार की बहू है, जब तक उनकी गुंडई चलती है वे किसी को जीने नहीं देते हैं पर अचानक बेटे और ससुर की मृत्यु के बाद वह अकेले अपने बच्चों के साथ पूरी हिम्मत से अपनी खेती बारी सम्भाल लेती है। सभी रिश्तेदार उसे देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते थे लेकिन गाँव वाले उस पर फब्तियाँ कसते लेकिन नरेश की बहू की अपनी ज़िद है। स्त्री की हर ज़िद के साथ लेखक उसके पक्ष में खड़े हुये दिखाई देता है। अपनी अनेक कहानियों में उपन्यासों में वे स्त्री के पक्ष में खड़े दिखाई देते हैं। उनकी 'डर', 'अकेली वह', 'अपने लिए', वह औरत', 'धंधा' आदि कहानियों में स्त्री सामाजिक व्यवस्थाओं से जूझती हुई दिखाई देती है।

'ज़मीन', 'दक्षिणा' और 'सर्पदंश' ग्रामीण यथार्थ की कहानियां हैं। 'दक्षिणा' पंडितों और महापात्रों के फैलाए कर्मकाण्ड और अंधविश्वास से लड़ने वाली कहानी है। महापात्र के गाय मांगने पर माधो कहता है, ''रहने दो पंडित, अपना पूजा-पाठ। मेरे बाबू अपने बेटे और पोते के मुँह से दूध छीनकर खुद नहीं पीना चाहेंगे। जाओ पंडित जी, घर जाओ, मेरे बाबू जी की आत्मा को भटकने दो और सुनो आत्मा भटकती है पापियों की, मेरे बाबू पापी नहीं थे। 'ज़मीन' समाज में गढ़े गए झूठे नारों के सच को खोलने की कहानी है। विद्यार्थी मोहन बचपन की याद करता है कि तब कहा जाता था। ''यह ज़मीन सबकी है। पानी सबका है। ईश्वर ने सबको एक सा बनाया है। पर होता समाज में हमेशा इस नारे से उलट है। जरा सी भूख मिटाने के लिए कोई बच्चा किसी खेत की छीमी तोड़ लेता है तो उसे खेत का मालिक पीटने लगता है। 'सर्पदंश' भी गांव के माहौल की कहानी है।

'एक वह' कहानी का ताऊ जो बात-बात पर रामचरित मानस की चौपाइयाँ दोहराता है, परिवार द्वारा छोड़ दिया गया है शहर में चने मुरमुरे की दुकान खोलकर पेट पालता है एक दिन अचानक वह मरा हुआ पाया जाता है उसके आस-पास गरीबी हटाओ के पोस्टर समाज के खोखलेपन को बयां कर रहे हैं। रामदरश जी ने इस ताऊ का ऐसा शब्दचित्र खींचा है कि सामाजिक व्यवस्था और आश्वासनों की पोल खुलने लगती है उनकी कहानी 'रहमत मियां' 'साम्प्रदायिक सद्भाव पर लिखी गई उत्कृष्ट कहानी है। रहमत मियाँ लेखक के पड़ोसी रहे थे बहुत दिनों बाद आज आयें हैं और अपने बच्चे का अच्छे स्कूल में एडमीशन के लिए अनुरोध करते हैं। और बच्चे के बारे में जानकारी लेते हैं। रहमत बच्चे का नाम मोहन अली बताता है दंगे में माता पिता दोनों को खो देने वाले अनाथ बच्चे को रहमत मियां अपना लेते हैं और हिन्दू की सन्तान होने के नाते उसका नाम मोहन अली रखता है। कहानी में रहमत मियां के चरित्र का उदात्त चित्रण साम्प्रदायिक सद्भाव का नया स्वरूप उभरता है।

रामदरश जी की कहानियों का व्यापक परिदृश्य है वे समाज में फैली विषमताओं के प्रति चिन्तित हैं और सुधार के लिए प्रयासरत हैं। उन्होंने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि कहानी की भाषा बोझिल न हो यही वजह है कि उनकी कहानियों में पठनीयता बनी रहती है। वे रेणु और प्रेमचंद के बाद की पीढ़ी के ग्रामीण रचनाकार हैं। वे अपने समय को नहीं भूलते हैं उनकी निगाह में सभी समान हैं। उनकी कहानियां सामन्ती आचरण, दरिद्रता, गरीबी, मान-अपमान, आदि सामाजिक सभी मुद्दों को उठाती हैं। वे अपने सौ वर्ष के समस्त जीवन्त अनुभवों के साथ आज तक हमारे साथ थे। यह हम सभी का सौभाग्य है। उनका जाना साहित्य जगत में एक सन्नाटा छोड़ गया है। उनकी कमी को कभी पूरा नहीं किया जा सकता। उन्हें शत-शत नमन। ◆

स्त्री मन की कथा को लिखते समय वे संवेदना की हदें पार कर जाते हैं। गाँव के विभिन्न चरित्रों को ज्यों का त्यों उद्घाटित कर देते हैं, जिससे प्रत्येक पात्र के समस्त अन्तर्भाव सहजता से व्यक्त हो उठते हैं। 'सीमा' कहानी की विकलांग लड़की सीमा समाज की हिकारत भरी दृष्टि बरदाश्त करती है लेकिन अकाल में माँ के क्रियाकर्म के बाद लौटते हुये चाची में माँ की दुर्लभ छवि पाकर खुश हो उठती है।

पता : 1/47, बहार-ए, सहारा स्टेट्स,
जानकीपुरम, लखनऊ-226021
मो. : 8960000962

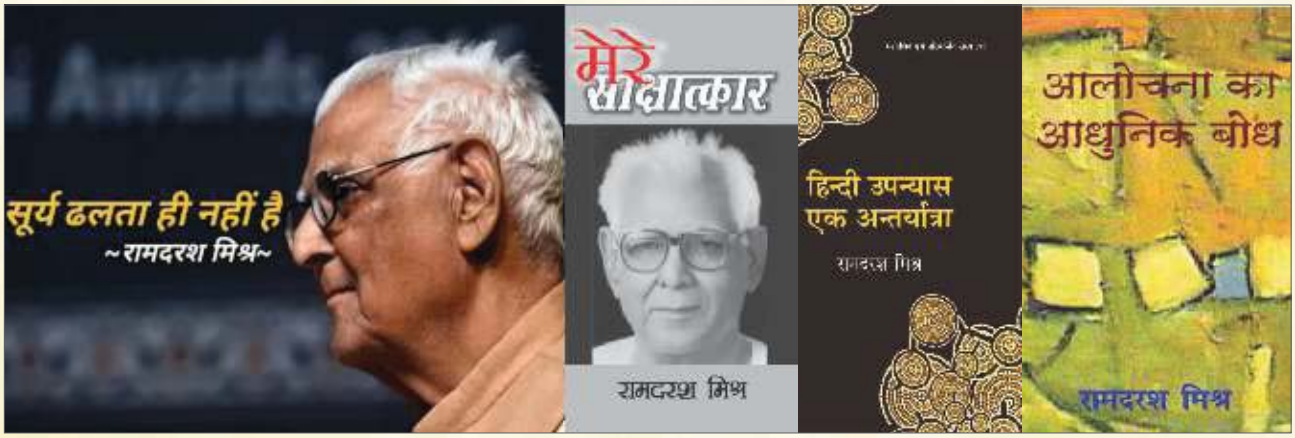

सरकंडे की कलम वाला साहित्यकार

सियाराम पाण्डेय 'शान्त'

उनकी जीवन यात्रा भले ही गोरखपुर जिले के डुमरी गांव से शुरू होती हो लेकिन वह खेत-खलिहानों तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि प्रकृति की सुरम्य वादियों तक उनके सौंदर्य बोध को शब्द सौष्ठव प्रदान करती है।

रामदरश मिश्र अपने दौर के बहुआयामी रचनाकार हैं। साहित्य की हर विधा पर उनका समान अधिकार है। कविता का क्षेत्र हो या कथा लेखन का, उनके हाथ और दिमाग की बेहद सधी-सुलझी युति देखते ही बनती है। उपन्यास, संस्मरण, आत्मकथा, ललित निबंध और आलोचना जैसी साहित्यिक विधाओं पर उनकी पकड़ अत्यंत गहरी है। अपने नाम के अनुरूप ही उनका रचना कर्म है। राम यानी आदर्शों और मर्यादाओं का समुच्चय और दरश यानी दृष्टि। रामदरश मिश्र का रचनाकर्म तो आदर्श भावना, कला और मर्यादा की त्रिवेणी है, जिसमें एक बार का अवगाहन ही जीवन के तमाम मानसिक झंझावातों, दुविधाओं और दुष्चिंताओं से मुक्ति प्रदान करता है। एक ऐसा मार्गदर्शन देता है, जो जीवन की कंकरीली-पथरीली ज़मीन पर भी आत्मीयता का वसंत ला देता है। स्नेह और सहयोग की शांति वर्षा कर आत्मानुभूति के सुगंधित पुष्प खिला देता है।

उनकी जीवन यात्रा भले ही गोरखपुर जिले के डुमरी गांव से शुरू होती हो लेकिन वह खेत-खलिहानों तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि प्रकृति की सुरम्य वादियों तक उनके सौंदर्य बोध को शब्द सौष्ठव प्रदान करती है। उन्हें प्रकृति का अनुगायक बनाती है। भले ही उनकी साहित्यिक यात्रा 'पथ के गीत' संग्रह से शुरू हुई हो लेकिन यह आगाज़ अच्छा तो अंजाम अच्छा की मुनादी भी थी। मिश्र जी साहित्य जगत में जो एक बार प्रकट हुए तो फिर छाए ही रहे और जीवन का सौवां बसंत पार करने के बाद भी उनका लेखन चलता रहा है। विकथ्य तो यह भी है कि यह वह समय था जब वे 'पथ के गीत' लिख रहे थे, ठीक उसी दौर में बाबा त्रिलोचन 'धरती' के गीत लिखने में तत्परता से जुटे थे।

गांव-जवार के अनुभवों से समृद्ध रामदरश मिश्र अध्ययन के लिए जब विश्व की सांस्कृतिक राजधानी काशी आए तो वहां उनका सीधा साबका गीतों और नई कविता की बयार से पड़ा। त्रिलोचन और केदारनाथ सिंह अगर उनकी नई कविता के सहयात्री बने तो बनारस में उन्हें हजारीप्रसाद द्विवेदी, शिवप्रसाद सिंह, शंभुनाथ सिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह जैसे साहित्यकारों की संगत मिली, मार्गदर्शन मिला जिसने उनकी साहित्यिक समझ को कदम-दर-कदम विकसित ही किया। काशी में उनके लिए सीखने और समझने को बहुत कुछ था। हालांकि कविता में उनका दमदार प्रवेश बैरंग बेनाम चिट्ठियां से हुआ लेकिन इसी के साथ उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं में भी हाथ आजमाए और कहना न होगा कि हर जगह उन्हें सफलता ही मिली। फणीश्वर नाथ रेणु और प्रेमचंद के पद चिह्नों पर चलते हुए उन्होंने गांव-जवार को अपने रचना लोक में शीर्ष पर रखा। दो सौ से ज्यादा कहानियां भी लिखीं जो खाली घर, एक वह दिनचर्या सर्पदंश, बसंत का एक दिन से लेकर इस बार होली में तक संग्रहों में शामिल हुईं। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनन्य शिष्य रहे रामदरश मिश्र के ललित निबंध साहित्य की अनमोल धरोहर हैं। कितने बजे हैं, बबूल और कैक्टस, घर परिवेश, छोटे-छोटे सुख व नया चौराहा जैसी कृतियां आते ही सघन प्रभावोत्पादकता के साथ साहित्य जगत में छा गईं। उनकी आत्मकथा सहचर है समय को साहित्य समाज ने हाथों-हाथ लिया।

दो यात्रा वृत्त, पांच डायरी संग्रह, आलोचना की ग्यारह पुस्तकें, चार संस्मरणात्मक कृतियों, कई संचयनों के लेखक रामदरश 'भौंरा मधुवन में मत जा' की बंदिशों और साहित्य की किसी एक विधा का होकर रह जाने की प्रवृत्ति में विश्वास नहीं करते। वे साहित्य की अनेक विधाओं में निर्बाध यात्रा करते हैं और तिस पर तुर्रा यह कि खुद को गांव का कवि कहलाने में ही मूलतः सुख पाते हैं। कविता-गीत में अगर उन्होंने जोर आज़माइश की है तो नई कविता में भी गज़ब की कुलांचे भरी हैं। उन्होंने गज़ल में भी लंबी साधना की है। उनके छह गज़ल संग्रहों का प्रकाशन कमोवेश इसी ओर इशारा करता है।

बनारस से गुजरात और दिल्ली की उनकी अध्यापन कर्म यात्रा ने उनके चाहने वालों का अभिनव संसार रचा। आत्मीय दुनिया बनाने में उन्होंने भी अपने स्तर पर कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। 1964 में जब वे गुजरात से दिल्ली आए तो डॉ. नगेंद्र का अनन्य सहयोग और मार्गदर्शन पाकर जहां वे अत्यंत अभिभूत हुए, वहीं रामदरश मिश्र के आमगन से दिल्ली की साहित्यिक धड़कन और जीवंत हो उठी। वहां के साहित्य उपवन में भांति-भांति के फूल खिल उठे और रचनाधर्मिता की सुगंध से भारत की राजधानी महमह हो उठी। पहले वे डीएवी स्नातकोत्तर महाविद्यालय से जुड़े फिर 1969 में दिल्ली विश्वविद्यालय में आ गए। दिल्ली से ही उनकी रचनात्मकता का तीसरा चरण शुरू हुआ तथा यहां रह कर उन्होंने प्रभूत साहित्य लिखा। उन दिनों दिल्ली साहित्य का गढ़ था और आज भी है। उनकी सबसे बड़ी खासियत यह रही कि कभी भी उन्होंने खुद को किसी अप्रिय वाद-विवाद का विषय नहीं बनने दिया। प्रसिद्धि और सफलता के लिए उन्होंने कभी भी शॉर्टकट नहीं अपनाया। उन्हें जितने भी पुरस्कार, मान-सम्मान मिले,वे सब उनके संघर्षों, मेधा और प्रतिभा की बदौलत मिले। उन्होंने इस पर एक ग़ज़ल भी लिखी है-

'जहां आप पहुंचे छलांगें लगाकर
वहां मैं भी पहुंचा मगर धीरे धीरे।'

अगर पुरस्कारों की बात करें तो उन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार, भारत भारती पुरस्कार, व्यास सम्मान, शलाका सम्मान, दयावती मोदी साहित्य सम्मान जैसे सभी बड़े पुरस्कार मिले और हिंदी संस्थान सहित तमाम संस्थाओं से वे कई बार पुरस्कृत-सम्मानित भी हुए। हिंदी का प्रतिष्ठित पुरस्कार सरस्वती सम्मान भी उनके नाम रहा। अब उनकी रचनाधर्मिता पर शोध की बात करें तो रामदरश मिश्र अपने दौर के ऐसे रचनाकार हैं, जिन पर कोई ढाई सौ से अधिक शोध कार्य हो चुके हैं। उनके न जाने कितने कितने शिष्य देश-विदेश में फैले हैं और उनका और देश का नाम रौशन कर रहे हैं। रामदरश का जीवन दरअसल एक संदेश है। वे लोगों के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं।

जीवन के रूप में उन्होंने पूरी एक सदी की यात्रा की है। जीवन के हर सुख और दुःख को सहजता से जिया है। उसे अपनी रचना का विषय बनाया है। युवा लेखकों को न केवल प्यार दिया है, वरन् उन्हें मन से असीसा भी है। अपने मित्र लेखकों का जीवन अवसान देखा है। उनका एक गीत तो इसी पर आधारित है-एक-एक जा रहे सभी, मन बड़ा अकेला लगता है।

जीवन के रूप में उन्होंने पूरी एक सदी की यात्रा की है। जीवन के हर सुख और दुःख को सहजता से जिया है। उसे अपनी रचना का विषय बनाया है। युवा लेखकों को न केवल प्यार दिया है, वरन् उन्हें मन से असीसा भी है। अपने मित्र लेखकों का जीवन अवसान देखा है। उनका एक गीत तो इसी पर आधारित है-एक एक जा रहे सभी, मन बड़ा अकेला लगता है।

लेकिन पाठकों, लेखकों और कवियों से निरंतर मिलते आदर को भी वे नजरंदाज नहीं कर पाए। उन्होंने अपने एक आभार गीत में लिखा है कि-आभारी हूं बहुत दोस्तों/मुझे तुम्हारा प्यार मिला। सुख में, दुःख में/हार-जीत में/एक नहीं सौ बार मिला। सावन गरजा/भादों बरसा/घिर-घिर आई अंधियारी/कीचड़-कांदो से लथपथ हो/बोझ हुईं घड़ियां सारी। तुम आए तो/लगा कि कोई कातिक का त्योहार मिला। इतना लम्बा सफर रहा/थे मोड़ भयानक राहों में/ठोकर लगी, लड़खड़ाया/फिर गिरा तुम्हारी बाँहों में/तुम थे तो मेरे पांवों को/छिन-छिनकर आधार मिला।

उनकी रचनाओं में लगता है कि प्रकृति भी पूरा साथ देती है। जब वे लिखते हैं कि-हर पल लगता रहा/कि तुम हो पास कहीं दाएं-बाएं/तुम हो साथ सदा/तो आवारा सुख-दुःख आए-जाए/ मृत्यु-गंध से भरे समय में जीवन का स्वीकार मिला, तो लगता है कि शब्द उनके कितने करीब हैं और वे शब्दों के कितने करीब हैं। चयन का कोई झंझट नहीं, उनके लेखन में सब सरल है। सब सहज है।

दुनिया में संवादहीनता सबको कचोटती है। उन्हें भी कचोटती है। उनका यह गीत इस बात की बानगी प्रकट करता है। पथ सूना है/तुम हो/हम हैं/आओ बात करें। गुमसुम गुमसुम/सा है मन /आंखें खोयी-खोयी/दिशा-दिशा चुप्पियों बीच/लगती सोयी- सोयी/देखो गयी हवाएं थम हैं/ आओ बात करें। वे बचपन से ही बात करने के पक्षधर रहे और आज भी हैं। उनकी कविताएं अपने पाठकों से बोलती-बतियाती ही नहीं, उन्हें बात करने की पहल का न्यौता भी देती हैं।

कहते-सुनते/सुनते-कहते/दिन कट जाएंगे/हंसी-हंसी से/आंसू से आंसू/बंट जाएंगे/साथ सफर की/घड़ियां कम हैं/आओ बात करें। पता नहीं/चलते-चलते कब/कौन बिछड़ जाए/कौन पता कब/किसी अंधी आंधी में पड़ जाए/अभी समय की/आंखें नम हैं/आओ बात करें।

उनकी रचनाएं आम आदमी के सुख-दुःख का प्रतिनिधित्व करती हैं। बिना किसी राग-द्वेष के। बिना किसी भेद-भाव के। उनका मानना है कि नदी का बहना तो तभी सार्थक है जब हर खेत को पानी मिले और हर फसल लहलहाती रहे। इसे लक्ष्य कर उन्होंने जो कविता लिखी है, वह बेहद दिलचस्प है जो जीवन नदी के सतत प्रवाह और उसकी उपादेयता को व्याख्यायित करती है। छोड़ हमें प्यासा का प्यासा नदियां कहां चली जाती हैं।

गौरतलब है कि यह रचना वर्ष 1977 में उस समय लिखी गई थी

लंदन ट्रैफलगर स्क्वायर पर

जब दुष्यंत कुमार भी इससे ही मिलती-जुलती एक गज़ल लिख रहे थे। यहां तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियां, हमें मालूम है पानी कहां ठहरा हुआ होगा। उनके उपन्यासों में गांव-देहात और महानगरों का यथार्थ है तो कामकाजी महिलाओं की त्रासदी भी। काम वाली की दिनचर्या और सुरक्षा विहीन जीवन है तो एक नया इतिहास रचती गांव की स्त्री भी है। पत्रकार के रूप में एक संपादक का जीवन यथार्थ है तो अपनी ही पत्नी और अपने पुत्र के साथ रची गयी कथायात्रा भी है। रामदरश मिश्र ने जैसा जीवन जिया है, उसे उसी सहजता के साथ कागज़ पर उतार दिया है।

उनकी रचनाएं आम आदमी के सुख-दुःख का प्रतिनिधित्व करती हैं। बिना किसी राग-द्वेष के। बिना किसी भेद भाव के। उनका मानना है कि नदी का बहना तो तभी सार्थक है जब हर खेत को पानी मिले और हर फसल लहलहाती रहे। इसे लक्ष्य कर उन्होंने जो कविता लिखी है, वह बेहद दिलचस्प है जो जीवन नदी के सतत प्रवाह और उसकी उपादेयता को व्याख्यायित करती है। छोड़ हमें प्यासा का प्यासा नदियां कहां चली जाती हैं।

उन्होंने जीवन के सौ वर्ष ही पूरे नहीं किए उनकी पुस्तकों ने भी सौ का आंकड़ा पार कर लिया है। छायावाद, प्रयोगवाद और नई कविता के आंदोलन उनकी आंखों के सामने से गुजरे हैं। अकवितावाद के ध्वज की बुलंदियों के अनुभव ने भी उनके साहित्य को प्रभावित किया है। अंशतः ही सही, लेकिन जल में कमल की तरह उन्होंने वीतरागी जीवन ही जिया। वही लिखा जो एक सद्गृहस्थ की मानिंद उन्हें अच्छा लगा। उनकी दृढ़ता का आंकलन करने के लिए, उनकी साफगोई से रूबरू होने के लिए भी जरूरी है कि उनकी यह कविता पढ़ी जाए। सिर्फ एक बार नहीं, कई-कई बार पढ़ी जाए क्योंकि व्यक्ति जैसा सोचता है, वैसा ही बन जाता है।

हमारे हाथ में सोने की नहीं/सरकंडे की कलम है/सरकंडे की कलम/खूबसूरत नहीं, सही लिखती है/वह विरोध के मंच लिखती है/प्रशस्ति-पत्र नहीं लिखती है।

इसमें संदेह नहीं कि रामदरश मिश्र की रचनाएं अपने समय के थपेड़ों को न केवल झेलती हैं, बल्कि उससे सीधे तौर पर टकराती भी हैं। वह गांव के अभावों से उपजती और झिझकती तो है ही, बल्कि उसी के बीच से अपनी विकास संभावनाओं की ज़मीन भी तलाशती है। रास्ता भी बनाती हैं। उनकी रचना 'सहचर है समय' जिस किसी ने भी पढ़ी है, उसकी भावभूमि कुछ ऐसी ही बनती है। उनकी कविता जीवन मार्ग में मिलने वाले दुःख, अपमान, पराजय, और विश्वासघात के घावों की प्रखर अभिव्यक्ति है। रामदरश मिश्र उन विरलतम साहित्यकारों में से एक हैं जो शॉर्टकट के सहारे आगे निकलने में रुचि नहीं रखते। किसी को टंगड़ी मारकर आगे नहीं बढ़ते। बल्कि इस सोच के साथ काम करते हैं कि एक न एक दिन उनका कृतित्व खुद-बखुद उनका सत्कार करा देगा। उनके रचनासंसार में, यहां तक कि उनकी आत्मकथा में भी अपनत्व की सघनता है, राग-द्वेष से परे वे अपने सहयात्रियों की उन्मुक्त भाव से चर्चा करते हैं। उनका रचनात्मक औदात्य बहुत छोटे-छोटे मामूली प्रसंग में समय की कथा सरिता में बहते हुए एक बृहत्तर अर्थ लोक तक ले जाता है। उनके उपन्यास पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ, अपने लोग, दूसरा घर, बिना दरवाजे का मकान, बीच का समय, सूखता हुआ तालाब, आकाश की छत, आदिम राग, रात का सफर, थकी हुई सुबह, बीस बरस, परिवार, बचपन भास्कर का तथा एक बचपन यह भी जैसे उपन्यासों का एक लंबा सिलसिला उन्होंने दशकों तक कायम रखा। काबिले गौर तो यह है कि रामदरश मिश्र के ज्यादातर उपन्यास आंचलिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। उनके उपन्यासों में जीवन का विराट है। अनुभवों का साम्राज्य है और अभिकथन की काबिलियत है जो पाठकों को शुरू से अंत तक अपने से बांधे रखती है। यही रामदरश मिश्र का रचना शिल्प है।

उनका उपन्यास अपने लोग में गोरखपुर की ऐसी कथा है, जो छोटे-छोटे सुख-दुःख और द्वंद्व में उलझे आम आदमी का देवत्व प्रकट करती है। विषम परिस्थितियों में भी मानवता को देखना और दिखा पाना ही रामदरश मिश्र का असल रचना सौंदर्य है। जल टूटता हुआ और अपने लोग उपन्यास को अगर कालजयी कृति और हिंदी जगत की अप्रतिम उपलब्धि कहें तो कदाचित गलत नहीं होगा। दूसरा घर उपन्यास उनके गुजरात प्रवास के अनुभवों पर आधारित है। रामदरश मिश्र के गांव डुमरी में समय-समय पर आया बदलाव भी उनके रचना लोक में शिद्दत के साथ नज़र आता है। ◆

पता : आर.एच.ए.-2, रॉयल ग्रीन सिटी कॉलोनी, लौलाई,
चिनहट, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
मो. : 7459998968

स्त्री संवेदनाओं को मुखरता देते हैं उनके उपन्यास

ज्योति कुमारी

जिसमें तीज-त्यौहार के दिन माँ के दायित्व को उपन्यासकार रेखांकित करते हैं। परिवार के सभी लोग त्यौहार को अपने अनुरूप जीते हैं, किंतु माँ सुबह से शाम तक साफ-सफाई से लेकर चौका-बर्तन करने में लगी होती है। माँ रूप में स्त्री के प्रति यह संवेदन-बिंदु आकस्मिक आकर पाठकों को बांध लेता है।

रामदरश मिश्र लोकजीवी साहित्यकार हैं। उन्होंने साहित्य के उपन्यास विधा में लोक के आधार स्तम्भ स्त्री को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। स्त्री मनोभावों को लेकर वह सजग दिखाई देते हैं। अपने उपन्यासों में स्त्री के प्रति संवेदनात्मक पक्ष को मजबूती से रखा है। स्त्री संवेदना की अच्छी परख उन्हें है यह बात वह खुद न बोलकर अपने स्त्री पात्रों से हामी भरवाते हैं।

"मां किसी प्रबंध में व्यस्त थी, शायद शाम के लिए खाने का प्रबंध करने के सोच-विचार में थी।"

उल्लिखित पंक्ति उपन्यास 'पानी के प्राचीर' से लिया गया है।

जिसमें तीज-त्यौहार के दिन माँ के दायित्व को उपन्यासकार रेखांकित करते हैं। परिवार के सभी लोग त्यौहार को अपने अनुरूप जीते हैं, किंतु माँ सुबह से शाम तक साफ-सफाई से लेकर चौका-बर्तन करने में लगी होती है। माँ रूप में स्त्री के प्रति यह संवेदन-बिंदु आकस्मिक आकर पाठकों को बांध लेता है।

"तेरे पिताजी ऐसे लायक होते तो ये दिन काहे को देखने पड़ते। मैं अगर लड़ झगड़ कर इतना ना करती तो तुझे तो ककहरा भी नहीं आया होता। मां ने बेटे के सामने जौ की तीन चार बासी रोटियां और मटर की दाल रख दी। बेटे ने बड़े गंभीर मन से उसे समेट कर स्कूल की राह ली।"

रामदरश मिश्र के यहाँ कम लिखी-पढ़ी स्त्रियां भी अपने हक के लिये बात मुखरता से रखती है। नीरू की माँ अपने पति के रवैये पर गुस्सा जगज़ाहिर करते हुऐ, बड़े चुटीले अंदाज़ में पति की शिकायत करती हैं। वह कम पढ़-लिखकर भी पढ़ाई के मोल को समझती है। विषम परिवेश और परिस्थितियों में रहकर भी बेटे को अच्छी शिक्षा देना चाहती है। प्रायः ग्रामीण परिवेश में स्त्रियां पति से झगड़ा न कर उलाहना भरे शब्दों से बखियां उधेड़ देती हैं।

"नहीं तो क्या? मुखिया बड़े सरकश हैं, उजाड़ देंगे? तुम्हें डरना हो तो डरो, मैं किसी की दबैल नहीं जो मेरे लड़कों को आंख दिखाये, सब पहले अपने बहेतू और लफंगे लड़कों को सुधारें।"

रामदरश मिश्र द्वारा गढ़ा स्त्री पात्र अबला नहीं है, वह अपने आत्मबल से समय और परिवेश से जूझ जाती है। दब्बू स्वभाव से कोई नाता नहीं है, वह अन्याय के खिलाफ खड़ा होकर बड़े-बड़े शूरमाओं को पल भर में आइना दिखा देती है।

"संध्या ने हाथ झटकारते हुए कहा- 'जाओ, जाओ, उसी रांड उमा का हाथ पकड़ कर मनाओ। मैं तुम्हारी कौन होती हूँ?"

प्रेम में पड़ी स्त्री की संवेदना को रामदरश मिश्र व्यापकता के साथ समझते हैं। फिर उस स्त्री के मनोभावों को कढ़ाई की तरह उपन्यासों में टांकते हैं। अपने प्रेमी से पर स्त्री का

नाम सुनने के उपरांत प्रेयसी के अंदर से झुंझलाहट शब्दों के साथ बाहर निकलती है। उपर्युक्त पंक्ति में संध्या के मुख से वही झुंझलाहट बाहर आई है।

"औरतें हाथ मटका-मटका कर उंगलियों से चमका-चमका कर एक दूसरे की नकल उतार-उतार कर एक दूसरे के खानदानी रहस्य को उधेड़ रही थी।"

गाँव-घर में औरतें कानाफूसी को बड़ा महत्व देती हैं। वह असमय किस बात पर किस से भिड़ जाये, कहना कठिन है। वह एक दूसरे की कमियों की बैठकों में चीर-फाड़ करती रहती है। यह मानो स्त्रियों का सहज मनोभाव है जिसे रामदरश जी ने पकड़ा है।

"मेरे विचार से लड़कियों को पढ़ाना, उन्हें इतनी आज़ादी देना अधर्म है।"

रामदरश मिश्र ने पानी के प्राचीर उपन्यास में मालवीय जी और बीएचयू के प्रसंगवश स्त्री शिक्षा को लेकर गाँव घर में पुरुषों के कथन द्वारा उपेक्षित परिदृश्य को उभारा है।

"मिस सेन ने अपनी उंगलियां छुड़ाकर एक भरपूर तमाचा कुमार के गाल पर दे मारा-तो यह बात है, अपनी हैसियत नहीं देखते!

रामदरश मिश्र अपने उपन्यास 'जल टूटता हुआ' के उपर्युक्त पंक्ति से यह स्पष्ट किया है कि हमें पहले स्त्रियों की भावनाओं को भी सलीके से जान लेना चाहिये। अपनी भावनाओं को उसपर थोप देना अनुचित जान पड़ता है। हँस कर बात करने वाली लड़कियां ज़रूरी नहीं कि वे आपके साथ प्रेम में हों।

"बदमी बोलती गई- मैं क्या जानूँ बेद सास्तर तिवारी, लेकिन यह जरूर जाना है कि कोई भी हमारे भीतर के दरद को नहीं देखता। मेरी माई और बप्पा के बाद तुम पहले आदमी मिले जिसने मेरे दरद को छुआ"

बदमी निम्न जाति की स्त्री है, उसके जीवन मे कई पुरुष आये और किसी ने उसकी संवेदना और पीड़ा को तनिक न समझा। वह कहती है मरद जात को पता ही नहीं कि मन भी कोई चीज़ होती है। वह तन को भोगकर लात मार देता है। किंतु वह कुंजू को अत्यधिक महत्व देती है क्योंकि उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके माई-बाप के बाद उसका दरद समझने वाला एकमात्र कुंजू ही है। बार-बार वे विजातीय प्रेम को स्थापित कर समता की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं।

"एक किस्मत यह है कि बेची हुई बेटी इतने मौज में है, एक उसकी किस्मत है कि करज-पताई लेकर पढ़े-लिखे लड़के से गितवा की शादी की और वह दुरदसा भोगते भोगते मर गई। हाय रे मेरी बछिया....।"

एक समय में बेटी को बेचने की कुप्रथा परवान पर थी। रामदरश मिश्र ने उसे रेखांकित करते हुऐ निम्न व मध्यवर्गीय स्त्री की संवेदना को समेटा है, जो कर्ज़ लेकर किसी तरह बेटी की ब्याह पढ़े-लिखे से कर पाई। किन्तु दूसरी तरफ जो बेटी बेची गई थी, ससुराल से आने के बाद उसका ही डील डौल ज्यादा है। उसे खरीदने वाला कहीं न कहीं ज़मींदार घराना ही रहा होगा।

"वह तो मैं देख रहा हूं रीता, लेकिन फिर भी लड़की की एक सीमा होती है। आख़िर इतनी रात गए अकेली लड़की घर न लौटे तो मां-बाप को चिंता होती ही है।"

उपर्युक्त पंक्ति रामदरश मिश्र के उपन्यास 'आदिम राग' से ली गई है। जहाँ लड़कियों को लेकर परिवेश के अनुसार मायने और अर्थ बदल जाते हैं। जब मिस्टर शील लड़कियों की सीमा निर्धारण करते हैं तब रीता बीच में टोककर यह एहसास दिलाती है कि यह आपका यू.पी./बिहार नहीं है बल्कि गुजरात है। यहाँ लड़कियां आधी रात को भी स्वतंत्र और निर्भीक घूमती हैं।

"देहात में अपनी बीवी को छोड़कर वह कितने सालों से अकेला जी रहा है।"

रामदरश मिश्र स्त्री संवेदन के अंतिम धरातल पर पहुँचकर स्त्री जीवन से जुड़े रहस्य को निचोड़ सहजता के साथ प्रकट कर देते हैं। हम देखते हैं कि शादी कर के स्त्री को पुरुष अपने घर के आंगन में सामाजिक-परिवारिक खूंटे से बांध देते हैं। वह इस बंधन को बराबर मर्यादा के नाम पर ढोती है। रीता शील के प्रति आकर्षित है तो उसे शील से सहानुभूति है, वह बीवी को छोड़कर कितने सालों से अकेला जी रहा है। किंतु मिश्र जी को कहीं न कहीं गौण दिख रहे शील की बीवी से विशेष सहानुभूति है जो पति के बिना गांव में जीवन के विषम परिस्थितियों को झेल रही होगी।

'आदिम राग' उपन्यास में स्त्री-पुरुष के बीच की भवनाओं का विश्लेषण एवं परीक्षण है। जहाँ गांव से जाकर बसा शील रीता के प्रेम में रमता दिखाई देता है। उस प्रेम की ललक झूठ बोलने पर मजबूर करता है और वह रीता के समक्ष खुद को अकेला कहता है। गांव में रह रही पत्नी को नज़रअंदाज़ करता है। क्योंकि वह अनपढ़ है और बचपन में परम्पराओं द्वारा थोपी हुई।

"उसने देखा- थोड़ी-सी आड़ में घर के लोग लड़की को पीट रहे थे। उसे पीटने वालों में उसके पिता भी थे, भाई भी थे, बहन भी थी। सभी गाली दे रहे थे-हरामज़ादी रात को ही सारा ब्रेड खा गई।"

उल्लिखित पंक्ति रामदरश मिश्र के उपन्यास 'आकाश की छत' से ली गई है। बाढ़ जैसी भयावह विभीषका के अंशों को इसमें रखा गया है। लंबे समय से अब तक लड़कियां उपेक्षित रही हैं।

यह कहना अनुचित नहीं होगा कि घर में बेटों के अनुरूप उनसे व्यवहार नहीं किया जाता है। ब्रेड खा लेने पर लडकी को पूरे परिवार द्वारा पीटना एकदम से अनुचित है। लड़कियां सक्षम हैं जो हर क्षेत्र में अपना लोहा मनवा रही है।

"थकी हुई सुबह" में समाज के कुरूप ढाँचे में छटपटाती लक्ष्मी के मनोभावों को मिश्र जी ने व्यापकता के साथ अभिव्यक्त किया है। जब नारी अपने जीवन में किसी नये रास्ते पर चलने के लिए निकलती है तो हर कदम पर उसे अवरोध झेलना पड़ता है। उसकी सकारात्मक इच्छाओं को भी दबा दिया जाता है।

"लड़की हो, यह तुम्हारें लिए नहीं है।"

उक्त कथन से समाज का दोमुंहा चरित्र उभरकर सामने आता है। उस पर रात-दिन फब्तियां कसी जाती हैं जैसे उसने कोई पाप किया है। खेलना चाहा तो उसपर भी मज़ाक, मानो मज़ाक की आड़ में अपमान ही है।

"लड़की है तू क्या खेलेगी?"

स्कूल की प्रतियोगिता में अव्वल आती रही किन्तु उसे स्कूल से बाहर कभी भेजा नहीं गया। उसे जानबूझकर लड़की होने का एहसास कराया गया। अंततः उसे लगने लगा कि वह सचमुच में लड़की है - "लड़कों से अलग।"

इस पुरुष प्रधान समाज में नारी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसे कमज़ोर बनाने की चेष्टा की गई है। वह सामाजिक रूढ़ियों से आज भी जकड़ी हुई है, रूढ़िगत जकड़न से निकलने के लिये उसे लम्बा संघर्ष करना होगा।

"धिक्कार है मुझे जो अपने को इतना लाचार समझ रही हूँ मैं अगर पिता की इच्छा के विरुद्ध विद्रोह कर सकती थी तो क्या पति की अमानवीय हरकतों के खिलाफ नहीं कर सकती? मैं पढ़ी-लिखी हूँ, बी.ए. पास हूँ क्या यह शिक्षा मेरे लिए कोई ताकत नहीं? क्या शिक्षा ने मुझे कुछ भी आत्मबल नहीं दिया है? क्या मैं भी उन औरतों में से हूँ जो सारी यातना सहकर भी पति को परमेश्वर मानती हैं?"

रामदरश मिश्र स्त्री की मानसिक हलचलों को बारीकी से समझ उसकी संवेदना को धरातल पर उतारते हैं। उपर्युक्त पंक्ति उनके द्वारा लिखे गये उपन्यास 'दूसरा घर' से है। जहाँ रमा जैसी स्त्री पात्र घरवालों का विरोध कर शादी के बंधन में बंधती है। किंतु शादी के उपरांत पति के व्यवहार से वह असंतुष्ट नजर आती है। वह खुद को धिक्कारते हुये कहती है- आख़िरकार उसकी शिक्षा का कोई मतलब ही नहीं रहा। जो शिक्षा आत्मबल प्रदान करने के लिये थी, वह आज किसी काम की नहीं रही। वह अर्न्तद्वन्द्व में पड़ कहती है- सारी यातनाएं सहकर पति को कबतक परमेश्वर मानती रहे!!

"लेकिन डॉक्टर, औरों की मुखरता की अपेक्षा तुम्हारी उदासीनता मुझे अधिक कष्टकर लगी। वह मेरे भीतर जहर की तरह भीगती रही। इच्छा हुई तुम्हारें सामने तन कर खड़ी हो जाऊँ, तुम्हारा कॉलर पकड़कर तुमसे पुछूँ-इसीलिए मुझे ब्याह कर लाये थे? क्या मेरी कोई सत्ता ही नहीं है? क्या मैं तुच्छ कीड़ा-मकौड़ा हूँ? इतना ज़हर, इतनी घृणा तुम्हारें मन में मेरे लिए क्यों है? मैंने कौन सा अपराध किया है? लेकिन मैं कुछ नहीं कर सकी मेरे संस्कारों ने मेरा रास्ता रोक लिया। पति से अभी तक तो पहली मुलाकात भी नहीं हुई, उससे यह संवाद कैसे कर सकती थी? मैंने चुपचाप झाड़ू उठायी, घर बुहारने लगी। रो भी नहीं सकी। अथाह वेदना भीतर ही भीतर पी गई। मुझे लगा कि उसी मुद्रा में मैं इस घर से जुड़ गई हूँ।"

'रात का सफर' उपन्यास में ऋतु जज की बेटी होकर भी ससुराल के पारिवारिक कुचक्र में फँसी है। उसे उपेक्षित नज़रों से देखा जाता है। कई बार क्रोध तो विकराल रूप लिये उत्पन्न होती है परंतु पी जाती है। विरोध करने की ठानकर संस्कार का हवाला देकर अपने मन की टीस के साथ कहीं खो जाती है।

'रात का सफ़र' उपन्यास में ऋतु जज की बेटी होकर भी ससुराल के पारिवारिक कुचक्र में फँसी है। उसे उपेक्षित नज़रों से देखा जाता है। कई बार क्रोध तो विकराल रूप लिये उत्पन्न होती है परंतु पी जाती है। विरोध करने की ठानकर संस्कार का हवाला देकर अपने मन की टीस के साथ कहीं खो जाती है।

यह परिदृश्य मात्र काल्पनिकता से ही बुना नहीं गया है बल्कि हमारे सामाजिक परिवेश में आमतौर पर देखने को मिल जाता है।

"अरे बहू क्या करती है? भगवान ने यह कहर ढाया है तो सब कुछ सहना ही पड़ेगा जब तुम्हारा सुहाग ही छिन गया तो इन बालों से क्या मोह?"

'बीस बरस' उपन्यास में उल्लिखित कथन सामाजिक रुढ़िगत परम्परा से अवगत कराता है, जो आम स्त्रियों को कुरूपता एवं घृणा की ओर ढकेलती है।

"हमारी जाति की औरतें अगर बिकेंगी तो गरीबी की मार से बिकेंगी और आपके यहाँ की औरतें बिकती हैं खाली शौक पूरा करने के लिए। ग़रीबी से बिकना बेभिचार नहीं है बीबी जी, शौकिया मरद की गोद बदलते रहना बेभिचार है।"

ग़रीब तबके की स्त्रियों के माध्यम से रामदरश मिश्र जी ने व्यभिचार की पोल को बारीकी से खोला है।

रामदरश मिश्र के उपन्यासों में उपस्थित स्त्री पात्रों एवं प्रेमचंद के स्त्री पात्रों में मुझे समानता दिखाई देती है। स्त्री पात्र मुखरता एवं निर्भीकता के साथ अपने हक के लिये समय एवं परिवेश से लड़ते रहते हैं। मिश्र जी ने स्त्री मनोभावों के इर्द-गिर्द घूमती संवेदना को सलीके के साथ स्पर्श किया है। स्त्री समाज उनका सदैव ऋणी रहेगा। उन्हें विनम्र श्रृद्धांजलि। ◆

संदर्भ- ग्रंथ :-

1- 'जल टूटता हुआ', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2005

2- 'आदिम राग', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2008

3- 'आकाश की छत', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2001

4- 'थकी हुई सुबह', इंद्रप्रस्थ इंटरनेशनल प्रकाशक, नई दिल्ली : 2006

5- 'दूसरा घर', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2007

6- 'रात का सफर', पूनम पुस्तक भवन, नई दिल्ली, संकरण : 2012

7- 'बीस बरस', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 1996

पता : शोधार्थी, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना,

ग्राम-रैली, पो.-बेलागंज, जिला-गया, बिहार-804403

मो. : 9931742842

डॉ. रामदरश मिश्र : एक प्रेरक शताब्दी महापुरूष

विनय श्रीवास्तव

डॉ. राम दरश मिश्र ने साहित्य की सभी विधाओं को अपनी उर्वरा लेखनी से समृद्ध किया है। उनका अध्ययन-अनुशीलन सुविस्तृत, विशद है। समय-समय पर डॉ. मिश्र अपनी साहित्यिक छवि से मानवता की अवधारणाओं को रूपायित करते आ रहे हैं।

हिन्दी साहित्य के शलाका पुरुष डॉ. रामदरश मिश्र का जन्म 15 अगस्त, सन् 1924 हिन्दी तिथि अनुसार श्रावण पूर्णिमा गुरुवार को जनपद गोरखपुर के रापती और गौरी नदियों के कछार अंचल में बसे गाँव डुमरी में पिता रामचन्द्र मिश्र और माता कमलापति मिश्र के घर में हुआ। इनके अग्रज भ्राता स्व. रामअवध मिश्र एवं स्व. रामनवल मिश्र (साहित्यकार) थे व अनुजा कमला मिश्र जी हैं। आज साहित्य का यह महानायक नवगीतों का अनुगायक, कालजयी उपन्यासों का चितेरा, साहित्य की बहुमुखी प्रतिभा अनमोल धरोहर जीवन वय की शतकीय पारी खेलकर उसमें दो साल और जोड़ चुके हैं। हिन्दी साहित्य ही नहीं वरन् साहित्यकारों व भारत राष्ट्र के लिए गौरव-आशीष है। जो एक प्रकार से इस महान व्यक्तित्व के स्वामी के सुकर्मों और सुव्रतों का फलीभूत होना है।

डॉ. रामदरश मिश्र जी की प्रारम्भिक व मिडिल शिक्षा गाँव के निकटस्थ स्कूल में हुई। फिर ढरसी गाँव स्थित 'राष्ट्रभाषा विद्यालय' से विशेष योग्यता बरहज से 'विशारद' और साहित्यरत्न की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। सन् 1945 ई. में वाराणसी से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त कर पीएच-डी. की उपाधि से अलंकृत हुए। सन् 1956 ई. में 'सयाजीराव गायकवाड़ विश्वविद्यालय', बड़ौदा में प्राध्यापक नियुक्त हुए। तदोपरांत सन् 1958 ई. में गुजरात विश्वविद्यालय से आठ वर्ष तक सम्बद्ध रहने के बाद सन् 1964 ई. में दिल्ली विश्वविद्यालय आकर वहाँ से सन् 1990 ई. में प्रोफेसर (विभागाध्यक्ष, हिन्दी) पद से सेवा निवृत्त हुए।

वर्तमान में वाणी विहार, उत्तम नगर, नयी दिल्ली निवासी महामनीषी विद्वान, ऋषि तुल्य साहित्यकार-विचारक, साहित्यिक-सामाजिक चिंतक और चिंतन और भोगे हुए जीवन पलों को अपनी लेखनी की मसि से लिपिबद्ध करते साहित्य सर्जना से समाज और साहित्य के तपी का जीवन जी रहे थे। साथ ही साहित्येतर विषयों में अपनी मौलिक चिंतन धाराओं और अवधारणाओं एवं निष्कर्षों के प्रस्थापक डॉ. राम दरश मिश्र ने साहित्य की सभी विधाओं को अपनी उर्वरा लेखनी से समृद्ध किया है। उनका अध्ययन-अनुशीलन सुविस्तृत, विशद है। समय-समय पर डॉ. मिश्र अपनी साहित्यिक छवि से मानवता की अवधारणाओं को रूपायित करते आ रहे हैं। परन्तु मार्क्सवादी आलोचक के रूप में उनकी सुप्रसिद्धि की सुरभि से हिन्दी साहित्य संसार का कण्ठ रचा-बसा रहकर सतत् सुवासित है। परतंत्र भारत को स्वतंत्र भारत बनाने में बामपंथ और उसके विचारकों व कार्यकर्ताओं के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता ब्रितानिया सरकार को हिंसक वारदातों से कंपा देने वाले और अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाले क्रांतिकारी बामपंथी ही थे। वहीं स्वातन्त्रय चेतना जागृत करने वाले बहुतेरे कवि भी बामपंथी विचारों के संवाहक और कार्य योजनाओं में परिवर्तित करने वाले थे जैसे पं. जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी', माखन लाल चतुर्वेदी आदि जो कई बार सक्रिय क्रांतिकारी गतिविधियों को मूर्तरूप देने में ब्रितानी हुकूमत के दंश-भाजन भी हुए।

आपकी बामपंथी छवि को लेकर 'शब्दिता' (डॉ. रामकठिन सिंह जी के सम्पादन में

लखनऊ से प्रकाशित) साहित्यिक त्रैमासिक में प्रकाशित आपके एक साक्षात्कार में उल्लिखित एक प्रश्न विशेष 'क्या आप मार्क्सवादी हैं ?' के उत्तर में कहा- 'मैं अपने में बहुत प्रगतिशील हूँ। अपने व्यवहार और साहित्य दोनों में धार्मिक, सामाजिक रूढ़ियों और विकृतियों का विरोध करता हूँ। एक दल बनाकर मार्क्सवादी होना एक बात है, और जहाँ कुछ अच्छा दिखाई पड़े, मुक्त मन से स्वीकार करना दूसरी बात है। यह दूसरी बात ही मुझे स्वीकार्य है। ख़ास चीज़ मनुष्यता है।' अतः डॉ. मिश्र जी के विचारों की स्पष्टता के साथ ही मनुष्यता के प्रति उनकी स्तुत्य भावनाओं को प्रकाशित है।

उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि रचनाकार को समझने के लिए समीक्षक की साधना से भी सुपरिचित होना अभीष्ट हुआ करता है। इस संदर्भ में उनकी समीक्षात्मक विवेचनात्मक कृतियाँ 'हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा', हिन्दी कहानी : अंतरंग पहचान, 'छायावाद का रचना लोक' विचारणीय हैं। डॉ. राम दरश मिश्र की विद्वता, मनीषी, सृजनधर्मिता पर विचार करने की दृष्टि से उनके जन्म के क्षेत्र की राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक प्रवृत्तियों पर भी ध्यान केन्द्रित करना होगा।

व्यक्तित्व, कृतित्व एवं मनोरचना पर परतंत्र भारत के इतिहास, संस्कृति, साहित्येतिहास का गहरा प्रभाव पड़ा था। ऐसी सामाजिक व्यवस्था में सामन्ती मनोवृत्ति का बोलबाला हुआ करता है। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप आम आदमी पारस्परिक सद्भाव एवं संवेदना से युक्त जीवन जीने लगता है। ऐसी थी सामाजिक परिस्थितियां जिन्होंने डॉ. राम दरश मिश्र मनोभूमि में संस्कारों का बीजारोपण किया था। वस्तुतः मार्क्सवाद की ओर उनका झुकाव इन्हीं गृहीत संस्कारों से प्रेरित हुआ था। दीनों, दलितों और असहायों के प्रति सहानुभूति एवं संवेदना के वशीभूत होकर उसका साहित्य में चित्रण से मार्क्सवाद से जुड़े प्रतीत होते रहे हैं।

ग्रन्थों का प्रणयन किया तो उसमें उनकी मनोरचना की यही भावभूमि चरितार्थ हुई।

डॉ. राम दरश मिश्र ने ग्रन्थों के माध्यम से उन लोगों की भी ख़बर ली है, जो अंग्रेज़ी शासन के आराधक पक्षधर थे। किसी भी विचारधारा को जब जनकल्याण के रूप में व्यवस्था से संयुक्त किया जाता है, तो व्यवस्था के विघटन के बाद भी विचारधारा से असम्पृक्त नहीं हुआ जा सकता। वैचारिकता तथा रूस के विघटन के बाद भी डॉ. राम दरश मिश्र की आस्था मार्क्सवाद के संदर्भ में अप्रभावित रही। सच ही है, व्यवस्था की भ्रष्टता और उस पर तानाशाही के आरोपण से यदि रूस का विघटन हुआ, तो इस कारण विचारधारा त्याज्य नहीं हुई। आज भी अनेक देश इसे अपनाए हुए हैं।

पत्नी सरस्वती और पुत्री प्रो. स्मिता मिश्र के साथ

डॉ. राम दरश मिश्र ने साहित्य ही नहीं, समीक्षा ही नहीं, इतिहास का भी गहराई से अध्ययन किया था। आपने अपने इस अध्ययन से प्रसूत निष्कर्षों अवधारणाओं और चिन्तन धाराओं को भी लिपिबद्ध कर हिन्दी के वांग्मय में असाधारण अभिवृद्धि की है। उनके भीतर जो सूर्य है, जो ऊष्मा है, उससे हिन्दी संसार प्रकाशित है और सदा-सर्वदा प्रकाशित रहेगा।

डॉ. राम दरश मिश्र की रचनात्मक कालावधि में ऐसे भी लोग सृजनरत हैं, जो उनको देखना नहीं चाहते थे। यह तो होता ही रहता है। विचारों का टकराव होता है। विचार व्यक्ति के संस्कारों से जन्मते हैं। सबके संस्कार अलग-अलग होते हैं क्योंकि सभी लोग एक जैसी परिस्थितियों एवं परिवेशों में न जन्म लेते हैं, न पालित-पोषित होते हैं। परन्तु यदि कोई पूर्वाग्रह से ग्रस्त हो जाये और त्रुटियों या कमियों की खोज में लगकर किसी की महत्ता को घटाने में लग जाये, तो यह पूर्वाग्रह ग्रस्तता ही मानी जायेगी।

संभवतः इस आक्षेप की पृष्ठभूमि में डॉ. राम दरश मिश्र का सतत लेखन प्रगतिशील साहित्य के रूप में सामने आया। डॉ. राम दरश मिश्र ने साहित्य ही नहीं, समीक्षा ही नहीं, इतिहास का भी गहराई से अध्ययन किया था। आपने अपने इस अध्ययन से प्रसूत निष्कर्षों अवधारणाओं और चिन्तन धाराओं को भी लिपिबद्ध कर हिन्दी के वाङ्गमय में असाधारण अभिवृद्धि की है। उनके भीतर जो सूर्य है, जो ऊष्मा है, उससे हिन्दी संसार प्रकाशित है और सदा-सर्वदा प्रकाशित रहेगा।

डॉ. रामदरश मिश्र जी को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने वर्ष 2005 में

धर्मपत्नी के साथ

वाणी विहार, उत्तम नगर, नयी दिल्ली निवासी महामनीषी विद्वान, ऋषि तुल्य साहित्यकार-विचारक, साहित्यिक-सामाजिक चिंतक और चिंतन और भोगे हुए जीवन पलों को अपनी लेखनी की मसि से लिपिबद्ध करते साहित्य सर्जना से समाज और साहित्य के तपी का जीवन साथ ही साहित्येतर विषयों में अपनी मौलिक चिंतन धाराओं और अवधारणाओं एवं निष्कर्षों के प्रस्थापक डॉ. राम दरश मिश्र ने साहित्य की सभी विधाओं को अपनी उर्वरा लेखनी से समृद्ध किया है।

'भारत भारती' सम्मान और पुरस्कार राशि 2,51,000/- से समादृत कर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया।

सन् 1951 में आपका प्रथम काव्य-संग्रह 'पथ के गीत' प्रकाशित हुआ कुल 18 काव्य संग्रह हैं आपका काव्य संग्रह 'आग की हँसी' को साहित्य अकादमी पुरस्कार, 'मैं यहाँ हूँ' को सरस्वती सम्मान मिला है। इसके अतिरिक्त 'बेरंग-बनाम चिट्ठियाँ', 'पक गयी है धूप', 'कंधे पर सूरज' आदि चर्चित हैं।

आपके दो नवगीत दृष्टव्य हैं जो नवगीत कार और समीक्षक राधे 'याम बन्धु की पुस्तक', 'नवगीत के नये प्रतिमान' में भी संग्रहीत हैं, से साभार दृष्टव्य प्रस्तुत हैं:-

एक सबेरा साथ रहा
कितनी रातों से
गुज़रा पर एक सबेरा साथ रहा
चलना तो था, किन्तु पहुंचना कहां न इसकी रही ख़बर
राह-राह में गये संगाती यों ही चलता रहा सफर
बनजारे सा भटका
तो, पर एक बसेरा साथ रहा
डंसते रहे राह में जाने कितने नाग अभावों के टकराते ही रहे
निरंतर स्वर अनजान हवाओं के
किन्तु न मैं टूटा,
बिखरा, सपनों का घेरा साथ रहा
चलता रहा भीड़ में लेकिन लगा कि मैं हूं एकाकी
साथ न उनके हो पाया, जो करते रहे जोड़ बाकी
पर ओ पगले
गांव, निरंतर मेरा-तेरा साथ रहा।
कोई नहीं, कोई नहीं
आहट हुई देखो जरा कोई नहीं, कोई नहीं।
आना जिन्हें था, आ चुके
गठरी सुखों की लादकर
कुछ द्वार से आए
कई दीवार ऊंची फांदकर
किन्तु है कोई और ही जिसकी प्रतीक्षा है
मुझे यों ही गई रातें कई मैं नींद भर सोई नहीं।
मेले यहां सजते रहे
हंसती रहीं रंगीनियां
सादी हंसी को गेह की
हंसती रहीं रंगीनियां
बनते गए सब अजनबी पागल हवस की होड़ में
इक दर्द मेरे साथ था मैं भीड़ में खोई नहीं।
मेरे चमन की बास
उसके घर गई, अच्छा लगा
उसके नयन के अश्रु से
मैं भर गई, अच्छा लगा
लेकिन चुभे जब खार अपने ही दु:खों की देह में
आंसू उमड़ भीतर उठे पर चुप रही, रोई नहीं!

आपके ग़ज़ल संग्रह 'हँसी होंठ पर', 'आँखें नम हैं', हवाएँ साथ हैं, ऐसे में जब कभी, धूप के टुकड़े आदि हैं। सर्पदंश, वसंत का एक दिन, अकेला मकान प्रमुख कहानी संग्रह आदि कुल 18 हैं।

15 हिन्दी साहित्य समीक्षा-संग्रह, निबन्ध-संग्रह 4 इसके अतिरिक्त कई यात्रा संस्मरण जैसे 'स्मृतियों के छंद' तथा अन्य स्मरणीय ग्रन्थों की रचना की है और अभी आपकी साहित्यिक जीवन यात्रा सतत रूप से जारी है। हिन्दी साहित्याकाश और संसार आपके अवदान से सुसज्जित है। अभी और होगा। हमें आप जैसे साहित्य साधक पर गर्व है ईश्वर आपको निरोगी रखे और हम सब आपका आशीर्वाद प्राप्त करते रहें। ◆

पता : 'काव्याश्रम'
जल-6/96, सेक्टर 'एल', अलीगंज
लखनऊ-226024
मो. : 9839911815

तू दीपक मैं बाती

रेनू सैनी

रामदरश मिश्र जी की धर्मपत्नी का नाम सरस्वती होना भी शायद प्रकृति का एक अदभुत संयोग है। सरस्वती अर्थात विद्या की देवी। जिस व्यक्ति के आंगन में सरस्वती का प्रवेश हो जाए तो फिर उस आंगन से निकलकर कोने-कोने में विद्या की शाखाएं अपनी जड़ जमाएँगी ही।

भारत में विवाह अत्यंत पवित्र बंधन है। यहां पर आज भी इसे केवल एक जन्म का नहीं बल्कि कम से कम सात जन्मों का रिश्ता माना जाता है। लेकिन यह भी सच है कि आज वैवाहिक संबंधों में दरार आते देर नहीं लगती। ऐसे में युवा वर्ग के समक्ष ऐसे कौन से वैवाहिक जोड़े हैं जिनसे प्रेरणा लेकर वे अपने सुखी दांपत्य की नींव रखें और एक मिसाल कायम करें। निस्संदेह इस प्रश्न पर होंठों पर जो नाम सबसे पहले आएगा वह डॉ. रामदरश मिश्र जी का होगा। डॉ. रामदरश मिश्र जी स्वयं आयु का शतक पार कर चुके हैं। उनका और उनकी पत्नी का साथ 75 वर्षों का रहा। 75 वर्ष तक की आयु भी कई लोगों को बमुश्किल नसीब होती है। ऐसे में 75 वर्षों का दांपत्य जीवन जीना किसी भी जोड़े के लिए खुशी का प्रतीक है। हालांकि 03 दिसम्बर, 2023 को सरस्वती मिश्र इस लोक को छोड़कर परलोक में चली गईं। रामदरश मिश्र जी ने अपने समक्ष अनेक पीढ़ियां देखीं। इस आयु में उनके अनेक साथियों का बिछोह हो गया। मित्रों एवं साथियों का मृत्यु को प्राप्त हो जाना बड़ा कष्टकारक होता है। ऐसे में प्राण प्रिय पत्नी के बिछोह को रामदरश मिश्र जी ने कैसे सहा होगा? वह बहुत पहले लिख भी चुके हैं कि, "एक-एक जा रहे सभी मन बड़ा अकेला लगता है।" लेकिन मृत्यु जीवन का एक ऐसा शाश्वत सच है जिसे सबको स्वीकार करना ही होता है।

रामदरश मिश्र जी की धर्मपत्नी का नाम सरस्वती होना भी शायद प्रकृति का एक अदभुत संजोग है। सरस्वती अर्थात विद्या की देवी। जिस व्यक्ति के आंगन में सरस्वती का प्रवेश हो जाए तो फिर उस आंगन से निकलकर कोने-कोने में विद्या की शाखाएं अपनी जड़ जमाएगी हीं। ऐसा ही किया रामदरश मिश्र जी ने। सरस्वती के साथ गठबंधन होने के बाद वे विद्या की नाव में बैठकर अनेक शिष्यों को तैरना सिखाते गए।

आज उनके अनेक शिष्य साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में अपना परचम फैला रहे हैं। इनमें श्री रघुवीर चौधरी, भोलाभाई पटेल व महावीर सिंह चौहान प्रमुख हैं। श्री रघुवीर चौधरी को तो भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार भी मिल चुका है। स्वयं डॉ. रामदरश मिश्र जी पंडित हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी के शिष्य रहे। आख़िर डॉ. रामदरश मिश्र जी किस प्रकार से पंडित हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी के प्रिय शिष्य बनें। इस संदर्भ में भी एक रोचक वाक्या है। हुआ यों कि एक बार काशी विद्यापीठ में एक कवि गोष्ठी का आयोजन किया गया। उस काव्य गोष्ठी में युवा रामदरश मिश्र ने भी अपनी कविता पढ़ी। उनकी कविता के बोल कुछ इस प्रकार थेः-

"उमड़ रही पुरवइया
दहक रहे अंबर में कारे-कारे बादरा।"

इस कविता पर हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी झूम-झूम कर वाह-वाह कह उठे। उन्होंने रामदरश मिश्र जी से पूछा क्या करते हो? इस पर रामदरश मिश्र जी पुलकित होकर बोले, "सर आपका ही शिष्य हूं।" बस उसी दिन से द्विवेदी जी और मिश्र जी का गुरु-शिष्य का साथ सदा के लिए अमर हो गया। मिश्र जी ने द्विवेदी जी से बहुत कुछ सीखा। सीख एक ऐसी सीढ़ी है जो सीखने वाले को शिखर पर पहुंचा देती है।

रामरदरश मिश्र जी ने सदैव अपनी पत्नी का सम्मान किया। उन्होंने अपनी अनेक रचनाओं में स्वयं को, बच्चों को और पत्नी को उकेरने का भी सार्थक प्रयास किया। उनकी पत्नी ने सदैव उनकी साहित्य साधना को सीढ़ी दर सीढ़ी विकास की ओर प्रेरित ही किया। मिश्र जी के आदर्श दांपत्य जीवन को देखकर स्वतः ही तमिल कवि तिरुवल्लुवर का प्रसंग याद आ जाता है।

तमिल कवि तिरुवल्लुवर और पत्नी वासुकि में अत्यंत प्रेम था। दोनों बिना प्रश्न किए सदैव एक-दूसरे की बात मानते थे। विवाह के बाद एक दिन तिरुवल्लुवर ने वासुकि से कहा, ''जब तुम मुझे खाना परोसती हो तो साथ में एक कटोरे में पानी और सुई भी रख दिया करो!'' वासुकि ने कवि तिरुवल्लुवर की बात सुनी और अगले ही दिन से बिना प्रश्न किए एक कटोरे में पानी और सुई रखना आरंभ कर दिया। ऐसा उन्होंने अपने जीवन के अंतिम दिन तक किया। जब संत तिरुवल्लुवर से खाने के साथ एक कटोरे में पानी और सुई रखने का अर्थ पूछा गया तो वे बोले, ''मैंने एक कटोरे में पानी और सुई इसलिए रखने को कहा था ताकि यदि कभी मेरी पत्नी के हाथ से खाना परोसते समय अन्न का एक दाना भी गिर जाए तो उसे मैं सुई से उठाकर पानी से धोकर खा सकूं। लेकिन वह सदैव इतनी कुशल रही कि मुझे उस पानी के कटोरे और सुई की आवश्यकता कभी पड़ी ही नहीं।'' दांपत्य जीवन ऐसा ही होना चाहिए जिसमें पति और पत्नी एक दूसरे के प्रति पूरी तरह समर्पित हों। संत तिरुवल्लुवर की तरह ही रामदरश मिश्र ने भी सदैव अपनी पत्नी का सम्मान किया, उन्हें हमेशा मान दिया। आजकल के युवकों को रामदरश मिश्र के दांपत्य जीवन से बहुत कुछ सीखना चाहिए। सरस्वती मिश्र ने जब इस बात को समझ लिया कि रामदरश मिश्र को पुस्तकों से अत्यंत प्रेम है और लेखन उनका कर्म तो उन्होंने स्वयं ही उन्हें अनेक ज़िम्मेदारियों से मुक्त कर दिया। उन्होंने गृहस्थ जीवन के महत्वपूर्ण कार्यों को अपने हाथों में ले लिया और पंडित जी को पूरी तरह से लेखन के लिए समर्पित कर दिया। वे उन्हें पंडित जी कहकर ही पुकारा करती थीं। उनके घर पर अक्सर साहित्यकारों और मित्रों का जमघट लगा रहता था। सरस्वती जी सदैव आवभगत करने में अग्रणी रहती थीं। कुछ समय बाद तो ऐसा हो जाता था कि रामदरश मिश्र जी की मित्र मंडली सरस्वती जी की उपस्थिति के बिना अधूरी हो जाती थी। सरस्वती जी बड़े मनोयोग से पंडित जी की रचनाएं पढ़ती थीं। उन्हें सराहती थीं और जहां पर सुधार की गुंजाइश नज़र आती थी, वहां उन्हें टोकती भी थीं।

रामदरश मिश्र और सरस्वती जी एक-दूसरे की परछाई थे। लंबे साथ में वे संकेतों से एक दूसरे के मनोभावों को समझ लेते थे। दूर से ही एक दूसरे की पीड़ा, दुःख-सुख को आंखों में पढ़ लेने की कला दोनों के अंदर बहुत पहले से ही जन्म ले चुकी थी। 99 वर्ष की आयु में फ्रैक्चर होने पर मिश्र जी बेहद परेशान हो गए थे। लेकिन आकाश अस्पताल के सर्जन ने उनका सफल ऑपरेशन किया। बिस्तर पर आराम करते हुए ही सहसा वे अपनी पत्नी की ओर देखकर मन ही मन गुनगुनाते।

रामदरश मिश्र और सरस्वती जी एक-दूसरे की परछाई थे। लंबे साथ में वे संकेतों से एक दूसरे के मनोभावों को समझ लेते थे। दूर से ही एक दूसरे की पीड़ा, दुःख-सुख को आंखों में पढ़ लेने की कला दोनों के अंदर बहुत पहले से ही जन्म ले चुकी थी। 99 वर्ष की आयु में फ्रैक्चर होने पर मिश्र जी बेहद परेशान हो गए थे।

''कुछ फूल और कांटे हमने आपस में बांटे
यात्रा के हर मोड़ पर हमने एक दूसरे का इंतजार किया है
हां हमने प्यार किया है।''

जब रामदरश मिश्र जी को साहित्य के क्षेत्र में सफलता मिलती गई तो सरस्वती जी उनकी साधना और लेखनी को पैना करने में निरंतर सहयोग करती रहीं। जब भी कोई रामदरश जी से मिलने आता तो सरस्वती जी आगे बढ़कर उसका स्वागत सत्कार करतीं। प्रत्येक व्यक्ति सरस्वती जी के द्वारा आतिथ्य पाकर गद्गद् हो उठता। रामदरश मिश्र जी इस सदी के एक ऐसे साहित्यकार हैं जो केवल कविता में ही सिद्धहस्त नहीं हैं, अपितु हर विधा में पारंगत हैं। अगर कोई उनसे पूछता है कि आप कविता से उपन्यास और कथा के क्षेत्र में कैसे आए तो वे मुस्कुरा कर कहते हैं कि, ''मैं कविता से उपन्यास और कथा के क्षेत्र में नहीं आया हूं, बल्कि मैं कविता के साथ उपन्यास और कथा के क्षेत्र में उतरा हूं।''

उन्होंने अपने बचपन में ग्रामीण जीवन और निर्धनता को बहुत ही करीब से देखा था। मिश्र जी का कहना है कि जब मैं कक्षा तीन या चार में पढ़ता था तभी कविता को देखकर मुझे एक रोमांच की अनुभूति होती थी और मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि यह तो मैं भी लिख सकता हूं। छठी-सातवीं कक्षा में आते-आते उन्होंने कागज-कलम लेकर आढ़ा-टेढ़ा कुछ भी लिखना आरंभ कर दिया था।

रामदरश मिश्र जी के जीवन में उनकी पत्नी के साथ-साथ उनकी मां का भी बहुत सहयोग रहा है। वे अपनी माता को गुरु मानते हैं। एक संस्मरण में बताते हुए वे कहते हैं कि, ''जब मैं बहुत छोटा था तो मुझे हिन्दी की वर्णमाला नहीं आती थी। मेरी मां शिक्षित थीं। सर्दियों के दिन थे। उन दिनों घर को गर्म करने के लिए अलाव जलाया करते थे। अलाव के पास सभी आग सेंक रहे थे। जब अलाव जल गया और उसकी राख बन गई तो मां मुझे वहां लेकर गई और अंगुलियों से 'क', 'ख' एवं 'ग' लिखना सिखाया। उन्होंने यह कार्य मुझसे इतनी अधिक बार कराया कि मैं वर्णमाला में सिद्धहस्त हो गया और उसके बाद मुझे अक्षरों से प्रेम हो गया। मेरी मां मुझे वर्णमाला सिखाने के लिए दिन-रात लगी रहती थी। मां के कारण ही आज मैं इस मुकाम पर पहुंच पाया हूं कि अपनी एक पहचान बना पाया हूं।''

एक मां ही अपने बच्चे के लिए ऐसे त्याग कर सकती है। रामदरश मिश्र जी के उपन्यासों में 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'बीच का समय', 'सूखता हुआ तालाब', 'अपने लोग', 'रात का सफर', 'आकाश की छत', 'बिना दरवाज़े का मकान', 'दूसरा घर', 'थकी हुई सुबह', 'बीस बरस' आदि प्रमुख हैं।

उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं-खाली घर, एक वह, दिनचर्या, सर्पदंश, वसंत का एक दिन, अपने लिए, विरासत, एक कहानी लगातार आदि। कविता संग्रह-पथ के गीत, बैरंग-बेनाम चिट्ठियां, पक गई है धूप, कंधे पर सूरज

जय जयवन्ती सम्मान रामदरश जी को देते हुये पूर्व गवर्नर साथ में बालेन्दु दाधीच, डॉ. मुकेश गर्ग, अशोक चक्रधर, राहुल देव, प्रो. सुरेन्द्र गम्भीर शर्मा, बागेश्री चक्रधर

आदि। संस्मरण-स्मृतियों के छंद, अपने-अपने रास्ते, एक दुनिया अपनी और चुनी हुई रचनाएं। गज़ल संग्रह-हंसी ओठ पर आंखें नम हैं, बाज़ार को निकलते हैं लोग, तू ही बता ए ज़िंदगी निबंध संग्रह-कितने बजे हैं, बबूल और कैक्टस, घर-परिवेश उपरोक्त रचना संसार को देखते हुए यही लगता है कि क्या कोई लेखक इतना सिद्धहस्त हो सकता है कि वह हर विधा में प्राण फूंक दें। रामदरश मिश्र जी हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी के शिष्य थे तो ललित निबंधों को लिखने का गुण तो उनमें आना ही था। कविताओं में रामदरश मिश्र जी के प्राण बसते हैं। वे एक ऐसा व्यक्तित्व हैं जो बहुत ही सहज, सरल और सौम्य हैं। उन्होंने अपनी सादगी से रचनाओं को लिखा, जीवन को जिया और उन्हें कुशल चितेरे की तरह कागज़ पर उतारा। उनकी कविताओं में भी उनका सरल जीवन झांकता है:-

"बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे,
खुले मेरे ख़्वाबों के पर धीरे-धीरे।
किसी को गिराया न ख़ुद को उछाला,
कटा ज़िंदगी का सफर धीरे-धीरे।"

रामदरश मिश्र जी की सहधर्मिणी उनकी अनेक रचनाओं की साक्षी रहीं। अनेक पात्रों के सृजन में उनका अमूल्य योगदान रहा। मिश्र जी ने अपनी एक रचना "एक बचपन यह भी" में सरस्वती जी के व्यक्तित्व को उकेरने का सार्थक प्रयत्न भी किया है। आख़िर जिसके साथ जीवन के अनेक अनमोल पल जुड़े हों, उनका कागज़ पर उतरना स्वाभाविक ही है। व्यक्ति अपने परिवेश और परिवार से जड़ों की गहराई तक जुड़ा रहता है। ऐसे में जड़ों की मज़बूती से अनेक शाखाएं उभरती हैं और कोने-कोने में अपनी चमक से हर स्थान को रोशन कर देती हैं।

मिश्र जी शतायु पार कर इस लोक से जा चुके हैं। एक लंबी आयु के साथ ही उनके पास आदर्श दांपत्य जीवन का अनुभव था कई लोग अक्सर उनसे उनके सफल वैवाहिक जीवन का राज पूछते तो वे सिर्फ मुस्कुरा कर सरलता से कहते, "अटूट विश्वास और एक दूसरे के प्रति निस्वार्थ समर्पण ही हमारे सफल वैवाहिक जीवन का आधार है।"

मिश्र जी शतायु पार कर इस लोक से जा चुके हैं। एक लंबी आयु के साथ ही उनके पास आदर्श दांपत्य जीवन का अनुभव था। कई लोग अक्सर उनसे उनके सफल वैवाहिक जीवन का राज पूछते थे तो वे सिर्फ मुस्कुरा कर सरलता से कहते, "अटूट विश्वास और एक दूसरे के प्रति निःस्वार्थ समर्पण ही हमारे सफल वैवाहिक जीवन का आधार है।

"डॉ. जोसेफ मर्फी ने अपनी पुस्तक "आपके अवचेतन मन की शक्ति" में सफल वैवाहिक जीवन के लिए कहा है कि, "वास्तविक बनने के लिए हर विवाह की शुरुआत ठोस आध्यात्मिक नींव से होनी चाहिए। यह दिल से होनी चाहिए, क्योंकि दिल में प्रेम भरा होता है। ईमानदारी, सच्चाई, दयालुता और अखंडता सभी प्रेम के पहलू हैं। दोनों ही जीवनसाथियों को एक-दूसरे के प्रति पूरी तरह ईमानदार और सच्चा रहना चाहिए।"

उपरोक्त कथन को रामदरश मिश्र ने अपने जीवन में पूर्ण किया है। आज उनकी सहधर्मिणी सशरीर जब उनके साथ नहीं है तो भी वे उस बाती की तरह हैं जो बुझकर भी दीपक की ज्योति से हर ओर उजाला करती हैं। डॉ. रामदरश मिश्र जी दीपक थे और सरस्वती जी बाती। इस दीपक और बाती का साथ युगों-युगों तक पीढ़ी दर पीढ़ी की मिसाल युगों-युगों तक दी जाती रहेगी। ◆

पता : डी.डी.ए. फ्लैट्स, खिड़की गांव, मालवीय नगर,
नई दिल्ली-110017
मो. : 9971125858

काव्य कलश की नई भूमि के हस्ताक्षर

अलका अस्थाना

उनकी कविताएं पढ़ने के बाद गुनगुनाने का मन करने लगता है जहां वो आलोचना उपन्यास, संस्मरण और आत्मकथा को रचते हैं वहीं गीतों की बयार स्वतः बहने लगती हैं। वो प्रकृति को शब्दों से आवाज़ दे रहे हैं, कभी बूंदों की छप होती तो मन उमड़ जाता है।

भारतीय भाषाओं के लेखकों को दिया जाने वाला सरस्वती सम्मान 2021 हिन्दी के अप्रतिम कवि उपन्यासकार, कथाकार आलोचक गद्यकार रामदरश मिश्र को उनकी कृति 'मैं तो हूँ' पर प्रदान किया गया। उन्होंने उत्तर प्रदेश के डुमरी गांव की पावन धरती में 15 अगस्त, 1924 को जिला गोरखपुर में जन्म लिया था।

आपके प्रकाशित पथ के गीत 'बेरंग बेनाम चिट्ठियां', 'पक गयी धूप' 'कंधे', 'धर से घर तक', 'यात्रा वृत्तांत' के साथ अपनी कलम को धार देते हुए उनकी पारखी दृष्टि समाज के विभिन्न आयामों को स्पर्श करती हुई दिखाई देती हैं।

उनका रचना संसार आदर्श भावना का परिचायक तो है ही, साथ में दुविधाओं से मुक्ति प्रदान करता है, जो जीवन में विभिन्न चिंताओं से मुक्ति प्रदान करता है।

साहित्य में कविता की फुहार और नई कविता के गीतों में गोते लगाने वाले रामदरश मिश्र जब विश्व की सांस्कृतिक राजधानी में आते हैं तो त्रिलोचन व केदारनाथ सिंह उनके साथ-साथ चल रहे थे। बनारस में उन्हें हजारी प्रसाद, शंभुनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, और शिवप्रसाद सिंह जैसे साहित्यकारों के साथ चौपाल लगाने का मार्गदर्शन मिला।

इलाहाबाद परिमलजन्य लेखकों का अड्डा था। जो साहित्य का जीता-जागता माहौल था। इलाहाबाद को साहित्यिक पायदान पर ख़रा उतारने में उस समय जहां निराला, महादेवी वर्मा जैसे अप्रतिम युग प्रवाह वाले कवियों का वैभव मिलता रहा, वहीं काशी के प्रेमचन्द और प्रसाद के बाद नई पीढ़ी को एक स्थान कायम कर रही थी उसी समय मिश्र के हृदय में कविता छंद और गीत के रूप में अनुराग उत्पन्न करने लगी थी।

ऋतुओं के संग

उनकी कविताएं पढ़ने के बाद गुनगुनाने का मन करने लगता है जहां वो आलोचना उपन्यास, संस्मरण और आत्मकथा को रचते हैं वहीं गीतों की बयार स्वतः बहने लगती हैं। वो प्रकृति को शब्दों से आवाज़ दे रहे हैं, कभी बूंदों की छप होती तो मन उमड़ जाता है।

कहते हैं-

उमड़ रही पुरवइया कुन्तल जाल से
लहर रहे अम्बर में काले-काले बदरा
हरी-हरी छाया वन में लहरा रही
धरती नभ में उड़ी-उड़ी सी जा रही
झुके हुए घन बहे जा रहे व्योम में
झम-झम रस बुंदिया में धरा नहा रही
धूप लजीली उड़ी जा रही पालकी
गरज रहे सागर से छाया वाले बदरा

सभी ऋतुओं से सामंजस्य बिठाने वाले मिश्र जी की कलम में मानव धर्म, राष्ट्र धर्म के प्रति सजगता दिखाई देती हैं जहां शब्दों के द्वन्द के हठीले तार स्वयंमेव बंधते चले जाते हैं। प्रात की किरणें भींचतीं है। तो कभी तो नीरव जेठ की भोर से कवि अपने को अनजान दिखाई देता है।

नीरव जेठ की है भोर में हूं पंथ पर अनजान
धुलकर स्तब्धता में मौन , सोती राह सोते गांव
निर्जन सा पड़ा संसार, बन्दी शब्द के हैं पांव
लेता है क्षितिज निःश्वास थम -थम पंथ के उस पार
कविता की माटी का सच्चा द्योतक
सच्चा कवि स्वयं को .....

राम दरश मिश्र जी गीतों के रास्ते से आते दिखाई देते हैं। बहुत अरसे तक छंद उनकी कविता का साधन और साध्य बना रहा लेकिन जब पूरे विश्व में आधुनिकतावाद की हवा चली तो साहित्यिक विधाओं में विन्यास और शैलियों में भी विविधता आई।

इससे रामदरश मिश्र जी की कविता के सार पर भी प्रभाव आया जिससे वे प्रेरित हुए बनारस में बह रही आधुनिकतावाद की हवा ने उन्हें यह बताया कि यदि उन्हें कविता में टिके रहना है तो आधुनिकतावाद की प्रवृत्तियों को कविता में उतारना होगा और उसी शैली में रचना करनी होगी। जिस शैली में पूरे विश्व में कविता परचम फहरा रही थी। सन् 1951 के पथ के गीत संग्रह आने के बाद उनके 'नयी कविता' के साथ उनका सान्निध्य होने के कारण वे नई कविता से जुड़े और सातवें दशक में उनके दो महत्वपूर्ण संग्रह आए, बैरंग बेनाम चिट्ठियां 1962 और पक गई धूप 1969 इन संग्रहों द्वारा उनकी पहचान बनी तो तब उन्हें आत्म अंकुर को परोसना था जहां कवि हृदय तो सुनसान तन्हाइयों में ही अपने को खोजता है।

'बंद कर लो द्वार' ऐसी ही तन्हाई की कविता है। ये उस दौर में 1955 में लिखी जब कविता छायावाद से नयी कविता की ओर मुड़ती दिखाई दे रही थी।

ऐसा नहीं कहा जा सकता कि नई कविता से जुड़ जाने पर गीत लिखना बंद हो गया पर वो भी बराबर लिखते रहे।

बसंत आता जाता रहा और उनकी कविताएं बसंत में भीगती रहीं। उनकी अनुभूतियां भी रह-रहकर प्रकट होती रहीं।

भटक रहा खानाबदोश सा/आज यहां कल वहां/छोड़ जानी पहचानी हुई बस्तियां इस संग्रह में उनके बड़े प्यारे गीत भी हैं।

पके धान सी धूप, जलते हैं। फूल खिड़की से एक हवा आई कोई दर्पण टूटा होगा। 'एक नीम मंजरी', 'यह दिन भी बीत गया'। बादल घेर-घेर मत बरस आदि। 'फिर वही लोग' में तत्कालीन राजनीतिक समय बोलता हुआ दिखता है। 'कंधे पर सूरज' में आजादी की पचीससाला फल श्रुति बोलती है। ये गठरी इस रूप को समेटे हुए हैं।

पुरस्कारों की बात करें तो उन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार, शलाका सम्मान, दयावती मोदी साहित्य सम्मान, व्यास सम्मान, भारत हिन्दी संस्थान सहित कई बड़े-बड़े पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। हिन्दी का प्रतिष्ठित पुरस्कार 'सरस्वती सम्मान' भी उनके नाम रहा। उनकी रचनाधर्मिता अपने दौर का एक प्रतिष्ठित नाम रहा। सच माना जाय तो रामदरश मिश्र अपने दौर के ऐसे रचनाकार हैं जो देश-विदेश तक ख्यातिलब्ध हैं। वे लोगों के लिए एक प्रेरणास्रोत हैं।

जीवन के रूप में उन्होंने साहित्य यात्रा की एक सदी पार की है।

जहां वे खुलकर 'लड़का बड़ा हो रहा लड़की बड़ी हो रही है। लड़का धीरे-धीरे घर खाली कर रहा है। लड़की धीरे-धीरे घर भर रही है। (लड़की 2) यही सीरीज आगे बढ़ती हुई सातवीं कड़ी तक पहुंचती है।

कवि की चिन्ता प्रबल संवेदी है। वे सरोकार हैं।
तुम्हारे हाथ में
उनके लिए ईंट है।
लोहा है सीमेंट है गारा है
उनके हाथ में तुम्हारे लिए
उठा हुआ खूबसूरत नारा है।

प्रकृति के सुरम्य वातावरण से गुज़रते मिश्र जी अपने आत्मीय संबोधन से कविता में कूजते दिखायी देते हैं। वे ग्रामीण मिट्टी के सोंधेपन और मीठेपन को महसूस कर रहे हैं। चाहे प्रातः काल की सतरंगी किरणें क्यों न हों, जहां हर सिंगार उनके जीवन में झर-झर कर अपनी खूशबू को बिखेर रहा हो।

वे ही बीज बनकर मिट्टी में मिल जाने की बात सोचते हैं। इतने उदात्त प्रेम वाला व्यक्तित्व ही किसी बड़ी बात को इतनी सरलता से कह सकता है।

सुबह उठा तो
ताजताज मौसम महक उठा
धूप खिली रेशम सी
बाहर भीतर फैल गई
हर सिंगार झर-झर झरता था
लगा कि मैं ही लुटा स्वयं को
महक रहा हूं।

अन्ततः यही कहना है कि उनकी कविताएं लहलहाती फसलों से गुज़रती हुई पीड़ा संवेदना कृषक, बाग-बगीचे, तीज त्यौहारों हाट मेलों के कठोर यथार्थ को लाती दिखायी देती है जीवन के सौवें वर्ष में प्रवेश करते हुए वयोवृद्ध साहित्यकार रामदरश मिश्र की निरंतर सृजन शीलता और प्रचुर लेखन/एक निष्ठ साधना के वे साधक रहे हैं। उनके अनुभव की कलम की धार हमें सदैव प्रेरणा देती रहेगी। उन्हें विनम्र श्रृद्धांजलि। ◆

पता : 356/24 आलम नगर, रोड
बावली चौकी, लखनऊ-226017
मो. : 8934884441

बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे

डॉ. रश्मिशील

बनाया है मैंने ये घर
धीरे-धीरे,
खुले मेरे ख्वाबों के पर
धीरे-धीरे।
जहाँ आप पहुंचे छलांगें
लगाकर,
वहाँ मैं भी पहुंचा मगर
धीरे-धीरे।।

जीवन के एक सौ दो वर्ष में प्रवेश कर चुके वयोवृद्ध साहित्यकार प्रो. रामदरश मिश्र जीवन पर्यन्त निरंतर सृजन के बीज बोते रहे हैं। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था- कविता, उपन्यास, कहानी, यात्रा वृतांत, डायरी, संस्मरण, इत्यादि गद्य-पद्य की सभी विधाओं में मिश्र जी ने प्रचुर लेखन किया। वे जीवन के विराट संदर्भों के बडे सिद्ध रचनाकार हैं, यह सिद्धता उन्होंने जीवन पथ पर बढ़ते हुए स्वयं अनुभव कर हासिल की थी। अनुभव की तीव्रता अचानक नहीं आती, इसके लिए सतत संघर्ष व एकनिष्ठ साधना की आवश्यकता होती है। राम दरश मिश्र ऐसे ही साधक थे, वे स्वीकार करते हैं-

बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे,
खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे।
जहाँ आप पहुंचे छलांगें लगाकर,
वहाँ मैं भी पहुंचा मगर धीरे-धीरे।।

मिश्र जी ने अपने परिवेशगत अनुभवों व सोच को सृजन में उतारते हुए गांव की मिट्टी, सादगी और जीवन मूल्यों को अपनी रचनाओं में व्याप्त होने दिया, यही उनके व्यक्तित्व की पहचान भी है। वे कभी भी साहित्यिकवाद के विमोह में नहीं उलझे, बल्कि कथ्य व शिल्प को सहज भाव से समय व परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तित होने दिया। गद्य के समान ही काव्य की प्रचलित विविध शैलियों-गीत, नवगीत, ग़ज़ल, नई कविता, छोटी कविता, लम्बी कविता में उनकी सृजनात्मक प्रतिभा दिखाई देती है।

गोरखपुर जिले के कहार अंचल के एक छोटे से गांव डुमरी से प्रारम्भ करके दिल्ली तक का सफर अनेक पड़ावों को पार करते हुए तय किया। उनका पूरा रचना संसार शहर व गांव की संश्लिष्ट व सघन यथार्थ भूमि पर रचा गया है। जब हम मिश्र जी की कविताओं की बात करते हैं तो पाते हैं कि उनकी कविताओं में जीवन का अजस्र स्रोत प्रवहमान है। वे कविताई करते नहीं हैं, बल्कि जीते हैं इसीलिए उनकी रचनाओं में वो सहजता है जो उनके सम्पूर्ण जीवन साधना अमूल्य निधि है। यह सहजता एक तरह से उनकी विशिष्टता भी है जो अनेक संघर्षों व संघातों के बाद भी असाधारण रूप से बची रहती है। वरिष्ठ साहित्यकार प्रकाश मनु का कथन है- ''रामदरश मिश्र हिंदी के एक बडे कद के मूर्धन्य कवि हैं, जिन्होंने सही अर्थ में कवि सिद्धता हासिल कर ली है, बेहद सीधे, सरल और सम्माननीय कवि, वे कविताएं लिखते ही नहीं, कविताएं जीते भी हैं। कविता उनका जीवन है, उनकी सांस-सांस में बसी है, इसीलिए और कवियों की तरह कविता लिखने के लिए उन्हें किसी ख़ास वातावरण या मूड की दरकार नहीं है, बल्कि कविता है जो उनके भीतर बहती है किसी झरने की तरह अजस्र झरती है और जो कुछ उनके भीतर चलता है, वह सहज ही शब्दों में उतरता जाता है इसीलिए रामदरश जी की कविताएं केवल उनकी कविताएं नहीं बल्कि एक पूरे युग की कविताएं हैं, समय की कविताएं, जिनमें उनके समय का इतिहास अपने तमाम रंग-रूप और परिवर्तनों के साथ बहता चला जाता है।"

1951 में मिश्र जी का पहला काव्य संग्रह 'पथ के गीत' प्रकाशित हुआ था, इसके बाद उनकी लेखनी थमी नहीं, बल्कि अनेकानेक जीवन अनुभवों से आप्लावित हो नदी की तरह अबाध बहती रही। कभी बेहद खुरदुरी सख़्त और यथार्थ की मारक क्षमता के साथ तो कभी जीवन की प्राकृतिक, सुकोमल सौंदर्य युक्त उदात्त भावभूमि में सहज व सरल लय विधान के साथ रूपाकार होती हुई। प्रकाश मनु जी मिश्र जी के काव्य यात्रा के संदर्भ में लिखते हैं- ''रामदरश जी की सीधी-सादी लगने वाली कविता-यात्रा असल में इतनी सीधी-सहज भी नहीं है कि उसकी सिधाई के लिए आप उसकी उपेक्षा कर दें। गौर करें तो उसमें शक्ति और ऊर्जा के कुछ ऐसे उल्का-पिंड आपको तैरते नज़र आ सकते हैं, जो बहुत चुपके से समझा जाते हैं कि रामदरश मिश्र का सीधा होना एक बड़ी काव्य-मेधा या कवि शख़्सियत का, एक बड़ी सामर्थ्य से कमाया हुआ धीरज और संयम है, जिसके भीतर आपको काफी उथल-पुथल मिलेगी।'

मिश्र जी की कविताएं देखने में सरल व सहज लगती अवश्य हैं परंतु वे अपने भीतर गहरी प्यास, एक तड़प, विकलता और अनेक अनुभवों के सांचें में ढली जीवंत कविताएँ हैं, इसीलिये ये कविताएँ हर किसी को अपनी सी लगती हैं। आचार्यों ने ''अर्थवैअमल्यम प्रसाद'' (अर्थ की विमलता ही प्रसाद गुण है) कहकर प्रसाद गुण को परिभाषित किया है। जिस प्रकार सूखे काष्ठ के साथ अग्नि की व्याप्ति होती है उसी प्रकार प्रसाद गुण से युक्त रचना अपने अर्थ बल से पाठक को अनायास ही प्रभावित कर लेती है। मिश्र जी इसी प्रकार के सहजमना रचनाकार हैं, जो अपनी सहजता, सरलता, स्वाभाविकता व आत्मीयता से सबको प्रभावित करते हैं। उनका पूरा सृजन वृक्ष के समान मानवीय मूल्यों की मिट्टी से जुड़ा हुआ अकृत्रिम संसार है -

गमले का फूल तो नहीं
कि एक सुरक्षित कमरे से
दूसरे में रख दिया जाऊँ
मैं तो एक पेड़ हूँ एक ख़ास ज़मीन में उगा हुआ
आंधियाँ आती हैं
लूएँ चलती हैं
ओले गिरते हैं
पेड़ हहराता है, कांपता है
डालियाँ और फल-फूल टूटते हैं
लेकिन वह हर बार अपने में लौट जाता है।

यह बार-बार अपने में लौटना कवि का ठहरना या रुक जाना नहीं है वरन् गतिमान होना है। ''चल रहा हूँ, क्योंकि गति से पंथ का निर्माण होगा'' आत्मविश्वास और गर्व के साथ एक-एक पग बढ़ते हुए मिश्र जी सृजनशीलता के जिस शिखर पर पहुंचे हैं वहाँ पहुंचना इतना आसान नहीं हैं, परंतु मिश्र जी तमाम हताशाओं, निराशाओं और अंदर-बाहर के संघर्षों को अपने उत्कट धैर्य के साथ पार कर पहुंचते हैं, इसीलिए उनका लेखन प्रचुर और अर्थपूर्ण कृतित्व के रूप में समादृत हैं।

आज की कविता में आमजन के जीवन संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व, अकेलापन, प्रेम की पीड़ा, दिन-दिन छींजते सम्बंधों की व्यथा, अपनी जड़ों से विलगाव की अनेक छवियां दृष्टिगोचर होती हैं। मिश्रजी भी समय व समाज की ध्वनियों को सुनते हैं और पथराई छायाओं और मुरझाई धूप के साथ तड़पते ग़मगीन, विवश चेहरों की पीड़ा से उपजी करुणा से विगलित हो उठते हैं। आत्मसाक्षात्कार के स्तर पर समाज पर चीखने और कविता करने भर से मन की विकलता को शांत नहीं किया जा सकता। दायित्व बोध का सर्वथा नया रूप, जिसके कारण कवि आइने में चेहरा देखने से भी डरता है-

मैं इन सारी कुरूप छायाओं को बटोर कर
समाज पर चीखता हूँ
और कविता करता हूँ
और न जाने क्यों
खुद आइने के सामने आने से डरता हूँ।

मिश्र जी का ''बादल जन-जन के उर का कोलाहल पीकर जीता है, उनका वसंत सौ-सौ उजड़े वन बागों की आहों का झोंका लेकर आता है, मानव उनके अंतर में जग की नव-नव पीड़ा भर जाता है, वे विश्व की हर एक लय पर गति की अमर ध्वनि से बांधते हैं, उनके उल्लास में जीवन की लहरों की क्रीड़ा और रुदन में मानव की पीड़ा समाहित है।" वे मानवीय सम्वेदना की खोई हुई गरिमा के प्रति चिंता व्यक्त करते हैं, उसका पुनराष्धिकार करने के लिए 'बेरंग बेनाम चिट्ठियां' लिखते हैं और 'नई सुबह की आश्वस्ति' से भर कर कवि कर्म में जुटते हैं-

दिन को ही हो गई रात सी, लगता है कालजयी होगी।
कविता बोली, मत उदास हो, कल फिर सुबह होगी।।

समसामायिकता कवि की चिंता में किसी तरह के अमूर्त के भीतर नहीं तय होती, वरन् व्यक्ति और उसके खिलाफ़ होती चीज़ें पूरी तरह से साफ होकर सामने आती हैं। वे अपनी कविताओं के द्वारा समाज की समस्याओं व उनके समाधान पर दृष्टिपात करते हैं। वे पीड़ित जन के कष्टों, भ्रष्टाचार, शोषित व दलितों के संघर्षों स्वर देते हैं। 'मनाएं क्या दीवाली हम' कविता में मानवीय दर्द की बेबस चीख को इन पंक्तियों में महसूस किया जा सकता है-

ऐसे देश में कितने अभागे कुल
पड़े सो रहे हैं भूख की ले
आग आंखों में, दीवाली के
महोत्सव की घटा में
ये कृषक, मजदूर, भिखमंगे
ज़माने के कुशल शिल्पी
कलेजे से जगत की राह में
ये तोड़ने वाले शिल्पी के खंड
क्या जाने
दीवाली क्या, तमाशा क्या?

इसी प्रकार कवि ने लड़की शीर्षक से कई कविताएं लिखी हैं, जो अत्यंत मार्मिक हैं और अपनी सादगी के साथ कथ्य में अद्वितीय हैं, परंतु बात को खरे ढंग से कहने का कवि का साहस इसे विशिष्ट बनाता है-

लड़का बड़ा हो रहा है
लड़की बड़ी हो रही है
लड़का धीरे-धीरे घर खाली कर रहा है
लड़की धीरे-धीरे घर भर रही है
लडका डरा रहा है सड़कों और चौराहों को
लड़की स्वयम् अपने से डर रही है।

काफी समय से दिल्ली में निवास कर रहे हैं, परंतु उनका अंतर्मन आज भी गांव की सोंधी मिट्टी से सुवासित है और गांव उनमे प्राण शक्ति की तरह विद्यमान है। यही कारण है कि गांव पूरी लोक संस्कृति, आचार-विचार, परम्पराओं, प्रकृति के साथ ग्रामीण जीवन के विविध रंगों के साथ उपस्थित है। लोक शैली का संस्पर्श उनके गीतों को और अधिक पुष्ट व रसपूर्ण तथा मोहक बना देता है। वे जब बिम्ब रचते है तो पूरा चित्र दृश्यमान हो उठता है, जिसे सिर्फ महसूस किया जा सकता है-

उमड़ रही पुरवैया कुंतल जाल सी,
लहर रहे अम्बर में काले-काले बदरा
हरी-हरी छाया वन में लहरा रही
धरती नभ में उडी-उडी जा रही।

नवगीतों की सौंदर्य भूमि का निर्माण मिश्र जी के गीतों में बखूबी हुआ है, नवीन सौंदर्य, बिम्ब की मौलिक उद्भावनाएँ उनके गीतों में देखने को मिलती है-

शैवालों पर मरी मछलियाँ
रख कर चली गई जलपरियाँ
उतर रहे हैं गिद्ध गगन से
रच देती पर चित्र पवन से
चले गए वे दिन उन्मन से

रामदरश जी प्रकृति और जीवन को तो रचते ही हैं किंतु मेज़, कुर्सी, सुई, चाकू, चम्मच, कलम जैसी निर्जीव वस्तुओं की सम्वेदना को जिस प्रकार उद्भासित करते है कि ये एकाएक जीवंत हो उठते हैं। कलम के प्रति कवि के उद्गार द्रष्ट्व्य हैं-

याद है जब तुम बच्चे थे
जब मैं पहली बार तुम्हारी अंगुलियों से फंसकर
मोटा सा क बन गई थी
तो तुम्हारे साथ मैं कितनी उत्फुल्ल हुई थी
वह अक्षर तुम्हारे भीतर बाहर निहित
अमित उजास का पहला बिंदु था
जो धीरे-धीरे रेखाए बनता गया
और रेखाओं से
न जाने कितने चित्र आकार पाते गए।

मिश्रजी की कविताएँ सम्वाद करती चलती हैं। ये सम्वाद कहीं अंतर्मन की पुकार लगते है तो कहीं सघन सम्वेदना की अनुगूंज के रूप में व्यक्त होते हैं-

पथ सूना है, तुम हो हम है, आओ बात करे
गुम-सुम, गुमसुम सा है मन, आंखें खोई-खोई
दिशा-दिशा चुपियों बीच लगती सोई-सोई
देखो गई हवाएँ थम, आओ बात करें।

कवि की एक सरलतम और सहजतम रचना है-'जब मैं यहाँ से जाऊंगा'। इस रचना में शब्दों की बाज़ीगरी नहीं है शिल्प की कारीगारी भी नहीं है परंतु बनावट में आसान सी लगने वाली यह कविता बुनावट में अद्भुत है। यह शरीर नश्वर है और सबको एक न एक दिन इस संसार को छोड़कर जाना पड़ता है। मिश्र जी श्रीमद्भगवद्गीता के सूत्र जातस्य हि ध्रुवों मृत्युर्ध्रुवम् जन्म मृतस्य च की सत्यता को न केवल स्वीकरते हैं बल्कि इस असाधारण स्थिति के अनुरूप एक पूरी कार्ययोजना प्रस्तुत करते हैं-

जब मैं यहाँ से जाऊंगा
तब पता नहीं कहाँ हूंगा
यदि आत्मा अमर है
तो यहाँ से जाने के बाद भी मैं यहीं रहूंगा
अपने देश की छवियाँ प्रतिबिम्बित होती रहेंगी मुझमें
जिसकी हवाएँ मेरी सांस बनती रही हैं
मुझमें झिलमिलाता रहेगा वह गांव।

अपनी धरती, अपने गांव, अपने लोगों के प्रति असीम अनुराग समेटे यह कविता अपने जीवन यात्रा के सघन अनुभवों को रेखंकित करती है, वह अपने आत्मीयजनों का स्मरण करता है, जो उन्हें छोड़ कर जा चुके हैं और जिन्हें छोड़ कर वह स्वयम् इस संसार से प्रस्थान करेगा। इस रचना की अंतिम पंक्तिया दाम्पत्य जीवन के प्रेम को सहज अभिव्यक्ति देती हैं। सहधर्मिणी सरस्वती जी को स्मरण करते हुए वे कामना करते हैं-

यदि सरस्वती जी मुझसे पहले चली गई
तो उन्हें कहीं न कहीं पा ही लूंगा
वे भी कहीं से देख ही रही होंगी
यदि पहले मैं गया
तो वहीं से इन्हें देखता रहूंगा
और आता जाता रहूंगा इनके सपनों में।

रामदरश मिश्र का काव्य असंख्य भावानुभूतियों का क्रीडास्थल है। प्रेम, करुणा, हर्ष, विषाद आदि सुखद और दुःखद अनुभूतियों के साथ ही परिस्थितिजन्य स्वतःस्फूर्त भावनाएं भी कवि के मन मे अठ्खेलियां करती चलती हैं। उनकी रचनाशीलता पूर्ववर्ती ऊबड-खाबड़ पगडंडियों से गुज़रते हुए नए युग के भाव बोध से अनुप्रारित होकर निरंतर नए सौंदर्य दृष्टि की ओर अग्रसर हैं। उनकी रचनाओं में व्याप्त मानवीय सम्वेदना कभी चुकने न वाली और वे सदैव वर्तमान तथा भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणास्रोत बने रहे। ऐसे यशस्वी कालजयी कवि को मेरा प्रणाम। ◆

पता : 547 क/245 शीतला पुरम, राजाजी पुरम-1
लखनऊ-226017
मो. : 9235958688

यथार्थ के चितेरे कहानीकार-रामदरश मिश्र

अलका प्रमोद

साहित्य जगत का एक युग थे मिश्र जी जिन्होंने अपने जीवन के सत्तर साल साहित्य जगत को समृद्ध करने हेतु अर्पित किये। 15 अगस्त, 1924 के जन्मे डॉ. रामदरश दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के पूर्व प्रोफेसर ही नहीं एक प्रतिष्ठित साहित्यकार भी थे।

स्थापित वरिष्ठ साहित्यकार रामदरश मिश्र जी का भीतर का कहानीकार देर में जगा पर जब जगा तो साहित्याकाश में छा गया। रामदरश जी अधिक कवि हैं या कहानीकार यह चर्चा का विषय हो सकता है परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि गद्य और पद्य लेखन पर समान अधिकार रखने वाले मिश्र जी चाहे कहानी लिखें, उपन्यास लिखें या कविता वह पाठक के मन-मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ती हैं।

वे साहित्य जगत का एक युग थे जिन्होंने अपने जीवन के सत्तर दशक साहित्य जगत को समृद्ध करने हेतु अर्पित किये। 15 अगस्त, 1924 के जन्में डॉ. रामदरश दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के पूर्व प्रोफेसर ही नहीं एक प्रतिष्ठित साहित्यकार रहे हैं।

रामदरश जी का प्रथम प्रेम भले ही कविता है कहानी लेखन के प्रति उनका रुझान देर में हुआ परन्तु उन्होंने जब कहानियाँ लिखीं तो मील का पत्थर बनीं। उनके संवेदनशील मन और छिद्रान्वेषी मस्तिष्क ने अपने आस-पास के समाज पर कहानियों का ऐसा ताना-बाना बुना कि उनकी प्रत्येक कहानी यथार्थ का अभिलेख हो गयी। निर्बल, निर्धन और दुःख व्यक्ति के दर्द को उसकी संवेदनाओं को कहानी में कुशलता से उकेरा है रामदरश जी ने और इसका मुख्य कारण है कि वह आलीशान वातानुकूलित कमरे में बैठ कर लिखने वाले समाज के छद्म हितैषी नहीं हैं उन्होंने अपने जीवन में अभावों के भोगा है, ग्रामीण जीवन को स्वयं जिया है, पास से देखा है। रामदरश जी ने सृजन यात्रा का प्रारम्भ काव्य सृजन से किया भले किया परन्तु साठ के दशक में जब उन्होंने कहानी जगत में प्रवेश किया तो कहानी जगत को यथार्थ के सागर में अवगाहन करा दिया। उनकी कहानियाँ शब्दचित्र हैं ग्रामीण अंचल के समाज का, शहर के उठा-पटक भरे जीवन का, परस्पर संबंधों का।

'रामदरश मिश्र की लोकप्रिय कहानियाँ' की भूमिका में स्वयं लेखक के अपने कहानी लेखन की यात्रा के बारे में स्वीकारा है -''छठे दशक में सहज भाव से मैं कहानी से भी जुड़ने लगा और सातवें दशक में तो उसके साथ भी मैं शिद्दत से चलने लगा। कहानी और फिर उपन्यास से जुड़ने के पीछे ग्राम-यथार्थ का दबाव था। गाँव में पैदा हुआ। मेरा घर भी अभावग्रस्त था और गाँव भी तो मैंने गाँव के जीवन-यथार्थ के विविध आयामों के न केवल देखा वरन् गहरे भोगा भी। गाँव का अभाव, उसकी जिजीविषा, उसका संघर्ष उसमें और उसके चारों ओर व्याप्त प्रकृति का सौंदर्य मेरे अनुभव में समा उसके अनेक रंगों वालें चरित्रों की छवियाँ मुझमें व्याप्त थीं। जब मैंने कहानी-लेखन की यात्रा शुरु की तो ग्राम-यथार्थ के विविध आयाम मेरी चेतना पर दस्तक देने लगे और कहानियों का रूप पाने लगे।'

लेखक ने मात्र कविताएँ और कहानियाँ नहीं रचीं तत्कालीन काल का समाज विशेषकर गाँव का इतिहास रचा है बहुप्रचलित कहावत 'साहित्य समाज का दर्पण है' उनके लेखन के विषय में चरितार्थ होती है। उनकी एक-एक कहानी मन पर छाप तो छोड़ती ही है, मन को उद्वेलित करती है, विचार करने को प्रेरित करती है। दूसरे शब्दों में कहें तो लेखक ने समाज के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह किया है। डॉ. गुरचरण सिंह ने उनकी कहानियों के बारे में

लिखा है कि ''रामदरश मिश्र के कथा साहित्य के केंद्र में मनुष्य है उसकी पीड़ा दुःख कथा है। मनुष्य की चिंता लगभग सभी कहानियों में देखी जा सकती है। यह मनुष्य गाँव का, नगर का अथवा महानगर का है। लेखक ने गाँव भी देखा है नगर तथा महानगर भी। उसके जीवन के अनुभव व्यापक हैं। मनुष्य तथा उसके साथ जुड़े सुख-दुख लेखक को भीतर तक विचलित करते हैं। वह व्यक्ति की पीड़ा सिर्फ भावनात्मक स्तर पर अनुभव नहीं करता बल्कि पीड़ा कैसे दूर की जा सकती है इस पर भी विचार करता है। यही मानवीय चेतना श्री मिश्र के मनुष्य के साथ गहराई से जोड़ती है। वे समयगत सच्चाई से जूझते हैं। इसी कारण समय ,परिवेश और उसका यथार्थ प्रामाणिकता तथा ईमानदारी के साथ उनकी कहानियों में उभरता है।''

लेखक की कहानियों में निर्बल वर्ग के प्रति संवेदना स्पष्ट रूप से मुखर होती है। उनकी कहानियों में ग्रामीण और निर्धन के साथ स्त्रियों विशेषकर ग्रामीण अंचल की स्त्रियों की पीड़ा विशेष रूप से उभर कर आयी है। उनकी एक कहानी है 'माँ सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो' मन के झझकोर देने वाली कहानी है जिसमें माँ के न रहने पर गाँव जाने पर कहानी का नायक जो अपनी माँ के क्रियाकर्म होने के बाद शहर से पहुँच पाता है गाँव की दुर्दशा देख कर तो हतप्रभ है ही साथ में माँ की सखी, चाची जो मृत्यु की ओर अग्रसर हैं उनकी आँखों में वह माँ की जिस पीड़ा को अनुभव करता है उसका वर्णन संवेदनाओं के उच्चतम स्तर को स्पर्श कर गया है उसकी अनुभूतियों को जिस मार्मिक ढंग से कहानी में प्रस्तुत किया गया है वह पाठक के नेत्रों को नम कर ही देता है। निश्चय ही यह लेखक की संवेदनशीलता और कहानी गढ़ने में सिद्धहस्तता का परिणाम है।

सभी कहानियों में लेखक की लेखनी तूलिका का रूप ग्रहण कर शब्द चित्र खींचती सी लगती है। गाँव का विवरण ऐसा लगता है मानो किसी गाँव का दर्द स्वयं पन्नों पर उतर कर पाठक के मन में बस गया हो और द्रवित मन व्याकुल सा हो जाता है। 'माँ सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो' में ही एक अंश है -

'चाची के क्या हुआ?'

'अब क्या बताएँ बच्चा, कल तक तो ठीक थी, लगता है रात के ठंडक लग गई है।'

'एक ही दिन की बीमारी में चाची ऐसी लट गईं?' चाचा की आँखें एक बार बहुत भारीपन से ऊपर उठीं फिर अपने में लौट आईं। कुछ रुक कर अटकते हुए से बोले, 'बीमारी तो एक दिन की है बच्चा लेकिन भूख तो कई दिन की है न।'

उपरोक्त पंक्तियाँ कम में बहुत कुछ कह जाती हैं।

लेखक ने यदि गाँव की गरीबी और दुख कहानियों में उकेरे हैं तो शहर के धनवानों के मन की गरीबी को भी विषय वस्तु बनाया है यथा ''लाल हथेलियाँ' जिसमें एक धनवान पिता की पुत्री और गरीब स्त्री की संवेदनाओं को प्रस्तुत किया है।

लेखक मनोविज्ञान के पारखी और मन के चितेरे हैं। लेखक की कहानी ''खाली घर'' एक बहुत मार्मिक कहानी है जिसमें एक बच्चा माँ के जाने के बाद जो अनुभव करता है उसे लेखक ने शब्द दिये हैं इस कहानी में निर्धनता की त्रासदी, निर्धन की विवशता और एक निश्च्छल बच्चे की माँ के लिए व्याकुलता को जिस प्रकार ताने-बाने में बुना गया है वह श्लाघनीय है। यदि लेखक ने एक कहानी में एक बच्चे का माँ से बिछुड़ने के दर्द को संप्रेषित किया है तो 'एक औरतः एक जिंदगी' जैसी कहानियाँ भी लिखी जिसमें पति के न रहने पर एक कर्मठ स्वाभिमानी स्त्री के माध्यम से एक समर्थ स्त्री का चित्रण भी किया है।

'एक इंटरव्यू उर्फ कहानी तीन शुतरमुर्गों की' एक व्यंग्य है मुखौटा लगाये लोगों पर। 'सड़क' में वेदना है संस्कारी पुरुष की इसकी एक पंक्ति बहुत प्रभावशाली है ''यादव ही खादी पहनने का हक़दार, क्योंकि उसके शरीर पर खादी का विकास हुआ है और वह? वह नहीं उसके शरीर पर तो खादी फटती ही चली गयी।''

लेखक ने विविध विषयों के विषय वस्तु बनाया जैसे ''सर्पदंश'' में तथाकथित निम्न जाति के लोगों को अपरोक्ष रूप से जागरूकता के संदेश दिया है। इसी प्रकार लेखक की ने अन्धविश्वास पर भी प्रहार करते हुए कहानी लिखी ''भविष्य'' जिसमें जन्मपत्री मिलने पर पति के बहुत अच्छे होने पर भी रिश्ता सुखद नहीं रह पाता। इसी प्रकार 'शेष यात्रा' वर्तमान में स्वार्थी हो रही संतान पर केन्द्रित है।

लेखक ने समाज में धार्मिक एकता पर लिखना भी अपना दायित्व समझा और लिखा 'रहमत मियाँ' तो 'कवित कुलिश' जैसी कहानियों में कवि के चरित्र का पटाक्षेप है।

सारांश यह है कि लेखक की दृष्टि से समाज का कोई वर्ग नहीं छूटा इसीलिए उनकी कहानियों में विविधता है पर हाँ! गाँव और निर्धनता ने उनको अधिक द्रवित किया और उस परिवेश की कहानियाँ अपेक्षाकृत मन को अधिक प्रभावित करती हैं। रामदरश जी की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता होती है आम व्यक्ति की कहानियाँ हैं। मात्र कथावस्तु नहीं भाषा भी आम व्यक्ति की है जो आम व्यक्ति तक लेखक के भाव संप्रेषित करने में सशक्त योगदान देती है। भाषा भले ही आम व्यक्ति की हो उसमें लालित्य और भाषा का सौष्ठव अपना स्थान बनाये हुए है। यथा-

एक कहानी में लेखक ने लिखा है ''नदी का तट....तट ही तट.... पानी की एक रेखा बीच में आहत सी खिंची है और तट का लम्बा विस्तार यहाँ से वहाँ तक पट गया है। लोग अब लोग नहीं रहे व्यक्ति बन गये हैं,....

या 'भाभी का भीगा हुआ स्वर गीले कपड़े की तरह मेरे अंग-अंग पर बिछ गया था।'

उनकी सघन अनुभूतियाँ मन के उद्वेलित करती हैं। कहना न होगा कि लेखक की कहानियाँ लम्बी रेस का घोड़ा हैं और युगों तक हिंदी कथा के इतिहास में अपनी संवेदनशीलता, पठनीयता और संप्रेषणीयता के लिए अपना महत्वपूर्ण स्थान अक्षुण्ण रखेंगी। ◆

पता : 5/41 विराम खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ-10
मो. : 9839022552

शताब्दी की स्मृतियाँ : राम का दर्शन

डॉ. सूर्यदीन यादव

रामदरश मिश्रजी की रचनाओं में जनजीवन और परिवेश का यथार्थ रूप स्वयमेव प्रतिबिम्बित है। उनके उपन्यासों में प्रथमतः 'पानी के प्राचीर', 'बीच का समय', 'जल टूटता हुआ', 'आकाश की छत', 'बिना दरवाज़े का मकान', 'दूसरा घर', 'बीस बरस', 'अपने लोग', 'सूखता तालाब' आदि उपन्यासों में गाँव और शहर परिवेश दोनों हूबहू चित्रित एवं रूपायित हुए हैं।

रामदरश मिश्र की रचनाओं में कृषि प्रधान भारत देश की लगभग सभी फसलों के वर्णन चित्रण (विशेष रूप से आँचलिक रचनाओं में) स्वयमेव आ जाते हैं। तब ऐसे लगता है जैसे कृषि ही जीवन है। खेती करने और कृषक के जीवन की यथार्थ गाथा मिश्र जी के उपन्यासों में जीवंत है। गाँव और गाँव के घर भी फलद्रुप फसलों से सजे हैं। गाँवों को इसीलिए भारत का स्वर्ग कहा गया है। गाँव में घर के अगवाड़े-पिछवाड़े छान-छप्पर पर सब्जी की बेलें हरी भरी फूलती-फलती घर की शोभा में चार चाँद लगा देती हैं। वह यथार्थ चित्र आँचलिक लोकगीतों के माध्यम से मानों आज भी जीवंत है यथा-

घर-छप्पर पै नेनुआ, करेला
कुँदरू, कद्दू, सेम फुलाई।। शकरकंद!!
लौकी जी के लाल भये हैं,
घुइया बधाव लई आई।। शकरकंद..!!
चिरई मिलि जुलि सोहर गावैं,
बंदर ने खँझरी बजाई।। शकरकंद!!
रिमझिम रिमझिम पानी बरसै,
बादलों ने फूल बरसाई।। शकरकंद!!

ऐसे लगता है मन को कि वह शताब्दी महोत्सव नहीं, रामदरश मिश्र जी का (शैशवावस्था का) प्रथम जन्मोत्सव मनाया जा रहा है। लौकी और केला काफी खुश है-माता-पिता के रूप में जीवंत हैं। हाँ प्रकृति ही माता पिता हैं। सौ साल पूर्व का मनाया गया जन्मोत्सव गोरखपुर जिला के डुमरी गाँव में आज इतने सालों बाद स्मृतियों के माध्यम से तरोताज़ा हो रहा है। गंगा-सा बहता अनेक नदियों के जल को साथ लिये, उसमें गर्रा और राप्ती नदियों का जल भी साथ बहता है, जो जल जीवन का प्रतीक बन मिश्रजी की रचनाओं में बह रहा है, और कहीं अथाह गहरे जल में कमल का फूल खिल रहा है। रामदरश मिश्र जी की माता का नाम कमलपाती था जो आज जीवन जल प्रवाह में कमल के फूल-सा खिल रहा है। उस यथार्थ प्रवाह को यहाँ प्रासंगिक लोकगीत में पिरोया गया है-

केला रामशंकर पिता कहायें
लौकी जी माता कहलाइ।। शकरकंद...!
जल-जीवन गंगा-सा बहता,
जल में कमल खिलै भाई।। शकरकंद...!

रामदरश मिश्रजी की रचनाओं में जनजीवन और परिवेश का यथार्थ रूप स्वयमेव प्रतिबिम्बित हैं। उनके उपन्यासों में प्रथमतः 'पानी के प्राचीर', 'बीच का समय', 'जल टूटता हुआ', 'आकाश की छत', 'बिना दरवाज़े का मकान', 'दूसरा घर', 'बीस बरस', 'अपने लोग',

'सूखता तालाब' आदि उपन्यासों में गाँव और शहर परिवेश दोनों हूबहू चित्रित एवं रूपायित हुए हैं।

रचना पीड़ा से जन्म लेती है-इस सत्य का साक्षी है मिश्रजी का साहित्य। मिश्रजी की संवेदना रचना का प्रतिफल है। 'बीच का समय' बनाम 'आदिम राग' का पीड़ित नायक (प्रोफेसर) रीता नामक शिष्या के प्रति लिखता है-''वह अपनी असफल शादी की पीड़ा लिये बहुत दिनों से चाहता रहा कि रीता जैसी कोई लड़की उसके जीवन में आये।'' (पृष्ठ 97 'बीच का समय') यह पीड़ा अनेक बेमेल विवाहितों की पीड़ा है। 'अपने लोग' और 'आकाश की छत' उपन्यास में भी लेखक के नायक को वह पीड़ा सताती है। गरीबी और अभावों की पीड़ा से मिश्रजी के हर पात्र पीड़ित हैं। 'पानी की प्राचीर' का प्रस्तुत संवाद गरीबी एवं अभावों की पीड़ा कहा जाता है-

''नीरू तुम्हें कितनी तनख्वाह मिलती है?'' माँ का स्वर था।

''आठ आने रोज माँ।''

''तीन रुपये तो तुमने घर को दे दिया। आठ आने में एक हफ्ते कैसे काम चलता होगा।'' गीले स्वर में माँ ने पूछा। (पृ. 157)

रामदरश मिश्र की कहानियों में भी वही पीड़ा है। 'खाली घर' कहानी मात्र लेखक की संवेदना नहीं परन्तु हम सबकी संवेदना है। भाभी का अवसान इस कहानी को जन्म देता है। 'एक रात' और एक 'भटकी हुई मुलाकात' तथा 'एक अधूरी कहानी' सामान्य जनजीवन की यथार्थ कथा है। लेकिन यह इस बात की साक्षी हैं कि मिश्रजी कहानी लिखते और कहते नहीं पात्रों में नई चेतना का संचार भी करते हैं। 'माँ सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो' कहानी हर माँ की कहानी है। माँ के बाद घर परिवार के विषाद की कथा हैं जो लेखक को द्रवित कर जाती है। माँ का चल बसना-इस असह्य पीड़ा को मिश्रजी ने कहानी शैली के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। स्वप्निल कथा का एक जीवंत चित्र प्रस्तुत है- 'एक रात' कहानी का ''प्रवीण स्वप्न देखता है कि पद्मा आ रही है। वह जोर से दरवाज़े को धक्का देती है तो दरवाज़ा उसकी नाक पर ही लगता है। उसकी आँख खुलती है। मुँह से निकल जाता है 'पद्मा'! लेकिन वहाँ पद्मा नहीं थी।'' (एक रात से)

'घर' कहानी भी मानव संघर्ष कथा है। नायक बलराम को करुणा और भयावह स्थिति में लपेट लेती यह कहानी अनेक घर, परिवार की मिसाल बन गई है। यह एक ऐसा अभाव है जो मिश्रजी की कथाओं को अनायास सृजित करता है। मनोवैज्ञानिक धरातल पर लिखी गई कहानियाँ मानसिकता की पहचान हैं, यथार्थ उसका दूसरा पहलू है। कल्पना और यथार्थ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जहाँ यथार्थ है वहाँ कल्पना भी है। और जहाँ कल्पना है वहाँ यथार्थ भी है, हाँ रूप, रंग, आकार, स्थिति, परिवेश भिन्न होते हैं। 'भटकी हुई मुलाकात' कहानी का नायक सुधांशु एक पति है जो अपनी पत्नी रंजना को तलाक दे दिया है। उसके बाद वह दूसरी बार एक रूप सुंदरी सीमा साथ विवाह करता है। किन्तु सीमा की प्रेमलीला बनावटी ठहरी। तब सुधांशु को पूर्व की ब्याहता रंजना याद आती है। यह स्मृति-संवेदना नई कहानी 'एक भटकी हुई मुलाकात' को जन्म देती है। एक अधूरी कहानी भी लेखक की संवेदना का प्रतिफल है।

'घर' कहानी भी मानव संघर्ष कथा है। नायक बलराम को करुणा और भयावह स्थिति में लपेट लेती यह कहानी अनेक घर, परिवार की मिसाल बन गई है। यह एक ऐसा अभाव है जो मिश्रजी की कथाओं को अनायास सृजित करता है। मनोवैज्ञानिक धरातल पर लिखी गई कहानियाँ मानसिकता की पहचान हैं, यथार्थ उसका दूसरा पहलू है। कल्पना और यथार्थ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जहाँ यथार्थ है वहाँ कल्पना भी है। और जहाँ कल्पना है वहाँ यथार्थ भी है, हाँ रूप, रंग, आकार, स्थिति, परिवेश भिन्न होते हैं।

मैं स्वप्निल मुद्रा में देखता हूँ। यह देखना और पाना ही सृजनात्मकता है। जल जिसके जीवन का प्रतीक है-ऐसे रामदरश जी की शताब्दी यात्रा में भी उसी तरह लेखन-धारा में प्रकाशन और पठन, अध्ययन एवं अध्ययन धारा में उतराते तैरते हुए किसी नाव की तरह इनको, उनको, सबको मानो इस पार से उस पार उतारने की प्रक्रिया में हिचकोले खाते हुए कभी डगमगाते हुए और कभी ऐसे लगता है जैसे वे किसी नाविक की भूमिका में हाथ में कलम नहीं, कोई बांस (पतवार) गहे हुए हाथ पैर मार रहे हैं-ऐसे जैसे कोई शिशु 15 अगस्त सन् 2023 की शाम आठ बजे ब्रह्म एपार्टमेन्ट द्वारका, दिल्ली में शशांक पुत्र रामदरश मिश्र के मकान के सामने एक सभागार में सौवीं बार जन्म ले रहे उनके जन्म दिन पर मंच के सामने बैठे लोग तालियाँ बजा रहे हैं, और खुशी के उस उत्सव के बीच रामदरश मिश्र जी कुर्सी पर से उठ खड़े होते हैं, और हाथों, होठों, कानों, कमर, लचका, मटकाकर, झूमकर, सिर झुमकाकर, हाव-भाव व्यक्त करते हुए चंद वक्तव्यों के साथ कविता पढ़ सुना रहे हैं। बेटी स्मिता जी पापा और मम्मी के पीछे खड़ी हैं। यह सब माँ सरस्वती का कमाल है सब साथ हैं, कि रामदरश मिश्र जी आज शताब्दी यात्रा पूरी कर सके।

मंच के संचालक ओम निश्चल मिश्रा जी अपने सुंदर मधुर सुचारु वक्तव्यों द्वारा उत्सव में चार चाँद लगा रहे हैं। सैकड़ों श्रोताओं के बीच बैठा मैं आनन्द विभोर होकर उन्हें अनेकानेक बधाइयाँ, शुभेच्छाएँ देने की प्रक्रिया में मन की लम्बी उड़ान भरता हूँ और अतीत की गहराइयों में डूब जाता हूँ-दसवीं कक्षा में पढ़ता था, तब का लिखा एक स्वरचित लोकगीत मन ही मन गुनगुनाने लगता हूँ। ऐसे लगा कि वह किशोरावस्था की बात नहीं वर्तमान की ही बात आज तरोताज़ा हो आती है। स्मृतियों का तरोताज़ा होना भी इस जन्मोत्सव का एक प्रतिफल है। देखता हूँ अतीत की खिड़कियों से कि गाँव राजापुर में मेरे घर के सामने बड़े खुले आहाते में केला अपनी चौड़ी हरी पत्तियों के साथ झूम-झूम कर बधाइयाँ दे रहा है। केले के गोल मटोल चिकने तने से लिपटी लौकी अपनी हरी भरी चौड़े पत्तों वाली पतली लचकदार बेलों के साथ केला राम को अलिंगन कर रही हैं, फल फूल रही हैं। केलाराम समान लौकी सीता समान हैं। प्रकृति न्यौछावर है। वर्षा ऋतु का सुहावना मौसम भीगा-भीगा

प्रकृति को स्नान करा रहा है। और शीतलता प्रदान कर रहा है। मंद मंद हवायें प्रकृति के स्वशन तंत्र को गति प्रदान कर रहीं हैं।

समग्र प्रकृति जन-मानस न्यौछावर है। मानस द्वारा ही तुलसीदास जी ने बाल्मीकि रामायण को अवधी बोली-भाषा में शब्द बद्ध चौपाइयों और दोहों छंदों के माध्यम से एक महाकाव्य के रूप में सम्पन्न किया था जो आज अनन्त काल के बाद भी जब गाते हैं तरोताज़ा लगता है, उसी तरह से अतीत और वर्तमान मिलकर एक नये उज्ज्वल भविष्य नव साहित्य सृजन का भी आज जन्मोत्सव है-यह उत्सव बनाम अमृत और हीरा महोत्सव से भी अधिक महत्वपूर्ण हैं, हाँ हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह स्वर्ण युग के रूप में लिखा माना जायेगा। ऐसा मेरे मन में भाव उठते ही मन मोर थिरक-थिरक कर नाच उठता है, प्रकृति सह यह शताब्दी यात्रा प्रकृति की यात्रा बन गई है। इस यात्रा में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के जन-मन शामिल है। वह वास्तव में एक शीर्षस्थ भारतीय ही नहीं विश्व स्तर के साहित्यकार की अन्तर्यात्रा है। जो हम सब की अन्तर्यात्रा के साथ जीवंत हो रही है। अमर हो रही है, अमिट और अमूल्य यह अन्तर्यात्रा एक नई साहित्य धारा का सूत्रपात है। यहाँ से नई कविता, नई कहानी और नये निबंध, नये उपन्यास विधा की भी अर्थात शताब्दी साहित्य विधा का सूर्योदय भी इस संध्या काल में हो रहा है। तारे खिल खिला रहे हैं। अँधेरे भी स्वयमेव उजाले में तब्दील होकर (बिजली प्रकाश) प्रकाशमान हो बधाइयाँ दे रहे हैं। बार बार वह गीत स्मरण हो आता है कि

डॉ. नरेन्द्र मोहन, डॉ. ज्ञान चंद गुप्त तथा सरस्वती जी के साथ एक पुस्तक का विमोचन करते हुए

किसी को गिराया न ख़ुद को उछाला
कटा जिंदगी का सफर धीरे-धीरे।
जहाँ पहुँचे तुम थे छलांगें लगाकर
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे।।

लाल पुत्र का पर्याय। जल जीवन का प्रतीक। मन-मानस महसूस करता है कि राप्ती और गार्रा नदियों का जल गोरखपुर के डुमरी गाँव और परिवेश-कछारांचल को सराबोर भिगोता बहता बढ़ता जल प्रवाह घर, वन, बाग सीमान, जनजीवन को डुबोना चाहता है। हाँ कभी यमुनाजी भी इसी तरह नदी पार कर रहे शिशु कृष्ण और वसुदेव को डुबाने के लिए नहीं, उनके (कृष्ण) चरण स्पर्श के लिए वसुदेव जी के होठों तक आ गई थीं। जल प्रवाह जनजीवन को डुबोने मे असमर्थ है-जल ही जीवन है के प्रतीक स्वरूप रामदरश मिश्र और उनका साहित्य अजर और अमर हैं। प्रकृति, मानव, वनस्पतियाँ इस जन्मोत्सव में सहयात्री हैं, ऐसा मन में महसूस कर रहा हूँ। उस जल-धारा और कछारांचलीय परिवेश को लेकर रामदरश मिश्रजी ने रचनाएँ रचीं। हर रचना में जल जीवन का प्रतीक बन आता है। चाहे 'पानी का प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ', 'सूखता तालाब' उपन्यास हो सबमें मिश्रजी का जीवन और साहित्य जल से घिरा हुआ है। और तो और शहरांचलीय परिवेश में भी आकाश की छत उपन्यास में दिल्ली में यमुना नदी की बाढ़ के जल से घिरा मिश्रजी का जीवन आकाश की छत के नीचे सुरक्षित है। जल जीवन का प्रतीक है, किन्तु बाढ़ का प्रकोप जन जीवन को डुबोना चाहकर भी डुबो नहीं पाता है। दिल्ली की बाढ़ की ही तरह अहमदाबाद महानगर के बीच से बहने वाली साबरमती नदी में जब बाढ़ आई थी तब भी रामदरश मिश्र जी और उनका परिवार बाढ़ के पानी से घिरा हुआ था लेकिन साबरमती के फुफकार मार मार बढ़ने के बावजूद वहाँ के जनजीवन का बाल-बाँका कर नहीं सकीं, मनुष्य से प्रकृति हार जाती है।

साहित्य की ऊर्जा सबसे बड़ी शक्ति है। वह ऊर्जा ही सम्भवतः रामदरश मिश्रजी को शताब्दी में भी ऊर्जावान बनाये रही है और मैं देखता सुनता आश्चर्य में पड़ जाता हूँ कि इतने श्रोताओं, दर्शकों के तालियाँ बजाने के बावजूद वे कविता पर कविता छेड़े जा रहे थे। बैठने, थकने, हारने का नाम ही नहीं ले रहे थे। उनकी बोलने की शैली आज भी अन्त तक वही रही है जैसे युवावस्था में थी। जन्म होते ही जवान हो जाना-यह रामदरश मिश्र की शताब्दी यात्रा एक अनन्त यात्रा जैसी है-ऐसा स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा-ऐसा मैं मानता हूँ। मन अहमदाबाद से जुड़ गया। रामदरश मिश्रजी की शताब्दी यात्रा में लगभग तीस प्रोफेसर आमंत्रित किये गये हैं। डॉ. ओम निश्चल और डॉ. स्मिता मिश्र को अतिथि के रूप में बुलाया गया है। वे दोनों दिल्ली से अहमदाबाद आयेंगे। संयोजक मैं (सूर्यदीन) और मेरे साथ दो कॉलेजों के सह संयोजक डॉ. अमित भाई पटेल और डॉ. विनु भाई चौधरी रहेंगे।

रामदरशमिश्र के समग्र साहित्य तथा उनके जीवन पर चर्चा होने की सम्भावना है- ऐसा जब कन्वीनर डॉ. अमित पटेल ने मंच पर माईक के सामने कहा तब मैं मानो दिवा स्वप्न देखते हुए जाग उठा वरना मैं संभवतः सोता ही रहता, हाँ यदि मेरी पत्नी ने मुझे झकझोर कर जगाया न होता यह कह कि 'पानी गर्म है ठण्डा हो जायेगा, नहा लो।' कान में आवाज़ पड़ते ही और हाथ

हाँगकुक वि.वि. दक्षिण कोरिया में हिन्दी के
प्रो. डॉ. ईमुंग ली के साथ, धर्मपत्नी और पुत्री भी साथ हैं

का स्पर्श होते ही मेरी नींद उड़ गई। जागकर जल्दी से स्नानागार में पहुँचा, स्नान किया। नये कपड़े पहन लिया और चाय-नाश्ता करके प्रातः छः बजे की ट्रेन से अहमदाबाद पहुँचा। मेरे घर (नड़ियाद) से साठ मील अन्तर पर बसा अहमदाबाद कालूपुर स्टेशन पर उतरकर एक ओटो रिक्शा में बैठकर लाल दरवाज़ा उतर गया वहाँ से एच.के. कॉलेज के सभागार में पहुँचा, वहाँ कार्यक्रम का विषय था 'डॉ. रामदरश मिश्र शताब्दी यात्रा'। शताब्दी यात्रा सह साबरमती नदी के कंठ पर स्थित एच.के. कालेज आश्रम रोड पर नटराज सिनेमा के सामने काफी पुराना प्रख्यात कॉलेज है वह।

वहीं से मन उड़ान भरी तो जहाँ रामदरश मिश्रजी पढ़ाते थे, वह सेन्ट जेवियर्स कालेज स्मरण हो आया। पहले मन में आया था कि जहाँ मिश्र जी पढ़ाते थे, उसी कॉलेज में उनका शताब्दी महोत्सव मनाया जाये और उस बहाने उनके समग्र साहित्य पर अच्छे विद्वान वक्ताओं द्वारा चर्चा करवाई जाये। अध्यक्ष के रूप में उपस्थित रहने की रघुवीर चौधरी जी ने स्वीकृति दे दी थी। उन्होंने सुझाव दिया था कि युनिवर्सिटी का सभागार मिलता है तो वह ठीक रहेगा। लेकिन जब युनिवर्सिटी की विभागाध्यक्ष एवं डायरेक्टर निशा रम्पाल से कार्यक्रम करने की बात की तो वो बोली मैं तो बाहर जाऊँगी। बिना मेरे हाल कैसे मिलेगा! मैं असमंजस में पड़ गया कि ए मैडम हॉल अपने साथ ले जायेंगी क्या! फिलहाल मैं सवालों, अवरोधों से बचते हुए गोवर्धन बंजारा और धीरज वणकर से फोन पर बात की। उन दोनों ने सहर्ष कहा-'हम पूरा सहयोग देंगे। आप एच.के. कॉलेज में ही कार्यक्रम करिये।' कार्यक्रम निश्चित हो गया अतः उस दिन एच.के. कॉलेज के सभागार की जांच पड़ताल करना था। कालेज में स्टाफ रूप में एक कुर्सी पर बैठा था तभी मुझे रामदरश मिश्र का 'दूसरा घर' उपन्यास याद आया। उस कथा में साबरमती के बाढ़ के पानी से घिरे अहमदाबाद का हूबहू चित्रण है। हाँ इसी साबरमती नदी के किनारे रामदरश मिश्र उन दिनों एक किराये के मकान में रहते थे। उस मकान तथा उसके आसपास की सोसायटी बाढ़ के पानी से घिर गई थी। हालांकि गाँव परिवेश का कच्चा चिट्ठा खोलने वाला उपन्यास 'सूखता तालाब' जैसी समस्याएँ यहाँ शहर के परिवेश में कम हैं। लेकिन हिन्दू मुस्लिम दंगे में फँसी उठा लाई गई लड़की की व्यथा कथा यहाँ भी है। परन्तु गाँव की जैसी पीड़ा असह्य संवेदना शहर में कम है। शहर में मिलों में काम करते श्रमिक और चालियों में रहते लोग (परदेसियों) के जनजीवन की असली झाँकी दूसरा घर में है। वह उपन्यास रामदरश मिश्रजी ने कसाई की चाली में (बापूनगर) रहते लोगों के बीच बैठकर लिखा था। ऐसा सत्यदीन वर्मा जी ने मुझसे बताया था।

समग्र प्रकृति जन-मानस न्यौछावर है। मानस द्वारा ही तुलसीदास जी ने बाल्मीकि रामायण को अवधी बोली-भाषा में शब्द बद्ध चौपाइयों और दोहों छंदों के माध्यम से एक महाकाव्य के रूप में सम्पन्न किया था जो आज अनन्त काल के बाद भी जब गाते हैं तरोताज़ा लगता है, उसी तरह से अतीत और वर्तमान मिलकर एक नये उज्ज्वल भविष्य नव साहित्य सृजन का भी आज जन्मोत्सव है-यह उत्सव बनाम अमृत और हीरा महोत्सव से भी अधिक महत्वपूर्ण हैं, हाँ हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह स्वर्ण युग के रूप में लिखा माना जायेगा।

मिश्रजी का लेखन यथा स्थितिवाद से हटकर काफी कुछ नया एवं नई मानवीय चेतना से भरा है। वह मानवीय चेतना 'दूसरा घर' में हूबहू उभर आती है-ऐसा कम ही उपन्यासों में (समकालीन) मिलता है। काल (यमराज) के चंगुल से पति को बचाना सावित्री जैसी बुद्धिमान पत्नियों का काम है। हाँ, जैसे सावित्री ने अपने पति सत्यवान को काल (यमराज) के चंगुल से छीन लिया था ठीक उसी प्रकार डॉ. रामदरश मिश्रजी की मानवीय दिव्य चेतना ने 'दूसरा घर' उपन्यास में मुस्लिम (दंगाई) के घर में कैद की गई (दंगे में) हिन्दू की बेटी शोभा को बाइज्ज़त बचाया।

वह हृदय द्रवित करने वाला दृश्य या घटना को 'दूसरा घर' उपन्यास की आत्मा कहा जा सकता है। दंगे और कर्फ्यू में एक दंगाई मुस्लिम व्यक्ति हिन्दू की बेटी को गबन करके निज घर की एक कोठरी में कैद कर रखता है और कोठरी में ताला बन्द करके चाबी अपने बेटा को देते हुए कहता है कि 'जा उस कोठरी में लड़की से समझ ले' बेटा कोठरी में बंद ताला खोल अंदर पहुँचता है। लेकिन लड़की और लड़का के बीच का संवाद देखते सुनते ही बनता है। लड़की शोभा उस घटना का शब्दशः बयाँ अपनी माँ से बताती है-

''मत रो बहना।'' असलम की आवाज़ सुनकर मैं चौंकी। उसकी ओर देखा। उसकी आँखों में आँसू भरभरा आये थे।

'तुम ठीक कहती हो बहना। यह लड़ाई हिन्दू-मुस्लिम गुण्डों की है। चाहे वे गुण्डे सड़क छाप हों, चाहे नेता या अमीर हों। ये गुण्डे आम आदमी की जान लेते हैं। तुम कहाँ रहती हो बहना?'

'आप ठीक कह रहे है न!'

'मेरा विश्वास करो बहना और जरा धीरे बोलो। सुनो यहाँ आओ।'

'मैं चौंकी जरूर लेकिन धीरे धीरे असलम के पास आ गई।'

'पहले तुम चुपचाप खाना खा लो, फिर तुम्हारे साथ कुछ बात करते हैं।'

'मैं हसरत भरी नज़र से खाने की ओर देखती रही, लेकिन उसकी ओर बढ़ी नहीं।'

'क्या तुमको भी लगता है कि खाने पर हिन्दू और मुसलमान की मोहर लगी होती है.....'

'मैं आश्वस्ति से मुस्कुराई और खाना खा लिया। असलम ने समझाया कि रात के अंतिम पहर में मैं तैयार रहूँ..... असलम ने चुपके से मुझको घर से निकालकर मेरे घर पहुँचा दिया।' (पृ. 255 दूसरा घर)

वह घटना भले ही पाठकों के दृष्टिकोण में आदर्श हो, लेकिन वह एक अनकहा असह्य यथार्थ तो है ही। समाज की दृष्टि में एक हिन्दू की बेटी को मुसलमान द्वारा अपहित करना भी काँटे-सा चुभता है। बाइज़्ज़त अपने घर (माँ-बाप) पहुँचने के बावजूद समाज के लोग शोभा की शादी होने नहीं देते थे। तब लेखक की मानवीय चेतना जागृत हो उठती है और एक हिन्दू लड़के के साथ शोभा की शादी करवाने में लेखक सफल हो जाता है।

अहमदाबाद गुजरात परिवेश पर रामदरश मिश्र का 'आदिमराग' उपन्यास स्त्री पुरुष के सहजाकर्षण के लिए बहुचर्चित रहा है। गुजरातीभाषी लड़की (शिष्या) रीता अपने गुरुवर प्रोफेसर के प्रति आकर्षित होती है। प्रोफेसर भी होश खो बैठता है। प्रवास में बाग में एकान्त में दोनों मिलते हैं। लेकिन लेखक की मानवीय चेतन इतनी प्रबल हो उठती है कि एकान्त में दोनों के एक दूसरे को स्पर्श करने के बावजूद दोनों आदम (जंगली) होने से बाल बाल बच जाते हैं। शिष्या रीता एकदम खड़ी हो जाती है, कहती है-'सर यह क्या करते हैं?' यहाँ रामदरश मिश्रजी 'बिना दरवाज़े का मकान' और 'आकाश की छत' उपन्यास में इसी तरह मानवीय चेतना को उभारने में सफल हैं। मैं तहेदिल से शुक्रगुज़ार हूँ ओम निश्चल जी का कि जिन्होंने मेरा मोबाइल नंबर सुदूर रहते लेखकों, संपादकों तथा पहुँचाया आभार मानता हूँ। लखनऊ की कुमकुम शर्मा का कि जिन्होंने फोन करके मुझसे रामदरश मिश्र पर आलेख आमन्त्रित किया उत्तर प्रदेश पत्रिका के लिए।

दूसरे दिन रामदरश मिश्र का 'दूसरा घर' दोबारा पढ़ा। शोध काल में उसे पढ़ा था और उसकी समीक्षा लिखा था वह समीक्षा मेरे शोध प्रबंध कथाकार रामदरश मिश्र में प्रकाशित है। लेकिन जब जब पढ़ता हूँ उनकी हर रचना तरोताज़ा लगती है। यह तो हुई उनके उपन्यासों की बात। मिश्रजी की कविता में भी वही यथार्थ अनुभव रूपायित हुआ है। प्रकृति चित्रण मिश्र जी की कविताओं में चित्रित है। यथा-

''सड़क के दोनों बाजुओं पर
लम्बी छरहरी बाँहों की तरह
चिकने पेड़ सो रहे हैं
चूड़ी की खनक के समान कोई पंक्षी
कुनमुना उठता है।।''.....

रामदरश मिश्र

मिश्र जी के निबंधों में भी गाँव और शहर परिवेश का यथार्थ चित्रण है। वे आजकल डायरी लिख रहे हैं। उनका संस्मरण ''स्मृतियों के छंद'' तथा उनकी डायरी 'सुख-दुःख के राग' पुस्तकें वे अपनी पुराने मकान उत्तम नगर में रूबरू मुझे दिया था। उसे लिये हुए मैं ट्रेन द्वारा घर पहुँचा तो उन दोनों पुस्तकों पर समीक्षाएँ लिख छपवा दिया डायरी के फोटो स्टेट करवाकर कई मित्रों को दिया। और मित्रों से कहा कि मिश्रजी की डायरी पर चर्चा 'साहित्य परिवार' द्वारा आयोजित कार्यक्रम में की जायेगी। उत्साह मेरा बढ़ता गया। उसका कारण है रामदरश मिश्रजी की शताब्दी यात्रा लम्बी होती रही। चाहता हूँ इसी तरह हर रचनाकार की शताब्दी यात्रा पर कार्यक्रम आयोजित किए जाये। ईश्वर से प्रार्थना करता रहा हूँ कि हमारी उम्र भी मिश्रजी को लग जाये और कई सालों तक उनकी यह यात्रा अबाध गति से आगे बढ़ती रहे, लेकिन ऐसा सम्भव नहीं था अन्ततः मिश्र जी 31 अक्टूबर को हमें छोड़कर चले गए। उनकी स्मृतियों को नमन। बहुत याद आयेंगे मिश्र जी। ◆

पता : 3, पुनीत कालोनी, पवनचक्की रोड,
नड़ियाद जि. खेड़ा (गुजरात)-387002
मो. : 7460063540, 9427584625

राम का दरश कराने वाले अनमोल रतन

डॉ. यशवंतगिरि के. गोस्वामी

उत्तम स्वभाव और मधुर व्यवहार से सभी के दिलों पर राज करने वाले प. पू. मिश्रजी का व्यक्तित्व राम की तरह आदर्शवादी, सिद्धांतवादी और मर्यादा पुरुषोत्तम का है।

जिनके परिवार में पिताजी रामचंद्र मिश्र उनके दो भाई रामअवध और रामनवल मिश्र हों अर्थात् राम की गौरवशाली परंपरा है, तो दूसरी तरफ माँ कंवलपाती का कठोर परिश्रम है। जिन्होंने सरस्वती को अपनी जीवनसंगीनी बनाकर साहित्य की उच्च साधना के द्वारा हिन्दी साहित्य जगत में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया, जिन्हें अपने सांसारिक जीवन में अंजलि और स्मिता जैसी समझदार बेटियाँ मिली हों और हेमंत, शशांक, विवेक जैसे परिवार प्रेमी बेटे मिले हों, जो दिल्ली जैसे महानगर में रहते हुए भी देशी संस्कारों से युक्त और आधुनिकतावाद के अकेलेपन और अजनबीपन से मुक्त हैं ऐसे संस्कारी परिश्रमी और राष्ट्रप्रेमी परिवार में सौवें वर्ष में प्रवेश कर एक अद्वितीय सिद्धि प्राप्त करना रामदरश मिश्रजी के लिए इसलिए सहज है क्योंकि उन्होंने अपने जीवन में सब कुछ धीरे धीरे प्राप्त किया उन्हीं के शब्दों में-

जहाँ आप पहुँचे छलांगे लगाकर, वहाँ मैं पहुँचा मगर धीरे-धीरे.....

रामदरश मिश्र मेरे लिए एक आदर्श पिता के समान रहे हैं। उत्तम स्वभाव और मधुर व्यवहार से सभी के दिलों पर राज करने वाले मिश्रजी का व्यक्तित्व राम की तरह आदर्शवादी, सिद्धांतवादी और मर्यादा पुरुषोत्तम का है। छात्रवर्ग और पाठक के प्रति उनका अकारण आदर, सम्मान और गौरव इसलिए निःस्वार्थ है क्योंकि वे उसे अपने परिवार के सदस्य की तरह स्नेह और प्रेम से अपना बना लेते हैं। छात्रों का गौरव करने में उन्हें बेहद खुशी मिलती है। मैंने मिश्र जी के उपन्यासों में घर परिवार विषय पर पी.एच.डी. की है। इसी सिलसिले में मैं उनसे मिलने दिल्ली 'वाणीविहार' पहुँचा। मन में अज्ञात भय था कि इतने बड़े साहित्यकार से कैसे मिलूं ? लेकिन पहली ही मुलाकात में मुझे उनमें राम के दरश मिले ! जो अपने नाम को पूर्णतः सार्थक करता है। उन्होंने विषय संबंधी मार्गदर्शन देने के साथ एक दर्जन पुस्तकें दी ! न जाने क्यों मैं उनकी ओर खिंचता ही गया ! उनके उपन्यास की कथा और पात्रों में इतनी गहराई से उतरता गया कि पच्चीस साल की युवावस्था में भी जीवन और जगत की यथार्थता का बोध मेरे अन्तर्मन को समृद्ध करता गया।

इसके बाद तो ये रिश्ता इतना गहराता गया कि दिल्ली बहुत दूर थी लेकिन दिल से हम एक-दूसरे के करीब होते गये। मिश्र जी के दो लघु उपन्यास 'आकाश की छत' और 'रात का सफर' को युनि. के पाठ्यक्रम में शामिल कर से ज्यादा छात्रों ने एम.ए. में शोधकार्य किया और डॉ. से ज्यादा छात्रों ने। मिश्र जी के लघु उपन्यासों का हिन्दी से गुजराती में अनुवाद मिश्र जी की प्रेरणा और मार्गदर्शन से ही हुआ। मिश्र जी ने मुझे निःस्वार्थ प्रेम और स्नेह दिया। ये मेरे जीवन की अमूल्य निधि के समान है। बिना किसी कारण स्नेह करने वाले लोग इस दुनिया में आजकल कहाँ है ? उन्होंने मुझे एक पिता का स्नेह दिया। इसलिए ही जब मुझे उनके स्वास्थ्य संबंधी समाचार मिलते हैं कि वे ठीक नहीं तो मैं तुरंत ही महादेव से प्रार्थना कर लेता था। अब तो वे मेरी नियमित प्रार्थना में हैं। शहरी भागदौड़ में कभी फोन करने में एक महीना हो जाय तो दिल्ली से फोन आता है। "यशवंत भाई-सब ठीक तो है ना ? कई

उपराष्ट्रपति भैरों सिंह शेखावत, महा लेखपाल टी.एन. चतुर्वेदी के साथ विद्यानिवास मिश्र की पुस्तक का विमोचन करते हुए

दिनों से आपका फोन नहीं आया ? तब एक तरफ मन में संकोच होता है तो दूसरी तरह मेरे मन में स्फूर्ति के फव्वारे छूटते हैं।

मिश्रजी ने मुझे तब चौंका दिया जब दिल्ली के प्रकाशक का मुझे फोन आया कि आपको एक किताब भेजनी है। मैंने कहा लेकिन मैंने तो कोई किताब नहीं मँगवाई। तब प्रकाशक ने कहा रामदरश मिश्रजी ने कहा है इसलिए आप अपना पता भेजिए। तीसरे दिन पार्सल मिला। सोचा मिश्रजी की कोई नई किताब होगी। यह अनुमान सत्य था। किताब का शीर्षक था - ''आधुनिक साहित्य सर्जना के आयाम''।

लेकिन जैसे ही मैंने पहला पेज देखा तो लिखा हुआ था- 'प्रिय यशवंत गोस्वामी को' समर्पित ! कहीं मेरी आँखें धोखा तो नहीं खा रहीं! दूसरी बार, तीसरी बार पढ़ा। सजल नेत्रों से मिश्रजी को तुरंत फोन किया- सर ये क्या ? मैं तो इसके लायक नहीं सर ! पर सर ने उतनी ही सहजता से कहा गोस्वामी जी आपने बहुत कुछ किया है ! तो मैं भौंचक होकर सुनता ही रहा ! और कहा सर-ये कैसा ऋणानुबंध है ? मैं इस ऋण से कैसे मुक्त हो पाऊँगा ? अरे गोस्वामी जी ऐसा मत सोचो ये तो प्रेम का प्रसाद है और कुछ नहीं ! उस दिन स्वयं से गौरवान्वित होता रहा और सोचने लगा कि आज कल हर रिश्ते में सौदेबाजी चल रही है तो ये रिश्ता क्या कहलाता है.... तब अंदर से आवाज़ आई यही तो है राम का और रामदरश का मिश्र चरित्र जो सदैव दूसरों को बड़ा बनाने में ही अपना सुख मानते हैं । छोटी सी मदद कर एहसान के बोझ तले दबाने वाले लोगों की इस दुनिया में रामदरश मिश्र का व्यक्तित्व और कृतित्व इसलिए तो बेमिसाल और बहुआयामी है। मुझे पुस्तक समर्पित करना मेरे लिए साहित्य का सबसे बड़ा पुरस्कार 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से कम न था ! मिश्रजी स्वभाव से संवेदनशील और संकोची होने के कारण भीड़भाड़ और सभा-सोसायटी में दूसरों को प्रभावित नहीं कर पाते इसका अनुभव राजकोट यात्रा पर भी हुआ। पर मिश्रजी अकेले में बैठकर स्वयं से संवाद करते हैं तो वे सोचते हैं, भीड़ में पूछे गये प्रश्न का यदि ये उत्तर मैंने दिया होता तो कितना अच्छा था।

मिश्रजी जहाँ अपने को छोटा अनुभव करते हों या जिस कार्य में उन्हें संतोष न मिले उस कार्य से सदा दूर रहे। उनका बाह्य जीवन जितना सीधा-सादा और महादेव की तरह भोलाभाला है उतना ही उनका मन निर्मल और पवित्र है। स्व की अपेक्षा दूसरों की प्रशंसा करना और सुनना उसे ज़्यादा पसंद है ऐसा मैंने कई बार अनुभव किया।

मिश्रजी जहाँ अपने को छोटा अनुभव करते हों या जिस कार्य में उन्हें संतोष न मिले उस कार्य से सदा दूर रहे। उनका बाह्य जीवन जितना सीधा सादा और महादेव की तरह भोलाभाला है उतना ही उनका मन निर्मल और पवित्र है। स्व की अपेक्षा दूसरों की प्रशंसा करना और सुनना उसे ज्यादा पसंद है ऐसा मैंने कई बार अनुभव किया।

मिश्रजी के लिए गुजरात 'दूसरा घर' के समान रहा। 1956 में जब मिश्रजी की नियुक्ति बड़ौदा में और 1947 में अहमदाबाद में हुई। ये उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना थी। 1947 में नवसारी फिर 1960 से 1964 तक अहमदाबाद में ही रहे। 10 अगस्त, 1964 को जब वे दिल्ली चले गए तब तो मैं पैदा भी नहीं हुआ था। इसके बावजूद भी मुझे मिश्र जी का जो स्नेह और प्यार मिला वह मेरे जीवन की अमूल्य निधि है।

अपने अंर्तबाह्य व्यक्तित्व और कृतित्व से मेरे अंधकारमय जीवन में सूरज की भाँति उजाला करने वाले और चंद्र की भाँति सदा शीतलता प्रदान करने वाले मेरे आदर्श, मेरे गुरू, मेरे पथप्रदर्शक मिश्र जी को शताब्दी वर्ष में प्रवेश करने पर शत-शत वंदन के साथ महादेव से प्रार्थना की कि आप अपने उत्तरकाल में स्वस्थ और तंदुरूस्त रहो। रूद्राक्ष की माला की तरह 108 वर्ष तक आड़ीखम रहो । सुना है कि सौ साल बाद जवानी फिर से आती है ! आप पुनः ईश्वर की कृपा से जवानी प्राप्त कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाए। मेरी यह प्रार्थना कुछ तो सफल हुई मिश्र जी ने जब दुनिया छोड़ी वे 102वें साल में थे। उन्हें नमन। ◆

पता : अध्यक्ष-हिन्दी विभाग कणसागरा
महिला कॉलेज, राजकोट
मो. : 9427495175

रामदरश मिश्र के काव्य में प्रकृति चिंतन

कार्तिकेय शुक्ल

रामदरश जी स्वयं कविता के संबंध में बताते हैं कि, ''कविताएं तो मेरी चिर सहयात्री हैं। कविता मेरा पहला प्रेम है। मेरी अंतिम सांस तक यह मेरे साथ जुड़ी रहेगी।

रामदरश मिश्र एक ख़ास बनावट के रचनाकार हैं। वैसे तो उन्होंने प्रायः साहित्य की सभी विधाओं में लेखनी चलाई है, किंतु फिर भी उनकी काव्य तितिक्षा ही सर्वप्रमुख है। उनका कवि व्यक्तित्व एक ऐसे धरातल पर उपजा और बढ़ा है, जिसकी जड़ में लोक और लोक से संदर्भित विभिन्न आयाम परिलक्षित होते रहे हैं। कवि रूप में उनका प्रभाव पिछली शताब्दी के पांचवें दशक से लेकर इस शताब्दी के तीसरे दशक तक व्याप्त है।

रामदरश जी स्वयं कविता के संबंध में बताते हैं कि, ''कविताएं तो मेरी चिर सहयात्री हैं। कविता मेरा पहला प्रेम है। मेरी अंतिम सांस तक यह मेरे साथ जुड़ी रहेगी। मैं जीवन के इस पड़ाव पर भी कविताएं व डायरी लिखता रहता हूँ।''[1] वैसे रामदरश जी उम्र के इस पड़ाव पर निरंतर काव्य रचना में जुटे दिखते हैं। और तो और जहां तक हो सकता है वे काव्य गोष्ठियों में अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराते रहते हैं। यदि उनके पहले कविता संग्रह पर बात किया जाए तो वो ''पंथ के साथी'' के नाम से सन् 1951 में प्रकाशित हुआ था, तब से आज तक उनके लगभग पंद्रह कविता संग्रह की पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

जब कविताओं पर चर्चा की जा रही है तो मिश्र जी की कविता और उनकी यात्रा पर भी एक नज़र डाल लेनी चाहिए। मिश्र जी ने कविता की शुरुआत वार्णिक-मात्रिक छंदों से की किंतु बाद में उनकी कविता तत्कालीन रचना पद्धति अर्थात् मुक्त छंद में रचती गईं। हाँ ये ज़रूर है कि शुरुआती के मुक्त छंद लय और राग के निकट हैं तो बाद के उनसे भी मुक्त। और बाद में वे उस रूप में आने लगीं जो आज की कविता का मुख्य रूप है।

मिश्र जी की कविता एक अन्य मामले जिसमें वो बिल्कुल अलग और अनुपम है, वो है उसका किसी वाद या विचारधारा का पिछलग्गू न होना। नहीं तो इसकी प्रबल संभावना होती कि उनकी कविता का सिर्फ एक ही रंग रह जाता। उनकी कविताएं जिस पृष्ठभूमि को लेकर आगे बढ़ती हैं। वो जनभूमि है। वे वही रचते हैं जिसमें वो स्वयं को देखते और महसूस कर पाते हैं।

यदि हम मिश्र जी की उन कविताओं पर बात करें। जो प्रकृति और उसके विविध उपादानों पर आधारित हैं तो हम देखेंगे कि उनकी ढेर सारी कविताएं प्रकृति चिंतन से संप्रिक्त हैं। वे सिर्फ प्रकृति का चित्रण ही नहीं करते वरन चिंतन भी करते हैं। गाँव से जुड़े होना उन्हें एक अलग दृष्टि प्रदान करता है, तभी तो वे प्रकृति को जीते करीब से देखते और महसूस कर पाते हैं। उतने ही बेहतरीन तरीके से उसे कागज़ पर उतार भी पाते हैं।

जब हम मिश्र जी की प्रकृति व चिंतन परक कविताओं पर दृष्टिपात करते हैं तो देखते हैं कि वे गाँव, मौसम, पशु-पक्षी, धरती, फूल-पत्ती, नदी और बादल आदि सभी को अपने काव्य का अंग बनाते हैं। और इसी बहाने व्यवस्था से सवाल भी करते हैं कि वे क्यों इन्हें नुकसान पहुंचाने पर तुला हुआ है। फिर जहाँ हो सकता है वे रास्ता भी सुझाते हैं कि कैसे इन्हें बचाया जा सकता है।

हम रामदरश मिश्र के काव्य में प्रकृति चिंतन पर बात शुरू करें। उससे पहले ये देख

लें कि उन्हें ये ज्ञान तत्त्व की प्राप्ति कहां से होती है? क्योंकि तभी पता चल पाएगा कि उनका कवि मन किन आधारभूत स्रोतों से शक्ति प्राप्त करता है। जब हम प्रकृति पर नज़र डालते हैं तो देखते हैं कि प्रकृति के जिन पंचभूत तत्त्वों की कल्पना को ज़रूरी माना गया है। वे क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर हैं, और इन्हीं को ध्यान में रखते हुए रामदरश मिश्र जी अपनी काव्य रचना को नया आयाम दे पाते हैं।

इसी प्रकृति चिंतन को मिश्र जी अपनी कविता में प्रकृति के उपादानों से जोड़ कर जीवन तत्त्वों को नया नाम देते हैं। उनकी एक कविता की कुछ पंक्तियाँ इसी ओर संकेत करती हैं -

"अब क्षितिज के पार केवल दीखती है शून्य रेखा
और पीछे दूर तक जीवन चरण का शेष लेखा
बीच में जीवन मरण के हो खड़ा अब देखता है
सामने धू धू अनल का ढेर केवल जल रहा है
क्षितिज की धूसर डगर पर एक जीवन चल रहा है"[2]

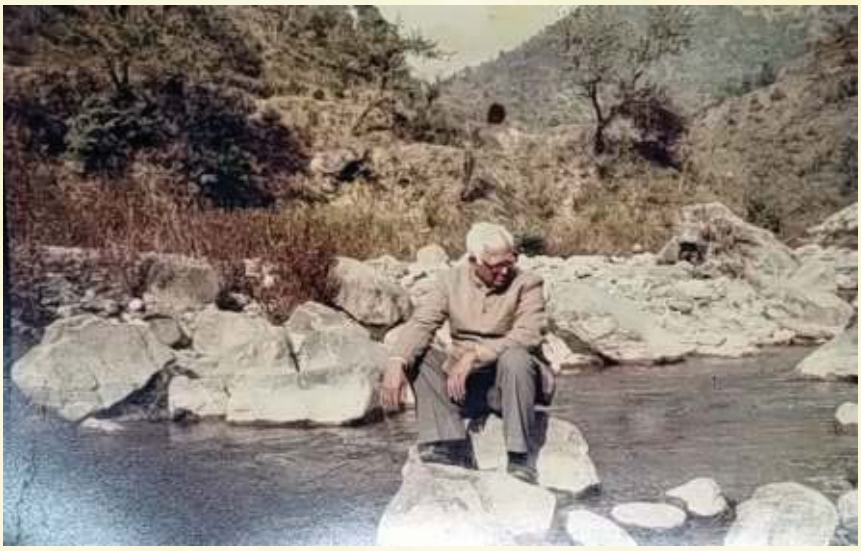

मिश्र जी की कविता एक अन्य मामले जिसमें वो बिल्कुल अलग और अनुपम है, वो है उसका किसी वाद या विचारधारा का पिछलग्गू न होना। नहीं तो इसकी प्रबल संभावना होती कि उनकी कविता का सिर्फ एक ही रंग रह जाता। उनकी कविताएं जिस पृष्ठभूमि को लेकर आगे बढ़ती हैं, वो जनभूमि है। वे वही रचते हैं जिसमें वो स्वयं को देखते और महसूस कर पाते हैं।

पर्यावरण के बारे सोचते समय अक्सर एक सामान्य सा शब्दार्थ हमारे जेहन में कौंधता है और वो वही जो पृथ्वी के चारों तरफ घिरा हुआ आवरण है। जिसे पर्यावरण के सामान्य परिभाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है। उसे ही "परितः आवरणं पर्यावरणम्" कहा गया है। यही पर्यावरण हमें एक जीवन प्रदान करता है और जब इसके स्वयं के जीवन पर ख़तरा मंडराता है तो सजग कवि मन उस पर कलम चलाता है ताकि आमजन भी इस पर ध्यान दें। जिससे उसकी रक्षा हो सके। और यही काम रामदरश मिश्र जी अपनी कविताओं के माध्यम से करते हैं। इसी ध्यानाकर्षण के परिणामस्वरूप ये काव्य पंक्तियाँ हमारे सामने उपस्थित हो पाती हैं -

"मुझे नहीं चाहिए तुम्हारी उलूक वाहिनी लक्ष्मी
लेकिन मेरे हरसिंगार को तो आहत मत करो
मेरा हरसिंगार शरद है
और शरद जीवन है उन सबका जो प्यार करते हैं"[3]

कवि प्रकृति को क्षति पहुंचता देख दुःखी होता है। वो इस क्षरण पर क्षुब्ध होकर अपनी चिंता ज़ाहिर करता है। उसकी चिंता उसके कवि मन से अभिव्यक्त होती है और कविता के रूप में हमारे सामने आती है। मिश्र जी की बाग नामक कविता इसी चिंता को लेकर लिखी जान पड़ती है। जब वे लिखते हैं कि जो पेड़ कभी शादी-ब्याह में, दर्द-उछाह में हमारे साथ होते थे। वे अब नष्ट हो रहे हैं। उनका अस्तित्व मिट रहा है।

"कहाँ गए वे पेड़
शादी में, ब्याह में
दर्द में, उछाह में
लोग जिनके हरे पल्लवों के साथ होते थे
शीत में पीले पड़ कर झड़ते जिनके पत्ते
लोगों की ठिठुरन में आँच बन जाते थे
जिनकी सूखी हुई टहनियाँ
रसोई घर में रोटियों में बदल जाती थीं।"[4]

रामदरश मिश्र एक वैज्ञानिक चेतना के संप्रक्त कवि हैं। उनकी कविताएं महज़ भावों को उद्गार ही नहीं अपितु विज्ञान की कसौटियों पर खरा उतरने वाले तर्कों को लेकर आगे बढ़ती हैं। उनकी कविताएं उस चिंता को ज़ाहिर करने से कतराती नहीं जो प्रकृति और प्राकृतिक संपदाओं के नष्ट होने से संबंधित हैं। वे पूछते हैं और सिर्फ पूछते ही नहीं बल्कि सवाल भी उठाते हैं कि आख़िर क्या कारण हैं कि हम अपने पैरों पर ही कुल्हाड़ी मार रहे हैं? वे जब अपनी लकड़हारा कविता में इस बात की ओर संकेत करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि उनका कवि मन भावी पीढ़ियों के लिए भी कितना चिंतित और सजग है।

"वह कुल्हाड़ी से काटता है पेड़
उसे पता नहीं कि वह पेड़ नहीं
धीरे-धीरे अपना घर काट रहा है
वह लकड़ियां बेचता है
उसे पता नहीं कि वह लकड़ियां नहीं
धीरे-धीरे बस्ती के हाथों
अपने छांहें बेच रहा है"[5]

विष्णु प्रभाकर, डॉ. महीप सिंह, प्रकाशक नितिन के साथ रामदरश मिश्र रचनावली का लोकार्पण करते हुए

मिश्र जी की एक विशिष्टता जिस पर बहुत कम लोगों का ध्यान जा पाता है, वो है उनका बहुत कम उम्र में अपना गांव, घर और समाज छोड़ कर देश के बड़े-बड़े शहरों में रह कर भी अपने गांव, घर और समाज को भूल नहीं पाना। और यही बात उन्हें अपने समकालीनों से अलग पहचान दिलाती है। वे कविता के माध्यम से जल, जंगल और जमीन को बचाने के मुहिम में आवाज़ बुलंद करते रहते हैं। नित्य नष्ट होते जंगलों के प्रति उनकी जवाबदेही उनकी प्रतिबद्धता को बयां करती है। उनकी "बरसात गई" कविता में कुछ इन्हीं संदर्भों को चित्रित किया गया है -

"कहाँ है वह जंगल?
तब ऐसा क्यों लगता है
कि जंगल में जो जलती आग छोड़ गया था
वह रात के सन्नाटे में जल-जल उठती है
और पूरा का पूरा जलता हुआ जंगल
मुझमें से गुज़रने लगता है"[6]

मिश्र जी की कविता कितने आयामों को छूती है। ये उनकी प्रकृति संबंधित कविताओं को पढ़ने पर ही पता चल पाता है। क्योंकि उनका विस्तार व्यापक फलक पर है। प्रकृति जिनसे पुष्पित और पल्लवित है। वे कोई और नहीं किसान हैं। किंतु वही किसान जब परेशान होते हैं तो मिश्र जी का कवि मन परेशान हो उठता है। और वे उनके शब्द बन कर सबके सामने आते हैं। वे कृषक जीवन की विसंगतियों की तरफ उंगली उठाते हैं। मार्मिकता से उनके प्रश्नों को रखने की कोशिश करते हैं। उनके लिए किसान सृष्टि के पालनकर्ता हैं। इसलिए जब वही किसान शोषित और पीड़ित होते हैं तो वे उनके साथ आते हैं। शायद इसी शोषण और पीड़ा को शब्द देने के लिए उनकी कलम से ये पंक्तियां निकली होंगी-

"हाथ कुछ आया न, तू फसलें उगाता रह गया
चर गए पशु खेत, तू पंछी उड़ाता रह गया"[7]

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही प्रकृति चिंतन पर विचार किया जाता रहा है। वेद और उपनिषद् भी प्रकृति चिंतन पर अपनी चिंता और मंतव्य व्यक्त करते रहे हैं। इसी प्रकृति चिंतन को मिश्र जी प्रकृति संरक्षण के रूप में स्वीकारते हैं। और ये स्पष्ट करते चलते हैं कि प्रकृति को बचाने और आने वाली पीढ़ियों को सौंपने के लिए जो ज़रूरी उपाय करने हैं। उन पर खुल कर बातें की जाएं ताकि क्या उचित है और क्या अनुचित ये सभी को ज्ञात हो सके। मिश्र जी जब अपनी पेड़ नामक कविता में इस ओर इशारा करते हैं तो बहुत सारी बातें स्वतः स्पष्ट हो जाती हैं-

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही प्रकृति चिंतन पर विचार किया जाता रहा है। वेद और उपनिषद् भी प्रकृति चिंतन पर अपनी चिंता और मंतव्य व्यक्त करते रहे हैं। इसी प्रकृति चिंतन को मिश्र जी प्रकृति संरक्षण के रूप में स्वीकारते हैं। और ये स्पष्ट करते चलते हैं कि प्रकृति को बचाने और आने वाली पीढ़ियों को सौंपने के लिए जो ज़रूरी उपाय करने हैं।

"कैसा लगता होगा उन्हें
जब देखते होंगे कि
आदमियों के मौसम अलग-अलग हैं
उनके लिए हवा अलग-अलग है
आग अलग-अलग है
धरती अलग-अलग है
आसमान अलग-अलग है
उनकी हँसी पर
आँसू पर
सपनों पर
अलग अलग मज़हबों के नाम लिखे हैं।"[8]

हम देखते हैं कि मिश्र जी की प्रकृति परक सभी कविताओं के केंद्र में जो महत्त्वपूर्ण बिंदु कार्य कर रहा है, वो यही है कि इन्हें नष्ट नहीं होने देना है। और यदि ये नष्ट हो रहे हैं तो अपनी कविताओं के माध्यम से इन्हें आवाज देना है ताकि सत्ता प्रतिष्ठान के साथ साथ आम जनमानस भी इनके बचाव के लिए आगे आ सके। इतने के बाबजूद कवि अपनी सार्मथ्य समझता है। उसे ज्ञात है कि वो बहुत कुछ नहीं कर सकता फिर भी वो जितना कर सकता है वो करता है। और यही गुण उसे विशिष्ट बनाता है।

मिश्र जी अपनी एक कविता "अपने से अपने तक" में इसी बात का तस्दीक करते हैं-

"आवाज़ें लगाता हूँ
लोगों को जगाता हूँ
देश विदेश के नेताओं की पीड़ाएं दुहराता हूँ
लोग चाय घरों में
रेडियो की छाया में बहसें करते हैं
और रोज़ की तरह
चाय पीकर निकल जाते हैं
एक सस्ता फिल्मी गीत गुनगुनाते हुए।"[9]

मिश्र जी प्रकृति के बदलते स्वरूप पर अपनी आशंका जताते हुए, जो बातें दर्ज़ कराते हैं। उन्हें देख कर लगता है कि मानो ये कोई हिन्दी के कवि न होकर वनस्पति विज्ञान का कोई ज्ञाता हों। उनकी चिंता निजी चिंता से आगे बढ़ कर सामुदायिक चिंता के रूप में अभिव्यक्त होती है। उनकी कवि दृष्टि इतनी पैनी है कि शायद ही प्रकृति का कोई स्वरूप अछूता रह जाए, जिसे वो छू न सकें। प्रकृति के लगभग सभी स्वरूपों पर उनकी कलम चलती दिखती है। और यही दृष्टि का पैनापन उन्हें हिन्दी काव्य जगत के बड़े कवियों में शामिल करता है।

मिश्र जी की प्रकृति परक काव्य की ख़ास उपलब्धियों पर बात की जाए तो वो प्रकृति चिंतन और संवेदना का मिला जुला रूप ही होगा। क्योंकि उनकी प्रकृति संबंधी कविताएं जिन मूल्यों को छूती हैं वे पर्यावरण के लिए रामबाण सरीखे हैं। इन कविताओं की प्रासंगिकता की बात की जाए तो जब भी वैज्ञानिक स्तर से कविताओं में अभिव्यक्त चिंताओं और संवेदनाओं की ओर उन्मुख हुआ जाएगा तो मिश्र जी की कविताएं रास्ता दिखाती प्रतीत होंगी। अपने आप में एक नई तरह की ये कविताएं प्रकृति के चिंतकों के लिए सुखद अहसास जैसी हैं। मनुष्य के जीवन को बेहतर बनाने के लिए प्रकृति जितना कार्य करती है, प्रकृति को बेहतर रखने के लिए ये कविताएं उतना ही कार्य करती दिख रही हैं। इन कविताओं के विवेचना से मिश्र जी के काव्य में प्रकृति के विविध रूपों का विशद चित्रण आकर्षित करता है और साथ ही एक दिलासा दिलाता है कि कलम चलाने वाले हाथ भी अपनी थातियों के के रक्षा के लिए चिंतित हैं।

1 कविता मेरा पहला प्रेम रामदरश मिश्र, जनता जनार्दन http://www.jantajanardan.com/NewsDetails/31923/my-first-love-poem:-ramdrs-mishra.htm

2 रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्रा : रामदरश मिश्र रचनावली (कविता खण्ड) खण्ड - एक, पृष्ठ संख्या 10

3 रामदरश मिश्र की काव्य यात्रा - सं. स्मिता मिश्रा, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2011, पृष्ठ संख्या 274

4 रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्रा : रामदरश मिश्र रचनावली (कविता खण्ड) खण्ड-दो, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली 2010, पृष्ठ संख्या 194

5 रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्रा : रामदरश मिश्र रचनावली (कविता खण्ड) खण्ड-दो, पृष्ठ संख्या 194

6 रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएं - सं. रघुवीर चौधरी, जंगल, पृष्ठ संख्या 47

7 रामदरश मिश्र, बाजार को निकलें हैं लोग, गजल क्र. 6, पृष्ठ संख्या 12

8 रामदरश मिश्र-शब्द सेतु, अविराम प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1994, पृष्ठ संख्या 40

9 रामदरश मिश्र एवं स्मिता मिश्रा : रामदरश मिश्र रचनावली (कविता खण्ड) खण्ड-एक, पृष्ठ संख्या 340

◆

पता : हैदराबाद विश्वविद्यालय-500046,
एनेक्स हॉस्टल, कमरा संख्या-107
मो. : 6388366322

शताब्दियों तक खिलते रहेंगे प्यार के फूल

प्रो. सविता मिश्र

उनका आत्मीय, स्नेहिल व्यवहार और उनका शुभाशीष हर किसी पर बरस रहा था। मैं सोच रही थी कि वास्तव में बड़ा वही है जो दूसरों को भी बड़ा बना देता है।

आज जब रामदरश मिश्र जी पर कुछ लिखने बैठी हूँ तो अनायास ही उनकी कविताएं और कविता के साथ उनके शताब्दी समारोह में हुई भेंट स्मृति में कौंध उठीं है। मन अनायास ही पंद्रह अगस्त 2023 को आयोजित शताब्दी समारोह में जा पहुँचा, जब कम्यूनिटी सेन्टर, ब्रह्मा अपार्टमेंट, द्वारका, नई दिल्ली में मिश्र जी से भेंट हुई थी। समागार में उनके व्यक्तित्व के उजास और उनके साहचर्य की आभा में हम सब डूबे हुए थे।

उनका आत्मीय, स्नेहिल व्यवहार और उनका शुभाशीष हर किसी पर बरस रहा था। मैं सोच रही थी कि वास्तव में बड़ा वही है जो दूसरों को भी बड़ा बना देता है। अपने स्नेहपूर्ण सद्भाव, अपनी शुभकामनाओं, शुभाशीषों और अपनी अनौपचारिकता से क्षण भर में दूसरे का संकोच समाप्त कर देता है। इस यांत्रिक युग में उनसे हुई भेंट संजीवनी सदृश होती है। उनसे हुई हर मुलाकात उनके परिपक्व चिंतन, उनकी भाव संपदा की वीथियों में ले जाती है। इस शताब्दी वर्ष में भी उनकी सक्रिय रचनात्मकता का प्रमाण है कि उनकी अनेक पुस्तकों का और उन पर केन्द्रित अनेक प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के विशेषांकों का विमोचन हुआ। शताब्दी समारोह से लौटने के बाद कई दिनों तक रह-रहकर कितना कुछ स्मृतियों में लौट रहा है। उनका स्नेह और आशीष मेरे लिए अनमोल है। मेरा मन बार-बार स्मिता जी का आभार व्यक्त कर रहा है, जिन्होंने शताब्दी समारोह का निमंत्रण भेजा था। कई बार तो ऐसा भी हुआ है कि कुछ लोग सविता और स्मिता में भ्रमित ही होते रहे और पूछते थे, आप तो मिश्र जी की बेटी है न! मैं यही कहती थी, 'बेटी तो स्मिता मिश्र है पर हाँ, मैं भी बेटी ही हूँ। स्मिता और सविता का यह भ्रम मेरे लिए बहुत सुखद बना रहा। शताब्दी समारोह की भव्यता अद्भुत थी। मेरा मन मिश्र जी की कविता की नन्हीं कली (स्मिता) को स्नेहिल अशीर्वाद देता रहा और नमन भी करता रहा, जिन्होंने इतना भव्य और सार्थक कार्यक्रम आयोजित किया था। मैं निरंतर यही सोचती रही, काश, मैं भी पितृतुल्य मिश्र जी के लिए कुछ कर पाती, जिन्होंने मेरी सृजनात्मकता को नयी धरती, नया आकाश दिया। मंच पर अनेक जाने माने साहित्यकार उपस्थित थे, जिन्होंने मिश्र जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर पूरी आत्मीयता और सम्मान से अपने भाव प्रकट किए। सभागार साहित्य जगत के प्रतिष्ठित साहित्यकारों के साथ नवोदित रचनाकारों की आभा से दीप्त हो रहा था। इस साहित्यिक अनुष्ठान में प्रज्ञा पुरुष रामदरश मिश्र की मुखमंडल की दीप्ति चहुँओर फैल रही थी। आयोजन की भव्यता अद्भुत थी।

मिश्र जी उन विरल साहित्यकारों में से हैं जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व में अद्भुत साम्य है। अप्रैल 2023 में मैं और कथाकार अलका सिन्हा उनसे समय से लेकर मिलने पहुँचे तो वे माँ जी के साथ हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। हमें देखते ही उनके मुखमंडल पर स्नेहिल तरलता फैल गयी और दोनों बाहें फैलाकर गुनगुना उठे, 'बहारो फूल बरसाओ, मेरी बेटियाँ आयी हैं।' उनकी स्निग्ध ममता के सान्निध्य में अप्रैल की वह शाम बेहद खूबसूरत हो उठी। कुछ ही दिन पूर्व उनका ऑपरेशन हुआ था। माँ जी का स्वास्थ्य भी कुछ शिथिल था, किन्तु बराबर हमारे साथ बैठी रही और बीते हुए कष्टप्रद दिनों की स्मृतियाँ साझा करती रही। मुझे जीवन संध्या

की इस बेला के मिश्र जी का गीत याद आता रहा- घिसते घुलते हुए परस्पर/हम हो गए स्वयं खुशबू घर/पता नहीं अब कौन है चंदन/और कौन है पानी। वे मंद स्वर के साथ अपनी नयी कविताएँ सुना रहे थे और मेरा मन ईश्वर से यह प्रार्थना कर रहा था कि उनकी चौखट पर हमेशा ताजा धूप हँसती रहे, साहचर्य की ऊष्मा गुनगुनाती रहे। माँ जी उनके साथ भादों की घोर उमस में क्वार-कार्तिक की सांस बनकर खिलखिलाती रहे और उनके घर में सदैव स्वर्ण मंदिर-सी सुबह खिलती रहे।

14 सितम्बर, 1997 में स्वाधीनता के 50 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में लंदन में कवि सम्मेलन में काव्य पाठ करते हुए कन्हैया लाल, नंदन और भारतीय उच्चायुक्त लक्ष्मीमल्ल सिंघवी साथ में हैं

शाम ढल रही थी, मिश्र जी ने कुछ डायरी के अंश भी सुनाए, जिनमें उनके शैशव, किशोर और युवावस्था के कुछ अनमोल प्रसंग थे। मैं महसूस कर रही थी कि उनकी खिड़की पर ठिठकी वह शाम भी कुछ समय के लिए ठिठक कर ही रह गयी और उन्हें सुनती रही। उनके सहज व्यक्तित्व का औदात्य, उनके आँगन की कच्ची ज़मीन, उनकी सरकंडे की कलम, स्नेहिल आत्मीयता का अजस्र स्रोत एक बार किसी को बाँध लेता है तो वह फिर मुक्त नहीं हो पाता। मिश्र जी की अबोध शिशु सी निर्मल हँसी, अदम्य आशावादिता, संवेदनाओं का अकुंठ वैभव वास्तव में अनुकरणीय और वंदनीय है। अपने दुःख, अपनी चिंताएँ कभी न कहना और अत्यन्त आत्मीयता से भरकर सबके हाल-चाल पूछना ... मैं सोचती हूँ तो सोचती ही रह जाती हूँ कि मिश्र जी ने कहाँ से पाया है इतना निर्मल मन। उनके सान्निध्य में मुझे महसूस होता है कि अपराजेय आस्था में लीन मिश्र जी के भीतर का महान रचनाकार उनकी रचनाओं में बहुत गहरे व्याप्त रहता है। उनकी आत्मीयता यह साक्ष्य है कि 9 फरवरी, 2023 को सम्पन्न हुए बेटी अपूर्वा के विवाह में उन्होंने शगुन के साथ उसे और दामाद अनुभव को जो अपना काव्यात्मक शुभाशीष भेजा, जीवनभर की स्वस्तिकामना बन गयी।

जब-जब भी मिश्र जी से मिलना हुआ, मैंने महसूस किया कि उनकी भावाकुल सौंदर्यानुभूति, उनका प्रखर चिंतक रूप, उनकी संवेदना, उनके मुक्त ठहाके जीवन को एक विशिष्ट सौंदर्य एवं गरिमा प्रदान करते हैं। वाणी विहार में अपने आवास पर मंद-मंद स्मित के साथ अपने पास आयी पत्रिकाओं के कुछ नये अंक देते हुए कहते हैं- सविता ! इनमें अपनी कविताएँ भेजना और फिर अपनी ही किसी रचना का कोई अंश गुनगुना उठते हैं।

वास्तव में मिश्र जी का स्वयं का व्यक्तित्व खुली हवा सा बहता हुआ रूप है। उनसे मिलने से पूर्व हम सभी को यही संकोच होता है कि वे इतने बड़े साहित्य तपस्वी के समक्ष हम लोग कैसे खुल पायेंगे, क्या बात करेंगे पर पहली ही भेंट में यह भ्रम टूट जाता है। डी.लिट्. करते समय मिश्र जी के संपूर्ण साहित्य से गुज़रते समय मैंने उन्हें अपराजित योद्धा के रूप में पाया है। उनके साहित्य में व्याप्त अद्भुत जिजीविषा और अपराजित आस्था के अनेकानेक दृष्टांत बिखरे पड़े हैं। विद्यानिवास मिश्र ने कहा भी है- 'धूप, चाँदनी, सूर्य, चाँद, नदी, पेड़, सबके साथ उनका गहरा रिश्ता रहा है तथा वे अपने रास्ते की प्रत्येक कच्ची ईंट के संघर्ष तथा संभावना की आँच में पकाने वाले कवि हैं।' बीहड़ कछार की माटी से जीवन संचित करने वाले रामदरश जी से जब भी भेंट होती है तो देश-विदेश की घटनाओं पर चर्चा करने के साथ-साथ वे हर साल बाढ़ से घिरे डुमरी गाँव में जा पहुँचते हैं। उनकी आँखों में उस समय बाढ़ की मार से घायल, कर्ज़ और उपवास के कारण अभावजन्य भावनाओं की कहानियाँ इतने बरसों बाद भी कौंध उठती है। मूसलाधार बारिश... भहरा कर गिरती हुई दीवारें, पिता की आँखों में काँपता सन्नाटा और छलनी छत के दर्द को झेलती माँ... मिश्र जी की चेतना माँ की स्मृति से बिंधकर और प्रदीप्त हो उठती है और वे बताने लगते हैं कि किस तरह बचपन में जब उन्होंने पिटाई करने वाले मास्टर जी के डर से स्कूल छोड़ने की ठान ली तब उनकी माँ ने कौड़े की राख में उंगली से 'क' बनाना सिखाया था। बहुत ही भावुक होकर मिश्र जी अपनी माँ के प्रति भावाकुल कृतज्ञता ज्ञापित कर उठते हैं । मिश्र जी से हुई हर मुलाकात हमें भीतर तक एक गहरी आश्वस्ति और समृद्ध चेतना से भर देती है। इन मुलाकातों में किसी भी रचना के विषय में उनका तथ्यपरक मूल्यांकन मौलिक चिंतन से दीप्त गहरी अर्न्तदृष्टि देखने को मिलती है। प्रतिरोध और संवेदना उनके भीतर बचपन से ही रही है और यही उनके लेखन के मूल में भी है। वे कहते हैं- 'सविता! उस समय में न जाने कितनी जोंकें थीं जो गाँव वालों को चूसती थीं। मैंने न जाने कितने दर्द देखे हैं, भागे हैं, इस परिवेश के' उनका परिवेश, परिवेशजन्य अनुभव उनके साहित्य को

मिश्र जी उन विरल साहित्यकारों में से हैं जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व में अद्भुत साम्य है। अप्रैल 2023 में मैं और कथाकार अलका सिन्हा उनसे समय से लेकर मिलने पहुँचे तो वे माँ जी के साथ हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। हमें देखते ही उनके मुखमंडल पर स्नेहिल तरलता फैल गयी और दोनों बाहें फैलाकर गुनगुना उठे, 'बहारों फूल बरसाओ, मेरी बेटियाँ आयी हैं।' उनकी स्निग्ध ममता और उनके सान्निध्य में अप्रैल की वह शाम बेहद खूबसूरत हो उठी। कुछ ही दिन पूर्व उनका ऑपरेशन हुआ था।

जीवंतता प्रदान करता है। उनके साथ मैंने आगरा से दिल्ली, दिल्ली से बिजनौर व बरेली और बिजनौर तक की यात्राएँ की हैं।

रास्ते भर मिश्र जी आचार्य हजारी प्रसाद सहित अनेक साहित्यकारों के किस्से सुनाते रहते और सुनाते-सुनाते उन्मुक्त ठहाका भी लगाते रहते। रास्तों में पड़े खेतों, गाँवों को देखकर उनका बाल सुलभ उल्लास देखते ही बनता था। वे कहते थे- 'मन करता है गाड़ी रुकवाकर खेतों में चला जाऊँ । उनके साहचर्य में मुझे उनकी आत्मकथा एवं उपन्यासों के वे अंश स्मृति में कौंधने लगे जहाँ मिश्र जी डहडहाती चाँदनी में आनंदमग्न हो उठते थे। उनकी एक कविता उनके इस उल्लास को देखकर मन में गूँज उठी- 'फागुन की घाटी है/फसलों की नदी में हरा-पीला जल/धूप फैली है पाट-सी।'

एक बार, 9 मार्च, 2006 को आगरा में उ.प्र. हिंदी संस्थान लखनऊ व केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा आयोजित कहानी कार्यशाला में कहानी पाठ में मिश्र जी मुख्य अतिथि थे और मुझे उनके समक्ष कहानी पाठ करने में संकोच हो रहा था। जब मैंने अपना संकोच उनके समक्ष व्यक्त किया तो बड़े ही स्नेहिल स्वर में कहने लगे, 'सविता, संकोच कैसा? अपनों के सामने तो निडर होकर कहानी पढ़नी चाहिए और मनोबल और भी ऊँचा होना चाहिए। बातों ही बातों में सहज रूप से कहे गए उनके शब्दों में न जाने ऐसा क्या होता है कि मन गहरी आश्वस्ति से भर उठता है। उद्घाटन सत्र में भी उन्होंने नए रचनाकारों को आशीर्वाद देते हुए बड़े ही स्नेह से कहा था, 'नयी पीढ़ी नया जीवन लेकर आती है, उसमें एक ताज़गी होती है। वह अपनी बात अपने ढंग से कहती है। नए रचनाकारों के कथ्य व शिल्प में नयी दिशा होती है।' कहानी पर चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था, 'प्रेमचंद हमारे केन्द्र में है। नए लोगों के सामने उनका साहित्य मूल्यवान विरासत है।' अपने गुरु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को स्मरण करते हुए डॉ. मिश्र ने कहा कि द्विवेदी जी कहते थे, 'आप प्रेमचंद की उंगली पकड़ लीजिए, वे आपको घर-घर घुमा लाएँगे।' कहानी में निरंतर हो रहे पठनीयता के ह्रास पर चिंता व्यक्त करते हुए उन्होंने कहानी में अनुभव की आवश्यकता पर बल दिया तथा विचार या विचारधारा को साहित्य की बुनियाद मानते हुए अनुभव को मूल बुनियाद कहा- उद्घाटन सत्र समाप्त होने पर जब वे अग्रिम पंक्ति में आकर बैठे तो कई लोग आ-आकर उनसे मिल रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि पीछे वाली सीट पर बैठे हुए मेरे पापा जी पर पड़ी और उन्होंने पूछा, 'सविता नहीं दिखाई पड़ रही है।' जब मुझे यह सूचना मिली तो मैं आगे गई और प्रणाम करके उनके पास बैठ गई। आत्मीयता से वे मेरा परिचय सबसे कराते रहे। वे सभी नए रचनाकारों की कहानी बड़े ध्यान से सुन रहे थे और अपने विचार भी व्यक्त कर रहे थे।

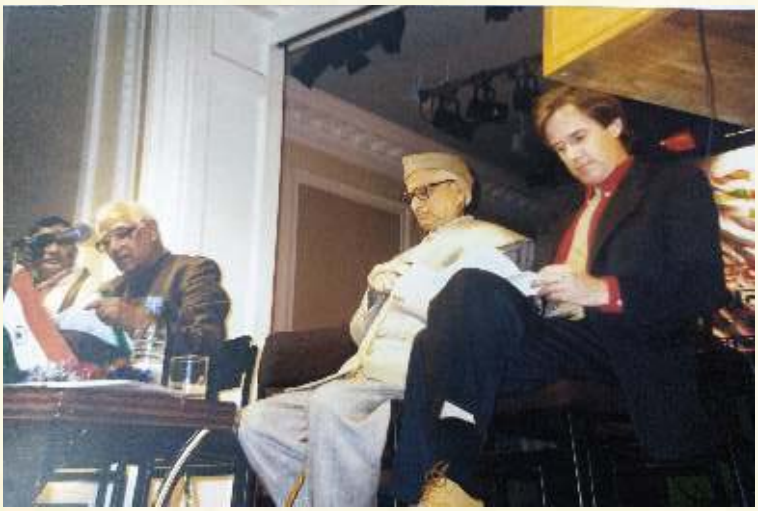

अगले दिन प्रथम सत्र में कुछ देर उपस्थित रहने के पश्चात् जब वे निकले, तो सभागार से निकलते हुए कुछ विदेशी छात्र-छात्राओं ने उनसे मिलकर अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त की और उनके साथ फोटो खिंचवायी। साथ-साथ चलते समय उन छात्राओं ने कुछ प्रश्न पूछने आरंभ किए। मिश्र जी सहज भाव से उत्तर देते हुए चलते रहे। विद्वता और सहजता का यह चरमोत्कर्ष मुझे अभिभूत कर रहा था। भोजन के पश्चात् जब हम लोग दिल्ली प्रस्थान हेतु निकले तो केन्द्रीय हिंदी संस्थान के निदेशक प्रो. हरिमोहन जी सहित अनेक लोग उन्हें गाड़ी तक छोड़ने आए। आत्मीय और स्नहिल जनों के बीच से जाने की टीस मिश्र जी को भी हो रही थी, यह मैं भली-भाँति अनुभव कर रही थी । मेरी भेंट मिश्रजी से फरवरी 2004 में हुई थी, किन्तु उसके बाद जल्दी-जल्दी उनसे भेंट होने का मुझे अवसर मिलता रहा। इस बीच मैं उनके अनेक कृतियों से गुज़र चुकी थी और उनके साहित्य से मुझे गहरा लगाव होता चला गया। इसका कारण यही है कि मिश्रजी उस ज़मीन से जुड़े साहित्यकार हैं जो हमारी अपनी ज़मीन भी है। संघर्षों से जूझती उनकी अदम्य और अटूट जिजीविषा व अद्भुत मूल्यधर्मिता उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को उन ऊँचाइयों पर पहुँचा देती है, जहाँ वे अकेले नहीं रहते, सबको साथ लेकर चलते हैं।

आगरा से दिल्ली तक की यात्रा में मुझे जो सुख मिला, वह अकथनीय है बादलों भरा मौसम... बीच-बीच में बूँदा-बाँदी... खेत-खलिहान... सुंदर-सुंदर प्राकृतिक दृश्य... ऐसे दृश्य जिनका चित्रण उनके साहित्य में बड़े ही अंतरंग रूप से मिलता है। दूर तक लहलहाते खेतों की गंध और सौंदर्य में डूबा उनका मन ... खेतों में काम करते किसानों को देखकर उनके मन में गूँजता अतीत... दहकते सेमल को देखकर बरसों पुरानी डुमरी की स्मृतियाँ... जुते हुए खेतों से उठती मिट्टी की पुकार ने आखिर उन्हें यह कहने को विवश कर ही दिया- 'मन करता है...गाड़ी रुकवा कर खेतों में दूर तक चला जाऊँ...।' बीच में एक जगह चाय आदि के लिए हम लोग जब उतरे तो मैं, पापा और मिश्र जी जहाँ बैठे थे, ड्राइवर उससे थोड़ी दूर पर बैठ गए। मिश्र जी ने बड़े ही आत्मीय भाव से उन्हें अपने पास बुलाया और कहा, 'ये भेदभाव क्यों है भाई! यहीं बैठो... हमारे पास...।' इस मूल्य बोध को क्या नाम दूँ ? यही सब तो है जो उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में दिपदिपाता था। जब हम लोग उन्हें 'वाणी विहार' छोड़ने गए तो वहाँ भी उन्होंने ड्राइवर को

अंदर बुलाकर ही चाय-नाश्ता कराया। इसी संदर्भ में मुझे एक और बात याद आ रही है। 'इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन' से मिश्रजी का नवीनतम उपन्यास 'परिवार' प्रकाशित हुआ था और एक कविता-संग्रह 'पृथ्वी के पक्ष में, जिसके संपादक श्री राधेश्याम तिवारी हैं। प्रकाशक को कई बार फोन करने और पत्र लिखने के बाद भी न तो पुस्तक मिली थी और न ही कोई उत्तर। मैंने मिश्रजी से अनुरोध किया कि आपकी बात प्रकाशक नहीं टालेंगे, अतः आप स्मरण करा दीजिएगा। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही, जब मिश्र जी ने आगरा में मुझे दोनों पुस्तकों (जो उनकी प्रति थी) दे दी और कहा कि मैं और ले लूँगा। प्रकाशक ने मेरी रचना प्रकाशित होने के बाद भी वी.पी. द्वारा भेजने की बात कही थी। जब मैंने मिश्र जी से मूल्य के बारे में पूछा और प्रकाशक की बात बताई तो उन्होंने कहा, 'तुम्हारी तो कविताएँ हैं इसमें, तुम्हें लेखकीय प्रति मिलनी चाहिए।' यात्रा में सभी कम से कम सामान रखना चाहते हैं, फिर भी मिश्र जी को पुस्तक लाना याद रहा। पर इस अवस्था में अद्भुत स्मरण शक्ति, अद्भुत मानवीय बोध... कितनी बार भी इस बड़प्पन को प्रणाम करूँ, कम ही होगा। एक पिता की तरह बिना कहे छोटी-छोटी सारी बातों का ध्यान रखते हैं और इतना कुछ दे डालते हैं जो अमूल्य होता है... मैं तो बरा मौन रह जाती हूँ... सारे शब्द चुक-से जाते हैं।

जब-जब भी मिश्र जी से मिलना हुआ, मैंने महसूस किया कि उनकी भावाकुल सौंदर्यानुभूति, उनका प्रखर चिंतक रूप, उनकी संवेदना, उनके मुक्त ठहाके जीवन को एक विशिष्ट सौंदर्य एवं गरिमा प्रदान करते हैं। वाणी विहार में अपने आवास पर मंद-मंद स्मित के साथ अपने पास आयी पत्रिकाओं के कुछ नये अंक देते हुए कहते हैं- सविता ! इनमें अपनी कविताएँ भेजना और फिर अपनी ही किसी रचना का कोई अंश गुनगुना उठते हैं।

मिश्र जी के सुदृढ़ सुगठित व्यक्तित्व के मूल में उनके संघर्षों के साथ उनकी असीमित जीवनी शक्ति रही है। उनकी दिनचर्या में उनका संयमित जीवन है। उनका शिशु जैसा भोलपान, सिद्धांतनिष्ठता और वैचारिक गांभीर्य हर किसी को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। डी.लिट. करते समय मिश्र जी की हर विधा से संबंधित पुस्तक से लगभग रोज़ ही गुज़रना होता था। उन्हीं दिनों कक्षा में पढ़ाते समय अपनी छात्राओं को मैं मिश्र जी के विषय में बताती रहती थी और उनकी कविताएँ, कहानियाँ पढ़ने के लिए देती थी। छात्राएँ उन्हें पढ़कर मिश्र जी को पत्र लिखती और साथ में अपनी कविताएँ भी भेजती । मिश्र जी उनकी कविताओं पर टिप्पणी भी देते और उनके पत्र का उत्तर भी। कभी-कभी उनका पत्र यहाँ तक पहुँच नहीं पाता था तो वे पुनः पत्र लिखकर रख लेते और मुझसे फोन पर कहते, 'सविता ! जब तुम दिल्ली आओगी तो मैं वह पत्र तुम्हें दे दूँगा और मेरे जाने पर उस पत्र को लिफाफे में रखकर दे देते। छात्राओं को समय पर उनके पत्र का उत्तर न मिल पाने से मिश्र जी बहुत दुःखी हो उठते थे। छात्राओं को लिखे पत्र मैंने फोटोस्टेट कराकर विभागीय पत्रिका में प्रकाशित करायें हैं जो हिन्दी विभाग की अमूल्य धरोहर है।

प्रारंभ मे जब भी मैं उनसे मिलने जाती तो लौटते समय वे प्रायः रिक्शे तक पहुँचाने आते और रिक्शे वाले को समझाते कि कौन से मैट्रो स्टेशन पर छोड़ना है। मैं उन्हें प्रणाम करके विदा लेती तो मेरी आँखें नम हो उठती। मुझे उनके अंदर अपने पिता दिखाई देते जो बिल्कुल इसी तरह स्नेहासिक्त होकर विदा करने घर से बाहर थोड़ी दूर तक आते हैं। हर मुलाकात में उनकी भावुकता, निश्छलता, तरलता व सहयोगी प्रवृत्ति दृष्टिगत होती जो उन्हें अपने पिता से मिली है। माँ के ऊर्जामय व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है उन पर। मिश्र जी बताते हैं कि मैं फसलें, ऋतुएँ देखता हूँ तो मुझे बहुत अच्छा लगता है। आदमी का दुःख-दर्द देखता हूँ तो अपना लगता है। अन्याय होते देखता हूँ तो मन को चोट पहुँचती है, गुस्सा आता है और यही सब है जो मेरी कविता के ज़रिए बाहर आना चाहता है।

एक बार वे बिजनौर हमारे घर आये थे। साथ में अलका सिन्हा भी थीं। सुबह जब मैंने उनसे पूछा कि आपको रात में नींद ठीक आयी तो बोले नींद तो आ गयी पर ओढ़ने वाली चादर छोटी थी तो पाँव खुले रहे। मैं संकुचित हो उठी कि मिश्र जी को हमारे घर में थोड़ी-सी असुविधा उठानी पड़ी। मैंने तो उन्हें पूँढकर सबसे बड़ी चादर दी थी। बिस्तर के पास जाकर जब मैंने देखा तो चादर दोहरी थी, मिश्र जी ने पूरी चादर खोली ही नहीं थी। इस ओर संभवतः उनका ध्यान ही नहीं गया। इस बात पर मिश्र जी, अलका सिन्हा जी और मैं बहुत देर तक हँसते रहे और आज भी याद करके हँसते हैं।

शताब्दी पुरुष मिश्र जी से जब अप्रैल 2023 में और उसके बाद शताब्दी समारोह में भेंट करने का अवसर मिला तब भी यही महसूस किया कि कछार की पगडंडियों की खुशबुएँ आज भी उनके साथ हैं। भौतिकता की अँधी आँधी से जूझती भावी पीढ़ी के लिए साहित्य की रोशनी को बहुत आवश्यक मानते हुए वे कहते हैं-

मेरे बच्चों
आगे का सफ़र तुम्हारा है
तुम्हें अपने घर स्वयं बनाने हैं
लेकिन कभी-कभी इस घर में भी हो लेना
छूना इसके अहसासों को अपनी सांसों से
चले जाना किताबों के पास
तब तुम्हें लगेगा
तुम्हारे भीतर एक नदी बहने लगी है रोशनी की

रोशनी की नदी बह रही है। मिश्र जी अपने साथ-साथ हमें भी बहाते ले जा रहे हैं इस नदी में। उनकी कविता मन में गूंज रही है- छोड़ जाऊँगा कुछ कविताएँ, कुछ कहानियाँ, कुछ विचार जिनमें होंगे कुछ प्यार के फूल।

मुझे पूरा विश्वास है कि ये प्यार के फूल शताब्दियों तक दिग्दिगंत को सुवासित करते रहेंगे। ◆

पता : विभागाध्यक्ष-हिन्दी विभाग,
आर.बी.डी.पी.जी. कॉलेज, बिजनौर
मो. : 97199659317

भूमंडलीकरण और रामदरश मिश्र

डॉ. प्रकाश शंकरराव चिकुर्डेकर

वस्तुतः मिश्र जी का कथा साहित्य इस बात का प्रमाण है कि वे आज भले ही महानगर के निवासी हो किन्तु मूलतः वे ग्राम जगत के चितेरे हैं।

साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में रामदरश मिश्र के उपन्यासों का विशेष अवदान है । उन्होंने ग्रामीण एवं आंचलिक भारतीय समाज का चित्रांकन किया है, जिसे प्रेमचन्द एवं रेणु की परम्परा का समन्वित रूपान्तर कहा जा सकता है। साहित्य-सृजन में प्रतिभा जितनी महत्त्वपूर्ण होती है उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण होता है- साहित्य-विवेक। रामदरश मिश्र के साहित्य-विवेक को उनके द्वारा लिखी गई विभिन्न साहित्य-विधाओं में परखा जा सकता है।

सच कहें तो भूमण्डलीकरण के नाम से दुनिया का भूमण्डीकरण होता जा रहा है। वैश्वीकरण के माहौल ने इस विश्व को व्यापार विश्व में बदल देना शुरू किया है। इसने हमारे देश के उद्योग और व्यवसाय को न केवल चुनौती देना बल्कि कुचल देना भी शुरू किया है। हमारी स्थिति अब उस परिंदे से कम नहीं होगी जिसको पंख काटकर उड़ने की सलाह दी जाती है और बहेलिया निश्चिंत हो बैठता हैं- श्रम परिहार करते हुए, पंछी की छटपटाहट का आनन्द लेते हुए। बाज़ारू बनती जा रही इस दुनिया के चंगुल में फँसते जा रहे इस देश को, यहाँ के शहरों को लेकर मिश्र जी चिंतित हैं तथा अनेक कविताओं व गज़लों में इस बात की अभिव्यक्ति उन्होंने की है।

वस्तुतः मिश्र जी का कथा साहित्य इस बात का प्रमाण है कि वे आज भले ही महानगर के निवासी हों किन्तु मूलतः वे ग्राम जगत के चितेरे हैं। उन्होंने अपनी जीवन-यात्रा में भले ही गाँव को छोड़ा हो लेकिन साहित्यिक यात्रा में न गाँव ने उनको छोड़ा है और न उन्होंने गाँव को। चाहे 'पानी के प्राचीर' का राप्ती और गौर्रा नदियों से घेरा उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले का पांडेपुरवा गाँव हो या 'जल टूटता हुआ' का इन्हीं नदियों से घेरा और कछार में बसा तिवारीपुर गाँव हो, 'सूखता हुआ तालाबश का शिकारपुर, नारायणपुर गाँव हो या 'आकाश की छत' का पूर्व दीप्ति में प्रस्तुत राप्ती नदी से घेरा कछार अंचल, सबके सब ग्रामांचल को केन्द्र में रखकर लिखे गए प्रतीत होते हैं। ग्रामीण-आंचलिक समाज की स्थिति, गति एवं दुर्गति ही इनमें व्याख्यायित हुई है। यहाँ तक कि दिल्ली महानगर को केन्द्र में रखकर लिखे गए उपन्यास 'बिना दरवाज़े का मकान' हो या 'आकाश की छत' अथवा श्रात का सफ़र, इन सभी रचनाओं में गाँवों ने मिश्र जी का पिछा नहीं छोड़ा। पूर्व दीप्ति शैली में ही सही किन्तु गाँव की ज़िन्दगी का वास्तविक लेकिन आत्मीय चित्रांकन मानो इस उपन्यासकार की कमज़ोरी रही हो। जल का दूसरा नाम है जीवन। मिश्र जी के उपन्यासों में जल तथा जीवन, दोनों को ईमानदारी से प्रस्तुत किया है। मिश्र जी द्वारा लिखा उपन्यास हो और उसमें बाढ़ के प्रकोप से पीड़ित लोक जीवन कहीं न आया हो यह कभी संभव ही नहीं। लेकिन इसके चित्रण की बारीकियाँ तथा सहजताएँ पाठक को बाँध नहीं देती तो ही आश्चर्य।

अपने समय और समकालीन जीवन के गहन चिंतक होने के कारण अपने उपन्यासों में मिश्र जी ने प्रायः सभी प्रकार के समाज को चित्रित किया है, फिर चाहे वह ग्रामीण हो या आंचलिक, नागरी हो या महानगरी, सर्वहारा हो सर्वन्यारा, मध्यवर्गीय हो या निम्नवर्गीय, शोषक हो या शोषित और शिक्षित हो या अशिक्षित। इससे एक बात स्पष्ट होती है कि मिश्र

जी समाज जीवन के सजग चितेरे होने के कारण सामाजिक चिंतक तो हैं ही किन्तु अपने समय के कड़ुवे सच से वे चिंतित भी हैं। 'अपने लोग' उपन्यास में वे लिखते हैं-"क्या मुसीबत है इस देश की भी कि एक पढ़ा-लिखा आदमी पेट भरने लायक नौकरी भी नहीं पा सकता।" मिश्र जी ने पाया है कि हमारे यहाँ दवाओं की अनुपलब्धता और अभाव से भयंकर समस्या है भूख की। यहाँ लोग भूख के कारण पहले मरते हैं, दवा न मिलने के कारण बाद में। मिश्र जी के 'दूसरा घर' उपन्यास के फेंकू की बेटी की मौत इसका प्रमाण है।

धर्मपत्नी के साथ

सामाजिक परिवर्तन और मिश्र के उपन्यास

भारतीय समाज जीवन में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् रूढ़िवादी मान्यताओं पर प्रहार होने लगे। शिक्षा क्षेत्र का विकास, औद्योगिक प्रगति, संविधान द्वारा समानाधिकार और वैज्ञानिक क्रान्ति आदि के कारण समाज जागरण की प्रक्रिया अधिक गतिमान हुई। इसी कारण जीवन-दर्शन, व्यक्ति का दृष्टिकोण तथा आचार-व्यवहार काफी संघर्षमय हो गए। संयुक्त परिवार टूटने लगे। नारी को मिले सामाजिक एवं राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति के कारण पुरुषों से समानता की बात उठाई जाने लगी। नारी स्वयं शिक्षा के प्रति आकर्षित हुई। अपने हक और अन्याय के खिलाफ वह विद्रोही बन गई। इसी के परिणामस्वरूप सामाजिक क्षेत्र में नारी के व्यक्तित्व की एक नई पहचान बनने लगी। परिवर्तन-प्रक्रिया में यह सबसे बड़ी उपलब्धि है। समाज परिवर्तन में गाँव का विकास, कृषि प्रगति, आधुनिक सुविधाएँ, विवाह-पद्धति, कानून, पुरुषों की मानसिकता तथा समाज-हित आदि कारक मुख्य रूप से आते हैं। मिश्र जी ऐसे सन्दर्भों को अपने उपन्यासों में बारीकी से अंकित करते हैं।

गाँवों के विकास की दृष्टि से देखा जाए तो 'पानी के प्राचीर' से लेकर श्बीस बरस तक के उपन्यासों में चित्रित समाज विकास की प्रक्रिया उतनी तेज़ हुई नजऋर नहीं आती जितनी होनी चाहिए थी। फिर भी यह प्रक्रिया धीमी गति से अवश्य चल रही है। समाज, सरकार तथा सामाजिक संस्थाओं का इसमें विशेष सहयोग मिल रहा है। आज़ादी के बाद गाँवों में परिवर्तन की प्रक्रिया तेज हुई। 'जल टूटता हुआ' में बिरजू जेल से बाहर आने के बाद दीनदयाल-दौलत से बदला लेना चाहता है तब सतीश उसे समझाते हुए कहता है-"पागल मत बनो बिरजू, धीरज से काम लो। अभी आए हो, गाँव का रंग-ढंग पहचानो। गाँव बहुत बदल गया है उसे परखो। सारा काम लाठी से ही नहीं होता।" स्पष्ट है कि यहाँ गाँववालों की बदली मानसिकता का परिचय मिलता है।

गाँवों के विकास की दृष्टि से देखा जाए तो 'पानी के प्राचीर' से लेकर बीस बरस तक के उपन्यासों में चित्रित समाज विकास की प्रक्रिया उतनी तेज़ हुई नज़र नहीं आती जितनी होनी चाहिए थी। फिर भी यह प्रक्रिया धीमी गति से अवश्य चल रही है। समाज, सरकार तथा सामाजिक संस्थाओं का इसमें विशेष सहयोग मिल रहा है। आज़ादी के बाद गाँवों में परिवर्तन की प्रक्रिया तेज़ हुई। 'जल टूटता हुआ' में बिरजू जेल से बाहर आने के बाद दीनदयाल-दौलत से बदला लेना चाहता है तब सतीश उसे समझाते हुए कहता है-"पागल मत बनो बिरजू, धीरज से काम लो। अभी आए हो, गाँव का रंग-ढंग पहचानो। गाँव बहुत बदल गया है उसे परखो। सारा काम लाठी से ही नहीं होता।" स्पष्ट है कि यहाँ गाँववालों की बदली मानसिकता का परिचय मिलता है।

'सूखता हुआ तालाब' में गाँव-विकास के बारे में एक मन्त्री का वक्तव्य है- गाँव बड़ी तेजी से विकसित होकर आधुनिक हो रहा है। गाँव-गाँव में ट्यूबवेल लग गए हैं, चारों ओर सड़कें दौड़ रही हैं, जगह-जगह सरकारी डिस्पेंसरी खुली हुई हैं, शिक्षा का विस्तार हो रहा है, पंचायतें हैं, चकबंदियाँ हो रही हैं, चरागाह बन रहे हैं, किसानों को नए बीज और खेती के लिए सरकारी ऋण दिए जा रहे हैं और सबसे बड़ी बात तो यह है कि गाँव का आदमी भी अब अन्धविश्वासों से ऊपर उठकर खुले दिमाग़ से समस्याओं को समझने-बूझने लगा है। "मन्त्रीजी का यह वक्तव्य कुछ हक तक सही है फिर भी आज देश के अनेक गाँव सुविधाओं से दूर ही हैं। 'आकाश की छत' में यश कुछ सालों बाद अपने कस्बे के सबसे पिछड़े मोहल्ले को देखता है और अनुभव करता है-".... तब गन्दगी बहुत थी, अब गलियाँ थोड़ी साफ-सुथरी हैं। कुछ इसी प्रकार का अनुभव 'बीस बरस' का दामोदर करता है। जो अपने पास-पड़ोस के गाँवों को देखकर सोचता है कि कुछ बदलाव तो है, पर शायद यह भौतिक स्तर पर ही, बौद्धिक और सांस्कृतिक स्तर पर अभी बदहाली है।

पानी के प्राचीर में नीरू के पिता नीरू को स्कूल नहीं भेजना चाहते, वे उसे खेत में काम करने को कहते हैं। उन्हें बेटे की पढ़ाई पसन्द नहीं है लेकिन उसकी माँ के मन में अपने बेटे को पढ़ाने की ललक है। "बेटा तू जा स्कूल तेरे पिताजी ऐसे ही लायक होते तो ये दिन काहे देखने पड़ते।" नीरू की शिक्षा अधूरी रह जाने के बाद अपने भाई केशव को एम.ए. तक पढ़ाता है। अनेक समस्याओं का सामना करते हुए नीरू थक जाता है फिर

स्वतन्त्रता की पचासवीं वर्षगाँठ पर मैनचेस्टर लंदन में आयोजित कवि सम्मेलन में बाल कवि बैरागी, लक्ष्मीमल्ल सिंधवी

भी अपने भाई की शिक्षा पूरी करता है। पाण्डेपुरवा गाँव के लोग भी सोचते हैं कि- ''जैसे भी हो बच्चों को पढ़ा देना ठीक है।'' यहाँ शिक्षा के प्रति बढ़ती आसक्ति नए भाव-बोध का संकेत देती है। 'जल टूटता हुआ' में हरिजन लोगों के पास पैसे नहीं हैं फिर भी गाँव में स्कूल खोलने के लिए वे अपनी मेहनत लगा देते हैं। यहाँ पारस्परिक सहयोग के आधार पर भवन निर्माण होता है और अब आसपास के गाँवों के विद्यार्थी यहाँ अध्ययन हेतु आते हैं। दीनदयाल जैसे धनी लोग न चाहते हुए भी अपनी बेटी शारदा को पढ़ाते हैं, किन्तु उनके दोनों बेटे अपढ़ रहते हैं। वे मिडिल में ही अड़ियल टट्टू की तरह अटक जाते हैं। 'सूखता हुआ तालाब' में शंकर स्कूल का समर्थन करते हुए कहता है अब इस गाँव में एक दर्जन एम.ए., बी.ए. हो गए हैं। कोई नेता है, कोई वकील है, कोई प्रोफेसर है, कोई अध्यापक है। इससे गाँव में पढ़ने-लिखने के प्रति जागृति के संकेत मिल रहे हैं। 'अपने लोग' में प्रमोद दूबे जी को समझाते हैं- ''शहर की लड़कियाँ अब पढ़-लिखकर ही शादी-ब्याह करती हैं।''

''दूसरा घर'' में रामकली पड़ोस की श्रीमती गोयल को अनपढ़ देख सोचती है कि श्रीमती गोयल पढ़ी-लिखी होती तो इतनी असहाय तो नहीं न होतीं। कहीं कुछ काम कर सकती थीं, स्वनिर्भरता प्राप्त कर सकती थीं। आजकल औरतों के लिए शिक्षा और नौकरी बहुत जरूरी हो गई है-अस्मिता और अस्तित्व दोनों की रक्षा के लिए। 'थकी हुई सुबह' की लक्ष्मी के मन में बचपन से शिक्षा के प्रति आसक्ति है। वह बचपन में ही गांधी जी के विचारों का आधार लेकर अपने माँ-बाप को शिक्षा का महत्त्व समझा देती है। ग़रीब घर की बेटी होते हुए भी वह स्कूल जाती है। शिक्षा के कारण ही पढ़े-लिखे लड़के के साथ लक्ष्मी की शादी हो जाती है। इस पर गाँव के लोग चकित होकर ईर्ष्या से जलभुन कर कहते हैं-देखा पढ़ाई-लिखाई का प्रताप। पढ़ाई के कारण ही ग़रीब घर की बेटी को इतना अच्छा घर-वर मिल रहा है। यही लक्ष्मी अपने जीवन-संघर्ष में शिक्षा के बल पर ही स्कूल की हेडमिस्ट्रेस पद तक पहुँचकर स्वावलम्बी बन जाती है। स्पष्ट है कि बदलाव की स्थिति में देर से ही क्यों न हो लड़कियों को शिक्षा का हक मिल रहा है। इसके सन्दर्भ मिश्र जी के अन्य उपन्यासों में भी मिलते हैं।

'बीस बरस' आदि उपन्यासों की अंतर्वस्तु बताती है कि देश के गाँव-गाँव में शिक्षा की हवा फैल गई है। युवक और युवतियाँ सभी इसके महत्त्व को पहचानने लगे हैं। 'दूसरा घर' में भी कॉलेज की शिक्षा के सन्दर्भ मिलते हैं जो राजनीति से पूरी तरह घिरे हुए हैं। 'बीस बरस' की वन्दना भी परिवर्तन की इस बयार की साक्षी है कि शिक्षा क्षेत्र ने नारी को परम्परागत दायरे से लाने का श्रेष्ठतम कार्य किया है यह नारी के लिए सबसे बड़ी उपलब्धि है।

मिश्र जी के उपन्यासों में चित्रित कुछ नारी पात्र विद्रोही बने नज़र आते हैं। नारी पहले अन्याय, अत्याचार को सह लेती है। परम्परा का पालन करती है और असहाय होने पर विद्रोही बनती है। 'पानी के प्राचीर' में हरिजन बिन्दिया को मुखिया हरजाई कहकर बदनाम करता है। नैतिक-अनैतिक सम्बन्धों को लेकर समाज के सामने उसे बेइज्ज़त करने का प्रयत्न होता है। तब वह उपस्थित उच्चवर्ग के ठेकेदारों के चेहरे का नकाब एक-एक कर उतारने में हिचकिचाती नहीं। वह गाँव वालों के कुकृत्यों पर पर्दाफाश करती है।

नारी जीवन : विसंगतियां और परिवर्तन

आधुनिक शिक्षा नारी के विकास में निश्चय ही सहायक सिद्ध हुई है। मिश्र जी द्वारा चित्रित नारी आज पुरुषों के साथ-साथ सभा तथा समाज में भी नज़र आती है। ''उनकी नारी मात्र मार खाने वाली या पुरुष के प्यार के चंगुल में पिघलने वाली नहीं है।'' पर्दा और घूँघट से बाहर निकलकर वह पर-पुरुषों के साथ बातें करती है, हँसती है और घूमती भी है। यहाँ मिश्र जी के उपन्यासों में चित्रित नारी के जीवन में आया परिवर्तन अंकित हुआ है।

मिश्र जी के उपन्यासों में चित्रित कुछ नारी पात्र विद्रोही बने नज़र आते हैं। नारी पहले अन्याय, अत्याचार को सह लेती है। परम्परा का पालन करती है और असहाय होने पर विद्रोही बनती है। 'पानी के प्राचीर' में हरिजन बिन्दिया को मुखिया हरजाई कहकर बदनाम करता है। नैतिक-अनैतिक सम्बन्धों को लेकर समाज के सामने उसे बेइज्ज़त करने का प्रयत्न होता है। तब वह उपस्थित उच्चवर्ग के ठेकेदारों के चेहरे का नकाब एक-एक कर उतारने में हिचकिचाती नहीं। वह गाँव वालों के कुकृत्यों पर पर्दाफाश करती है। इसी उपन्यास की लवंगी और पुनिया धिरेन्दर के खेत में काम करने के बदले धीमड़ के खेत में काम करने जाती हैं। गुस्से में धिरेन्दर पुनिया को लात मारता है तब लवंगी धिरेन्दर का निछावर उतारती हुई हँसुवा तानकर खड़ी होती है और कहती है-''क्यों रे दहिजरा, तेरे बाप की कमाई खाते हैं? मेरी बहन को तूने काहे मारा? इसी हँसुवे से करेजा चीर दूंगी, परान खींच लूँगी।'' कामगार स्त्री की यह विद्रोही वृत्ति सराहनीय है। स्वतन्त्रता के बाद कुछ ही सालों में नारी में आया यह साहस और सोच कुछ कम महत्त्व की नहीं हैं।

'अपने लोग' में पति द्वारा पीटने पर पण्डिताइन उसका खुलकर विरोध

करती है। 'रात का सफर' में ऋतु अपने पति के अन्याय के खिलाफ लड़ती है और अन्ततः उसे तमाचा मारकर किसी नए रास्ते को अपनाती है। 'आकाश की छत' की रूपमती समाज द्वारा लांछन लगाने तथा पति द्वारा अवहेलना की सम्भावना से न डरती हुई कामरेड के देश कार्य में सहयोग देती है। 'आदिम राग' की रीता प्रो. शील को अपनी उँगलियों पर नचाती है और जब प्रो. शील नैतिकता को छोड़कर कुछ गलत करने पर उतारू होता है तब उसका विरोध करती है। 'बिना दरवाज़े का मकान' की दीपा पुरुष संस्कृति की तमाम हरकतों का सामना करती रहती है। लेकिन अपने पति ये यह कहने में हिचकती नहीं कि "...मैं बाबुओं के घरों की वे लड़कियाँ नहीं हूँ जो छेड़ी जाने पर डरकर सुसुकती हुई भाग जाती हैं। मैं तो उस गुण्डे का मुँह नोच लूँ। साला, एक बार मेरी ओर लपका था, उसका मुँह नोंच लिया था।" दीपा का यह कथन स्त्री की विकसित मानसिकता का नया रूप है जो अब अन्याय नहीं सह सकता।

'थकी हुई सुबह' की लक्ष्मी स्कूल में पढ़ते हुए ही विद्रोहिणी स्वभाव की दिखती है। लेकिन बाद में परिवर्तन की बागडोर वही थामती है। लक्ष्मी का कुछ निखरा हुआ रूप 'बीस बरस' की वंदना में दिखाई देता है। वन्दना, रूपमती और लक्ष्मी-मिश्र जी के नारी पात्र काफी आक्रामक और जागरूक व परिवर्तनकामी पात्र के रूप में चित्रित हुए हैं। ये भविष्य की चिन्ता नहीं करतीं, लेकिन अपने व्यक्ति की पहचान बनाए रखती हैं। मिश्र जी के अधिकतर नारी पात्र भारतीय परम्परा के दायरे में रहकर पुरुष प्रधान संस्कृति के झूठे तथा दकियानूसी बन्धनों की शृंखला तोड़ने की कोशिश करते हैं। ऐसे ही पात्रों के माध्यम से परिवर्तन की यह धारा 'पानी के प्राचीर' से लेकर 'बीस बरस तक तेज़ होती नज़र आती है।

मंच पर महीप सिंह

नारी-सोच में परिवर्तन

स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज में नारी अपने कार्य व्यवहार एवं वैचारिक चिन्तन में नई मानसिकता लिए हुए है। उसकी सोच में भी परिवर्तन आया है। पुरुष प्रधान संस्कृति में स्त्री अब विवाह के बाद सुरक्षा के लिए पति के साथ समाज-अधिकार माँग रही है। वह अपने भविष्य की सोच रही है। वह सभी दृष्टियों से सुरक्षा चाहती है। 'अपने लोग' में बी. लाल मंजरी से शादी करना चाहता है तब मंजरी की माँ बी. लाल के स्वभाव को पहचानकर अपनी बेटी के भविष्य की सोचती है। 'रात का सफर' में श्यामा नर्स बिना शादी किए डॉक्टर के साथ अनैतिक सम्बन्ध रखती है। वह ऋतु का जीवन बरबाद करती है। अन्ततः जब ऋतु अपने डॉक्टर पति से हमेशा के लिए अलग होती है तब दुबारा विवाह नहीं करना चाहती। उसे पुरुषों से डर लगने लगा है। वह सोचती है- "..... नौकरी करेगी, स्वच्छन्द जीवन बिताएगी, कविताएँ लिखेगी, वह अपनी स्वतन्त्र पहचान बनाएगी। नारी के विचारों में परिवर्तन की यह नई सोच है। 'बिना दरवाज़े का मकान' की दीपा, माँ-बेटी एक ही पुरुष के साथ अवैध सम्बन्ध रखें, इसके खिलाफ़ है। कुछ इसी प्रकार के गलत सम्बन्ध 'थकी हुई सुबह' के माँ-बेटे में हैं। इसे जानने के बाद लक्ष्मी विद्रोही बनती है। नारी की उक्त सोच, शिक्षा, विदेशी संस्कारों का अनुकरण, व्यक्ति स्वतन्त्रता की भावना तथा स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में आई परिवर्तित मानसिकता की झलक है जो परिवर्तन के रास्ते में एक नया मोड़ सिद्ध हो सकती है।

फिल्मी दुनिया के प्रति आकर्षण

फिल्म आज जीवन का एक अंग बन गया है। 'मासमीडिया' ने लोगों के सामने एक अनैतिक, असौन्दर्यात्मक, विलासपूर्ण और मनोरंजक साहित्य के प्रसार में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनके उपन्यास में कीर्तन मण्डली के लोग ढोलक-झाँझ लेकर कीर्तन घुनने लगते हैं जो फिल्म गीत की तर्ज़ पर चलता है। यहाँ फिल्मी गीत को सिर्फ 'आ रे किसुना' जोड़कर भजन गाया जाता है। इसी उपन्यास में दयाल जैसे पापी थानेदार को धन और राजनीतिक ताकत के बल पर अपने वश में रखते हैं। खुद तो गरीब जाति की नारी की इज्जत से खेलते हैं और उसके पति को किसी जाल में फँसाकर जेल भिजवाते हैं। 'अपने लोग' में प्रमोद रिक्शा से बेतियाहाता जाने लगता है तब देखता है कि बड़े-बड़े सिनेमा के पोस्टर टँगे हुए हैं। उसी समय रिक्शे पर बैठा विद्यार्थी ज़ोर-ज़ोर से एक फिल्मी गीत गाता है- "चलत मुसाफिर मोह लिया रे पिंजड़े वाली मुनिया। इस तरह आदिम राग और बीस बरस में भी लोगों का फिल्मी रुझान देखने को मिलता है। 'आदिम राग' में प्रो. शील और रीता जब घूमने निकलते हैं तब दोनों देखते हैं कि भैंस की पीठ पर बैठा हुआ एक चरवाहा अनाड़ी स्वर में गा रहा था-"जोड़ी हमारी जमेगी कैसे जानी।" 'बीस बरस' में तो पूरे समाजिक जीवन पर फिल्मी दुनिया ने मोहमाया डाली है।

साहित्यकारों की नई दुनिया

'अपने लोग' में कॉफी हाऊस के अनेक सन्दर्भ मिलते हैं। प्रमोद, शिवराज चौधरी, नरसिंह साही और शुक्ल जी में आधुनिक साहित्य तथा साहित्यकार को लेकर काफी चर्चा होती है। इनकी चर्चा में आधुनिक कवियों के बारे में मन्तव्य निकलता है कि कवि अपने परिवेश में घटित घटनाओं और बनते-बिगड़ते मानवीय अनुभवों से प्रेरणा कम पाता है। ऐसे कवि खुद नहीं लिखते, इन्हें बाहर घटित घटनाओं द्वारा लिखने की प्रेरणा मिलती है। कवि

अलका सिन्हा की पुस्तक "मैं ही तो हूँ" का लोकार्पण, रामदरश मिश्र, कमलेश्वर और नागरिक उड्डयन मंत्री शाहनवाज़ हुसैन

अपने आसपासके मूर्त यथार्थ के बदले पश्चिम से आयातित अवधारणात्मक अमूर्त सन्त्रास को लिखना चाहते हैं। दिल्ली तो इनका केन्द्र है लेकिन सभी कवियों के लिए यह बात नहीं कही जा सकती। हिन्दी के साहित्यकारों को लेकर जब बात आगे बढ़ती है तब अपने चरित्रों के माध्यम से लेखक आज के साहित्य में व्याप्त वाद, विचारधारा और साहित्यकारों के बनते बिगड़ते गुटों एवं पुरस्कारों व आलोचना की राजनीति पर विचार व्यक्त करता है।

उनके उपन्यास का एक पात्र प्रमोद साहित्यकारों के स्वार्थ को देखकर ऊब जाता है और घृणा व्यक्त करता है। आलोचना के बारे में उसका मन्तव्य है-"आलोचना तो एक तेज वेश्या बन गई है, नई पीढ़ी के कुछ स्वनामधन्य आलोचक दलाली का काम करते हैं यानी ग्राहक फँसाने का। जिस साहित्यकार को अपने स्वार्थ के लिए फंसाकर लाते हैं आलोचना को उसी पर रीझना पड़ता है और उस केन्द्रवर्ती दलाल-के-दलाल पूरे देश में फैले हुए हैं-अपने दलाल की आवाज़ में आवाज़ मिलाने वाले 87 आज के साहित्यकार जीवन में एकदम समझौतावादी बने दिखाई देते हैं। वे हर स्तर पर व्यवस्था के अन्तर्विरोध का फायदा उठाना चाहते हैं शिवराज चौधरी जैसे साहित्यकार साहित्य में विद्रोही हैं लेकिन अपने मामूली स्वार्थों की पूर्ति के लिए बड़े निचले स्तर के स्थानीय राज-नेताओं के तलवे चाटते दिखाई देते हैं। इस तरह साहित्य के प्रति उनके उपन्यासों के माध्यम से आज की प्रवृत्ति पर बार-बार बात की गयी है।

सांस्कृतिक परिवर्तन

उनके अनेक उपन्यासों में कहीं भूतप्रेत की कहानी भी है, अनमेल विवाह के कारण हिस्टीरिया के दौरे के प्रसंग भी हैं अंधविश्वास के भी कतिपय प्रसंग हैं। पानी के प्राचीर में नीरू अपने संस्कार और पुस्तकीय ज्ञान से लड़ता है और लोगों को बता देना चाहता है-"यह सब फरेब है, धोखा है।...यह सब ढ़ोंग है, मन की कमजोरी है। 'सूखता हुआ तालाब' में ग्राम जीवन का बड़ा ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। भूत-प्रेत एवं अन्धविश्वास के प्रसंग बड़े आकर्षक रूप में प्रस्तुत हुए हैं। 'आकाश की छत' में यश के मन में भूत के प्रति जो डर है वह बदरी भैया दूर कर देता है और बताता है कि भूत नहीं यह केवल भूत का भय है।"

इसके विपरीत मिश्र जी के उपन्यासों में सांस्कृतिक तब्दीली की झलक बहुधा मिलती है। 'थकी हुई सुबह' की लक्ष्मी अपने पिता का गाँव-घर छोड़कर पति के घर शहर आती है तब एक नई ज़िन्दगी शुरू करती है। 'बीस बरस' में अँधेरे में दामोदर को रात का अहसास गहरा नहीं लगता। "चाँदनी के साथ-साथ बिजली के होने के कारण रात का अहसास गहरा नहीं। 'रात का सफर', 'आदिम राग', 'थकी हुई सुबह' और 'बीस बरस' में पात्रों द्वारा रेल की यात्रा को नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता। आधुनिक तन्त्रज्ञान के करण लोगों को मिली यह सुविधा लाभदायक है जिसे नगरों के साथ-साथ गाँव के लोग भी अपना रहे हैं।

अपने समय और समकालीन जीवन के गहन चिंतक होने के कारण अपने उपन्यासों में मिश्र जी ने प्रायः सभी प्रकार के समाज को चित्रित किया है, फिर चाहे वह ग्रामीण हो या आंचलिक, नागरी हो या महानगरी, सर्वहारा हो सर्वन्यारा, मध्यवर्गीय हो या निम्नवर्गीय, शोषक हो या शोषित और शिक्षित हो या अशिक्षित। इससे एक बात स्पष्ट होती है कि मिश्र जी समाज जीवन के सजग चितेरे होने के कारण सामाजिक चिंतक तो हैं ही किन्तु अपने समय के कड़ुवे सच से वे चिंतित भी हैं।

वर्तमान वैज्ञानिक युग में संसार द्रुत गति से छोटे-से-छोटा होता जा रहा है। नवजागृति और नवनिर्माण की किरणें देश के सभी कोनों तक पहुँच रही हैं। वस्तुतः मिश्र जी का कथा साहित्य इस बात का प्रमाण है कि वे आज भले ही महानगर के निवासी हो किन्तु मूलतः वे ग्राम के चितेरे हैं। उन्होंने अपनी जीवन-यात्रा में भले ही गाँव को छोड़ा हो लेकिन साहित्यिक यात्रा में न गाँव ने उनको छोड़ा है और न उन्होंने गाँव को। चाहे 'पानी के प्राचीर' का राप्ती और गर्रा नदियों से घेरा उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले का पांडेपुरवा गाँव हो या 'जल टूटता हुआ' का इन्हीं नदियों से घेरा और कछार में बसा तिवारीपुर गाँव हो, 'सूखता हुआ तालाब' का शिकारपुर, नारायणपुर गाँव हो या 'आकाश की छत' का पूर्वदीप्ति में प्रस्तुत राप्ती नदी से घेरा कछार अंचल, सबके सब ग्रामांचल को केन्द्र में रखकर लिखे गए प्रतीत होते हैं। ग्रामीण-आंचलिक समाज की स्थिति, गति एवं दुर्गति ही इनमें व्याख्यायित हुई है। यहाँ तक कि दिल्ली महानगर को केन्द्र में रखकर लिखे गए उपन्यास 'बिना दरवाज़े का मकान' हो या 'आकाश की छत' अथवा 'रात का सफ़र, इन सभी रचनाओं में गाँवों ने मिश्र जी का पिछा नहीं छोड़ा। पूर्वदीप्ति शैली में ही सही किन्तु गाँव की ज़िन्दगी का वास्तविक लेकिन आत्मीय चित्रांकन मानो इस उपन्यासकार की कमज़ोरी रही हो। जल का दूसरा नाम है जीवन। मिश्र जी के उपन्यासों में जल तथा जीवन, दोनों को ईमानदारी से प्रस्तुत किया है। मिश्र जी द्वारा लिखा उपन्यास हो और उसमें बाढ़ के प्रकोप से पीड़ित लोक जीवन कहीं न आया हो यह कभी संभव ही नहीं। इस प्रकार, मिश्र जी ने अपने समग्र साहित्य में परिवर्तन की प्रक्रिया को बखूबी से प्रस्तुत किया है। साहित्य में अपने इस सार्थक योगदान के लिए वे हमेशा याद किये जायेंगे। शत-शत नमन। ◆

पता : हिंदी विभागाध्यक्ष, यशवंतराव चव्हाण वारणा महाविद्यालय,
वारणानगर-416113, जिला-कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
मो. : 9156724545

संपाद

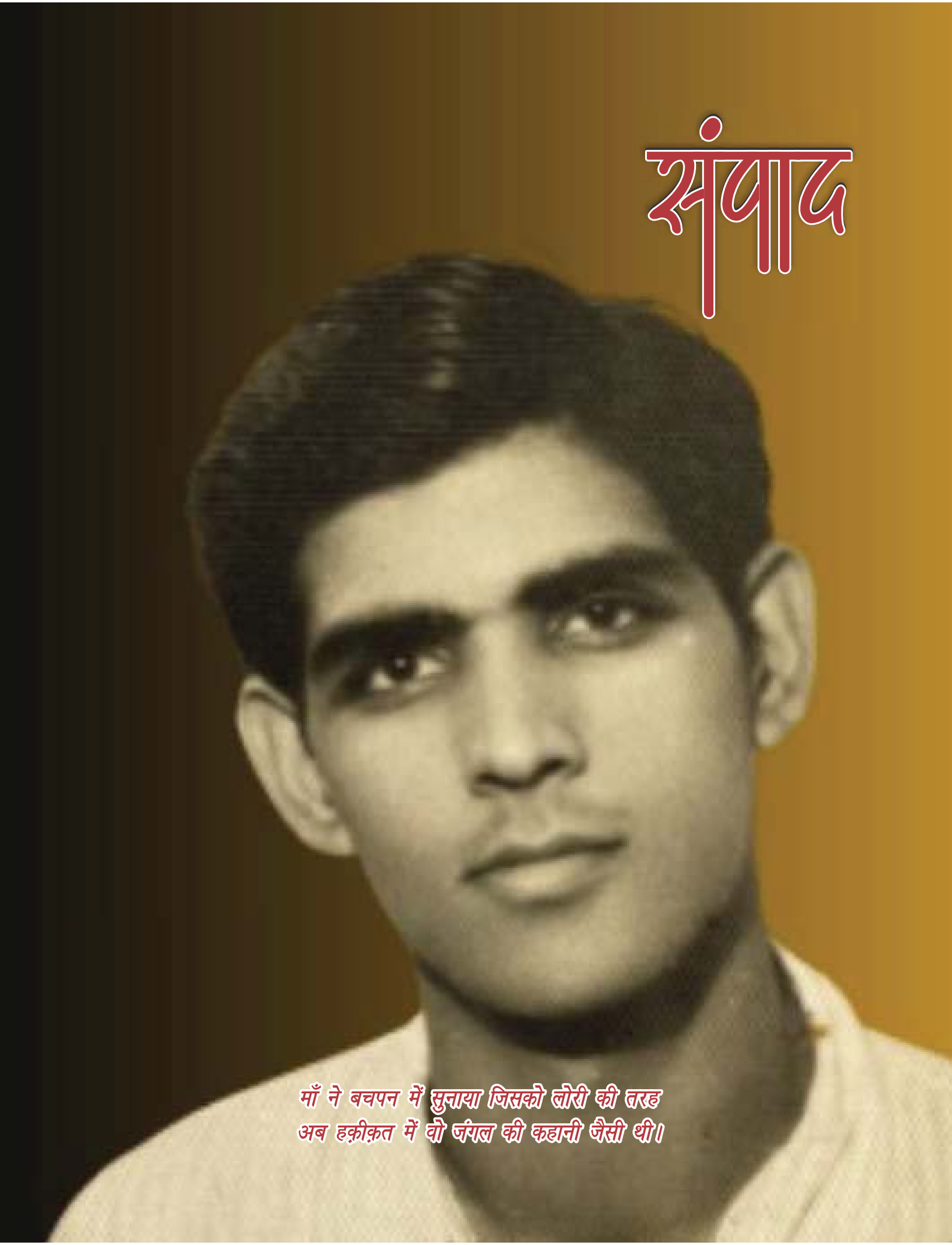

माँ ने बचपन में सुनाया जिसको लोरी की तरह
अब हक़ीक़त में वो जंगल की कहानी जैसी थी।

देख ली दुनिया तुम्हारी मेहरबानी देख ली
तुम ने दी थी ओ खुशी वो ज़िन्दगानी देख ली।

उत्तरजीवन के स्वप्न

(प्रो.रामदरश मिश्र से डॉ.ओम निश्चल की बातचीत)

उनसे अब तक कितने सारे लेखकों पत्रकारों ने बात की है। मेरे साक्षात्कार से लेकर उनके इंटरव्यूज पत्र पत्रिकाओं में फैले हैं। लेकिन इस बार का इंटरव्यू वैसा नहीं था। वे पत्नी सरस्वती के जाने से अवसाद और शोक से भरे थे। यह दिसंबर का महीना है, पत्नी के जाने का महीना। कड़ाके की ठंड और ऐसे में रामदरश मिश्र से बातचीत का समय लेकर मिलना एक अलग किस्म का अनुभव था। अब वे कुछ समय से शारीरिक शिथिलता के कारण वाणी विहार से हट कर द्वारका में अपने बेटे के यहां रह रहे हैं। यहां वे वाणी विहार की अपनी लाइब्रेरी को मिस करते हैं, पुस्तकों की उस ऊष्मा को भी जिससे गए कई दशकों से उनका गहरा नाता रहा है। लेकिन द्वारका के ब्रह्मा अपार्टमेंट में भी उनकी महफिल प्रायः गुलज़ार रहती है। इष्टमित्र, लेखक, कवि आते ही रहते हैं। यहीं साहित्य आज तक के जयप्रकाश पांडेय ने एक लंबी बातचीत अपने चैनल के लिए की तो वरिष्ठ पत्रकार अनंत विजय ने दैनिक जागरण के लिए ख़ुद आकर एक लंबी बातचीत रिकार्ड की। यों तो उनसे हर बैठकी में कुछ न कुछ बातचीत होती ही रहती है पर उत्तर प्रदेश के लिए यह बातचीत सूचना निदेशक विशाल सिंह जी प्रमुख सचिव संजय प्रसाद एवं कुमकुम जी प्रदाय के इसरार पर हुई जो काफी दिनों से लंबित थी। वे इन दिनों पत्नी का साहचर्य खो कर अकेले हैं एक साधक की तरह जो समय की पीठ पर अपने कालजयी हस्ताक्षर कर रहे हैं। इस उम्र में भी ग़ज़लें और मुक्तक उनकी क्रियेटिविटी का दरवाज़ा खटखटाते रहते हैं। उनकी पुस्तकें एवं चुनिंदा रचनाओं के चयन आते रहते हैं। यह सर्जनात्मकता की ऊष्मा है जो ठंड के इस वातावरण में भी एक तरह की गर्माहट भर रही है।

उनसे मिलना यों तो हर बार बहुत ही आह्लादकारी होता है, लेकिन इस बार मिलते हुए लगा कि एक सूनेपन से गुज़रते हुए कवि से हम मिलने आए हैं। यहीं वह बैठकी होती थी, जहां पर आते ही आतिथ्य बरसने लगता था। सरस्वती मिश्र जी तुरंत जलपान लेकर उपस्थित हो जाती थीं और पूरी बातचीत में लगभग उनकी उपस्थिति बनी रहती थी। वह रामदरश मिश्र जी की पत्नी ही नहीं थी बल्कि एक बौद्धिक सहचर भी रही हैं। साहित्य का एक लंबा वक्त रामदरश मिश्र जी ने जिन लेखकों के साथ बिताया है ऐसे तमाम लेखकों से सुपरिचित थीं तथा बीच-बीच में उनकी बातें बताती रहती थीं। ऐसी पत्नी के गुज़र जाने का जो अवसाद है वह निश्चय ही रामदरश मिश्र जी के भीतर आच्छादित है। अभी उन्हें गए हुए बमुश्किल एक महीने गुज़रे हैं। गत वर्ष 3 दिसंबर, 2024 को वे नहीं रहीं। हाल ही में दोनों ने द्वारका के एक होटल में अपने विवाह की पचहत्तरवीं वर्षगांठ मनाई थी तथा 15 अगस्त, 2024 को रामदरश जी के शताब्दी समारोह में वे उपस्थित थीं। इस दुःख के वृत्त से वे बाहर आएं, अवसाद के वृत्त से बाहर आएं इसके लिए उनसे मिलना-जुलना भी ज़रूरी है और लंबे अरसे से सूचना विभाग की मासिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' के लिए उनसे बातचीत भी करनी थी जो कि दिन प्रतिदिन टल भी रही थी, इसलिए उनसे बातचीत का समय लेकर उनके सम्मुख हुआ तो यह भावविह्वलता की वेला थी। अमूर्त सरस्वती के तो वे वरद पुत्र ही हैं पर मूर्त सरस्वती इस बार उनके सान्निध्य में न थीं। इसलिए इस बार उनसे मिलते हुए लगा कि एक उदासी तो वातावरण में है। उनकी प्रार्थना सभा में भी वे लगभग खोये-खोये से थे। रामदरश जी एक ऐसे साहित्यकार हैं जिनकी कहानी और उपन्यासों में ऐसे अनेक पात्र आए हैं जो तमाम दुःखों के गलियारों से गुज़रे हैं फिर भी एक लेखक के रूप में वे अपने पात्रों के दुःख-सुख के साथ अंत तक खड़े रहते हैं। उनके सरोकार व्यक्ति को पराजित भाव में नहीं ले जाते बल्कि संकल्प-जीवी बनाने के लिए प्रतिश्रुत रहते हैं।

ऐसे समय में रामदरश मिश्र जी से बात करना बहुत सहज नहीं था लेकिन फिर भी कहीं न कहीं से बात शुरू करनी थी। इतनी बार उनसे बातचीत कर चुका हूं, अक्सर मिलना जुलना होता है, बातचीत होती है, लेकिन इस बार बातचीत छेड़ने में, उसका सिरा पकड़ने में कुछ कठिनाई हो रही थी। सरस्वती जी के जाने का सूनापन ही शायद इसकी एक वजह थी। इसलिए यहीं से बात शुरू की कि उनके जाने के बाद का जो सूनापन है जो स्मृतियों की वीथिका है, क्या भूलूं क्या याद करूं जैसी स्थिति है, इससे गुजरते हुए क्या महसूस करते हैं? तो वह बोले देखिए मैं अपनी जीवन यात्रा को देखता हूं तो अनेक चीज़ें हमारी स्मृति में जीवित-सी लगती हैं। अगर एक सामूहिक रूप में कहूं तो मैं अपने बचपन को नहीं भूल पाता हूं। अभावग्रस्त गांव, घर और जँगल के बीच जो मेरा बचपन बीता वह ग़रीबों के अनुभव, संघर्ष के प्रति के साथ गहरा लगाव, मेले, हटियों की यात्रा, त्यौहार, ख़ासतौर

पर होली के परिवेश में बीते हुए दिन अभी भी याद आते हैं। ''यूं तो मेरी शिक्षा के अनेक आयाम है किंतु दो बातें मेरे लिए बड़े महत्व की हैं। एक तो यह कि सब की उपेक्षा के बाद मां ने मुझे ककहरा सिखाया। मां ने सिखाया न होता तो शायद मैं अपढ़ रह गया होता। क्योंकि मैं चीज़ें आहिस्ता-आहिस्ता सीखता हूं। कुछ लोगों ने बड़ी खटास के साथ बड़ी त्वरा के साथ मुझे ककहरा सिखाया होगा और वह मेरी पकड़ में नहीं आया होगा तो घोषित कर दिया गया कि मैं पढ़ ही नहीं सकता। वे जब यह बात कह रहे थे तो मुझे हाल ही में दिल्ली में एक स्टेडियम में आयोजित साहित्य आज तक के एक विशेष सत्र बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे में उनसे की गई मशहूर ऐंकर चित्रा त्रिपाठी की बातचीत याद आ रही थी। उस बातचीत में भी रामदरश मिश्र जी ने इस प्रसंग को रेखांकित किया था कि कैसे उनकी मां ने बेझिझक अलाव की बुझी हुई राख को फैलाकर उनकी उंगली से उस पर क ख ग यानी ककहरा लिखवाया और उनमें यह बोध जागृत किया कि तुम लिख सकते हो और अब तुम लिख रहे हो। मां के प्रति यह कृतज्ञता सौ साल की उम्र में भी निष्प्रभ नहीं हुई है।

वे जिस गांव देहात में पैदा हुए वह पहले तो बहुत ही अभावग्रस्त था, आज भी वह बहुत उन्नत दशा में नहीं है। क्योंकि दो नदियों के बीच में इस गांव की दशा जब तब दुर्दशा में बदल जाती है। जब उस इलाके में बाढ़ आती है तो घरों का अस्तित्व ख़तरे में पड़ जाता है। ऐसी स्थिति में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की दिशा में जो कठिनाई आई उस बारे में पूछने पर वे कहने लगे, शिक्षा के संदर्भ में दूसरा मूल्यवान संदर्भ है कि मेरी उच्च शिक्षा मेरे बड़े भाई राम अवध मिश्र की सहायता से हुई। मिडिल स्कूल तक तो मैं गांव में रहा लेकिन जब विशेष योग्यता विशारद, साहित्य रत्न और बीएचयू में उच्च शिक्षा के लिए बाहर निकाला तो भाई साहब अपने पैसे से मेरा सहारा बनते रहे। उनका सहारा ना मिला होता तो मैं शायद बीएचयू ही नहीं गया होता। वे कहते हैं, उनको याद करते हुए उनकी वृद्धावस्था को मैं भूलना चाहता हूं क्योंकि अपनी वृद्धावस्था में वे धर्म के कर्मकांड से गहरे जुड़ गए थे और उनका ज्वलंत यौवन काल एक उदासी में बदल गया था। वह असह्य से लगने लगे।

तालीम के प्रसंग में जब गुरुजनों का ज़िक्र आया वो कहने लगे भावों में खो गए और कहने लगे शिक्षा के ही संदर्भ में मैं अपने तीन चार गुरुओं को विशेष रूप से याद करता हूं- मिडिल स्कूल के शिक्षक बिकाऊ उपाध्याय (जिसे वे कभी कभी बिकाऊ पंडित भी कहा करते हैं), विशेष योग्यता के शिक्षक पंडित राम गोपाल शुक्ला और उच्च शिक्षा के गुरुदेव श्रीआद्या प्रसाद द्विवेदी। इन्होंने मेरे साहित्य और जीवन को गहरे प्रभावित किया। अपनी यादों को खंगालते हुए उन्होंने कहा कि याद करने के लिए तो बहुत से लोग हैं, बहुत से संदर्भ हैं। गुजरात में मैं 8 साल रहा और मुझे अनेक प्रिय शिष्य मिले जो मेरी यादों में बसे हुए हैं। उनमें विशेष रूप से तीन चार का नाम मैं ज़रूर लेना चाहूंगा। वह है डॉक्टर भोलाभाई पटेल, डॉक्टर रघुवीर चौधरी, महावीर सिंह चौहान और विनीत गोस्वामी। मुझे डॉ. उमाशंकर जोशी का भी बहुत प्यार मिला। वे भी बहुत याद आते हैं।

वह कहते हैं, यादों का एक बड़ा सिलसिला है ओम जी। दिल्ली में आया तो यहां भी अनेक शिष्य और मित्र ऐसे मिले जो मेरी याद में निरंतर हंसते रहते हैं। मैं साहित्यकार हूं तो जब मैं अपने गांव में बीते बचपन की तमाम अनुकूल प्रतिकूल स्थितियों को याद करता हूं जिन्हें वास्तव में सहज ही भूल

ओम निश्चल के साथ बात करते हुए

ओम निश्चल के साथ बात करते हुए

जाना चाहिए। लेकिन मैं लेखक हूं और मेरे लिए बचपन की सम-विषम सारी स्थितियां बहुत ही मूल्यवान सिद्ध हुई हैं। उन्होंने मुझे बड़े उपन्यास दिए, तमाम कहानियां और बहुत सारी कविताएं दी हैं और अन्य विधाओं में भी मैंने अपने को उपस्थित पाया है।

यह तो हुई क्या याद करूं या इन दिनों वे क्या कुछ याद करते हैं। लेकिन जहां तक भूलने के लिए उन्हें भीतर से टटोलता हूं तो कहते हैं, भूलने के लिए बहुत सी चीज़ें हैं। जब मैं पीएचडी कर रहा था तो बहुत गहरे अभाव से गुज़र रहा था। मैं इन बातों को भूलना ही चाहता हूं। साहित्य के क्षेत्र में मैंने जो काम किया है उसे आप जैसे अनेक लेखक आलोचकों ने सराहा है लेकिन अनेक लोगों द्वारा उनकी गहरी उपेक्षा भी हुई है एक ख़ास जमात के लोगों को अनेक पुरस्कार सम्मान मिलते गए। मेरी अच्छी रचनाएं भी उपेक्षित रहीं। उस कल को मैं भूलना चाहता हूं। मैंने याद तो तब भी नहीं रखा क्योंकि मैं अपने ढंग से चलने वाला व्यक्ति हूं और सहज भाव से जो कुछ भी मिलता है रहा है उससे संतुष्ट होता रहता हूं। लेकिन इसी संदर्भ में जब गत दस-बीस वर्ष को देखता हूं तो लगता है कि यह दिन मेरी यादों में बसने के योग्य हैं। इस दौरान ही अनेक पुरस्कार मिले। इधर कई वर्षों से अनेक पत्रिकाओं के विशेषांक निकले हैं और आप मुंह देखी न समझे ओम जी तो मैं कहूंगा कि आपने जो मेरे साहित्य का मूल्यांकन किया है, समय-समय पर उसकी छवियों को पहचान कर अनेक पत्र पत्रिकाओं में प्रसारित किया है वह भी मेरी यादों के लिए बहुमूल्य है। आपके साथ ही मेरे शिष्य डॉक्टर वेद मित्र मेरे लिए बहुत कुछ कर रहे हैं। उनके तमाम मूल्यवान सहयोग मेरी यादों में बसे जा रहे हैं। यूं तो मैं सुविधा के लिए दो नाम ले रहा हूं। लेकिन अनेक ऐसे लोग हैं जो अच्छे इंसान हैं, तथा मेरे साहित्य के प्रशंसक और आलोचक भी हैं।''

वे कह रहे थे, ''ओम जी, मेरी जीवन यात्रा बहुत बड़ी है। इसमें न जाने कितनी चीज़ें हैं और लोग हैं जो भूलने या याद करने के लायक हैं। यहां केवल दृष्टांत के रूप में कुछ संदर्भ प्रस्तुत किए गए हैं। हां, लेकिन मैं कितना ग़लत काम कर रहा था कि याद करने की जो एक बड़ी हस्ती हैं उसे ही भूलता जा रहा था। वह हैं मेरी पत्नी सरस्वती जी। उन्होंने तो जैसे मेरे लिए पूरा जीवन लगा दिया। क्या क्या याद करूं ?

विडंबना यह है कि उनके दिवंगत हो जाने के बाद मुझे उन्हें भूलने की कोशिश करनी चाहिए। लेकिन भूलने की जितनी कोशिश कर रहा हूं उतनी ही वह याद आ जा रही है और मैं उनके संदर्भ में कुछ मुक्तक लिखे हैं और प्राय रोज एक मुक्तक लिख लेता हूं। वैसे मैं भाग्यशाली हूं कि मुझे बेटों का परिवार भी अच्छा मिला और बेटियां भी मेरे लिए बहुत ही बहुत कुछ करती हैं। बेटे शशांक का पूरा परिवार मेरे लिए समर्पित रहता है। बेटी स्मिता ही मुझे संभाले हुए हैं और वह मेरे साहित्य की संरक्षक भी है। अनेक पत्र पत्रिकाएं संस्थाएं उसके माध्यम से मेरे पास पहुंच रही हैं।

रामदरश जी ने एक शती की दुनिया देखी है। मैं जैसे एक पुराण पुरुष के सम्मुख बैठा हूँ। इस लंबे वक्त में कितने लेखकों का समूह आया, गया। कितने साहित्यिक आंदोलन चले, खत्म हुए। लेखकों कवियों ने समाज को बदलने के स्वप्न देखे कि जीवन और समाज के मान्य मूल्य बदलेंगे। पर दुनिया अपनी ही रफ्तार से चलती रही। पूंजी का बोलबाला बढ़ता रहा। घर में दिल में पुस्तकों के लिए जगह सिकुड़ती रही। समाज में पुस्तकों के प्रति आकर्षण ख़त्म होता जा रहा है। ऐसे में क्या सोचते हैं इस बारे में, पूछने पर वे बोले, ''देखिए साहित्यकार समाज के लिए विश्व के लिए बड़ा महत्व रखता है। हमारे आलोचकों और कवियों ने अपने वक्तव्यों में बार-बार उसके महत्व को उजागर किया है। रघुपति सहाय 'फिराक़' ने अपने एक वक्तव्य में कहा था कि कविता हमारी इंसानियत को वापस करती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी जैसे बड़े आलोचक ने कहा है कि हमें साहित्य संवेदनशील बनाता है। उनका वक्तव्य पूरा तो याद नहीं लेकिन उन्होंने लिखा है कि ज्यों-ज्यों हमारी सभ्यता

पर आधुनिकता के आवरण चढ़ते जाएंगे त्यों-त्यों हमारे लिए कवि-कर्म कठिन होता जाएगा। चाहे हजारी प्रसाद द्विवेदी हों, प्रेमचंद हों या अन्य बहुत सारे लेखक, सबने साहित्य को जीवन के लिए आवश्यक माना है। कुछ कभी इससे हटकर ऐसे हो सकते हैं जिनके लेखन में नकारात्मकता भरी होती है जैसे 'अकविता' के आंदोलन में इसी तरह की नकारात्मकता देखी गयी थी। लेकिन यह भी सच है कि अवांछित समय के बाद साहित्य फिर अपनी सकारात्मक भूमिका की ओर लौट आया और वह गहरी संवेदना के साथ समाज से जुड़ता गया।''

''आपने जो सवाल किया था इतने मूल्यधर्मी साहित्य के होते हुए भी आज समाज में विश्व में हिंसा क्यों छाई हुई है, इतनी क्रूरता क्यों छाई हुई है? अब देखिए कि पहले का जो नेतृत्व होता था उनका साहित्य के साथ गहरा रिश्ता और लगाव होता था। वे साहित्यकारों का सम्मान भी करते थे और

आकाशवाणी पर रिकार्डिंग कराते हुए

उनके साहित्य से संवेदनशीलता ग्रहण भी करते थे। किंतु आज के जो नेतृत्व हैं उनका साहित्य के साथ कोई संबंध नहीं रहा। वे जनता के रहबर तो हैं लेकिन जब उन्हें स्वयं मानवता की राह दिखाई नहीं पड़ती तब वे जिनके नेता हैं उन्हें क्या मानवीय रुख़ प्रदान करेंगे?''

राजनीति पर बात चल पड़ी तो मुझे रामदरश जी के दो प्रारंभिक उपन्यास याद हो आए- 'जल टूटता हुआ' और 'पानी के प्राचीर'। आंचलिक उपन्यासों का दौर था वह जिसकी शुरुआत मैला आंचल लिख कर फणीश्वर नाथ रेणु कर चुके थे। इनके भीतर गांव देश समाज की राजनीति और आज़ादी के लाभ को लूटने खसोटने की कोशिश दिखाई पड़ती है। राजनीति उस वक्त भी कोई पुण्य पताका फहराने वाली चीज न थी, इस संबंध में वे कहने लगे कि ठीक कहा आपने कि राजनीति की उठापटक में जनता घायल हो रही है। इससे उसे उसका प्राप्तव्य नहीं मिल रहा है। इसलिए इसी में जनता भी मारकाट में संलग्न हो गई है।

जहां तक सामान्य जन का सवाल है तो ज़ाहिर है कि उच्च साहित्य उन तक नहीं पहुंचता है। विशेषकर जटिल बिम्बों प्रतीकों से गुँथी हुई कविताएं तो साहित्यकारों तक को तंग करती हैं तो जनता तक क्या पहुंचेंगी वें। लेकिन लोकगीत भी साहित्य है। अनेक संवेदनशील लोकगीत जनता के भीतर रमे होते हैं और उन्हें प्रभावित करते हैं। आज का समय देखकर बहुत डर लग रहा है। जब एक देश को दूसरे देश से प्यार का नाता रखना चाहिए था वह युद्ध की भयानकता में बदल गया है। संभवतः वे इस समय यूक्रेन और रूस के युद्ध को लक्ष्य करके बोल रहे थे।

कहने लगे, ''ओम जी, हम लोग तो सामान्य व्यक्ति हैं। पर इस विशाल विश्व को क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है? कैसे समस्याओं का निदान हो सकता है? उसके बारे में क्या कह सकते हैं और क्या कर सकते हैं। बस हम तो अपने व्यवहार और लेखनी के माध्यम से प्यार का त्याग का संदेश देते रहेंगे। यही हमारे साहित्य की सार्थकता है।

हाल ही में साहित्य अकादेमी के पुरस्कार घोषित हुए हैं और इस बार का पुरस्कार कथाकार उपन्यासकार संजीव को मिला है। चाहता हूँ कि इस बारे में उनकी राय क्या है। पर यह भी जानता हूँ कि पुरस्कार मिलते ही लोग जाति गणना पर उतर आते हैं। संजीव के बारे में भी यही हुआ। लोग अगड़ा पिछड़ा और दलित एजेंडा ले बैठे और संजीव की जाति को रेखांकित किया जैसे कि साहित्य का कोई अर्थ नहीं, पुरस्कार में जाति प्रमुख हो। इस बारे में चर्चा चलने पर रामदरश मिश्र जी कहने लगे, ''इस बारे में क्या कहूं। जब कुछ ख़ास लोगों को पुरस्कार मिलता है तो लोग चुप रहते हैं और प्रशंसा भी करते हैं जैसा आपने कहा। किन्तु वहीं जब किसी अन्य को पुरस्कार मिलता है तो अनेक लोग विरोध में स्वर उठाने लगते हैं। इसके पीछे पुरस्कार पाने वाले व्यक्ति के प्रति कुछ विरोध भाव रखने वाले लोग होते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि किसी को शीघ्र पुरस्कार मिल गया तब भी विरोध का स्वर उठता है कि अभी तो यह इस पुरस्कार के योग्य ही नहीं थे। और दूसरे भी कारण होते हैं, पर संजीव को ठीक पुरस्कार मिला है। वे बड़े अच्छे कहानीकार, उपन्यासकार हैं। उन्होंने अनेक ऐसे विषयों को उठाया है जहां अन्य लोगों की दृष्टि नहीं पहुंचती है तो मैं समझता हूं कि वह एक योग्य व्यक्ति हैं जिनका चयन साहित्य अकादमी ने पुरस्कार के लिए किया है। इससे पहले कवि बद्री नारायण को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था, वह भी सही था। विरोध करने वालों ने उनका ग़लत विरोध किया।'' ''जहां तक मेरा सवाल है मुझे तो सारे पुरस्कार मिले हालांकि बहुत बाद में। इसलिए लोगों ने बड़ा संतोष और प्रसन्नता का भाव

प्रकट किया और यह कहा कि जो पुरस्कार बहुत पहले मिलने चाहिए थे वह अब मिल रहे हैं और यह भी अच्छी बात थी कि मैंने पुरस्कार के लिए कभी किसी से कहा नहीं। जब किसी की बधाई आई तो मैंने पूछा कि काहे की बधाई। तब मुझे ज्ञात हुआ कि मुझे अमुक पुरस्कार मिला है। उसके बारे में मुझे पहले से कुछ पता नहीं होता था। यह भी नहीं पूछता था कि कौन-कौन निर्णायक थे। मुझे बहुत संतोष है कि मैं पुरस्कार के पास नहीं गया। वे मेरे पास खुद आए, भले देर से ही सही।

साहित्य और राजनीति के रिश्ते पर अक्सर बातचीत होती है। कभी प्रेमचंद ने कहा था साहित्य राजनीति के आगे आगे चलने वाली मशाल है। मैं रामदरश मिश्र जी से जानना चाहता हूं कि साहित्य और राजनीति का रिश्ता कैसा होना चाहिए। वे कहते हैं, ''देखिए राजनीति व्यवहार की चीज़ है। वह देश के लोगों की अनेक समस्याओं स्थितियों को समझती है और उसे संभालती व ठीक करती है। इसलिए राजनीति के जो नेता है उनमें यह गहरी समझ होनी चाहिए कि जनता की समस्याएं क्या हैं, उनका समाधान कैसे हो सकता है, उन्हें अच्छी नागरिक सुविधाएं कैसे दी जा सकती हैं। इतना ही नहीं हमारे देश में सामाजिक स्तर पर गहरी विषमता है। कुछ लोगों के पास महलों की कतार लगी है। कुछ लोग जाड़े में फुटपाथ पर सोते हैं। कुछ के यहां विपुल संपदा है। कुछ को रोटी नहीं मिलती है। लोग नौकरी के लिए परेशान घूमते रहते हैं और-और भी अनेक समस्याएं हैं तो हमारे राजनेता तो अपनी कमाई की चिंता में तो होते ही हैं और जो ऊंचे तबके के लोग हैं उनके साथ उनका गहरा संबंध होता है। जब कि आम आदमी अपनी अनेक विषमताओं के साथ जीता है और सोचता है उन्होंने जिन्हें नेता बनाया है वह हमारे लिए यह करेंगे, वह करेंगे। जबकि वे आम आदमी के पास लौटकर आते भी नहीं। ... तो राजनेताओं का चरित्र ऐसा अवांछित सा हो गया है। साहित्य अपने आप में एक प्रतिरोध है अनेक अवांछित कर्मों का, और वह राजनीति की असुंदरता को पहचानता है। साहित्य कर्म नहीं है, वह कर्म करने वालों की चेतना, उसकी संवेदना को समृद्ध करता है और साहित्य से जुड़ा हुआ कर्मशील मनुष्य जो काम करता है वह सामान्य जन के लिए भी बहुत सार्थक होता है। तो चेतना और संवेदना के दृश्य को जागृत करना समृद्ध करना अपने आप में एक बड़ी चीज़ है और यह काम साहित्यकार बखूबी करता है।''

बातचीत के अंतराल में आतिथ्य का दौर भी चलता रहा। बीच-बीच में भी सनातन धर्म में व्याप्त कर्मकांडों पर वे अपनी बात कहते रहे। रामदरश मिश्र जी यूं तो प्रगतिशील लेखक हैं लेकिन अपनी परंपरा से गहरे जुड़े भी हैं लेकिन परंपरा में जो विकृतियां हैं, गत्यवरोध हैं, रूढ़ियां और धार्मिक कर्मकांड आदि हैं, उसे बिल्कुल नहीं मानते। इस बारे में बोलते हुए उनको अपनी कहानी 'दक्षिणा' याद हो आई जिसमें कहानी का पात्र जब महापात्र के दबाव डालने से अंततः गोदान के लिए तैयार तो हो जाता है पर जब खूँटे से बँधी गाय को खोलकर महापात्र ले जा रहा होता है तो वह गाय से लिपटकर रो पड़ता है। लेकिन इससे महापात्र को कोई फर्क़ नहीं पड़ता। बल्कि वह तो कहता है कि बिना गोदान के मृतक की आत्मा को शांति नहीं मिलेगी। उसमें इस तरह के कर्मकांड का विरोध है, उसकी आलोचना है। अब महापात्र की भूमिका, गोदान आदि, ग़रीब आदमी का शोषण इस सब की वह बहुत तर्कपूर्ण ढंग से आलोचना करते हैं। कहते भी हैं कि मैं तेरही इत्यादि नहीं मानता। बल्कि मुझे तो दयानंद सरस्वती ने जो आर्य समाज के माध्यम से समाज में व्याप्त रूढ़ियों को तोड़ने का काम किया, विकृतियों को ख़त्म करने का काम किया, वह इस दिशा में एक बेहतर लोक कल्याणकारी कदम लगता है। इसी बात पर उन्हें अपनी एक ग़ज़ल याद हो आई है। वे सुनाते हैं-

वह ना मंदिर में न मस्जिद में न गुरुद्वारे में है
वह पराई पीर वाले आंख के तारे में है
खोजते हो तुम शिकारी किसको इस जंगल के बीच
वह तो पोशीदा कहीं भीतर के अंधियारे में है
आपकी ठंडी हँसी से जल गया सारा शहर
रोटियों की महक ताज़ा उसके अंगारे में है
मैंने तो किस्सा सुनाया था किसी शैतान का
आपको क्यों शक हुआ वह आपके बारे में है
आसमानों की तरफ उड़ते गए भू देवता
फैलती धरती गई पागल सी बंजारे में है।

धीरे-धीरे हमारी बातचीत आज की साहित्यिक पत्रकारिता की ओर मुड़ जाती है। मैं उन्हें याद दिलाता हूं कि देखते-देखते बहुत सारी पत्रिकाएं बंद हो गईं। न कादंबिनी रही न हिंदुस्तान न सारिका, दिनमान आदि। बच्चों की बहुतेरी पत्रिकाएं बंद हो गयीं। ऐसे वातावरण में लघु पत्रिकाएं भी बहुत कम संख्या में निकलती हैं और डाक खर्च के कारण बहुत कम जगह पहुंच पाती हैं। जबकि लघु पत्रिकाओं का भी साहित्य के प्रसार में बहुत महत्व रहा है। इस बारे में ध्यान आकर्षित किए जाने पर वे बोल उठे, ''देखिए अनेक बड़ी पत्रिकाएं बड़े संस्थानों के द्वारा प्रकाशित होती थीं, वे बंद हो गई हैं। यह सही है कि उनका प्रचार ज़्यादा होता था, उसमें छपने की इच्छा सभी लेखकों की होती थी। लेकिन लगता है कि व्यावसायिक संस्थानों को साहित्य से कोई सहज अनुराग नहीं है। उनके पास पैसों की कमी नहीं है। लेकिन साहित्य के प्रति उदासीनता के नाते उन्होंने पत्रिकाएं बंद कर दीं। लेकिन धन्यवाद उन लोगों का जो लोग अपने बूते पर छोटी-छोटी पत्रिकाएं निकाल रहे हैं और समकालीन साहित्य को लोगों तक पहुंचा रहे हैं। यह लोग अपने पैसों से या पाठकों के पैसों से यह महान काम कर रहे हैं। यह छोटी पत्रिकाएं संख्या में अधिक हैं। ये यहां से वहां तक व्याप्त हैं इसलिए हर एक की व्याप्ति कम होने के बावजूद सारी पत्रिकाएं मिलकर पूरे देश को या पूरे समाज को अपने में समेट ले रही हैं। हर पत्रिका का अपना एक पाठक वर्ग है। एक अच्छी बात यह भी है कि यह पत्रिकाएं नए से नए लेखक को अपने में स्थान देती हैं और इस तरह नवलेखन की व्याप्ति का माध्यम भी बन जाती हैं।

उन दिनों जब रामदरश मिश्र जी अपनी उम्र के सौवें वर्ष में चल रहे थे, वर्ष की शुरुआत में वे अचानक बीमार हुए, फ्रैक्चर हो जाने के कारण कूल्हे का ऑपरेशन भी हुआ। लेकिन धीरे-धीरे स्वस्थ हुए और लेखनी लगातार चलती रही। पहले बड़े उपन्यासों से रचनाएं शुरू हुईं, कहानियां कविताएं बीच-बीच में लिखी जाती रहीं। पुस्तकें आती रहीं, एक बड़ा सृजन संसार उनके पास है। लेकिन अब जब वे बूढ़े हो चुके हैं और बहुत कुछ कर सकने की स्थिति में नहीं हैं तो भी वे लगातार डायरी लिखने हैं। लोगों से मिलते जुलते हैं, उनकी कविताएं सुनते हैं, अपनी कविताएं सुनाते हैं और साहित्यिक वातावरण को जागृत रखने का प्रयास करते हैं। इस बीच अनेक जगहों पर, अनेक माध्यमों में उनके साक्षात्कार भी सामने आए। साहित्य आज तक, नई धारा और दैनिक जागरण के साथ हुई उनकी बातचीत चर्चा में रही। लोग अभी उनसे कहानी या किसी लंबी रचना की मांग करते हैं जो वह पूरी नहीं कर पाते लेकिन पत्र पत्रिकाओं को अपनी ग़ज़लें या डायरी के अंश भेजते रहते हैं। मैं पूछता हूं क्या अब कभी कोई लंबी कहानी लिखने का मन नहीं होता। क्योंकि जब से आपने कहानी लिखनी छोड़ी है या कम कर दी है तब से संसार काफी बदला है। इस बदलाव को अपनी किसी कहानी में लक्षित करने का मन नहीं होता? तो वह कहते हैं ओम जी, अभी दो साल पहले ही कहानी संग्रह आया है। अभी एक छोटी कहानी पिता पुत्री के संबंध में साल भर पहले लिखी थी जो इंदौर से निकलने वाली पत्रिका 'वीणा' में छपी। इसकी बड़ी चर्चा रही। तो मन तो करता है कि कोई कहानी या कोई उपन्यास लिखूँ लेकिन अब मन को थकान सी भी लगने लगी और यह भी कि कहानी कविता और उपन्यास के माध्यम से मैंने बहुत कुछ कह दिया है। यानी जो समय है वह भी मेरी कई कहानी और डायरी में कविताओं में आया है।

कहने लगे, ओम जी, अब तो मन विश्राम चाहता है। अब पढ़ने में भी वह तारतम्य अनुभव नहीं करता जिसका एहसास पहले होता था। ओम जी, कभी-कभी मैं सोचता हूं अरे यह सब मैंने लिखा है। इतना कैसे लिख गया जिस मन ने उत्साह से इतना कुछ लिखवा डाला, वहीं मन सवाल कर रहा है कि कैसे लिख डाला इतना सब। अभी पिछले साल ही 'समवेत' नामक कविता पुस्तक अमन प्रकाशन से आई। पत्नी के दिवंगत होने पर लगातार मुक्तक छूट रहे हैं मेरे भीतर से और इधर मैंने दो-तीन वर्षों में बहुत सारे मुक्तक लिखे हैं क्योंकि मेरी अभिव्यक्ति कई विधाओं में होती रही है। इसलिए आज मेरे भीतर जो सृजनात्मकता बची हुई है, वह कहानी में न सही उपन्यास में न सही, कुछ दूसरी विधाओं में रूप ले रही है। धीरे-धीरे जब मन होता है, अपनी लेखनी उठा लेता हूँ और ग़ज़ल या मुक्तक अपना आकार ले लेते हैं। उन्होंने बताया कि इधर पत्नी पर बहुत से मुक्तक लिखे हैं। कुछ पढ़े या सुने हैं क्या? मैं बताता हूं कि हां, जो फेसबुक पर आपके मुक्तक आपकी आवाज़ में डाले गए हैं या उसकी तहरीर पोस्ट की गई है, ऐसे कुछ मुक्तक मैंने पढ़े हैं। यों तो उन्होंने पत्नी सरस्वती पर एक उपन्यास ही लिखा है उनके बचपन, उनकी शिक्षा दीक्षा, उनके व्यक्तित्व और साहित्य में उनकी आसक्ति का एक जीवंत आख्यान ही है उनका वह उपन्यास- 'एक बचपन यह भी' कविताओं में भी वे यदा कदा आती रही हैं। लेकिन इधर वे उन्हें मुक्तकों में याद कर रहे हैं, उस सहचारी को याद कर रहे हैं जो हमारी भारतीय परंपरा में दाम्पत्य के अनोखे अनुभव से गुज़रने पर ही संभव है। वे एक-एक कर मुक्तक सुनाते जाते हैं और मैं उन्हें झटपट अपने कागज़ पर नोट करता जाता हूँ। देखिए उत्तर जीवन में और 75 वर्ष वैवाहिक जीवन के गुज़रने के बाद वह पत्नी में आज भी कितना समाए हुए हैं कि यह सब उनके मुक्तकों में जैसे प्रतिबिंबित हो रहा है। इन मुक्तकों में ही सरस्वती जी जैसे अपना नया बौद्धिक आकर ले रही हैं। देखें ये कुछ मुक्तक और इनकी संवेदना की गहराई को महसूस करें-

दर्द तन मन में भरा है कहा जाता नहीं
दर्द का यह मौन आंखों से सहा जाता नहीं
दूर हो जाता हूँ मैं घबरा के दो दिन के लिए
पर तुम्हारे बिना बाहर तो रहा जाता नहीं।
हाय जिस देवी ने सबको सदा अपनापन दिया
बेसहारों को सहारा भूख को भोजन दिया
स्वर दिया बेचैन चुप्पी को, उसे हे ईश क्यों
सफ़र के अंतिम चरण में मूक यह क्रंदन दिया?

(13-11-2023)

हे महामहिमा तुम्हारा बदन अब तो सो गया है
ज्योति सा जीवन तुम्हारा घने तम में खो गया है
हो गई है मुक्त अब तो यातनाओं के जुलुम से
किन्तु जो तुमने सहा वह दर्द मेरा हो गया है।

(4-12-2023)

ज़िन्दगी तो इक सफ़र है सत्य मैं यह मानता हूँ
आज जो आया है कल जाएगा यह भी जानता हूँ
पर सखे रोते हुए इस बावरे मन को करूँ क्या
गेह की हर वस्तु में रह रह कर तुम्हें पहचानता हूँ
तुम प्रिया थीं, प्रेयसी थीं मेरी प्यारी सहचरी थी
पूरे घर के वास्ते तुम त्याग ममता से भरी थीं
मेरे सुख-दुःख को बना लेती रहीं अपना सदा ही
दीन दुखियों के लिए सहयोग की प्रिय निर्झरी थीं

◆

पता : बी-24 ब्रह्मा अपार्टमेंट, सेक्टर-7,
प्लाट नं.-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
मो. : 7303105299

उनकी लेखनी से

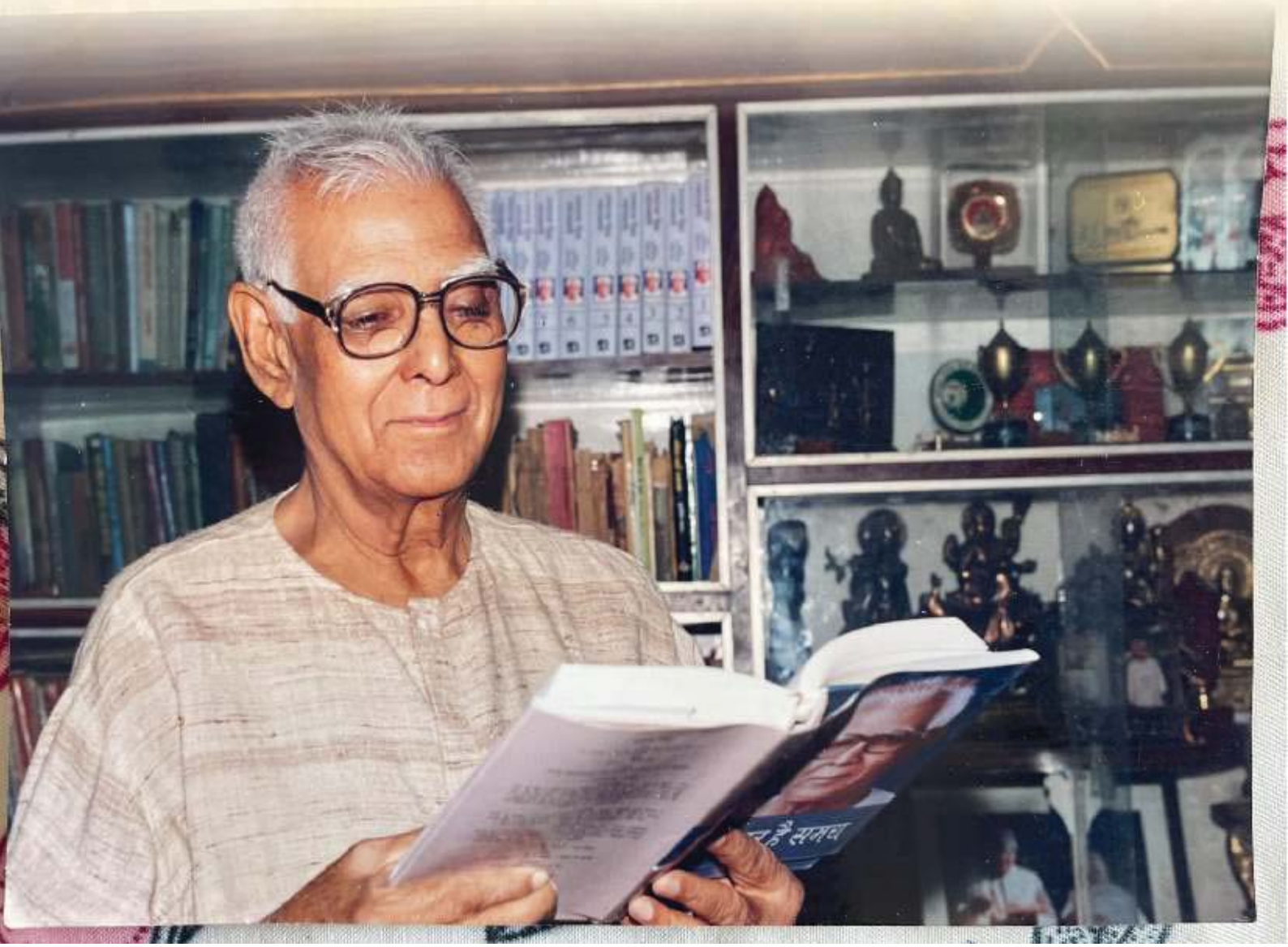

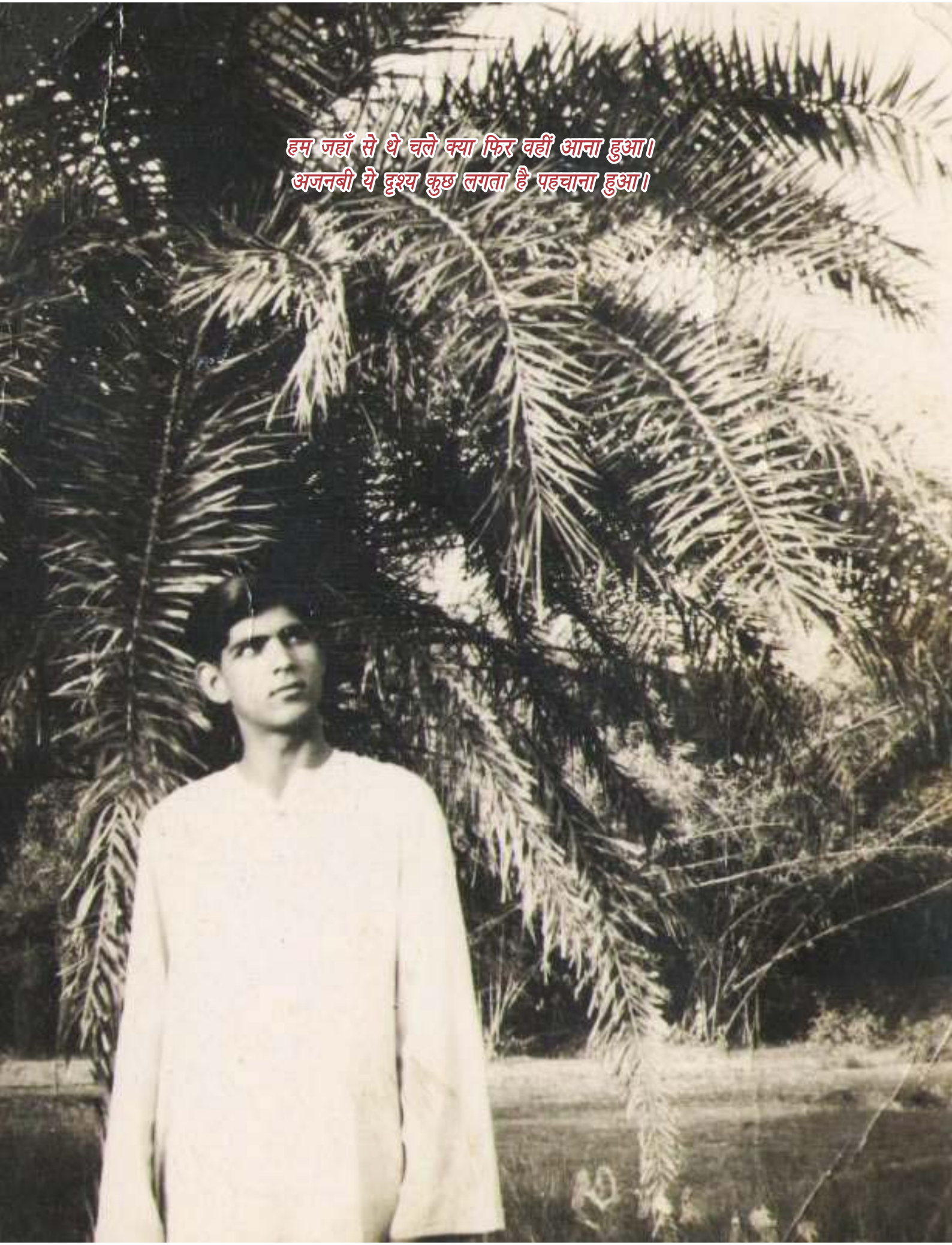
हम जहाँ से थे चले क्या फिर वहीं आना हुआ।
अजनबी ये दृश्य कुछ लगता है पहचाना हुआ।

कहानी

माँ, सन्नाटा और बजता हुआ रेडियो

गांव से कल ही लौटा हूं मां का क्रियाकर्म करके। एक अजब सन्नाटा मन में अंटा पड़ा है। नदी के कटे हुए तट, खेतों में खुली हुई दरारें उजड़े हुए सिवान-ठूंठ होते हुए पेड़-चारों ओर घूमती मृत्यु की गंध-

'जनता का मनोबल बहुत ऊंचा है, अपनी सारी कठिनाइयों के बावजूद वह बड़ी बहादुरी से जूझ रही है, मैं जनता के इन वीर भाव से बहुत प्रभावित हूं-'

चौंककर रेडियों पर एक मंत्रीजी की आवाज़ सुनी, वे भी कल ही लौटे हैं सूखा क्षेत्र से। उठकर मैंने वाल्यूम एकदम कम कर दिया और मंत्रीजी की गरजती आवाज ऐसी लगने लगी मानो कोई लाचार व्यक्ति दूर से बोल रहा है-हां अब ठीक है यह डूबती आवाज़ मेरी मनःस्थिति के पस आ गई है और इसमें वह टूटता प्रदेश कहीं अपना साम्य खोज रहा है।

बस से उतरकर गांव की ओर देखा-सामने एक विशाल भूभाग अपने मस्त खालीपन से मेरे भीतर उभर उठा। मैं हाथ में बेग लिए कुछ क्षणों तक उदास आंखों से इस विशाल सूने विस्तार को देखता रहा फिर धीरे-धीरे पैदल गांव की ओर चल पड़ा-

नदी का निचाट कछार-इस रास्ते में कई बार आया हूं इस मौसम में। तब खेत तरह-तरह की फसलों से भरे रहते थे। बांगर पर के खेतों में अरहर की फसल लपसती रहती थी, किसानों से रास्ते बजते रहते थे, गांव की लड़कियां और स्त्रियां हंसती हुई खेतों में उतरायी रहती थीं-आज रास्ते सूने हैं। जाड़े की इस उदास दोपहरी में खाली फटी हुई ज़मीन लेटी है और मैं उदास पगडंडियों से सरकता जा रहा हूं-मां मर गई है-मन की उदासी इस विशाल भूभाग की उदासी के साथ मिलकर गाढ़ी हो रही है। नदी का तट-तट ही तट-पानी की एक रेखा बीच में आहत-सी खिंची है और तट का लम्बा विस्तार यहां से वहां तक फट गया है।

लोग अब लोग नहीं रहे व्यक्ति बन गये हैं जो कहीं-कहीं नदी में नहा रहे थे, मुझे आता देख सूनी आंखों से ताक रहे थे। तट पर कुछ गन्दे कपड़े सूख रहे थे जिन्हें कुछ नंग-धड़ग बच्चों ने धोकर फैला दिया था-नाव थकी-सी एक किनारे पड़ी थी।

नदी के बाद कछार का बीहड़ इलाका। दूर तक रेत ही रेत-। हर साल बाढ़ आती है, सारी हरियाली निगल जाती है और छोड़ जाती है सन्नाटा, भुखमरी लेकिन रबी के लिए ओदी ज़रूर दे जाती है-बेबसी और अभाव में भी एक हंसता हुआ सपना।

इस साल बाढ़ नहीं आई पानी भी नहीं बरसा। खरीफ की फसल जो गई सो गई, रबी की फसल के लिए भी ज़मीन तैयार नहीं हो सकी। बांगर और कछार एक से। मगर बांगर पर बिजली के कुएं तो हैं, नहरें तो हैं, लेकिन यह कछार एकदम अपने भाग्य पर ठहरा हुआ-पानी तेज बरसा तो उजड़ गया, कहीं कोई सुनने वाला नहीं-

मेरी टांगों में दर्द हो रहा था, हां पांच मील लगातार चल आया, कोई सड़क नहीं, कोई सवारी नहीं, ऊंची-नीची पगडंडियां और टांगों में दर्द। मंत्रीजी दौरा करने गये थे-बाढ़ क्षेत्र का, सूखा क्षेत्र का, हवाई जहाज, कारें-। पहनाये जाते हुए माला, जयजयकार, जनता को देखती नागरिक आंखें-

खपरैलों पर उदास धूप में लौकी, कोहड़ों की सूनी बेलें फैली हुई थीं। तिजहर हो गई थी। घर पहुंचा तो पिताजी तीर बांस लिए बैलों को चरन पर से अलगाते दिखाई पड़े। उनकी दुबली-पतली काया दाढ़ी बढ़ जाने से और भी विषादग्रस्त दिखाई पड़ रही थी। मैं उनके सामने जाकर खड़ा हो गया। गमी में प्रणाम नहीं करते। उन्होंने मुझे देखा, खड़े-खड़े क्षण-भर देखते रहे फिर उनके सर्द चेहरे पर एक रेखा उभरी, कांपी और सारा ठहराव टूट गया।

तड़ड़ाक-

मैंने चौंककर देखा-बैल ने पगड़ा तुड़ा लिया था। पिताजी नहीं चौंके जैसे यह तो सामान्य घटना है। बोले-'क्या हो? बैलों पर पेट भरता नहीं, पगहा न तुड़ायें तो क्या करें। पहले तो दिन में कई बार तुड़ाते थे अब तो गलकर आधे रह गए हैं।'

मैं देखता रहा-बैलों के शरीर का मांस गलकर बह गया है, हड्डियां-ही-हड्डियां बच गई हैं।

'एक तो मर गया।' बड़े कष्ट से पिताजी ने कहा।

मैं चुप रहा। पिताजी बोलते गए, 'भयंकर अकाल फैला हुआ है, न पशुओं को चारा मिलता है न मनुष्यों को भोजन।'

'हे राम।' कहकर पिताजी चुप हो गये उनकी चुप्पी में न जाने कितनी व्यथाएं उभर आईं।

बस-स्टेशन से देखता आ रहा हूं-नदी, खेत, गांव और लगता है कि इस छः मील की सारी उदासी पिताजी की चुप्पी में समा गई है।

पिताजी एक काठ की चौकी पर बैठ गये और मैं एक चारपाई पर। अन्दर से बुआजी लोटे का पानी लिए निकलीं तो मैं धक्क से रह गया। लगा मां लोटे का पानी लिए निकली हों। मन एकाएक कितनी स्मृतियों से भर उठा, कितनी यात्राओं की वापसी और लोटे का जल लिए मां का निकलना-

'कल ही आई हैं' बुआजी की ओर लक्ष्य करते हुए पिताजी ने कहा।

फिर चुप हो गए जैसे किसी भंवर में फंस गये हों।

'तुम्हारी मां तुम्हें देखने को तड़पती रह गईं। उनकी आंखों में अंतिम दम तक जैसे एक ही प्यास थी-तुम्हें देखने की। तुम समय से न आ सके।'

मेरे भीतर एक हूल-सी मारने लगी। मां की तरल निरीह आंखें मुझमें भर आईं। मैं भीतर-भीतर गलने लगा। मेरे रक्त में बचपन से लेकर अब तक का समय बहने लगा-हर पल में, मोड़ पर, हर व्यथा में मां-हर संघर्ष में मां-। जब से शहर में रहने लगा था मां अकेली छूट गईं पिताजी के साथ। मैं इकलौती संतान परिवार के साथ शहर में।

'तुम्हें मरते समय देख नहीं पाऊंगी।' हर बार घर जाने पर मां कहतीं और हर बार मेरे जाने से पहले बेचैन हो उठतीं। मैं हंसी में टाल देता। मां और भारी हो आतीं।

मैंने कई बार मां से शहर चलकर मेरे साथ रहने को कहा था लेकिन वह पिताजी को छोड़कर आने को राजी नहीं हुईं और पिताजी खेती-बारी छोड़ने को तैयार नहीं थे।

नदी का निचाट कछार-इस रास्ते में कई बार आया हूं इस मौसम में। तब खेत तरह-तरह की फसलों से भरे रहते थे। बांगर पर के खेतों में अरहर की फसल लपसती रहती थी, किसानों से रास्ते बजते रहते थे, गांव की लड़कियां और स्त्रियां हंसती हुई खेतों में उतरायी रहती थीं-आज रास्ते सूने हैं। जाड़े की इस उदास दोपहरी में खाली फटी हुई ज़मीन लेटी है और मैं उदास पगडंडियों से सरकता जा रहा हूं-मां मर गई है-मन की उदासी इस विशाल भूभाग की उदासी के साथ मिलकर गाढ़ी हो रही है।

मेरे भीतर एक पल में कितना कुछ बह गया। एकाएक याद आया कि पिताजी ने कुछ कहा है और मैंने सफाई देते हुए कहा-'पिताजी, मैं अपनी ओर से समय से ही आया किन्तु एक तो यहां से चिट्ठी जो पहुंची वह सात दिन में पहुंची, दूसरे छुट्टी लेने में और इन्तज़ाम करने में दो दिन का समय बीत गया और आने में दो दिन।'

'पाताल में बसे हुए हैं हम लोग, चिट्ठी-पत्री के आने-जाने में कितना समय बीत जाता है, सरकार तो जानती भी नहीं कि इस देश में यह इलाका भी है-' पिताजी दुःखी स्वर में बोले।

'क्या हुआ था मां को?'

'बीमारी तो कोई ख़ास नहीं, कुछ पेट-वेट का मर्ज़ था, वह तो पहले से ही था। लेकिन इधर पेट में बहुत तेज़ जलन होने लगी थी। यहां के वैद लोग चूरन देते रहे किन्तु कोई फायदा नहीं हुआ। रात-भर चीखती रहीं और एक दिन बस सब-कुछ समाप्त।'

मुझे मालूम है कि मां के पेट में अक्सर दर्द होता था। जब मुझे भी वह दर्द होने लगा तो शहर के डॉक्टरों से मालूम हुआ कि वह हाइपर एसिडिटी है जो मुझे मां से मिला है। डॉक्टर कहते हैं कि इसके बहुत बढ़ जाने पर पेट में गांठ पड़ जाती है फिर फोड़ा बनकर फूट जाता है और पेट में ज़हर फैल जाता है-मां इसी से मरी हैं-इस रोग में दवा के अलावा काफी दूध चाहिए-

'क्या खाती थीं मां बीमारी में?' गांव की हालत जानते हुए भी मैंने अभ्यास वश पूछ लिया।

'क्या खाती थीं? अरे यहां खाने को और मिलता भी क्या? चना, मटर, मक्का, सत्तू, भूजा---और वह भी कहां मिलता है इन दिनों? घर पर तो भूख दहाड़ रही है। पैसा देने पर भी तो अब कोई अन्न नहीं मिलता।' पिताजी आहत स्वर में बोले।

तो मां मर गईं मटर और मक्का खाकर। उन्हें पेट की बीमारी में खाने को अच्छा अन्न भी नहीं मिल सका। मुझे लगने लगा कि मां की मौत का ज़िम्मेदार कहीं मैं भी हूं-न उनकी दवा करा सका और उनके पथ्य के लिए पर्याप्त पैसे भेज सका।

पैसे की याद आई तो हाथ जेब की ओर चला गया। हां, सौ रुपये सही-सलामत हैं। इसी का इन्तज़ाम करने में तो दो दिन लग गए थे। उसकी भी क्या कमाई है कि मौका पड़ने पर सौ रूपये भी नहीं निकाल सकता।

'पिताजी ये रूपये लाया हूं सौ हैं।'

'ठीक है, जो हैं सो हैं। इस ज़माने में किसी तरह काम चलाना है, पैसा देने पर भी सामान कहां मिलते हैं?'

पिताजी ने मेरे रुपयों की संख्या पर कोई टिप्पणी नहीं की, कभी नहीं करते। उन्होंने घर के लिए कभी पैसे नहीं मांगे जैसा कि गांव के लोग अपने घर के कमासुतों से मांगते हैं। वे जानते हैं जेरी मजबूरियों को, शहर में परिवार लेकर रहने वाले एक व्यक्ति की मजबूरियों को।

शहर में राशनिंग चल रही है, रोज रेडियो पर नेताओं के भाषण आते हैं-देश संकट में है, अन्न का अपव्यय नहीं करना चाहिए, समारोहों में एक सौ आदमी से अधिक को नहीं खिलाना चाहिए-यह एक जुर्म है।

मगर मैं प्रायः देखता हूं समारोहों का फैलाव। सौ आदमी बाहर खाते हैं तो चार सौ आदमी परदे के पीछे और नेता लोग देश का काम-धाम छोड़कर इस प्रकार का अपव्यय करने वाले धनपतियों के बेटी-बेटों को आशीर्वाद देने जाते हैं। अभी उस दिन मेरे मुहल्ले में रहने वाले एक सेठ की बेटी से मंत्री के

बेटे की शादी थी और मैंने जो तमाशा देखा उसे बयान नहीं कर सकता। इसलिए जब रेडियो पर नेताओं के भाषण आते हैं, रेडियो बन्द कर देता हूं, स्वार्थी, बकवासी, देशद्रोही। तिजहर ढल रही थी, मैं पास के गांव के बाज़ार के लिए निकल पड़ा धीरे-धीरे चीजें खरीदनी हैं न। गांव के बीच से होता हुआ जा रहा था, भयंकर सन्नाटा। मुझे याद हो आई बचपन में देखे हुए प्लेग की, गांव में भयंकर सन्नाटा जैसे अभी-अभी कोई तूफान गुजरा हो। लोग मुझे देखते थे प्रणाम-आशीर्वाद होता था। सब-कुछ एक अजनबी की तरह। कुछ लोग दीवार से सटे हुए धूप के सहारे बैठे अपने मैले कपड़ों में से चीलर निकाल रहे थे, कुछ औरतें एक-दूसरे के सिर से जूं निकालकर मार रही थीं, कुछ उपले पाथ रही थीं, गुड़साल सूना था, उसमें घुसकर एक कुत्ता लेटा हुआ था। दरवाज़े-दरवाज़े पर बच्चे खाली कटोरे लिए रो रहे थे या रोकर थक गये थे-पेट निकले हुए, हड्डियां उभरी हुईं, आंखों में एक थका अंधकार।

लोग धीरे-धीरे बाज़ार की ओर निकल रहे थे जैसे खेत में खड़े किये गये धोखे चल रहे हों। गांव के बाहर हुआ, सामने खेत बोये-अनबोये पड़े थे।

'खेत अनबोये पड़े हैं', मैं अपने आप से बातें करने लगा था।

'पालागी बबुआ।' आगे-आगे सरकती हुई एक आकृति पीछे मुड़कर बोली-'बबुआ जब कुछ होना ही नहीं है तो घर में जो दो-चार दाना रखा हुआ है उसे भी कौन बरबाद करे?' फिर वह हांफने लगा।

'दुधई, अरे तुम।'

'हां, मालिक।'

'कहां से,'

'अब का बताएं बबुआ, मजूरी-पताई तो मिलने की नहीं। चम्पारन का एक आसरा होता था, इस समय हम लोग वहीं जाकर धान-वान काटते थे दिन गुज़र जाते थे। सुना है वहां भी सूखा पड़ा है, कुछ काटने-ढोने को रहा ही क्या?-अब बबुआ खाने बिना हम लोग तड़प-तड़पकर मर रहे हैं, यहां से वहां, वहां से यहां घूम रहे हैं कुछ पाने के जोगाड़ में।'

'इस गठरी में क्या है दुधई?'

'अब का बताएं मालिक, अब तो इसी का सहारा रह गया है न-पेड़ की छाल है।-लेकिन बबुआ हम लोगों के पास पेड़ भी तो नहीं है, किसी के पेड़ की छाल काटी तो गाली-मार सहनी पड़ती है।' पेड़ की छाल आदमी आता है-कितना अमानुषिक। उफ! लेकिन मेरे लिये मानव की यह बेबसी नयी नहीं है। मैंने उसके कई रूपों, रंगों के बीच से यात्रएं की हैं-गोबरहा-पशुओं के गोबर में से अन्न के दाने निकालकर खाना क्या कम बेबसी है? हमारे यहां के हलवाहे खाते हैं और हम समाजवाद, मानवतावाद, प्रजातंत्र आदि का नारा लगाते नहीं अघाते।

खपरैलों पर उदास धूप में लौकी, कोहड़ों की सूनी बेलें फैली हुई थीं। तिजहर हो गई थी। घर पहुंचा तो पिताजी तीर बांस लिए बैलों को चरन पर से अलगाते दिखाई पड़े। उनकी दुबली-पतली काया दाढ़ी बढ़ जाने से और भी विषादग्रस्त दिखाई पड़ रही थी। मैं उनके सामने जाकर खड़ा हो गया। ग़मी में प्रणाम नहीं करते। उन्होंने मुझे देखा, खड़े-खड़े क्षण-भर देखते रहे फिर उनके सर्द चेहरे पर एक रेखा उभरी, कांपी और सारा ठहराव टूट गया।

दुधई मेरा हलवाहा है, मैं मर्माहत-सा बाजार चला जा रहा था और वह धीरे-धीरे मेरे पीछे सरक रहा था जैसे कोई प्रेत।

'कें कें कें-'

पेड़ पर एक बड़ा पक्षी छोटे पक्षी को दबोचे हुए था।

मैं विचलित होकर देख रहा था।

'आ का देख रहे हैं मालिक। चिरई चुरूमन भी अपना धरम खो बैठे हैं। खेतों के ऊपर उड़ते रहते हैं कहीं कोई दाना दिखाई पड़ता, पटपटाकर मर रहे हैं। क्या करें, अपनी जाति के छोटे-छोटे पक्षियों को मारकर पेट की आग बुझा रहे हैं।'

चें चें चें-स्वर धीरे-धीरे ठंडा पड़ गया।

चांय-चांय-चांय-चांय ढलती धूप सूअर के चीत्कार से और भी उदास हो आई। एक श्मशान सहसा चिल्लाता हुआ मालूम पड़ा।

'चमरौटी के चमार एक सूअर मार रहे हैं, अब सूअर ही सहारा रह गये हैं। रोज़ दो-एक कटते हैं। चमरिया की पूजा भी हो जाती है और पेट की भी पूजा।'

दुधई ने फिर पैगली की और डगमगाता हुआ अपनी झोंपड़ी की ओर बढ़ गया। मैं सूनी हरिजन बस्ती के बीच से धीरे-धीरे बाज़ार की ओर बढ़ गया।

बाज़ार में पहले से ज़्यादा भीड़ थी लेकिन शोर नहीं था। लोग एक-दूसरे के लिए अजनबी से घूम रहे थे, बेकार थे, काम ही क्या था? लेकिन लेन-देन का शोर नहीं उठा रहा था। बनिया दुकान पसारे बैठे थे और लोग अपनी खाली जेबों में हाथ डाले सामने से गुज़र-गुज़र जाते थे। कुछ बनिया से उधार के लिए चिरौरी कर रहे थे और बनिया अपनी असमर्थता के साथ झिड़क रहा था।

मैं अं अं अं अं-

चिक्का खसी को रेत रहा था। थाने के सिपाहीजी, किसी साहब के चपरासीजी, बाबू साहब के खवासजी और कुछ बाहर से आये हुए देहाती बाबूजी लोग उसके आसपास घिरे थे। कुत्ते बहते हुए खून के लिए लड़ते हुए आपस में कटाउझ कर रहे थे और पेड़ से बंधे कुछ बकरे आंखों में अजब भय भरे सब-कुछ देख रहे थे। चील ऊपर चक्कर काटती हुई टिहा रही थी, बाज़ार थर्रा उठता था।

भर्र भर्र भट भट भट-

एक शोर बाजार के सन्नाटे को कुचलता आता है।

बाबू साहब हैं, छावनी पर आ रहे हैं, देखा नहीं उनका खवास गोश्त ख़रीद रहा है-

मैंने बाबू साहब को फिर देखा-और मोटे हो गये हैं। उनके भार से

मोटर सायकिल के पहिए कराहते से लग रहे हैं। उनके साथ एम.एल.ए. साहब भी हैं-कल कोई सभी है कांग्रेस की जिसमें भूखी जनता को उपदेश पिलाया जाएगा-हां बाबू साहब को इस बार कांग्रेस चुनाव टिकट देने वाली है।

तो क्या बाबू साहब कांग्रेसी हो गये हैं? ज़मींदार बाबू साहब। जमींदारी टूटने लगी तो बहुत से खेत बेचकर व्यापार में लगा दिया, अब कई कारखानों के मालिक हैं और कांग्रेसी भी। एक ज़मींदार, एक व्यापारी, एक कांगेसी सभी कुछ एक ही व्यक्ति में-बाबू साहब।

पुलिस के सिपाही, एक सरकारी साहब तथा और बहुत से देहाती बाबू लोग छावनी की ओर बढ़ गये और भूखी जनता दुकानों के आसपास चक्कर काटती रही-। एक औरत को जड़इया आ रही थी, उठकर कुछ सौदा लेने आई थी, बाज़ार में ही गिरकर कांपने लगी और एक बूढ़े आदमी की सूखी खांसी ने इतना जोर मारा कि कटते हुए बकरे की तरह उसकी आंखें छटपटाने लगीं और एक पेड़ का आसरा लेकर जमीन पर पसर गया।

शाम होते ही गांव में मौत का सन्नाटा छा गया-न कोई खेतों की ओर गया, न अलावा के पास जमघट इकट्ठा हुआ। लोग अपने-अपने घरों के अंधेरे में डूब गये। बहुत से घरों में न चिराग जले न चूल्हे। रात शाम को ही गहरी हो गई और अपने भारी डैनों के नीचे ज़मीन के सारे खालीपन को ढँकती गई।

पिताजी तीर बांस लिए चौकी पर लेटे थे और मैं चारपाई पर कम्बल ओढ़े। रह-रहकर बातें करते थे और फिर डूब जाते थे किसी प्रदेश में और मैं भी रात के सन्नाटे में भारी हो रहा था। अंधेरे में हम दोनों अलग-अलग एक ही व्यथा में डूब रहे थे-मां। पिताजी की आंखों के सामने उभरते अकेलेपन का मैं अनुभव कर रहा था। लम्बी यात्रा के एक ठहराव पर आकर सहयात्री ने साथ छोड़ दिया किन्तु यात्री को अभी और दूर जाना है, न जाने कहां तक और वह अकेला है। अब मुड़-मुड़कर पीछे की ओर देख लेता है तब यात्रा और भारी हो उठती है।

मुझे लगता था कि अब मां निकलेंगी लोटे का पानी लेकर और पास घंटों बैठी हुई मेरा हालचाल पूछेंगी, सिर पर धीरे-धीरे हाथ फेरती हुई बच्चों के बारे में ढेर-सी बातें करेंगी-

घंटों बीत गये नींद नहीं आई। चौंक पड़ा-पिताजी शायद रो रहे थे। मैंने सो जाने का बहाना किया इसलिए उनके रोने में कोई विघ्न नहीं पड़ा। हबसते रहे, उनका दर्द बहता रहा और मैं अपने दर्द को भीतर दबाए मुंह कसे रहा। लगा कि मैं भी रो पड़ूंगा लेकिन अपने को पकड़े रखा और मेरी व्यथा भीतर-ही-भीतर जमती गई।

तिजहर ढल रही थी, मैं पास के गांव के बाज़ार के लिए निकल पड़ा धीरे-धीरे चीजें ख़रीदनी हैं न। गांव के बीच से होता हुआ जा रहा था, भयंकर सन्नाटा। मुझे याद हो आई बचपन में देखे हुए प्लेग की, गांव में भयंकर सन्नाटा जैसे अभी-अभी कोई तूफान गुज़रा हो। लोग मुझे देखते थे प्रणाम-आशीर्वाद होता था। सब-कुछ एक अजनबी की तरह। कुछ लोग दीवार से सटे हुए धूप के सहारे बैठे अपने मैले कपड़ों में से चीलर निकाल रहे थे, कुछ औरतें एक-दूसरे के सिर से जूं निकालकर मार रही थीं, कुछ उपले पाथ रही थीं, गुड़साल सूना था, उसमें घुसकर एक कुत्ता लेटा हुआ था। दरवाज़े-दरवाज़े पर बच्चे खाली कटोरे लिए रो रहे थे या रोकर थक गये थे-पेट निकले हुए, हड्डियां उभरी हुईं, आंखों में एक थका अंधकार।

सुबह आठ बजे घर से बगीचे की ओर निकला। सफाचट मैदानों पर निरवलंब गिरा हुआ कुहरा अब भी छाया हुआ था, धूप असहाय-सी उसके भीतर रेंग रही थी, कुछ लोग दीवार पर चिपकी धूप से सटे थे, उनके चेहरे से लगता था कि रात अपनी पूरी आर्द्रता और अंधकार से उन पर मोटी-मोटी रेखाएं खींचकर गुज़री है।

मुझे अपना बचपन याद आ गया और डंक मारती हुई सुबहें, रातें मुझमें से तेजी गुजर गईं। गरम कोट के भीतर मुझमें कंपकंपी होने लगी।

'दुधई मर गया' कोई बोला।

'मर गया?' चलते-चलते मैं रूक गया। अभी कल ही तो उसे देखा था।

'आज रात को टें बोल गया भइया। बहुत भला आदमी था।'

भला-बुरा होने से क्या होता है मौत के संदर्भ में? हर मरने वाले के लिए भला शब्द सुनने का अभ्यास पड़ गया है हम लोगों को।-लेकिन दुधई सचमुच भला आदमी था। लेकिन वह भला न होता तो भी मुझे कष्ट तो होता ही। मेरा हलवाहा था वह और उसके साथ मैंने जीवन को अनेक संदर्भों में देखा है-।

'गांव के दो हरिजन और मर गये।' एक आदमी बोला।

'और किसी को ख़बर नहीं।'

'मरना कोई अजीब बात रह गया हो तो खबर हो, अब तो मौत हर दरवाज़े पर धरना दे रही है, कौन कब चल देगा क्या ख़बर?---और जाड़े की रात में किसी के रोने-धोने की आवाज़ उठती भी है तो भीगे हुए अंधकार में उलझकर रह जाती है।'

मैं आगे बढ़ा। एक कुत्ता रास्ते पर ठंडक से मर गया था और सवेरे-सवेरे कौओं की काली-काली भीड़ उसके आसपास मंडरा रही थी।

मां का काम हो गया। बहुत संक्षेप में सारी क्रिया की गई। मेरे मन में बहुत पहले से काजक्रिया की इस परिपाटी के विरूद्ध-ख़ासकर महापात्रें वाले विधान के खिलाफ विद्रोह था। लेकिन गांव में ये सारी क्रियाएं निभानी पड़ीं। आलोचनाएं होने लगीं कि मैंने मां का काम बिगाड़ दिया कि कुछ खर्च-वर्च नहीं किया, वैसी पुण्यता के काम-काज में काफी टीम-टाम होना चाहिए था।-मैंने चुपचाप सब-कुछ सह लिया और एक बार गुस्से से कुछ लोगों को सुना दिया कि भीड़-भाड़ देखनी हो तो चले जाओ मंत्रियों, नेताओं और सेठों के यहां चलने वाली शादियों में। इस अन्न संकट के जमाने में अन्न-धन्न का अपव्यय करने के लिए मुझ जैसे आदमी के पास न तो पैसे हैं और न नैतिक साहस।

पड़ोस की चाची बीमार थीं, वे मां की सखी थीं। दोनों को प्रायः साथ देखा था।-मैं उन्हें देखने गया था, एक दुर्बल काया खाट पर लेटी पड़ी थी। तन पर एक मैली-सी फटी गूदड़ी। चाचा उनके पास गाल पर हाथ धरे बैठे थे। उस घर में और कोई नहीं है। एक लड़का है मन्ना जो कलकत्ता के किसी जूट मिल में काम करता है।

'चाची को क्या हुआ है?'

'अब क्या बताएं बच्चा, कल तो ठीक थीं, लगता है रात को ठंडक लग गई है।'

'एक ही दिन की बीमारी में चाची ऐसी लट गईं?' चाचा की आंखें एक बार बहुत भारीपन से ऊपर को उठीं फिर अपने में लौट आईं। कुछ रूककर अटकते हुए से बोले-'बीमारी तो एक दिन की है बच्चा लेकिन भूख तो कई दिन की है न।'

चाची कराहीं, उनकी आंखें ऊपर उठीं। मैं धक्क से रह गया-मां की दृष्टि, वही करुणा, वही व्यथा, वही आर्द्रता- ।

सरस्वती जी के साथ

'मन्ना को देखने की रट लगाये हैं लेकिन बेचारे के पास आने का किराया हो तब न।' चाचा बोले।

चाची कराहकर बोलीं, 'बेटा, सुखी तुम्हें देखने की प्यास लिये अंतिम दम तक छटपटाती रही। कितनी भली औरत थी गांव सूना हो गया।'

चाची की दृष्टि मेरे भीतर चुभती चली जा रही थी। ओह, मां भी ऐसे ही मरी होंगी, ऐसी ही दिखी होंगी-वही व्यथा, वही करूणा, बेटे को देखने की वही प्यास-।

एक खाली हांडी गिरी और चूर-चूर हो गई। शायद अन्न की तलाश में किसी चूहे ने गिरा दिया है।

मेरी इच्छा हुई कि पांच रूपये दे दूं चाची के लिए-मां बहुत याद आ रही थी। हाथ कई बार पाकेट पर गया लेकिन मैं रूपये नहीं निकाल सका-अभी लौटना भी तो है।

चाची के पास से धीरे-धीरे लौट आया। मैंने पिताजी से बहुत आग्रह किया कि वे मेरे साथ चलकर रहें। अब यहां क्या रखा है?

पिताजी कुछ चुप होते हुए से बोले-'हां रखा तो कुछ भी नहीं है मगर अपने खेती-बारी तो है, अपना पुश्तैनी मकान तो है।'

'बेच दीजिए इन्हें?'

'राम-राम, कैसी बात करते हो बेटा, पुश्तैनी चीज है, कहीं बेची जाती है?'

'लेकिन पिताजी सोचिए आपके बाद इनका क्या होगा, क्या मेरे बच्चे यहां आयेंगे खेती-बारी कराने?'

'हां नहीं आयेंगे तो मेरे मरने के बाद बेच देना, मैं कैसे छोड़ सकता हूं।'

पिताजी नहीं माने। मैं उन्हें अकेला छोड़कर शहर लौटने लगा-सुना चाची मर गईं, चाचा अकेले भोंकर-भोंकर रो रहे हैं।

चाची मर गईं, मेरे पांच चलते-चलते ठिठक गये-चाची की आंखों में वही मां की आंखें। मैं मां को नहीं देख सका लेकिन चाची की आंखों में उन्हें देख लिया। गांव की बहुत-सी औरतें बीमार हैं, हर औरत मां है, मुझे हर औरत की तड़प में मां की तड़प दिखाई दी।-अभावों से घिरा स्तब्ध वायुमंडल, उसमें भटकती मृत्यु की गंध और घर में दम तोड़ती एक मां-मां मैंने तुम्हें देख लिया---।

मेरे रुके हुए पांव फिर चल पड़े और गांव के बाहर हो गये। धीरे-धीरे छूटने लगे सिवान पर खड़े अकेले पिताजी, सूने-सूने गांव-फैली रेत-दरारों-भरा नदी का तट-।

एकाएक बच्चे ने आकर रेडियो तेज़ कर दिया, 'लेकिन लोग बहुत मनोबल से लड़ रहे हैं, उनमें बड़ी शक्ति है, किसी को भूख से मरने नहीं दिया जाएगा।'

उठकर मैंने खटाक से रेडियो बन्द कर दिया और कुछ जरूरी काम निबटाने में जुट गया। ◆

पता : बी-24 ब्रह्मा अपार्टमेंट, सेक्टर-7,
प्लाट नं.-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
मो. : 7303105299

बबूल और कैक्टस

उस दिन अपने मित्र के यहां ड्राइंगरूम में जब बबूल की एक टहनी को लगे देखा, तो देखता ही रह गया। न जाने कैसा-कैसा लगने लगा। जैसे एक भरे-पूरे, जीवंत वन्य पुरुष की एक बांह काटकर फूलदान में खोंस दी गई हो या एक लम्बे-चौड़े हरे-भरे मैदान का एक कोना नोंचकर कमरे के एक कोने में डाल दिया गया हो। मित्र के कमरे में एक ओर कैक्टस शोभित था, दूसरी ओर बबूल की टहनी, और मित्र अपनी चमत्कारी सूझ-बूझ पर खुश होकर दाद पाना चाहते थे। मैंने दाद दी उनके नये सौंदर्य-बोध की, जिसने कैक्टस के साथ ही बबूल को कमरे में सजाकर, सजावट को नया आयाम दिया था। किन्तु जब मैं वहां से चला, तो बबूल उस कमरे से निकलकर मेरे साथ हो लिया, और समय की दूरियों में फैलता-फैलता, अजब-अजब तरह की अनुभूतियां बनकर मुझ पर छा गया।

बबूल को कमरे में देखना मेरे लिए एक नया अनुभव था। कमरे में कैक्टस देखा था, गुलाब देखा था, बेला देखा था, तरह-तरह के देशी-विदेशी फूल, कागज़ और प्लास्टिक के फूल देखे थे, सुकुमार लाजवन्ती लतिकाएं देखी थीं, और मैंने कभी भी असहजता या अन्यमनस्कता नहीं अनुभव की। मुझे अक्सर यही लगा था कि ये फूल, ये लताएं चाहे कमरे में रहें चाहे बाहर, क्या फर्क पड़ता है ! उन्हें थोड़ी-सी मिट्टी चाहिए, थोड़ा पानी चाहिए। यह कहीं भी मिल सकता है, और ये सुख से रहते हैं। -लेकिन बबूल-बबूल को कमरे में देखने का बोध मेरे मन में अंटता ही नहीं था। -कमरे में लगा हुआ कैक्टस कितना सुखी और निर्द्वन्द्व था, और बबूल की टहली एक ही घण्टे में मुरझा गई थी।

बबूल कमरे में नहीं रह सका और मेरे सामने फैलता गया। खुले मैदानों में सीमाहीन रेतीले विस्तारों में, धू-धू जलती हुई दोपहरियों की वीरान घाटियों में, बादलों की छांह में कांपते-भीगते सीमाहीन कछारों में-बबूल को मैंने देखा है। देखा ही नहीं, जिया है, उसके फूलों और कांटो के साथ-। वह एक टहनी नहीं है, वह एक पेड़ है, समूचा पेड़-जीवन की विराटूता से जुड़ा, विशाल भू-भाग और समय में उगा हुआ। मैंने उसे अब तक इसी विराटूता में जिया है। कमरे का बबूल मेरे लिए एक नया बबूल था, जो मेरे मन के अनुभवों में कहीं समा नहीं पा रहा था। कैक्टस ! उसे हमेशा घेरे में जीते हु, पाया है, घिरते और घेरते हुए-।

बबूल मेरे जीवन के अनेक जीवित सन्दर्भों और अनुभवों से गुंथा है। एक दृश्य उभरता है, बचपन का-मैं अपने खेतों को पहचानने में अक्सर भटक जाया करता था। लेकिन बबूल के पेड़ थे, उन्हें फ़ौरन पहचान लेता था। उन बबूलों को अनेक मौसमों में, अनेक फसलों में, अनेक मनः स्थितियों में देखा है। फसल जवानी में होती, हम बबूल के नीचे बैठकर रखवाली करते, चिड़ियों को उड़ाते और दोस्तों को इकट्ठा कर कहानियां सुनते-सुनाते-राजा-रानी की कहानियां, हिरन और चूहे की दोस्ती की कहानियां, अनाथ ईमानदार बच्चों की कहानियां, जंगल की कहानियां, खेत की कहानियां, दया, न्याय और सत्य की कहानियां-। बबूल अपनी छोह फैलाये सब सुनता रहता, और बया बड़े विश्वास के साथ उस पर अपना घोंसला बनाया करती। हम लोग बया के लटके हुए सुन्दर-मज़बूत घोंसलों को देखते और समझ नहीं पातें कि बया ऐसे सुन्दर घोंसले बबूल पर ही क्यों बनाती है !- खेलते-खेलते मैंने कई बार बबुरी की माला बनायी थी, और बचपन के मासूम गले में पहनायी थी। खेलते-खेलते उसके कांटे तलवों में गड़े हैं, जिन्हें लिए हुए घर आया हूं और मां ने बड़े प्यार भरे हाथों से धीरे-धीरे निकाला है। मां नहीं है आज, लेकिन उसके स्पर्श हर कांटे के साथ तलवों में सरसरा रहे हैं। आज पांव में कांटे नहीं गड़ते। हमेशा ज़मीन और पांव के बीच एक दूरी बनी रहती है, जूते की। आज कांटे भीतर-ही-भीतर उगते हैं, चुभते हैं, और भीतर-ही-भीतर टूट जाते हैं। कोई किसी का कांटा नहीं निकाल सकता। अपने-अपने टूटे कांटे लिए सभी बन्द कमरों की तरह घूमते रहते हैं-अजनबी अपने से, दूसरों से।

मेरे खेतों के बबूलों ने मुझे कई बार रुलाया है, कई बार मेरे कपड़े फाड़े हैं, मेरे अंग नोचे हैं-लेकिन वे हमेशा मेरे करीब होते गये हैं, मुझमें

खुलते गये हैं। जब बरसात में मेरे खेत पानी से भर जाते, धान के पौधे भीगी हवा के झोंकों में कांपने लगते, तो पीले-पीले फूलों से लदे बबूल की छाया पानी में झरती रहती, और मैं देखता रहता। यह देखना, अनजाने मेरे गीतों की कितनी पंक्तियों की रचना करता रहता-

भीगी-भीगी हवा बबूलों को छू-छू
बह जाती,
पीली-पीली छाया जल में कांप-कांप
रह जाती,
कांटों में फूले प्राणों को तू आ-आ परसे,
न माने बादरवा बरसे

और-

ऊंची-ऊंची ताड़-शिखाएं
फैले-फैले वन शालों के,
झरते फूल बबूल, चीड़ की वे चोटियाँ
पार ढालों के
छूट रहे नी चे पुकारते
ऊपर पंख पसारे बादल चले जा रहे

और गर्मियों में अवधूत की तरह ये बबुरियों से लदे खड़े रहते। जब कहीं हरियाली नहीं होती, तो चरवाहे इन बबुरियों को तोड़-तोड़कर बकरियों को खिलाया करते। बंदर आम के फलहीन बगीचों से मारे-मारे आते, और इन बबुरियों पर भूख से टूट पड़ते।

निचाट खेतों में फावड़े चलाते मजदूर थककर, इन्हीं की अवधूत छाँह में बैठकर बल संचित करते थे। जलती हुई दोपहरी के अंधड़ में अकेले खड़े ये पेड़ मस्ती से हिलते रहते जिन्हें जो कुछ लेना हो, ले जा, इनके पास से!

मैंने अपने खेतों के इन बबूलों की डालियों को कई बार कटते हुए देखा है- दादी मरी हैं, दादा मरे हैं माँ मरी है, बहन मरी है। और हर बार इस हमदर्द साथी ने अपनी डालियाँ लुटाई हैं। कटकर आधा हुआ है, फिर पनपा है। कटकर कभी मुरझाया नहीं है, चुका नहीं है। बल्कि अपने को हमारे जीवन में व्याप्त कर व्यापक बनाया है- एक-एक संवेदना को छुआ है- कभी काँटों से, कभी फूलों से। इन सारे खेतों में वह डूबा है, फैला है। फावड़ा खेतों की जड़ता तोड़ रहा है, फसल उगाने को। फावड़े में बेंट बनकर बबूल उगा है। हँसिए फसलें बटोर रहे हैं, बबूल उनकी बाँह बनकर उन्हें पकड़े हुए हैं। छोटे-छोटे खटोले, जो मेरी कितनी ही नींद और स्वप्नों के साक्षी हैं, बबूल से ही बने हुए हैं। पता नहीं वे बबूल अब खेतों में हैं कि नहीं ? याद आ रहा है, अपने गाँव का स्कूल। तब मैं कैक्टस को नहीं जानता था, नागफनी को जानता था। अब ज्ञात हुआ है कि न गफनी कैक्टस का ही देशी दादा-परदादा है।

स्कूल नागफनी से घिरा होता था, शायद हाता बंदी के लिए, शायद इसीलिए कि लड़के इधर-उधर से भागने न पाएँ। हम लोगों के वस्त्रों और कपड़ों से नागफनी के काँटे बार-बार उलझे हैं, रक्त में उसके दंश परपरा, हैं, लेकिन हम लोग नागफनी के घेरों को अक्सर तोड़ते ही रहते हैं। आज याद आता है कि नागफनी के साथ हमारा कोई मौसम बँधा नहीं है, कोई ऋतु इसके पास ठहरी नहीं है, गर्मी की दो पहरियों में स्कूल से छूटने पर हम घरों को भागते थे नंगे पाँव, नंगे सिर, और रह-रहकर हम तड़पते थे। बीच-बीच में मस्ती से खड़े बबूल हमें अपने पास बुलाते और प्यार से हमारे सिरों पर हाथ फेर दिया करते थे। हम आस-पास के सारे बबूलों को जानते उनके नाम से, गुण से। आवश्यकता होने पर खुरपा लेकर किसी की छाल काट आते थे, और बबूल पिता की तरह बूँद-बूँद रस स्रवित करता था। उस रस को निकालकर हम लाते थे, स्याही बनाते थे। जिससे पता नहीं कितने अगार, कितनी पंक्तियाँ लिखी होंगी, कितने पन्ने रँगे होंगे, जीवन की सीढ़ियाँ चढ़ी होंगी। इनके रस ने पता नहीं कितनी चिट्ठियों का राज सँभालकर कोसों दूर पहुँचाया होगा।

सीढ़ियां चढ़ी होंगी। इनके रस ने पता नहीं कितनी चिट्ठियों का राज सम्भालकर कोसों दूर पहुंचाया होगा।

निचाट-दूर-दूर तक फैली रेती-लू के झोंकों में उड़ती हुई जेठ की दोपहरी-रेती के पार रेखा-सी चमचमाती एक नदी। इस रास्ते कई बार गुज़रा हूं- कभी बाहर से घर की ओर, कभी घर से बाहर की ओर, कभी कुछ खोजने के लिए बाहर जाता हुआ, कभी खोज से थका-हारा वापस घर आता हुआ-

कहीं कोई छांह नहीं, वीरान रेती, बेपरवाह झूमते हुए केवल बबूल के पेड़, पत्तियां आधी झड़ी हुई, थोड़ी-थोड़ी छाया जलती रेत पर हिलती हुई। बार-बार लपककर इस छांह में खड़ा होता था, थोड़ा-सा पसीना सूखता था, तन को राहत मिलती थी। रेती पार होते ही नदी आती थी। नदी के इस पार बबूलों का एक जंगल-सा आता था, और उस पार आमों का घना बगीचा, और कुछ दूर बाद गांव। आमों की घनी छांह नदी पार होते ही ऊपर आ जाती थी; लेकिन गांव के पास की यह छाया मुझे देर तक विलमा नहीं पाती थी। मैं मुड़कर एक

बबूल कमरे में नहीं रह सका और मेरे सामने फैलता गया। खुले मैदानों में सीमाहीन रेतीले विस्तारों में, धू-धू जलती हुई दोपहरियों की वीरान घाटियों में, बादलों की छांह में कांपते-भीगते सीमाहीन कछारों में-बबूल को मैंने देखा है। देखा ही नहीं, जिया है, उसके फूलों और कांटो के साथ-। वह एक टहनी नहीं है, वह एक पेड़ है, समूचा पेड़-जीवन की विराटता से जुड़ा, विशाल भू-भाग और समय में उगा हुआ। मैंने उसे अब तक इसी विराटता में जिया है। कमरे का बबूल मेरे लिए एक नया बबूल था, जो मेरे मन के अनुभवों में कहीं समा नहीं पा रहा था। कैक्टस ! उसे हमेशा घेरे में जीते हुए पाया है, घिरते और घेरते हुए...।

व्यास सम्मान के दौरान वक्तव्य देते हुए

बार फिर देखता था-पीछे मीलों फैली रेत पर फैले हुए बबूल, भटके यात्रियों के साथी-और देखता था, इस वीरान विस्तार में बनते और उड़ते हुए अपने पद-चिन्ह जो बबूलों की छांह में आ-आकर ठहरे होते।

नदी के इस पार जो बबूलों का जंगल है, वहां चरवाहे अपने ढोरों को पानी में छोड़कर अलसाये लेटे रहते, और गाते रहते कोई विरह का गीत। यह गीत उदास-सा, उजड़ी दोपहरी में भटकता रहता। यह कंटीला-ठूंठ बबूल का पेड़ विरह-गीत क्या समझता होगा ? विरह-गीत, प्रेम-गीत तो समझते हैं-आम, अशोक, बकुल, गुलाब, कमल, मालती। यह कांटेदार नीरस बबूल और विरह के गीत ? मगर मैं देखता था बबूल रह-रहकर हवा में सनसना उठते थे और गीतों की उदासी गाढ़ी हो जाती थी। और मुझे याद आती थी, अपने गांव के एक बाबा की, जिनकी घनी-घनी मूंछें थीं, छाती पर घने-घने बाल थे-करिया-भुजंग पूरी देह पर बड़े-बड़े बाल फैले हुए, देखने में एकदम रीछ लगते थे। मगर जब गाते थे तो उनकी आंखें तरल हो जाती थीं और आसपास का समस्त परिवेश पिघलकर बहने लगता था-। मुझे याद है, बाढ़ के दिनों में इन बबूलों ने कई बार बहती हुई नावों को रोका है, इनके तनों से नावों की रस्सियों को कई बार सहारा मिला है।

आज हम कमरों में बन्द हो गये हैं और कैक्टस अपने स्वभाव के अनुसार हमारा कमरे का साथी हो गया है। कमरे के घेरे में उगने वाले फूल और कांटों को, उनकी आपसी दूरियों को, उनकी आपस में काटती रेखाओं को कैक्टस उगाता है। कैक्टस भाग्यशाली है कि वह कहीं भी जा सकता है, उसकी डालें काटकर कहीं भी उगाई जा सकती हैं, कमरे में, कमरे के बाहर, क्योंकि उसे किसी ख़ास ज़मीन और मौसम से लगाव नहीं होता। वह गमले की थोड़ी-सी मिट्टी में, और कमरें में बन्द सदाबहार मौसम में बड़ी आसानी से जी सकता है, खुश रह सकता है, बाहर बहती हुई आंधियों, वासन्ती हवाओं, बरसाती झड़ियों, फसलों के अलमस्त विस्तार पर लोट-लोटकर रंगीन होती धूप और दूर-दूर घाटियों तक अनेक धुआं-भरी गलियों, मकानों, चौराहों, पगडंडियों, झोंपड़ियों की टूटती-जुड़ती नींद के स्वर सुनती रातों से बेख़बर। लेकिन अभागा बबूल अपनी ज़मीन छोड़कर नहीं जी सकता, वह मौसम की आवाज़ों से अलग नहीं हो सकता। वह समूचा जीता है, अंश-अंश नहीं। उसकी डालें काटकर कहीं भी नहीं लगायी जा सकतीं, वह भला बैठक-कक्ष के फूलदान में कैसे अंट सकता है ? दिल्ली जैसे आधुनिक नगर की आधुनिक बस्तियों में भी, बबूलों को बनावसिंगार से दूर, झाड़-झंखाड़ों में ही जीते, फलते-फूलते देखा है। इस कमबख़्त को आज भी, आज का जीवन जीना नहीं आया। मैं मित्र के कमरे में देख रहा था कि कैक्टस की खिलती हुई आधुनिक रंगत फूलदान में मुरझाते हुए गंवार बबूल पर बहुत ही आधुनिक ढंग से मुस्कुरा उठती थी।- मगर कौन जाने, कल बबूल भी जीना सीख ले! ◆

कहीं कोई छांह नहीं, वीरान रेती, बेपरवाह झूमते हुए केवल बबूल के पेड़, पत्तियां आधी झड़ी हुई, थोड़ी-थोड़ी छाया जलती रेत पर हिलती हुई। बार-बार लपककर इस छांह में खड़ा होता था, थोड़ा-सा पसीना सूखता था, तन को राहत मिलती थी। रेती पार होते ही नदी आती थी। नदी के इस पार बबूलों का एक जंगल-सा आता था, और उस पार आमों का घना बगीचा, और कुछ दूर बाद गांव। आमों की घनी छांह नदी पार होते ही ऊपर आ जाती थी; लेकिन गांव के पास की यह छाया मुझे देर तक विलमा नहीं पाती थी। मैं मुड़कर एक बार फिर देखता था-पीछे मीलों फैली रेत पर फैले हुए बबूल, भटके यात्रियों के साथी-और देखता था, इस वीरान विस्तार में बनते और उड़ते हुए अपने पद-चिन्ह जो बबूलों की छांह में आ-आकर ठहरे होते।

पता : पता : बी-24 ब्रह्मा अपार्टमेंट, सेक्टर-7, प्लाट नं.-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
मो. : 7303105299

'मैला आँचल में लोक-गीत की सर्जनात्मकता'

सामाजिक परिवेश से जुड़े उपन्यासों में लोक परम्पराओं का होना स्वाभाविक है। लोक की अनेक परम्पराओं में से एक है लोक-गीत की परंपरा। लोक-गीतों की परंपरा का प्रयोग अभिजन समाज से सम्बद्ध या मनोविज्ञान की जटिलताओं को खोलने वाले उपन्यासों में नहीं मिलता और आम आदमी के समाज से जुड़े उन ग्रामाधारित उपन्यासों में भी नहीं मिलता जिनका उद्देश्य होता है गाँव की किसी प्रमुख समस्या की अभिव्यक्ति करना। वहाँ पृष्ठभूमि या परिवेश के रूप में गाँव की अन्य अनेक परम्पराएँ मिल जायेंगी, किन्तु लोक-गीतों की परम्परा शायद नहीं मिलेगी। लोक-गीतों की परम्परा के सर्जनात्मक उपयोग की महत्वपूर्ण शुरूआत होती है 'मैला आँचल' से। 'मैला आँचल' से आँचलिक उपन्यासों की यात्र की शुरूआत होती है। इस उपन्यास ने गाँव की किसी विशेष समस्या- किसी विशेष पात्र, (नायक) का चित्रण करना अपना उद्देश्य नहीं बनाया बल्कि उसने 'मेरीगंज' गाँव को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करना चाहा। बाद के आँचलिक उपन्यासों ने भी विभिन्न अंचलों के गाँव विशेष के समग्र और संश्लिष्ट जीवन का प्रस्तुतीकरण कर 'मैला आँचल' की परम्परा को आगे बढ़ाया।

आँचलिक उपन्यास गाँव विशेष के बिम्ब के माध्यम से गाँव की कथा कहता है और वह गाँव आज का गाँव होता है- ठहरा हुआ नहीं, परिवर्तनशील गाँव। गाँव की संरचना बड़ी संश्लिष्ट होती है, उसमें कई जातियों, कई वर्गों, कई धर्मों के लोग होते हैं, उनके आपसी सम्बन्धों का तनाव और साहचर्य होता है, अनेक राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक सामाजिक समस्याएँ उन्हें मथती रहती हैं, गाँव की जड़ता और उसे तोड़ कर उगने वाली नयी चेतना का द्वन्द्व चलता रहता है, परम्परा और नयी जीवन-पद्धतियों का संघर्ष होता रहता है और प्रकृति तथा मानव की सहयात्रा के अनेक सम-विषम स्वर फूटते रहते हैं। परम्परा कहीं तो जड़ रूढ़ियों के रूप में दिखाई पड़ती है, कहीं ऐसी समृद्ध मानवीय विरासत के रूप में जिससे जुड़ कर, नया समय भी समृद्ध अनुभव करता है। सामूहिकता, भाईचारा, उत्सवों-पर्वों का राग रंग, प्रकृति के प्रति गहरी आत्मीयता, बाग बगीचों, कुओं, सरोवरों आदि की निर्मिति को पुण्य कार्य मानना आदि गाँव की ऐसी परम्पराएँ रही हैं जो पुरानी और अर्थहीन सिद्ध होने वाली नहीं और हम अनुभव कर रहे हैं कि आधुनिकतावाद की सनक में हम इनसे कट कर दरिद्र होते जा रहे हैं।

लोक-गीत, लोक-कथाएँ, लोक-नृत्य, लोक-नाट्य आदि भी गाँव की मूल्यवान परम्पराएँ हैं। ये हमारी अक्षय निधियाँ हैं जिनसे जुड़कर हमारा नया साहित्य, नया नाटक, नयी चित्रकला, नया नृत्य अधिक समृद्ध होता है क्योंकि इनमें लोक-जीवन के गहरे सुख-दुख, आकांक्षाएँ, प्रश्न और जिज्ञासाएँ स्वप्न और कठोर यथार्थ बड़े सहज भाव से व्यक्त हुए हैं और वे काल के प्रवाह में भी मैले नहीं हुए हैं बल्कि नित नयी दीप्तियाँ धारण करते हुए चलते रहते हैं। इसलिए जो साहित्य और कलाएँ इनसे जुड़ती हैं उनकी नवता में अद्भुत छवि दिखाई पड़ती है, इनसे कटा हुआ साहित्य और कलाएँ कुछ अभिजनों के बीच ठस बौद्धिक विलास या विमर्श बन कर रह जाती हैं। फिलहाल मैं उपन्यास मे गृहीत लोकगीतों वाली परम्परा की बात कर रहा हूँ। लोक-गीतों का प्रयोग आँचलिक उपन्यासों के लिए एक अनिवार्यता सी प्रतीत होती है। आँचलिक उपन्यास ग्राम जीवन को उसकी समग्रता में पकड़ना चाहता है तो लोकगीत उसकी पकड़ से बाहर कैसे रह सकता है? लोक-गीत हमारी ग्राम्य-जीवन-चर्चा में रमा हुआ है। गाँव के उत्सव, पर्व, ऋतुएं, सभी लोकगीत गाते हैं। लोक-गीत स्थितियों का वास्तविक विधान भी करते हैं। श्रम का परिहार भी करते हैं और लोक-मन की पर्तें भी खोलते हैं। वे उसके अवसाद और उल्लास, अंधकार और उजास की अभिव्यक्ति करते हैं। यानी कि वे ग्राम जीवन की पूर्ण पहचान के प्रमुख कारकों में से हैं।

लेकिन उपन्यासों में अब तक गाहेबगाहे ही उनका प्रयोग हुआ है क्योंकि वे जिस धरती और जीवन की पहचान के लिए जरूरी हैं, उन्हें अब तक कम

ही उपन्यासों में अपना आधार बनाया है। बनाय भी है तो उनकी समस्त छवियों को देखने के स्थान पर उनकी कुछ प्रमुख सामाजिक समस्याओं को केन्द्र में रखा है और उन समस्याओं के निरूपण के लिए लोकगीतों के उपयोग की अनिवार्यता नहीं होती। प्रेमचंद ने कहीं-कहीं बहुत मार्मिक रूप से लोकगीतों के टुकड़ों का प्रयोग किया है। रमानाथ जालपा को छोड़ गये हैं। वकील पत्नी रतन विधवा हो गयी है। दोनों अकेली औरतें एक दिन एक साथ आटे की चक्की (जांता) चलाने लगती हैं और गाती हैं-'मोही जोगिनी बना के कहां गइले रे जोगिया।' जांते का गीत लगाकर नहीं चलता। औरतें दर्द भरे गीत की एक कड़ी गाकर चुप हो जाती हैं, जांता चलता रहता है। घुर-घुर घर-घुर और गीत की कड़ी कुछ देर तक अवकाश में भटकती है- एक सन्नाटा छोड़ती हुई। 'मोही जोगिनी बना के, कहां गइले रे जोगिया' पंक्ति दोनों जागिनियों के भीतर के दर्द को बड़ी मार्मिकता के साथ व्यक्त करता है और जैसे वह गीत बाहर के सन्नाटे में तड़पता है वैसे ही उन दोनों के मन के सन्नाटे में भी। दूसरा लोक-गीत एक चौता है- 'हिया जरत रहत दिन रैन हो रामा' जिसे गोदान में होरी गुनगुनाता है। यातना और संघर्ष से लथपथ यात्र के अंतिम चरण में उसके द्वारा गुनगुनाया जाता यह गीत उसकी पूरी अंतर्वेदना और अभाव की कहानी कह देता है या उसकी कहानी को एक घनीभूत दुःख-संवेदना में मूर्त कर देता है।

रेणु ने 'मैला आँचल' में गाँव को उसकी समग्रता और संश्लिष्टता में देखा इसलिए उन्होंने लोक तत्त्वों का प्रयोग विपुल मात्र में किया। उन्होंने लोकगीतों के साथ-साथ लोक-कथाओं, गीत-कथाओं, लोक-नाट्य और नृत्यों, लोक-पर्वों और प्रथाओं तथा लोक-विश्वासों एवं प्रकृति के मानवीकरण का अद्‌भुत प्रयोग किया है। यह प्रयोग सर्वत्र सर्जनात्मक है। यानी कि उन्हें यों ही नहीं उठकर रख दिया गया है उन्हें उपन्यास के आशय के संदर्भ में रचा गया है। उन्हें उपन्यास या कहानी में प्रयुक्त करने का एक सामान्य रूप हो सकता है कि चूँकि ये लोक-जीवन के साथ जुड़े हुए हैं, अतः उस जीवन की पृष्ठभूमि और वातावरण की सृष्टि के लिए एक इनका प्रयोग किया जाय। कई उपन्यासों में इसी दृष्टि से लोक-तत्त्वों का प्रयोग किया गया है। यदि गाँव में किसी घर में शादी हो रही है तो यह दिखाया जाय कि उस अवसर पर कौन-कौन सी प्रथाएँ होती हैं, औरतें कब-कब कौन-कौन से गीत गाती हैं, कब-कब नाचती हैं आदि-आदि। दरअसल लोक-तत्त्वों का इस प्रकार का प्रयोग उपन्यास में अनावश्यक स्फीति तो भरता ही है, उसके सर्जनात्मक आशय के संदर्भ में निरर्थक भी सिद्ध होता है। उपन्यास लोक तत्त्वों का संग्रह करने वाला कोई दस्तावेज़ नहीं है, वह तो यह देखता है कि मनुष्य के व्यवहार और मनः लोक की निर्मिति और अभिव्यक्ति में ये तत्त्व अनिवार्य रूप से कितने सहायक हैं। वे उपन्यास के तमाम क्रिया-व्यापारों से अलग छिटक कर नहीं पड़े होते, बल्कि उनमें रमे होते हैं। रेणु ने अपने उपन्यासों में लोक-तत्त्वों का बहुत गहरा सर्जनात्मक प्रयोग किया है। लोक-तत्त्व इनके उपन्यासों (विशेषतया 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा') में यों ही नहीं आते वे कोई न कोई सर्जनात्मक उद्देश्य लेकर आते हैं। अतः वे इन उपन्यासों को लोक की व्यापक भूमि तो प्रदान करते ही हैं, उनमें संवेदनात्मक गूँज बन कर समाये भी रहते हैं।

'मैला आँचल' में प्रयुक्त कुछ लोक-गीतों के माध्यम से इस सर्जनात्मकता की पहचान की जा सकती है। खलासी जी फुलिया से शादी करना चाहते हैं। वे बार-बार दौड़ रहे हैं, लेकिन फुलिया की माई यह शादी स्वीकार नहीं करती, वह अपने स्वार्थ की खातिर फुलिया का इस्तेमाल करते रहना चाहती है। खलासी जी बार-बार आते हैं और आये हुए हैं! वे लोगों के आग्रह पर सारंगा सदाबृज की गीतकथा गाते हैं। गाँव में चौपाल जमती रहती है और गाँव का या बाहर से आया हुआ कोई गायक लोगों के आग्रह से गीत गाता है। लोग सुनते हैं, आनन्द लेते हैं और बात ख़त्म हो जाती है। लेकिन यहाँ यह गीत-कथाएँ यों ही नहीं हैं। वह प्रतीक भी बन जाती है। खलासी जी आज दिल खोल कर गा रहे हैं। उन्हें आज ऐसा लग रहा है कि वे खुद सदाब्रिज हैं। फुलिया भी समझती है कि सारंगा वही है। खलासी जी उसी के लिए गा रहे हैं, लेकिन वह कुछ कह नहीं पाती। वह बड़ों के सामने मौन है, भीतर-भीतर बेचैनी से छटपटाती हुई। और सारंगा सदाब्रिज की यह कथा खलासी जी और फुलिया की कथा बन कर चलती रहती है उनकी मौन प्रणय-संवेदना का स्वर बन कर झनझनाती रहती है। इतना ही नहीं, इसके संदर्भ में रमजूदास की औरत और फुलिया की माँ के बीच जो झगड़ा होता है वह कई-कई यौन-रहस्यों और व्यवहारगत विसंगतियों को खोलने लगता है। यानी यह गीत दो पात्रें की मनःस्थिति तक सीमित न रह कर परिवेश के कुछ रहस्यों को भी खोल देता है और कथा को आगे की कथा के साथ जोड़ कर शांत हो जाता है।

चढ़ली, जवानी मेरा अंग अंग फड़के से
कब होइहें गवना हमार रे भउजिया।
हथवा रंगाये सैयां देहरी बैठाई गइले
फिरहू न लिहले उदेश रे भउजिया।

हाँ कोई गाड़ीवान गा रहा है। गाड़ीवान राह चलते गाते ही रहते हैं, लेकिन यह मात्र राह चलते का गाना है क्या? नहीं। ननदिया के दिल की हूक गाड़ीवान के दिल की कूक बन कर निकल रही है। भउजिया? कमली की तो कोई भौजी भी नहीं है, किससे दिल की बात कहे। भउजिया की ननदिया की तो शादी हो चुकी है, कमली का तो हाथ भी पीला नहीं हुआ है। गाड़ीवान का गीत यों ही हवा में विलीन होने के लिए नहीं उठता, वह तो कली के भीतर समा जाता है और उसके भीतर डाक्टर को लेकर जो मौन प्रेमकथा चलती रहती है उसे छेड़ देता है और डाक्टर के साथ घटित कई प्रसंगों के साथ कमली को जोड़ कर एक ऐसे संवेदनलोक को खोलता है जो अब तक अदृश्य-सा था।

पानी बरस रहा है सोनाई यादव अपनी झोपड़ी में बारहमासे की तान छोड़े हुए हैं-

आँचलिक उपन्यास गाँव विशेष के बिम्ब के माध्यम से गाँव की कथा कहता है और वह गाँव आज का गाँव होता है- ठहरा हुआ नहीं, परिवर्तनशील गाँव। गाँव की संरचना बड़ी संश्लिष्ट होती है, उसमें कई जातियों, कई वर्गों, कई धर्मों के लोग होते हैं, उनके आपसी सम्बन्धों का तनाव और साहचर्य होता है, अनेक राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक सामाजिक समस्याएँ उन्हें मथती रहती हैं, गाँव की जड़ता और उसे तोड़ कर उगने वाली नयी चेतना का द्वन्द्व चलता रहता है, परम्परा और नयी जीवन-पद्धतियों का संघर्ष होता रहता है और प्रकृति तथा मानव की सहयात्रा के अनेक सम-विषम स्वर फूटते रहते हैं।

सावन हे सखि सबद सुहावन
रिमझिम बरसत मेघ हे-।

जी हाँ यह भी गाये जाने के लिए गाया गया बारहमासा नहीं है। यह बारहमासा सोनाई के कंठ से फूट कर पूरे परिवेश में गूँजता है और सुहावन सावन का स्वर अनेक लोगों से दर्द से टकराता है। सावन सुहावन तो है, किन्तु किसानों को खेत मे बोने के लिए धान न मिले तो? कालीचरन के आँगन में मंगला रहती है, वह वहाँ डर रही है। बादलों के गरजने और बिजली के चमकने से उसे बड़ा डर लगता है। बचपन से ही उसे डर लगता है, लेकिन आज एक डर और समा गया है- इस मौसम में किसी के आ जाने का डर 'कौन'? मंगला फुसफुसा कर पूछती है-कौन? लेकिन डर का स्वाद कुछ अलग है। कमली डाक्टर को याद करती है। खिड़की के पास डाक्टर सोता है, बिछावन भींग गया होगा। कल से बुखार है। सर्दी लग गयी है। न जाने डाक्टर को क्या हो गया है?

लेखक की दृष्टि फिर बिरसा माई पर जाती है और वह संथालों की विडंबनाओं से होता हुआ आगे बढ़ जाता है और इस बारहमासे के रस में डूबता हुआ लोक-जीवन के विविध पहलुओं को खोलता चलता है। बारहमासा बारह महीनों का गीत है और बारह महीने लोक जीवन के बाहरी और भीतरी यथार्थ के विविध संदर्भों से जुड़े होते हैं। इन महीनों के गीत उन्हीं संदर्भों को खोलते हैं। ये गीत किसी पात्र के दर्द से जुड़ जाते हैं।

मास असाढ़ हो रामा पंथ जनि चढ़िह
दूर ही से गरजत मेघ रे।

सैकड़ों कंठों में एक विरहिनी है। यह इलाका अभावग्रस्त है, जहाँ के लोग अर्थोपार्जन के लिए बाहर जाते हैं। बिरह दुहरा है। विरहिनियों के अर्थाभावग्रस्त स्वर में प्रियतम के विछोह का स्वर मिल जाता है। दोहरे दर्द से दंशित यह गीत खेतों में काम करते सैकड़ों कंठों से फूट रहा है। मिथिला की पूरी ज़मीन में गाने लगती है।

रेणु ने लोकगीतों के माध्यम से जनजीवन का दर्द ही नहीं व्यक्त किया है, उसके भीतर घुटते विद्रोह का भी स्वर दिया है। इसके लिए उन्होंने अनुकूल अवसर और प्रसंग का इस्तेमाल किया है। टोले के मूलगैन लिबड़ू के नेतृत्व में बिदापत नाच हो रहा है-तहसीलदार साहब के दरवाज़े पर। ऊँचे समाज के सभी लोग विराजमान हैं। दलितों के नाच में एक पात्र होता है बिकटा (विदूषण) उसे छूट होती है कि वह चाहे जिस पर जो टिप्पणी कर सकता है। इस छूट का लाभ उठाकर रेणु ने बिकटा के व्यंग्यात्मक गीतों के माध्यम से बड़े लोगों के प्रति छोटे लोगों के मन के भीतर घुटते विद्रोह को स्वर दिया है- दर्द को तो वाणी दी ही है। इसी प्रकार होली के प्रसंग में कालीचरण के साथ चलता हुआ सामान्य लोगों का दल अपने समय की राजनीतिक और सामाजिक असुंदरता पर चोट करता है! 'बुरा न मानो होली है' का लाभ उठा कर कालीचरन का दल अपने होली गीत में न जाने किन-किन पर चोट कर गया है। सामान्यतः यह चोट नहीं मारी जा सकती थी। इसी तरह ततमाटोला, पासवान टोला, धानुक-कुर्मी टोला और कोयरी टोला की औरतें इन्द्र महाराज को रिझाने के लिए, बादल बुलाने के लिए 'जाट जट्टिन' खेलती हैं। इस अवसर पर उन्हें छूट होती है कि बड़े लोगों को जी भर कर गालियाँ दें। जिन्हें गाली नहीं देती वे समझते हैं कि उन्हें महत्त्व नहीं दिया गया। बस इस अवसर का लाभ उठा कर औरतें अपने गीतों में बड़े लोगों के प्रति संचित अपने भाव व्यक्त कर देती हैं। एक तरह उनकी आलोचना हो जाती है जो सामान्य स्थिति में संभव ही नहीं।

मैला आँचल में लोक-गीत भरे पड़े हैं और वे कहीं भी इकहरे नहीं हैं। वे प्रसंगानुकूल तो हैं ही सर्वत्र सर्जनात्मक भी हैं। निर्गुनिया गीतों से मठ का वातावरण सृजित किया गया है। महंत जी दिवंगत हो गये हैं। किरतनिया लोग समदाउन शुरू करते हैं-

"हां रे बड़ा रे जतन से सुगा एक हे पोसल
माखन दुधवा पिलाये
हां रे से हो रे सुगना बिरिछी चढ़ि बैठल
पिंजड़ा रे धरती लोटाय
कंहवां से हंसा आओल,
कहंवा समाओल हो राम
कि आहो रामा हो, कौन गढ़ कयल मोकाम
कवन लपटाओल हो राम-"

यह गीत और भी आगे बढ़ता है और वातावरण में एक दर्द तो भरता ही है, एक सनातन सत्य की ओर भी ले जाता है और इस विडंबना की ओर भी संकेत करता है कि जिस महंथ साहब को माटी देने के प्रसंग में यह गीत गाया जा रहा है वे स्वयं आध्यात्मिक सत्य के विपरीत कितना गंदा आचरण करते रहे हैं- तथाकथित अध्यात्म-पुरुष होकर भी। ◆

पता : बी-24 ब्रह्मा अपार्टमेंट, सेक्टर-7,
प्लाट नं.-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
मो. : 7303105299

'सहचर है समय' आत्मकथा से एक अंश

मेरा आत्म-संघर्ष

जीवन एक सीधी-सपाट सड़क नहीं है जिस पर कोई सीधे सरल भाव से चलता रहे। वह तो एक ऐसी सड़क है जो कहीं ऊँची है, कहीं नीची है, कहीं सपाट है, कहीं गड्ढों से भरी है, कहीं उसमें अनजाने ख़तरनाक मोड़ हैं, कहीं अप्रत्याशित सँकरापन है। उस पर चलते हुए बार-बार गिरना-उठना पड़ता है। कभी-कभी कोई ऐसा चौराहा आता है जहाँ दिगभ्रमित होकर सोचना पड़ता है किस सड़क से जाया जाय और काफी दूर चलने के बाद मालूम पड़ता है यह तो वह सड़क नहीं जिससे जाना है। फिर तो उसी सड़क से हो लेना पड़ता है। जीवन की इस सड़क पर कभी आपके साथ गुनगुनाती हुई वसंत की सुबह होती है कभी जलती धूल उड़ाती हुई ग्रीष्म की दोपहरी, कभी भादों की गरजती-बरसती अँधेरी रात। यदि आप रचनाकार बनते हैं तो यात्रा के सारे सम-विषय संदर्भ, सुख-दुःख और संघर्ष आपकी रचना में उतरते हैं और उससे संवाद करते हुए उसे सघन सामाजिक स्वर प्रदान करते हैं।

मेरे बचपन का जीवन तो सड़क नहीं, पगडंडियाँ रहा है। जहाँ मैं पैदा हुआ वह दो नदियों के बीच घिरा-कछार है जहाँ दूर-दूर तक सड़क नामक चीज नहीं थी। थीं केवल पगडंडियाँ, खेतों के मोड़, और बहुत हुआ तो कहीं कोई छोटी-सी कच्ची सड़क। इन्हीं पगडंडियों पर पूरा कछार गिरता-पड़ता चल रहा था। अभावों से अभिशप्त अनंत टूटे-फूटे कच्चे घर थे जिनमें चुपके-चुपके न जाने कितने सपने टूट-टूटकर सो जाते थे, कितने आँसू रात भर बहकर सवेरे सूख जाते थे, कितने चूल्हों की आँचें कभी जागकर कई-कई दिनों तक बुझी रहती थीं। शरीरों पर फटे-पुराने वस्त्र झूलते रहते थे। अपने समय पर दहाड़ती हुई बाढ़ आती थी और खेतों को लूट ले जाती थी। उसके साथ आते थे ज़मींदार के कारिंदे, कुर्क अमीन, पटवारी, थानेदार और न जाने कौन-कौन से लोग-जोंक की तरह दुर्बल देहों से खून चूसने के लिए। मेरा घर भी इन्हीं घरों में से एक घर था। और मैं भी इन तमाम लोगों में से एक व्यक्ति था। लेकिन कैसे कहूँ कि मैं उनमें से होकर उन्हीं में विलीन हो गया था। न जाने क्यों मैं बचपन से ही कुछ तलाशने लगा था। कोई पगडंडी मुझे ले जाकर कहीं छोड़ती थी तो मैं दूर दिशा में देखने लगता था-वहाँ और उसके बाद और फिर उसके बाद क्या है? मैं देर तक खड़ा होकर देखता रहता था, फिर किसी दूसरी पगडंडी से होकर कहीं और चला जाता था। फिर तीसरी पगडंडी से घर लौट आता था। इन्हीं पगडंडियों में एक पगडंडी वह थी जो पास के गाँव के स्कूल तक जाती थी। वह अपने साथ ले जाती थी, ले आती थी। वह अपने साथ तो न जाने कितने बच्चों को ले जाती थी किन्तु धीरे-धीरे अनेक बच्चों से वह पगडंडी छूटती गयी और वे कहीं और जाने वाली पगडंडियों के साथ होते गये। लेकिन मुझे यह पगडंडी बहुत अपनी और प्यारी लगने लगी। उसे भी मैं पसंद आने लगा। कभी किसी कारण मैं उसके साथ नहीं हुआ तो वह मुझे पुकारती-सी लगती थी और मैं उसे पुकारता-सा प्रतीत होता था। मुझे याद है जब स्कूल और गाँव के बीच छाती भर बाढ़ का पानी हाहाकार कर रहा होता था, तब भी पानी में दबी हुई वह पगडंडी मुझे पुकारती थी और मैं सिर पर बस्ता उठाये हुए उसके साथ हो लेता था और वह मुझे स्कूल में रख आती थी। मुझे तब यह स्कूल अपनी मंज़िल लगता था। क्या पता था इस मंज़िल में से कई पगडंडियाँ फूटती हैं जो दूर-दूर स्थित रोशनी की मंज़िलों तक जाती हैं। इसका ज्ञान तब हुआ जब मैंने गाँव के स्कूल से हिन्दी मिडिल और उर्दू मिडिल कर लिया। "अब?" जैसे मैं अपने से पूछ रहा था। धीरे-धीरे स्कूल ने ही इशारा किया-"अब क्या, आगे बढ़ो और नयी पगडंडियों की तलाश करो जो आगे ले जाती हों।" तभी से मैं नयी-नयी पगडंडियों की तलाश करता हुआ धीरे-धीरे अजनबी दिशाओं की ओर बढ़ता रहा। एक पगडंडी जहाँ पहुँचा जाती थी, वहाँ कुछ दिन रहने के बाद सोचना पड़ता था कि अब कहाँ जाना है और कौन-सी पगडंडी वहाँ जाती है? जब गाँव के स्कूल से निकला तो गाँव से दस मील दूर स्थित ढरती पहुँचा। वहाँ से विशेष योग्यता पास कर बरहज पहुँचा। वहाँ से विशारद साहित्यरत्न पास कर सोचने लगा-अब? किसी ने इशारा किया अंगरेज़ी की ओर। बहुत बेमन से मैंने उसकी ओर देखा और उसके साथ हो लेने के लिए मैं फिर ढरसी आ गया जहाँ गुरूवर रामगोपाल शुक्ल विशेष योग्यता की पढ़ाई के साथ-साथ मैट्रिक की तैयारी भी कराते थे। दो साल बाद वहाँ से मैट्रिक की परीक्षा दी और सारे विषयों में प्रथम श्रेणी के

अंक पाने के बावजूद अंगरेजी में फेल हो गया। किंकर्तव्य विमूढ़-सा एक चौराहे पर खड़ा देखता रहा। फिर किसी ने इशारा किया-"फिर लग जाओ इस परीक्षा के साथ। इसके बिना निस्तार नहीं है।" और इस बार काशी के कैंब्रिज एकेडेमी (एक प्राइवेट स्कूल) में साल भर पढ़कर मैट्रिक की परीक्षा दी और बहुत अच्छे अंकों के साथ प्रथम श्रेणी में मैट्रिक पास किया और लगने लगा कि अब सामने की दिशा स्पष्ट है और पगडंडियों की जगह एक चौड़ी सड़क मुझे मिल गयी है। यानी अब निर्भ्रान्त रूप से स्पष्ट हो गया कि इससे मंज़िल के आगे आइ.ए. है, बी.ए., है, एम.ए., है, पी-एच.डी. है और लेक्चररशिप है। अब मैं निश्चित भाव से इस दिशा में बढ़ता गया और 56 में पी-एच.डी. का शोध-प्रबंध प्रस्तुत कर एम-एस विश्वविद्यालय बड़ौदा चला गया-लेक्चरर बनकर।

मेरी इस जीवन-यात्र के साथ एक और यात्र है-वह है रचना-यात्रा। वह भी बचपन से ही मेरे साथ चलती रही है। एक पगडंडी मुझे स्कूल पहुँचाती थी दूसरी खेतों की ओर। उमड़ी हुई फसलों को देखकर जब बड़े-बूढ़े खुशी से कहते थे कि इस साल काफी अन्न पैदा होगा। और उस अन्न से वे अपनी कई-कई योजनाएँ बनाने लगते थे तब मेरी आँखें यहाँ से वहाँ तक उमड़े हुए सरसों, मटर, तीसी आदि के फूलों के सागर में डूबती-उतारती रहती थीं, फूलों के ऊपर झूलते रंगों के इन्द्रधनुष उनमें झूलते लगते थे। सावन-भादों की पुरवाई, एकलय में काँपते हुए धान के पौधे, ऊपर उड़ते बगले, बोलते हुए पपीहे, बादलों की भीगी परछाइयाँ, कितना कुछ होता था जिनमें मैं घंटों खोया रहता था। साथी चिढ़ाते रहते थे-"क्या देखते रहते हो खोये-खोये से इस तरह?" फागुन आता था तो मन मत्त हो उठता था! वसंत पंचमी से लेकर होली तक के दिन क्या दिन होते थे। फागुनी हवाओं के साथ मन उड़ा-उड़ा फिरता था, कोयलों के स्वर दोहराता मैं इस पेड़ से उस पेड़ तक भागता फिरता था। डहडहाती चाँदनी में एक स्वप्नलोक साकार हो उठता था और मैं देखता था कि अभावों से मारे हुए लोग फागुनमय हो उठे हैं। वे मस्ती में पगलाये हुए से यहाँ-वहाँ, जब-तब फाग गा रहे हैं। कबीर गा रहे हैं, फटे कपड़ों पर पानी और रंग खेल रहे हैं। गलियों से गुज़रते हुए देवरों पर न जाने कब किस भाभी द्वारा फेंका गया पानी का छपाका आ गिरता था और हँसी-मज़ाक का एक फौआरा फूट पड़ता था।

मैं यह सब देखता था, मस्त होकर भोगता था। इन सब चीज़ों में वैज़सी तो खुशबू महसूस होती थी। खुशबू ऋतु की, खुशबू मनुष्य के सामाजिक व्यवहार की। हाँ, अभाव के मारे लोगों में कितनी खुशबू भरी थी-भाईचारे की, जिजीविषा की, पर्वों-त्यौहारों को जीने के उत्साह की। लोग बाढ़ से लुट-लुटकर खेत बोते थे और आशा बनाये होते थे कि शायद इस बार फसल बच जाये। पर्वों-त्यौहारों और शादी-ब्याह में गाँव की सामूहिकता की लय देखते बनती थी। पेट भूखे थे लेकिन ओठों से गीत नहीं छूटते थे। 'पेट खाली था, मगर मन था भरा त्यौहार से।' यानी पूरे गाँव में मरण से भी एक अटूट और सघन जीवनराग था। अशिक्षा में भी मानव-विवेक की दीप्ति थी। अपने अभावों से ग्रस्त लोगों में दूसरों के लिए कुछ कर पाने की तड़प थी। यह गाँव मेरे भीतर स्थिति के रूप में ही नहीं, संस्कार के रूप में भी समा रहा था और मैं अनुभव कर रहा था कि मेरे किशोर मन में कविता जैसी कोई चीज़ कुलबुला रही है। मुझे इच्छा होती थी कि मैं भी लोकगीत जैसा कोई गीत लिखूँ। सालों इस दबाव को महसूस करता रहा। आख़िर एक कविता फूट ही पड़ी-जब मैं दर्जा छः में था। और जब फूट पड़ी तो मैं बेचैन रहने लगा। कविता पर कविता लिखने की चाह बढ़ती गयी और छन्द की प्राप्ति के लिए संघर्ष करने लगा। कवि मदनेश जी के निर्देशन में छन्द का अभ्यास करने लगा, अलंकारों की भी पहचान की कोशिश शुरू हुई। पढ़ाई-लिखाई को ठीक ढंग से सँभालते हुए भी मैं कविता की दुनिया में जीने लगा था। एक अजीब-सा मीठा-मीठा नशा रहने लगा। देहात में कविता के परिदृश्य से मैं कहाँ परिचित होता किन्तु कविता के विषय में परिदृश्य में तो जी ही रहा था।

मेरे बचपन का जीवन तो सड़क नहीं, पगडंडियाँ रहा है। जहाँ मैं पैदा हुआ वह दो नदियों के बीच घिरा-कछार है जहाँ दूर-दूर तक सड़क नामक चीज़ नहीं थी। थीं केवल पगडंडियाँ, खेतों के मोड़, और बहुत हुआ तो कहीं कोई छोटी-सी कच्ची सड़क। इन्हीं पगडंडियों पर पूरा कछार गिरता-पड़ता चल रहा था। अभावों से अभिशप्त अनंत टूटे-फूटे कच्चे घर थे जिनमें चुपके-चुपके न जाने कितने सपने टूट-टूटकर सो जाते थे, कितने आँसू रात भर बहकर सवेरे सूख जाते थे, कितने चूल्हों की आँचें कभी जागकर कई-कई दिनों तक बुझी रहती थीं। शरीरों पर फटे-पुराने वस्त्र झूलते रहते थे। अपने समय पर दहाड़ती हुई बाढ़ आती थी और खेतों को लूट ले जाती थी। उसके साथ आते थे ज़मींदार के कारिंदे, कुर्क अमीन, पटवारी, थानेदार और न जाने कौन-कौन से लोग-जोंक की तरह दुर्बल देहों से खून चूसने के लिए। मेरा घर भी इन्हीं घरों में से एक घर था।

अब मैं अपने बचपन को देखता हूँ तो लगता है कि ऋतुओं, मौसमों की छवियों को मुग्ध भाव से निहारते और जीते रहने के पीछे अदृश्य कवि ही रहा होगा और वह कवि धीरे-धीरे बचपन में देखे गये, जिये गये गाँव के सुख-दुःख को अपने में बाँधने का प्रयत्न करता गया। किशोर मन तो भावुक होता ही है अतः वह मुख्यतः प्रकृति की छवियों को भावुक स्वर में गाने की चेष्टा करता है। धीरे-धीरे उसमें मानवीय सौन्दर्य और प्रेम का रंग उतरने लगता है। मेरी भी आरंभिक कविताओं में यही सब कुछ था। हाँ वह समय स्वाधीनता का था अतः कविताओं में राष्ट्रीय स्वर भी उभरने लगा था।

कविता का यह संघर्ष मुख्यतः छन्द और भाषा को पाने का था। विषय तो चारों और बिखरे थे जो मेरे अनुभव में उतरे थे और उतर रहे थे। भाषा को पाने का अर्थ इतना ही था कि शुद्ध और परिमार्जित भाषा का अभ्यास हो जाय। छन्द में मैं वर्णित, मात्रिक सभी प्रकार के छन्दों का अभ्यास कर रहा था किन्तु जब मैं 1946 में वाराणसी पहुँचा तो सही अर्थों में साहित्य-परिदृश्य से

परिचित हुआ और धीरे-धीरे लगने लगा कि भाषा के शुद्ध और परिमार्जित होने का ही सवाल नहीं है, सवाल है उसके ठोस और सार्थक होने का। मैं गाँव की वस्तु लेकर भी छायावादी भाषा के निकट होता चला गया था। और उस भाषा के प्रति गौरव बोध होने लगा था। धीरे-धीरे नयी चेतना के कवियों के संपर्क में आकर महसूस हुआ कि यह भाषा तो वैसे भी चुक गयी है और ग्राम-वस्तु से तो बिल्कुल ही कटी हुई है। अब भाषा को ठोस, लोकोन्मुख और सांकेतिक बनाने का संघर्ष शुरू हुआ और 51-52 तक आते-आते मेरी भाषा एक अलग भाषा बन गयी थी जिसमें उफान नहीं था, संयत सघनता थी। धीरे-धीरे प्राप्त मार्क्सवादी दर्शन ने गाँव के जीवन-संबंधों एवं अर्जित अनुभवों को पहचानने की एक नयी दृष्टि दी। यही समय नयी कविता का भी है जिसने जिये हुए सत्य पर अधिक बल दिया। किन्तु नयी कविता में आधुनिकतावादी व्यक्तिवाद भी था और सामाजिक चेतना वाला प्रगतिवाद भी। मेरी कविता लोक की वस्तु, भाषा आदि से जुड़ी रही और समय के किसी भी चरण पर व्यक्तिवाद, रूपवाद या आधुनिकतावाद ने मुझे आकर्षित नहीं किया। इसका कारण प्रगतिवाद से मेरा जुड़ाव तो था ही गहरा ग्राम-संस्कार भी था जो दृष्टि बनकर शहरों में भी साथ रहा। मैं किसी वाद के झंडे के नीचे नहीं आया किन्तु लगता है सहज भाव से मैं समय के साथ चलता रहा। मैं स्वयं आज अपने काव्य-संग्रहों को जब देखता हूँ तो समय के साथ धीरे-धीरे आये हुए बदलाव की प्रतीति होती है, एक बुनियादी एकता के बावजूद एक संग्रह की कविताएँ दूसरे संग्रह की कविताओं से कुछ भिन्न दिखाई पड़ती हैं।

मैं कविता के साथ कहानी में आया फिर उपन्यास में। मैंने अपने ग्राम-अनुभवों को खंड-खंड रूप में कविता में तो दिया ही किन्तु उपन्यासों में समग्र ग्राम-यथार्थ को एक साथ उतारने की कोशिश की। इसका कारण उपन्यास का अपना फार्म तो है ही यथार्थ और कला संबंधी मेरी विकसित समझ भी है। मेरा पहला उपन्यास 'पानी के प्राचीर' सन् 1961 में आया। इस समय तक मुझे गाँव के जातीय, वर्गीय, पारिवारिक संबंधों की पहचान की दृष्टि प्राप्त हो गयी थी। ग़रीबी, संघर्ष, संबंध-बोध, राजनीतिक और सामाजिक चेतना आदि के संश्लेष से बने ग्राम जीवन को एक साथ उभारने की कुछ क्षमता का अनुभव करने लगा था। 'जल टूटता हुआ' में स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के गाँव का संश्लिष्ट जीवन आकार पाना चाहता है। यों ही बात आगे बढ़ती गयी और मैं उपन्यास भी लिखता गया।

सन् 1952 में एम.ए. किया। मेरे बड़े भाई साहब रामअवध मिश्र नौकरी में थे और उन्होंने बड़े प्यार से मेरी शिक्षा का व्यय किया। अतः मेरे अध्ययन काल में कोई आर्थिक संघर्ष नहीं आया। किन्तु एम.ए. करने के बाद एक तो भाई साहब की नौकरी नहीं रही, दूसरे मुझे यह दायित्वबोध सताने लगा कि अब घर के प्रति मेरा कुछ कर्तव्य होता है। कुछ लेने की जगह देना चाहिए। किन्तु कहाँ से देता? चूँकि एम.ए. में मेरा प्रथम स्थान था अतः गुरूवर हजारी प्रसाद द्विवेदी की अनुशंसा से सौ रूपये की स्कॉलरशिप मेरे लिए स्वीत हो गयी थी किन्तु वह नियमित रूप से नहीं मिलती थी, छठे-छमाहे मिलती थी। मैं अपनी पत्नी के साथ रहने लगा था। स्कूल में उनका भी नाम लिखा दिया था। हेमंत पैदा हो गया था और कभी स्वस्थ रहता ही नहीं था, हर तीसरे-चौथे दिन उसे लेकर डॉक्टर के यहाँ भागना पड़ता था। इतने सारे खर्चे और छठे-छमाहे मिलने वाली सौ रूपये की स्कॉलरशिप। सिगरा के एक सुनसान मकान में एक कमरा ले रखा था बीस रूपये महीना पर। रोज़ रात को उसकी खिड़कियों से चोर झाँकते थे और मुख्य सड़क से वहाँ तक पहुँचने में डर लगता था। दिन को साँप और गोह टहलते थे।

मैंने बचपन में आर्थिक अभाव झेले थे लेकिन उसके लिए संघर्ष करने वाले पिता थे, माँ थी, भाई थे किन्तु अब तो मैं संकट भी झेल रहा था और संघर्ष भी कर रहा था। साथ ही पी.एच.डी. की थीसिस भी लिख रहा था। उस अभाव के सन्नाटे में गीत के छोटे टुकड़े की तरह कभी स्कॉलरशिप के पैसे मिल जाते थे, कभी किसी कवि-सम्मेलन से कुछ मिल जाता था, कभी किसी पत्रिका से कुछ आ जाता था। लेकिन इसी परिस्थिति में हम लोगों द्वारा कविताएँ भी लिखी जा रही थीं, गोष्ठियाँ और संगोष्ठियाँ भी आयोजित हो रही थीं-कभी उनके यहाँ कभी मेरे यहाँ। मेहमानों का आना-जाना भी लगा रहता था। यानी साहित्य में कुछ बनने की दृष्टि से यह मूल्यवान समय था। इसी अवधि में कल्पना, नयापथ, नई धारा, आजकल, राष्ट्रवाणी, पाटल, अजंता, कहानी, नयी कविता आदि छपकर हम खूब जाने भी गये। उस जाने जाने की अद्भुत खुशबू हम लोग अनुभव कर रहे थे। उन दिनों की ढेर सारी अनुभूतियाँ मेरी कविताओं में उतरीं, कहानियों में उतरीं और काफी कुछ अच्छा दे गयीं। 'एक रात' कहानी उसी यथार्थ की कहानी है। 'बंद कर लो द्वार', 'शाम' (जो संकेत में छपी थीं) जैसी कई कविताएँ इसी समय की अनुभूति से उपजी थीं। मैं साथ-साथ नौकरी की भी तलाश कर रहा था। छः महीने अस्थायी प्राध्यापक के रूप में हिन्दू कॉलेज में पढ़ाया था। उसके बाद कई बार जगहें हुईं, किन्तु दूसरे लोग लिये जाते चले गये। अब तक स्कॉलरशिप का सहारा था। शोध-प्रबंध प्रस्तुत करने के बाद वह सहारा भी छूट गया और जैसे मैंने यूनिवर्सिटी से ही पूछा-

आख़िरी मोड़ ना कि हाँ कहिए
और रोयें कहाँ-कहाँ कहिए
राह यह आज तक बहाना थी
आज से जायें हम जहाँ कहिए

इस काल की कविताओं में विदा का स्वर गूँजने लगा था। हम सभी चाहते थे कि बनारस न छूटे, अतः इस या उस पद के लिए प्रयत्नशील होते थे किन्तु किसी के हाथ कोई पद नहीं लग रहा था। लगता था बनारस अब छूटने वाला है कि तब छूटने वाला है। इस पीड़ा की अनुभूति कई कविताओं में उतर आयी-

फिर हवा बहने लगी कहने लगीं बनराइयाँ
काँपने फिर-फिर लगीं ठहरी हुई परछाइयाँ

नाम का मेरा महत्वपूर्ण गीत इसी मानसिकता की उपज है। और सच पूछिए तो नौकरी के सिलसिले में यहाँ से वहाँ, वहाँ से वहाँ जाते रहना मेरी नियति बन गयी थी, कभी उन्नति के ख़याल से मैं स्वयं गया, कभी दूसरों द्वारा ठेलकर भेजा गया। पहली नौकरी बड़ौदा में लगी, फिर अहमदाबाद गया, फिर नवसारी गया, फिर अहमदाबाद आया, फिर वहाँ से हटने को विवश हुआ और दिल्ली के पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज में आ गिरा, फिर दिल्ली विश्वविद्यालय के

सांध्य संस्थान में गया, फिर दक्षिण परिसर में। यहाँ से अवकाश प्राप्त किया। इसलिए मेरी कविताओं में भिन्न-भिन्न स्थानों के खट्टे-मीठे अनुभवों, वहाँ के स्थानों और दृश्यों तथा जीवन छवियों के विविध चित्र तो मिलते ही हैं, यायावरी की वेदना भी मिलती है-

भटक रहा खानाबदोश-सा
आज यहाँ कल वहाँ-
छोड़ जानी-पहचानी हुई बस्तियाँ

अहमदाबाद ने मुझे बहुत दिया-खट्टा भी मीठा भी। मीठा दिया वहाँ के लोगों ने-मित्रों ने, शिष्यों ने, साहित्यकारों ने, संस्कृति ने, जीवन शैली ने और खट्टा दिया व्यवस्था ने या मित्र के वेश में कुछ शिक्षा-व्यवसाइयों ने। ये सभी स्वर गुजरात प्रवास काल की मेरी कविताओं में (और कथा साहित्य में भी) गूँजते हुए पाये जायेंगे। 'समय देवता' भी उसी मनःस्थिति की कविता है। लेकिन कहा न, गुजरात ने मुझे मीठा बहुत दिया है, अभी भी दे रहा है। वहाँ से जो आत्मीयता और स्नेह मिला है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मुझे वह अपना 'दूसरा घर' प्रतीत होता है। इससे बड़ी बात क्या होगी कि मेरे कुछ मित्रों और शिष्यों के प्रयत्न से मेरा दूसरा काव्य संग्रह 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' वहीं से छपा और उसका मुखपृष्ठ बनाया मेरे शिष्य और आज के बड़े चित्रकार गुलाम मुहम्मद शेख ने। वहाँ से दिल्ली आने से पूर्व का साल किस यातना और संघर्ष में बीता, कहना कठिन है। सेंट जेवियर कॉलेज ने अपने यहाँ से हिन्दी आनर्स निकालकर मुझे वहाँ से हटने का संकेत दे दिया था। मैं कहाँ-कहाँ इंटरव्यू के लिए जा रहा था और सामान्य शिक्षा व्यवसाइयों से अपमानित होकर लौट रहा था और मेरा प्रिय अहमदाबाद गहरी मूक पीड़ा के साथ मुझे देख रहा था और जब दिल्ली आना तय हो गया तो विछोह की पीड़ा के बीच भी उसे एक संतोष हुआ कि मैं एक सही जगह से जुड़ने जा रहा हूँ। याद है श्री उमाशंकर जोशी का कथन 'आपका जाना हमारे लिए बहुत दुःखद है किन्तु आप जहाँ जा रहे हैं वही आपकी सही जगह है। वहाँ के साहित्यकारों के बीच आपको अपना लक्ष्य प्राप्य प्राप्त होगा। जाइए और यहाँ प्राप्त अनुभवों का सर्जनात्मक इस्तेमाल कीजिए।"

निवास स्थान पर पत्नी सरस्वती जी पुत्री स्मिता और पौत्र उत्सव मिश्र

जीवन भर संघर्ष होता रहता है-कभी विषम परिस्थितियों से कभी अपने से। रचनाकार विषम परिस्थितियों को बुलाने तो नहीं जाता, जब वे आ जाती हैं तब उनसे संघर्ष करना ही पड़ता है किन्तु रचनाकार अपने से तो सदा संघर्ष करता रहता है। उसका सर्जक मन और सुविधाभोगी मन हमेशा आमने-सामने होते हैं। यदि सर्जक मन सुविधाभोगी मन से नहीं लड़ सका तो कोई सर्जक कैसे कहा जायेगा? सर्जना के लिए अनेक प्राप्त सुविधाओं को त्यागना पड़ता है या सुविधाओं की कामना को हाशिए पर डालना होता है। अपने से अपनी लड़ाई निरंतर चलती रहती है, इसीलिए सर्जक नित नया लिख पाता है। वह नित अपने में से कुछ छोड़ता है और कुछ नया जोड़ता है। फिर यह भी कि वह अपने सर्जनात्मक परिवेश में जीता हुआ ऊँची प्रतिभाओं से चुनौतियाँ अनुभव करता रहता है और स्वयं ऊपर उठने के लिए अपनी परीक्षा करता रहता है तथा उन चीज़ों को तलाशता है जो उसे अधिक चमक दे सकती हैं। मेरे जीवन में बचपन से ही अनेक विषम परिस्थितियाँ आयीं लेकिन उनसे चोट खाकर मेरी सर्जना अपने से विमुख नहीं हुई, बल्कि वह और भी समृद्ध और सक्रिय हुई और उन विषय परिस्थितियों से उसने अपने लिए रसदोहन कर लिया। मेरी अनेक कहानियाँ और कविताएँ (जो मेरी रचनाओं में काफी प्रभावशाली कही जा सकती हैं) इन्हीं विषम परिस्थितियों से फूटी हैं। इन परिस्थितियों ने मेरे अनुभव सघन किये, जिजीविषा सशक्त की और सामाजिक मानवीय दृष्टि को और भी निखारा।

दिल्ली आया तो गुजरात के अनुभवों पर और भी लिखा। कविताएँ, कहानियाँ और निबंध तो लिखे ही-'बीच का समय' तथा 'दूसरा घर' उपन्यास भी लिखे। यहाँ के हिन्दी परिवेश में बड़ी-बड़ी प्रतिभाएँ थीं जिनसे मैं जाने-अनजाने एक टकराहट अनुभव करता था और इस टकराहट से कुछ सीखता चलता था। किसी से कोई स्पर्धा नहीं थी और न आँधी की तरह आती-जाती वादों की हवाओं में बहते रहने का कभी मन ही हुआ, बस अपनी मूलभूत शक्तियों को निखारते हुए समय की चेतना के साथ हो लेने की आकांशा पलती रही। समय के नाम पर उठने वाले तमाम हो हल्ले से अपने को बचाये रखना और फिर भी समय की चेतना के साथ हो लेना-यह बड़ा कठिन संघर्ष था। यह संघर्ष मेरे लिए और कठिन इसलिए भी हो रहा था कि वादों के हो हल्ले के साथ जुड़े तमाम लोग चर्चा में उतराये हुए थे (और न जाने कब से उतराते आ रहे थे) और मैं कहीं नहीं होता था-न इस वाद में न उस वाद में, और कविता कहानी का इतिहास वादों का इतिहास बन गया था। फिर भी मैं लगातार वादों के झूठ से मन ही मन लड़ता रहा और उसकी गिरफ़्त से अपने को बचाता रहा। धीरे-धीरे साहित्य का परिदृश्य वादों या जमातों के समीकरणों से भर गया और चर्चाओं पर उन्हीं का अधिकार हो गया, फिर भी इस समीकरणवाद के प्रति मेरे मन में कोई आकर्षण नहीं पैदा हुआ और मैं अपनी समझ और अनुभवों से लिखता गया-कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास, आलोचनाएँ, निबंध, संस्मरण, यात्रवृत्त और फिर आत्मकथा। दिल्ली में आकर मैंने अनेक विषम स्थितियों का सामना किया किन्तु मेरा सर्जक थककर बैठा नहीं और वह मेरे जीवन का पर्याय बन गया। ◆

पता : बी-24 ब्रह्मा अपार्टमेंट, सेक्टर-7,
प्लाट नं.-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
मो. : 7303105299

संस्मरण

हजारी प्रसाद द्विवेदी : सर्जना ही बड़ा सत्य है

जब कभी मैं जाने-अनजाने रास्ता भटक जाता हूँ तब कोई न कोई व्यक्ति सहज भाव से मुझे सही राह पर ला देता है। कभी-कभी यह भी होता है कि एकाएक कोई प्रतिकूल समय मुझसे टकरा जाता है, तब मैं निराश हो उठता हूँ लेकिन शीघ्र ही ऐसा समय आ जाता है जो पहले से बहुत अच्छा होता है। तो लगता है कि नियति अच्छा समय लाने के लिए ही प्रतिकूलता से मुझे टकरा देती है।

मैंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से बी.ए. कर लिया था और उसी वर्ष विभागीय अध्यक्ष और परम पंडित केशव प्रसाद मिश्र ने अवकाश ग्रहण कर लिया। केशव जी कविता के गहरे मर्मज्ञ भी थे। उन्होंने बी.ए. में हमें कामायनी का 'लज्जा सर्ग' पढ़ाया था, वह अद्‌भुत था। लगता है कि उनकी व्याख्या का सौंदर्य, अभी भी मेरे मन में गूँज रहा है। उनके अवकाश ग्रहण के बाद एम.ए. में प्रवेश लेने के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय चला गया। वहाँ नाम लिखा कर सहज भाव से बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय लौटा तो मेरे परम शुभचिंतक और विद्वान प्रोफेसर डॉ. राजबली पाण्डेय मिल गए। उन्होंने पूछा कि नाम लिखा लिया? मैंने कहा- हाँ! इलाहाबाद विश्वविद्यालय में। उन्होंने नाराज़गी से कहा तुमने ये क्या किया! यहाँ सारे प्रोफेसर तुम्हारी प्रतिभा से परिचित हैं, तुम्हारी प्रतिभा ऊंची सफलता प्राप्त करेगी। इलाहाबाद में तुम्हें कौन जानता है? मैं उनके कथन से प्रभावित हो ही रहा था कि एकाएक उन्होंने कहा- 'और यहाँ हिंदी विभागाध्यक्ष होकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आ रहे हैं।' द्विवेदी जी का नाम सुनते ही मै उल्लासित हो गया और एकाएक निर्णय कर लिया कि अब यहीं रहना है।

द्विवेदी जी का आना सुनकर विश्वविद्यालय ही नहीं, पूरा बनारस उल्लसित हो उठा था। तब द्विवेदी जी यश के शिखर पर थे। अशोक के फूल, बाणभट्ट की आत्मकथा, कबीर, हिंदी साहित्य की भूमिका, सूरदास जैसी महान कृतियाँ आ चुकी थीं। यानि सर्जना और समीक्षा दोनों की शक्तियों का उत्कर्ष उनमें दीप्त हो रहा था। वे कक्षाएँ लेने लगे। मेरा स्वभाव है कि (पता नहीं अच्छा है या बुरा) मैं घूम-घूम कर बड़े लोगों से नहीं मिलता हूँ। सहज भाव से जिनसे सम्बन्ध जुड़ जाता है, जुड़ जाता है। कुछ दिनों बाद काशी विद्यापीठ में एक कवि गोष्ठी आयोजित की गई। उसमें द्विवेदी जी भी उपस्थित थे। उस कवि गोष्ठी में मैं अपनी एक बहुत प्रिय कविता पढ़ने लगा। कविता थी-

उमड़ रही पुरवइया कुंतल जाल सी,
लहर रहे अम्बर में काले-काले बदरा।
हरी हरी छाया बन में लहरा रही,
धरती नभ में उड़ी-उड़ी सी जा रही।
झुके हुए घन बहे जा रहे व्योम में,
झम-झम रस बुंदिया में धरा नहा रही
धूप उड़ी जा रही पाल सी,
गरज रहे सागर से छाया वाले बदरा।।

मैं यह गीत पढ़ता जा रहा था और कनखियों से द्विवेदी जी को देख भी रहा था। मैंने देखा कि वे मेरी कविता के साथ मस्ती से झूम रहे थे। कविता समाप्त हुई तो अत्यंत प्रसन्न भाव से बोले- वाह! उन्होंने पूछा कि तुम क्या करते हो? मैंने कहा- गुरुदेव! मैं आपका शिष्य हूँ। यह सुनकर वे और भी प्रसन्न हो उठे और मैं उनकी वत्सल दृष्टि में आ गया। क्रमशः मेरे प्रति उनका स्नेह गाढ़ा होता गया। उस क्षण ने एक ऐसा सम्बन्ध दिया जो पंडित जी को सबसे अधिक प्रिय था। मैं सर्जनात्मक रूप में द्विवेदी जी के निकट पहुंचा था।

द्विवेदी जी बार-बार कहते थे- देखो कवि! साहित्य में सर्जनात्मकता ही परम सत्य है, आलोचना का स्थान दूसरे दर्जे का है। पहले तो मुझे लगा कि द्विवेदी जी मुझे उत्साहित करने के लिए ऐसा कहा रहे हैं, लेकिन जब उन्होंने बार-बार ऐसा कहा और मैंने एम.ए. का लघु शोध प्रबंध लिखने के लिए 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'अशोक के फूल' निबंध पढ़े तो लगा सचमुच ही सर्जनात्मकता ही सत्य है। द्विवेदी जी के लेखन और व्यवहार में मनुष्य के प्रति बड़ी गहरी आस्था व्यक्त की गई है। वे कहते हैं कि मनुष्य ही बड़ी चीज है, भाषा उसी की सेवा के लिए है। जो साहित्य अपने आप के लिए लिखा जाता

है, उसकी क्या कीमत है मैं नहीं कह सकता परन्तु जो साहित्य मनुष्य-समाज को रोग, शोक, दारिद्रय, अज्ञान तथा परमुखापेक्षिता से बचाकर उसमें आत्मबल का संचार करता है, वह निश्चय ही अक्षय निधि है।

द्विवेदी जी के सर्जनात्मक व्यक्तित्व का साक्षात्कार जब हम लोगों को कक्षा में हुआ तो अध्ययन का एक नया अनुभव भीतर खुलने लगा। द्विवेदी जी कबीर पढ़ाते थे। कबीर हमारे लिए कबीर नहीं थे, वे सत्य ज्ञान और प्रेम के प्रतीक बन गए थे। गुरुदेव हमें कबीर के माध्यम से जीवंत साहित्य कि एक परंपरा ही साकार कर रहे थे। क्लास के बाद हम केवल कविता के अर्थ ज्ञान से संपन्न नहीं होते थे, बल्कि कविता के एक अनुभव से अनुप्राणित हो उठते थे। पंडित जी ने ज्ञान की पोथी तो पढ़ी ही थी, प्यार के ढाई आखर का भी गहरा साक्षात्कार भी किया था। उनका प्रेम-परिवार से लेकर विश्व तक फैला हुआ था।

परिवारीजनों के साथ

कक्षा में, अध्यापक कक्ष में घूमते हुए, घर बैठे हुए जहाँ भी द्विवेदी जी होते थे, एक जीवंत प्रेरक वातावरण बना रहता था। उनके कुछ निकट के छात्र हमेशा उनके साथ घूमने फिरने के लिए लालायित रहते थे। मैं द्विवेदी जी के निर्देशन में लघु शोध प्रबंध लिख रहा था। जब कभी कुछ पूछने के क्रम में द्विवेदी जी के साथ कुछ घूमने का अवसर पाता तो मैं पुलकित हो उठता था। चलते-चलते वे अनेक प्रश्नों का समाधान कर देते थे। मैं वृन्दावन लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों पर एम.ए. का लघु शोध प्रबंध लिख रहा था तो मैंने द्विवेदी जी से पूछा कि इनके उपन्यासों में कथा इतनी उबड़-खाबड़ क्यों है ? द्विवेदी जी ने कहा-जैसे बुंदेलखंड के शुष्क पहाड़ों के हरे भरे पेड़ अपना रस वातावरण से खींचते हैं, वैसे ही वर्माजी के उपन्यास भी उसी वातावरण से अपना रस खींचते हैं।

भारी बात को बड़ी सादगी से मूर्त कर देना, व्यंग्य करके अट्टहास करना, अट्टहास में ही व्यंग्य छुआ देना, आदमी को अपनी कमज़ोरी का एहसास दिलाते हुए भी उसमें विश्वास भर देना, तुच्छ दांव-पेंच से ऊपर उठे हुए रहकर भी शिष्यों के हित के लिए चिंतित रहना, जैसे न जाने कितने संश्लिष्ट गुण द्विवेदी जी में थे। कुछ छोटी छोटी घटनाएँ देना चाहूँगा।

द्विवेदी जी क्लास में पढ़ा रहे थे। एक विद्यार्थी सो रहा था द्विवेदी जी ने देखा और ज़ोर से डांटा। वह जाग पड़ा। द्विवेदी जी के चेहरे पर मुस्कान आई फिर अंग्रेज़ी में बोल उठे- 'इट इस गुड कमेंट आन माई लेक्चर'। फिर अट्टहास किया। सभी लोग हँस पड़े और लेक्चर फिर शुरू हो गया।

एक तरुण संन्यासी द्विवेदी जी को अपनी पुस्तक की पाण्डुलिपि दे गए थे ताकि उनकी प्रतिक्रिया जान सकें। पुस्तक का नाम था- भारतीय महिलाओं का चरित्र उद्धार। वे उनकी प्रतिक्रिया जानने के लिए आये। हम लोग वहीं बैठे थे। द्विवेदी जी ने उन से पूछा-"आपने महिलाओं के लिए उपदेश दिया है कि यह न करे वह न करें। आख़िर आपकी दृष्टि में कौन सी महिलाएँ हैं ? देखिये मैं आपको निराश नहीं कर रहा हूँ, पर बताइए कि किन-किन महिलाओं के लिए ये लिखा है ? उच्चवर्ग की महिलाएँ तो आपकी किताब पढ़ने से रही और पढ़ भी ले तो अपना आचरण बदलने से रहीं। बाकी मध्य वर्ग की स्त्रियों को अपने घरेलू काम-काज से छुट्टी ही कहाँ मिलती है कि वे स्वच्छंद हो सके। उन्हें आप क्या उपदेश देंगे ? देखिये मैं निराश नहीं कर रहा हूँ, लेकिन आख़िर लेखक को अपना उद्देश्य और लक्षिभूत श्रोता वर्ग स्पष्ट तो होना ही चाहिए। फिर वे हँसे। यह क्रम लगातार चलता रहा। हम लोग आनंदित हो रहे थे और संन्यासी चोट खाकर भी हँसने के लिए अभिशप्त हो रहा था।

द्विवेदी जी का आना सुनकर विश्वविद्यालय ही नहीं, पूरा बनारस उल्लसित हो उठा था। तब द्विवेदी जी यश के शिखर पर थे। अशोक के फूल, बाणभट्ट की आत्मकथा, कबीर, हिंदी साहित्य की भूमिका, सूरदास जैसी महान कृतियाँ आ चुकी थीं। यानि सर्जना और समीक्षा दोनों की शक्तियों का उत्कर्ष उनमें दीप्त हो रहा था। वे कक्षाएँ लेने लगे। मेरा स्वभाव है कि (पता नहीं अच्छा है या बुरा) मैं घूम-घूम कर बड़े लोगों से नहीं मिलता हूँ। सहज भाव से जिनसे सम्बन्ध जुड़ जाता है, जुड़ जाता है।

मेरी पत्नी सरस्वती जी द्विवेदी जी के घर के सदस्य जैसी हो गई थी। गुरुआनी जी उन्हें 'सुरसतिया' बुलाती थी। वे बताती हैं कि पंडितजी सुबह उठते थे, अंगीठी जलाते थे, चाय बनाते थे और फिर गुरुआनी से कहते थे- 'उठा हो पुत्तुल के माई! चाय पी लो'। द्विवेदी जी की बड़ी पुत्री पुत्तुल और बड़े

गोपेश्वर सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, रामदरश मिश्र और हरिमोहन जी

बेटे मुकुंद दिल्ली विश्वविद्यालय में लेक्चरर थे। जब मैं दिल्ली आ गया तो पुतुल के यहाँ आने-जाने का क्रम बन गया। द्विवेदी जी और माताजी पुत्तुल के यहाँ ही ठहरते थे। सरस्वती जी प्रायः उनके बीच होती थी। वे बताती हैं कि परिवार में हँसी भरी नोंक-झोंक चलती रहती थी। एक बार किसी बात पर गुरुआनी ने कहा- सुरसतिया बड़ी चालाक हो गई है। द्विवेदी जी ने कहा- तू आज जन लू हो ! ऐसे ही एक बार गुरुआनी ने कहा कि पता नहीं कैसी बहुएँ आई कि हमारे बच्चों के बाल झड़ गए। तब द्विवेदी जी ने बड़ी मासूमियत से कहा- अरे भाई ! पता नहीं, मेरे बाल क्यों झड़ गए ? गुरुआनी खीझ उठी कि सुरसतिया बैठी हुई और आप मुझे ये सब सुना रहे हैं। द्विवेदी जी ने कहा कि मैंने तो कुछ भी नहीं कहा। द्विवेदी जी के सम्पर्क में अन्जान से अन्जान और नया से नया आदमी भी आकर उनके खुले ममत्व में डूब जाता था। द्विवेदी जी अपनी ओर से अनेक मनोरंजक बातें सुनाकर उसे प्रफुल्ल कर देते थे। उनका मुक्त हास्य और विनोद तो अद्‌भुत छटा बिखेरता था।

द्विवेदी जी चंडीगढ़ के पंजाब विश्वविद्यालय जा चुके थे। मैं तब गुजरात में था। मैं उनसे मिलने चंडीगढ़ गया तो देखा कि एक विदेशी महिला उनका साक्षात्कार ले रही थी। द्विवेदी जी बहुत सरल सहज अंग्रेज़ी में अपनी बात कह रहे थे। साक्षात्कार के बाद उस महिला से बोले- जाइये आपके देश वाले भी कहेंगे कि अजीब अंग्रेज़ी बोलने वाले से आपका पाला पड़ा था। अँगरेज महिला ने कहा कि नहीं.. नहीं.. आपने बहुत अच्छी अंग्रेज़ी बोली। द्विवेदी जी ठठाकर हँसते हुए बोले बोले-एक और मज़ाक आपने कर दिया।

द्विवेदी जी कि इच्छा थी कि उनका निधन काशी में ही हो लेकिन नियति का खेल देखिये कि जिस दिल्ली से वे भाग रहे थे, उसी दिल्ली में उनका निधन हुआ। वे एम्स के कमरे में अंतिम सांस ले रहे थे और हम शिष्य कमरे के बाहर चिंताग्रस्त होकर उनके अच्छे होनेकी दुआ मांग रहे थे। उनकी शव यात्रा में अपार भीड़ उमड़ी थी। द्विवेदी जी के जाने से हम लोग एक बड़ा गहरा सन्नाटा अनुभव कर रहे थे।

उनकी मस्ती का एक दृष्टान्त याद आ रहा है। एम.ए. की परीक्षा चल रही। हम दो तीन मित्र इन्विजिलेटर थे और द्विवेदी जी सुपरवाइजर। द्विवेदी जी ने चाय मंगाई और एक को कमरे में छोड़कर हमें बुला लिया। जब हम चाय पी चुके तो वे हँसते हुए डांट कर बोले- अरे तुम लोग यहाँ हो, वहाँ काम देख रहा है ?

द्विवेदी जी आवश्यकता पड़ने पर शिष्यों की आर्थिक सहायता भी करते थे। मेरा पीएचडी का शोध प्रबंध पूरा हो गया था, लेकिन उसके टाइप का खर्चा और सम्बंधित फीस मेरे पास नहीं थी। मैंने अपना संकट उनसे कहा तो उन्होंने तुरंत पैसे देकर मेरा यह संकट दूर किया।

द्विवेदी जी के साथ मुझे घूमने का अवसर प्रायः मिल जाता था। एक बार वसंत ऋतु में बोटेनिकल गार्डन में हम दोनों घूम रहे थे तो अशोक के वृक्ष को देख कर मैंने कहा- पंडित जी ! यह अशोक है न ! तब द्विवेदी जी ने कहा- हाँ! यह अशोक है लेकिन फूला नहीं। क्योंकि किसी तरुणी का पदाघात इसे प्राप्त नहीं हुआ। परीक्षाएं चल रही हैं न !

द्विवेदी जी अपने अनेक छात्रों के माध्यम से दिल्ली में छा गए थे। वे हिन्दू कॉलेज में तीन दिन तक व्याकरण पर बोलते रहे। उनके भाषण इतने मनोरंजक थे कि लोगों को कथा सुनने का आनंद आ रहा था।

द्विवेदी जी कि इच्छा थी कि उनका निधन काशी में ही हो लेकिन नियति का खेल देखिये कि जिस दिल्ली से वे भाग रहे थे, उसी दिल्ली में उनका निधन हुआ। वे एम्स के कमरे में अंतिम सांस ले रहे थे और हम शिष्य कमरे के बाहर चिंताग्रस्त होकर उनके अच्छे होने की दुआ मांग रहे थे। उनकी शव यात्रा में अपार भीड़ उमड़ी थी। द्विवेदी जी के जाने से हम लोग एक बड़ा गहरा सन्नाटा अनुभव कर रहे थे। द्विवेदी जी के साथ वाराणसी से लेकर दिल्ली तक मैं अनेक प्रकार से जुड़ा रहा और उनकी महानता का साक्षात्कार करता रहा। फिलहाल यहाँ सबको समेट पाना संभव नहीं होगा। ◆

पता : बी-24 ब्रह्मा अपार्टमेंट, सेक्टर-7,
प्लाट नं.-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
मो. : 7303105299

विनीतलाल : शिष्य चरित

उस दिन सरोज बेन को देखा तो देखा नहीं गया। दुर्भाग्य और दैन्य की प्रतिमूर्ति-सी सामने खड़ी थीं। विश्वास नहीं हुआ कि यह वही सरोज बेन हैं जो कुछ समय पहले तक सौभाग्य, सौंदर्य और स्वास्थ्य की श्री से जगमग थीं। मुझे याद आया कि विनीत विवाह के पश्चात् एक दिन सरोज को लिए हुए वृंदावन से सीधे हमारे कॉलेज के स्टाफ में आ गए थे और वहीं दोनों ने चरण छू कर आशीष माँगे थे। सरोज को पहली बार वहीं देखा और पूरा स्टाफ इस जगमगाते हुए व्यक्तित्व को विस्मय भाव से देख रहा था। तब से कितने वर्ष गुज़रे-कितने प्रसंगों में कितनी बार मिलते जुलते हुए। कभी विनीत उन्हें लेकर दिल्ली आते थे कभी मैं सपत्नीक पिलवई या अहमदाबाद पहुँचता था। संतान न होने के बावजूद विनीत और सरोज की गृहस्थी में उदासी नहीं आने पाई थी-एक भरा पूरा मौसम जैसे वहाँ हँस रहा होता था। लेकिन उस दिन?

हाँ मैंने कभी कहाँ सोचा था कि अहमदाबाद जाऊँगा और विनीत लाल नहीं होंगे। और विनीत लाल के बिना अपनी अहमदाबाद-यात्रा को मैं पूरा कहाँ मानता था। मैंने कहाँ सोचा था कि जिस सरोज को वसंत के वैभव की तरह देख रहा हूँ उसे विधवा के रूप में देखूँगा-दैन्य मूर्ति और असहाय सी। कहाँ सोचा था कि विनीत लाल को मैं दिवंगत विनीतलाल के रूप में याद करूँगा ? गुजरात में मेरे जीवन के आठ साल बीते। यह समय कई कारणों से मेरे जीवन का महत्वपूर्ण अध्याय है। उनमें से एक कारण यह है कि मुझे वहाँ बहुत अच्छे शिष्य मिले, ऐसे शिष्य जो जुड़े तो जुड़ते ही चले गए। जो ज्यों-ज्यों ऊँचे उठते गए मेरे प्रति नत होते गए और गुजरात से छूटने के बाद समय और स्थान की दूरी उन्हें और करीब लाती गई। सभी शिष्यों का अपना-अपना रंग है, अपना-अपना ढंग है। विनीत का रंग और ढंग भी उनका अपना था। बाहर के लोगों से तुलना तो बाद की चीज़ है यदि उनके बड़े भाई नवनीत से तुलना की जाए तो दोनों के रंग-ढंग का विरोधी अंतर चकित कर देता है। नवनीत शांत, कम बोलने वाले, पतले शरीर वाले और विनीत कुछ स्थूल काय और बोलें तो फिर बोलते ही चले जाएँ।

सन् 57 में जब मैं बड़ौदा से अहमदाबाद गया तो बी.ए. के पहले बैच में जो छात्र मिले (और जो जुड़े तो जुड़ते ही चले गए) उनमें नवनीत भी थे। अहमदाबाद ने शुरू में (और अंत में भी) मुझे कितना अजनबीपन दिया था (और दुःख भी) उस अजनबीपन में मेरे कुछ शिष्यों ने घर का सा अपनापन दिया। नवनीत का वहाँ अपना घर था, परिवार था उससे उन्होंने जोड़ा। धीरे-धीरे नवनीत और बहुत से छात्र मेरे परिवार के अंग बनते हुए उसे बड़ा करते गए। 59 में मैं नवसारी चला गया। साल भर बाद लौटा तो बी.ए. में फिर-फिर नए-नए चेहरे दिखाई पड़े। उनमें एक चेहरा विनीत लाल का भी था। नवनीत ने ही परिचय कराया और बाद में यह भी संकेत दिया कि विनील लाल पढ़ता-वोढ़ता नहीं है, बस गिरता-पड़ता यहाँ तक पहुँच गया है, पता नहीं आगे क्या हो ?

उनकी खेलदंड़ी वृद्धि, पढ़ाई-लिखाई के प्रति अरुचि और बड़बड़िया स्वभाव के बारे में कितनी ही कहानियाँ मेरे सामने आती गईं और विनीत लाल का बिंब मेरे मन में बनता गया। विनीत लाल की लापरवाही से संबंधित एक बड़ी हँसोड़-सी घटना लोग सुनाते थे। वह यह कि वे शाम के धुंधलके में एक जनता मूत्रालय में पेशाब करने गए। उन्होंने अपनी धुन में यह भी नहीं देखा कि कोई आदमी वहाँ बैठा हुआ पेशाब कर रहा है। उसके पीछे खड़े होकर उसी को नहलाने लगे। जब वह गाली देता हुआ उठ खड़ा हुआ तो इन्हें स्थिति का ज्ञान हुआ और वहाँ से हड़बड़ा कर भागे।

बहरहाल मैं कक्षा में उन्हें सबसे आगे बैठे हुए देखता था। वे चुपचाप मुझे देख रहे होते थे और मुझे लगता था कि यह भकुआ आदमी कुछ ग्रहण नहीं कर रहा है, बस शून्य भाव से बैठा हुआ है। उसके ख़ामोश चेहरे पर एक सपाटता नज़र आती थी। वे मेरे परिचय में तो थे ही, उनके घर भी मेरा आना

जाना था। वे भी कभी भाई के साथ, कभी किसी और साथी के साथ, कभी अकेले मेरे घर आते थे- अतः धीरे-धीरे अंतरंग शिष्यों में जगह बनाते गए और मुझे लगने लगा कि धीरे-धीरे पढ़ाई की गहराई में भी उतर रहे हैं। नवनीत ने भी संकेत किया कि आपके संपर्क में आने के बाद विनीत लाल में काफी बदलाव दिखाई पड़ रहा है-लगता है कि अब पढ़ाई में उनका जी लग रहा है। फिर भी मुझे उनकी स्थिति या समझ के बारे में कोई निश्चित ज्ञान नहीं था किंतु जब बी.ए. प्रथम वर्ष की परीक्षा की उत्तर-पुस्तकें देखीं तो सुख आश्चर्य हुआ। विनीत लाल ने प्रश्नों के उत्तर बहुत अच्छे दिए थे। लगता था कि उन्होंने मेरे अध्यापन को मन लगा कर पिया है। उनके उत्तरों में मेरी वाणी गूँज रही थी। अब विश्वास हो गया कि उन्हें आगे बढ़ाया जा सकता है। नवनीत भी चकित थे किंतु प्रसन्न। विनीत को मैंने शाबाशी दी, लगा कि उनके भीतर आत्मविश्वास जाग गया है। बोले, "आपकी कृपा रहेगी सर तो कुछ कर ही लूँगा।" "नहीं कृपा तो अपनी जगह है, मूल वस्तु है तुम्हारा परिश्रम और आत्म विश्वास। यही तुम्हें आगे बढ़ाएगा।"

विनीत अपने अध्ययन में गंभीर से गंभीरतर होते गए और वे साहित्यिक चर्चाओं में बोलने भी लगे। गोष्ठियाँ होती रहती थीं या करुणेश, नवनीत, रघुनाथ भट्ट, अवध नारायण त्रिपाठी आदि साथ-साथ मेरे घर आकर साहित्यिक बहसें किया करते थे। अब उनमें विनीत लाल भी शामिल हो गए। कई बार उनके सीनियर लोग उन्हें चुप कराना चाहते थें किंतु मेरी शह पर विनीत मुखर बने रहते थे। मुझे लगता था कि विनीत लाल का स्तर निखरता जा रहा है और उनके स्तर से नीचे नहीं है जो लोग उन्हें चुप करा रहे हैं। कई बार जब उनके वरिष्ठों ने उन्हें डाँटा तो मैंने विनीत का पक्ष लिया क्योंकि वे सही थे। वैसे विनीत लाल बड़बड़िया स्वभाव के थे, बोलते थे तो बोलते ही चले जाते थे और तब उनका सिर और हाथ जुम्बिश में आ जाते थे।

अब तक विनीत मेरे घर के सदस्य से बन गए थे। अहमदाबाद में मेरे एक से एक प्रिय और अंतरंग शिष्य थे-मेधावी भी। किंतु मुझे लगता था कि विनीत लाल की प्रबल इच्छा थी कि वे मेरे सबसे प्रिय छात्र माने जाएँ। नवनीत से भी उन्हें स्पर्धा थी। बात चलते पर कहते थे, "अरे भइया की बात छोड़िए सर....।" उन्हें बहुत इच्छा थी कि वे अधिकाधिक मेरे संपर्क में रहें। कॉलेज में, मेरे घर में, अपने घर में, रास्ते में वे मेरा साहचर्य पाना चाहते थे। मेरे घर आते ही मेरे सिर की मालिश शुरू कर देते थे। यही काम वे अपने घर भी करते थे। उन्हें किसी की परवाह नहीं थी कि कोई उन्हें चापलूस कहेगा कि क्या कहेगा। वे यह काम पूरी श्रद्धा से करते थे, किसी स्वार्थ के तहत नहीं। उन्हें किसी को जवाब नहीं देना था। जवाब देना था केवल स्वयं को।

विनीत लाल इस श्रद्धा के बावजूद अपने काम के प्रति नियमित नहीं थे। वे हांकते बहुत थे-किसी षड्यंत्र के तहत नहीं, स्वभाव के तहत। अतः हाँकने को तो क्या-क्या हाँक जाते थे किंतु उस हाँके हुए को पूरा कर पाना कहाँ संभव था ? मैं उनके इस स्वाभाविक हाँकपन का आनंद लेता था और उन्हें कोई काम सौंप कर भी मैं उस काम के हो जाने की निश्चितता नहीं पालता था। होगा तो होगा, नहीं होगा तो नहीं होगा किंतु पत्नी इस कारण विनीत को बहुत डाँटती थीं। जब वह हाँकता था कि भाभी यह कर दूँगा, वह कर दूँगा बस आप आदेश तो दीजिए, तब पत्नी डाँटती हुई कहती थी, "अरे तू झुट्ठा है तू कुछ नहीं कर पाएगा ? अपने साहब को चरा, मुझे चरका मत पढ़ा।"

"अरे भाभी जी, यह आप क्या कहती है ?" कहते हुए विनीत लाल उनके चरण पर झुक जाते।

कई बार जब मुझे कभी घर लौटने में देर हो जाती तो पत्नी बड़बड़ातीं, "विनितवा कहीं लेकर चला गया होगा।" उस बार तो हद ही हो गई। विनीत लाल के घर के पास की ही एक क्लीनिक में मेरी आँख का ऑपरेशन हुआ था। सात दिन बाद जब पट्टी खोलवाने जा रहा था तो विनीत लाल भी मेरे साथ थे। इसलिए पत्नी साथ तो नहीं गईं किंतु विनीत लाल को ताकीद जरूर कर दी थी- "इन्हें सीधे ले जाना और सीधे ले आना।" किंतु पट्टी खुलने के बाद विनीत का जी नहीं माना, आग्रह कर बैठे, "घर चलिए सर।" मैंने मना किया और पत्नी की ताकीद भी याद दिलाई तो बोले, "अरे छोड़िए सर, भाभी को मैं मना लूँगा। अरे वे मुझ पर सचमुच का गुस्सा थोड़े ही न करती हैं, वे तो मुझे बहुत मानती हैं। वे यह भी जानती हैं कि आप इस शिष्य के साथ हैं तो आपको कोई तकलीफ़ नहीं होगी।" उनका आग्रह मुझे उनके घर खींच ले गया और काफी देर त कवे मेरी सेवा करते रहे। कई घंटे बाद हम आटो रिक्शा से घर की ओर रवाना हुए। घर से सौ गज पहले ही विनीत लाल ने रिक्शा रुकवा लिया और बोले, "मैं यही उतर जाता हूँ सर।" "क्यों घर क्यों नहीं चलते ?" "नहीं भाभी जी बहुत नाराज़ होंगी आज मेरी खैर नहीं।" मैं मुस्कुराया, "अच्छा भाई जैसी तुम्हारी मर्ज़ी" और जब घर पहुँचा तो पत्नी का बुरा हाल था। आँखों में आँसू थे। जाते ही रोते हुए बोलीं, "कहाँ रह गए थे ? मैं तो समझी कि केस कुछ ख़राब हो गया।"

"नहीं नहीं सब ठीक है।"

"तो फिर इतनी देर कहाँ हुई ? जरूर विनितवा अपने घर ले गया होगा।"

मैंने मुस्कुरा कर हामी भरी तो वे गुस्से में आ गईं, "अरे वह अभागा अपनी आदत से बाज़ नहीं आएगा। मैंने कितना मना लिया था लेकिन वह किसी की सुनता है ? और ले भी गया तो इतना नहीं हुआ कि घर छोड़ जाए। इस हालत में अपने घर से आपको अकेले हाँक दिया।"

"नहीं, वह ऐसा नहीं कर सकता। साथ आया था।"

"कहाँ है ?"

"तुम्हारे डर से बाहर से ही लौट गया।"

"और आपको भी यह बात नहीं सूझी कि मैं यहाँ चिंता से बेहाल होऊँगी। विनीत आपको घर खींच ले गया और आप चुपचाप खिंचे चले गए। आप कोई अबोध बच्चा हैं क्या ? इस बार आने दो विनीत को ? वह भी देखेगा कि उसका क्या हाल करती हूँ।"

लेकिन विनीत आए और आते रहे। पत्नी का नकली असली क्रोध भी चलता रहा और मैं भी विनीत लाल की श्रद्धा की लपेट में आता रहा। मैं कभी कभी पत्नी को डाँटता भी था कि "क्यों बेचारे के पीछे पड़ी होती हो?" किंतु

बात विनीत लाल की ही सही थी कि "भाभी जी मुझ पर असली गुस्सा थोड़े ही न करती हैं, वे मुझे बहुत मानती हैं।" इसका अनुभव मुझे था किंतु गहरा अनुभव तब हुआ जब विनीत लाल के दिवंगत होने का समाचार सुना। पत्नी मर्माहत रह गईं। आँखें छलछला आईं, घंटों गुमसुम रहीं। उस दिन खाना भी नहीं खाया। काफी देर बाद मुझसे बोलीं, "कितना भोला था न विनीत। बेटे की तरह हमारे घर में आता जाता रहा, डाँट फटकार खाकर हँसता हुआ। कैसा लगेगा अहमदाबाद, जब इस बार वहाँ जाऊँगी।"

खैर यह तो बाद की बात है। अब हमें अहमदाबाद से दिल्ली आए ज़माना हो गया था किंतु विनीत को मधुमेह की शिकायत तभी शुरू हो गई रही होगी। विनीत लाल खाने-पीने में एकदम अनियमित थे। तब उन्हें कहाँ पता था कि उनका यह अनियंत्रित रूप उन्हें कहाँ ले जाएगा। यदि मेरे साथ खा पी रहे होते और मैं उन्हें मना करता तो अपने उसी फक्कड़ी अंदाज़ में बोलते, "अरे सर कुछ नहीं होगा, आपका आशीर्वाद है तो मेरा कोई क्या कर लेगा।" और झुक कर मेरा पाँव छू लेते। उन्हें इस बात का बड़ा शौक था कि वे मेरे साथ बैठ कर खाएँ-पिएँ इसलिए कहीं आते-जाते मुझे किसी रेस्त्राँ में खींच ले जाते और अनाप-शनाप आर्डर दे डालते। मैं तो उतना ही स्वीकारता जितना मुझे चाहिए किंतु वे तो चीज़ों का ढेर लगवा लेते और कुछ खाते बाकी छोड़ कर उठ जाते। उन्हें समझाता "तुम यह फूहड़पन क्यों करते हो ?" वे बोलते, "अरे डॉक्टर साहब कुछ नहीं, बस तमाम चीज़ों का थोड़ा-थोड़ा स्वाद चख लेता हूँ। बस आपका सान्निध्य मुझे चाहिए किसी भी बहाने।" ....और उनका सान्निध्य-प्रेम यों बढ़ता गया कि यदि मॉडरेशन के सिलसिले में मुझे महीना भर बड़ौदा रहना पड़ गया तो वहाँ कई बार हो आते थे और फिर वही प्रक्रिया-यानी मुझे और मेरे साथ रह रहे डॉ. रमाकांत शर्मा को किसी रेस्त्रां में खींच ले जाते थे और खाने-पीने की चीज़ों का ढेर लगा कर छोड़ कर उठ जाते थे।

विनीत एम.ए. हो गए थे और नौकरी की तलाश में थे किंतु नौकरी की चिंता से उन्हें परेशान अनुभव कभी नहीं किया। "अरे मिल जाएगी सर, यह कर रहा हूँ, वह कर रहा हूँ।" कह कर वे हँस पड़ते थे। उन्हीं दिनों सेंटजेवियर कॉलेज की कृपा से मेरी ही नौकरी ख़तरे में पड़ गई और वहाँ से दिल्ली आना पड़ा। मेरे अन्य अंतरंग शिष्यों के साथ विनीत कितना रोए थे। दिल्ली आकर न मैं अहमदाबाद से छूटा न विनीत लाल से, बल्कि और करीब होता गया। दिल्ली तो विनीत की बहन व्याही हुई थी (और नवनीत की ससुराल तो है ही) वे दिल्ली आते रहते थे और मैं भी विभिन्न कारणों से अहमदाबाद जाता रहता था। अतः भेंट-मुलाकात का सिलसिला बना हुआ था। विनीत दिल्ली आते तो घर ज़रूर आते और चूँकि उस समय मेरे पास फोन नहीं था अतः मिलन का आकस्मिक सुख देते थे। पिलवई में उनकी नौकरी लग गई थी। आंचलिक उपन्यास पर शोध भी कर रहे थे। अतः उनमें अतिरिक्त आत्म-विश्वास आ गया था, कुछ बड़ी-बड़ी बातें उठाने लगे थे। मैं कभी उनकी तारीफ करता तो बोलते, "अरे सर, मेरा अपना क्या है, यह सब तो आपका ही दिया हुआ है।"

एक बार ऐसे ही आकस्मिक रूप से मेरे माडल टाउन वाले निवास स्थान पर पहुँच गए। मैं शहर में ही कहीं गया था। आया तो देखा ज्ञानचंद गुप्त और विनीत लाल ड्रांइंग रूप में बैठे हुए हैं और साहित्य पर बहस चल रही है। बाद में पत्नी ने बताया, "बहस साहित्य पर कम थी, इस बात पर ज्यादा थी कि दोनों में कौन ज़्यादा आपका स्नेह-भाजन है और साहित्य में आपकी उपलब्धियाँ क्या है ?" मुझे हँसी आ गई।

विनीत पिलवई में लेक्चरर लग चुके थे और उनका आग्रह पर आग्रह था कि मैं पत्नी के साथ पिलवई जाऊँ और कई दिन तक उनके यहाँ रहूँ। अब उनकी शादी भी हो चुकी थी। यानी मेरे दिल्ली आने के बाद ही उनकी शादी हुई थी। अहमदाबाद जाने का संयोग बनता ही रहता था। इस बार बना तो पिलवई जाने का भी मन बना लिया। दिसंबर का महीना था। इस महीने में गुजरात बहुत अच्छा लगता है। विनीत मेहसाणा आकर हमें पिलवई ले गए। पिलवई जाने का एक सुख और था वह यह कि मेरे प्रिय शिष्य डॉ. महावीर सिंह चौहान वहाँ विभागाध्यक्ष थे। वहीं प्रभुलाल वैश्य भी थे। पास के ही कस्बे

मानसा के कॉलेज में मेरे प्रिय शिष्य भँवरलाल गुर्जर थे। सबसे इत्मीनान से मिलना होगा, बातचीत होगी, इस सुख की आशा लिए हुए मैं पिलवई पहुँचा था और सचमुच इस सुख की गहरी अनुभूति हुई। पिलवई कॉलेज में बोला। प्रिंसिपल से लेकर लेक्चरर तक सबने मुझे बहुत स्नेह और सम्मान दिया। कई दिन हम सभी दिसंबर की धूप में नहाए हुए फूली सरसों के खेतों में घंटों घूमे, बौर से लदे आमों (हाँ वहाँ आम दिसंबर में बौर जाते हैं) के बीच घूमते हुए कोयल की कूक का आनंद लिया। रोज़ शाम को जमावड़ा होता था जिसमें विनीत लाल, डॉ. चौहान तो होते ही थे अंग्रेज़ी विभाग के किरण आदि भी होते थे। दिल्ली की भागमभाग और यांत्रिक ज़िंदगी से दूर अपनों के बीच यहाँ कितनी आश्वस्ति थी, कितना चैन था। ....और विनीत दंपती का तो क्या कहना ? दोनों जैसे हमारे साहचर्य के समय को अपनी सेवा और प्यार से बाँध लेना चाहते थे। जब सब लोग चले जाते थे तब केवल हम चार होते थे। हम पति-पत्नी खा पीकर आराम की मुद्रा में लेट जाते थे तब मना करने पर भी मेरा शरीर विनीत लाल की सेवा की गिरफ्त में होता था और पत्नी का शरीर सरोज बेन की गिरफ्त में। काफी देर तक बातचीत के साथ यह क्रम चलता था। तब विनीत के हाथों में काफी ताकत थी, मधुमेह अभी उन पर काबिज नहीं हुआ था।

कई दिन बाद जब हमने वहाँ से अहमदाबाद के लिए प्रस्थान किया तो लगा जैसे हम तो यहाँ से जा रहे हैं किंतु मन यहीं छूट रहा है। विनीत तो साथ थे-किंतु चलते समय सरोज बेन आँखों में आँसू भरे बार-बार पूछ रही थीं, "फिर कब आएँगे ? फिर कब आएँगे ?" ....वैसे सरोज बेन से इसके बाद भी कई बार भेंट हुई किंतु यहां-वहाँ...। यह तो उनका अपना घर था न। घर में किसी को पाना और बात है और सफ़र में पाना और बात।

मैंने कहा न कि गुजरात से दिल्ली आने के बाद गुजरात मेरे और पास आ गया। मेरे आत्मीय लोगो के मन में मेरे प्रति जो अपनापन था वह और गाढ़ा हो गया और वे लोग विभिन्न प्रसंगों में मुझे बुलाते ही रहते थे और मैं गुजरात में जहाँ कही रहूँ विनीत लाल वहाँ पहुँच ही जाते थे। मैं अहमदाबाद में होता था तो वे कालेज से छुट्टी लेकर मेरे साथ होना चाहते थे। सबसे अधिक स्मरणीय हैं इधर की गोष्ठियाँ। तब मेरे मित्र हरिहर जी वहाँ के प्रिंसिपल थे और नवनीत लाल हिंदी विभागाध्यक्ष। वहाँ हिंदी-गुजराती साहित्य की कई मिली-जुली संगोष्ठियाँ हुईं और दोनों भाषाओं के अनेक लेखक और विद्वान आए। इन दोनों के आग्रह से मुझे इनमें शामिल होना ही पड़ता था। एक बार तो मैं बीमार हो कर उठा था और इन लोगों का आग्रह था कि मैं जाऊँ ही। मुझे जाना ही पड़ा। इन्होंने मेरे लिए हवाई यात्रा की सुविधा दी। वहाँ बाहर के मित्रों से मिलने का आनंद तो था ही, गुजराती के अनेक साहित्यकारों से परिचय भी होता था। विनीत लाल तो सदलबल आते ही थे। उस बार तो अजीब हो गया। गोष्ठी के बाद विनीत लाल अपने शिष्यों और मित्रों के साथ मेरे कमरे में आए। कुछ देर बैठकर पिलवई लौट गए। जब खा पीकर हम लोग टहलने के लिए निकलने लगे तो मैं अपना सैंडिल खोजने लगा। गायब था और वहाँ एक दूसरा सैंडिल पड़ा था जो छोटा था। लगता है जो लोग आए थे उनमें से कोई मेरा सैंडिल पहन गया और अपना छोड़ गया। और कोई नहीं निश्चित रूप से यह चमत्कार विनीत लाल का होगा। ऐसा हड़बड़ियापन वे ही कर सकते हैं। बहरहाल टहलने का कार्यक्रम तो छोड़ दिया किंतु चिंता कल की हो रही थी। कल सुबह से मैं नंगे पाँव कहाँ जाऊँगा, कैसे जाऊँगा। यदि विनीत लाल नहीं आए या देर से आए तो। उनके साथ सब कुछ संभव है। वहाँ जाने पर भी यदि उन्हें यह भूल पकड़ में नहीं आई तो ? आनी होती तो यहीं आ गई होती, आख़िर दूसरे के बड़े पाँव का सैंडिल अपने छोटे पाँव में डालते हुए उन्हें अटपटापन महसूस नहीं हुआ ? नहीं हुआ तो क्या निश्चय है कि वहाँ पहुँचने पर हो ही गया हो। बहरहाल अब जो होना हो सो हो। लेकिन दूसरे दिन संगोष्ठी से पहले ही वे मेरे कमरे पर पहुँच गए, अपनी

पुस्तक मेले के दौरान

ग़लती के लिए शरमाते-सकुचाते हुए से। उन्हें डाँट तो खानी ही, खाई। जब नवनीत खेड़ ब्रह्मा के कालेज में प्रिंसिपल होकर गए तो उन्होंने वहाँ भी मुझे आमंत्रित किया। तब उत्तर गुजरात यूनिवर्सिटी में रघुवीर चौधरी द्वारा संपादित मेरी 'प्रतिनिधि कविताएँ पढ़ाई जा रही थी। अतः मेरे व्याख्यान के समय अनेक कॉलेजों के प्राध्यापक अपने छात्रों के साथ आए थे। डॉ. महावीर सिंह चौहान के वल्लभ विद्या नगर चले जाने के कारण विनीत ही अपने यहाँ विभागाध्यक्ष थे। अतः वे अपना लाव लश्कर लेकर आए हुए थे और बार-बार अपने कॉलेज भी चलने का आग्रह कर रहे थे। दूसरे दिन वहाँ नहीं जा सका। हाँ बीच में स्थित ईडर कॉलेज में अवश्य गया और विनीत को तो वहाँ होना ही था।

मैं देख रहा था कि इस सारे उत्साह और सक्रियता के पीछे छिपी उनकी रुग्णता को। वे धीरे-धीरे मधुमेह के घातक दबाव में आते जा रहे थे। लोगों से ज्ञात हुआ था कि खान-पान में उनका असंयम ज्यों का त्यों है। मना करने पर अपने फक्कड़ अंदाज़ में अब कहने लगे थे, "एक दिन मरना तो है ही यारों, थोड़ा पहले मर गए तो क्या हो जाएगा ? और जब तक जीवित हूँ खाने पीने के स्वाद से वंचित क्यों रहूँ ?"

विवेकी राय के साथ उत्तम नगर निवास स्थान पर

कुछ इसी तरह जब एक बार मुझ से बोले तो मैंने कहा, "सो तो ठीक है विनीत बेटे, लेकिन उसकी तो सोच जिसे तू पीछे छोड़ जाएगा। वह तो निपट अकेली रह जाएगी, उसके लिए सँभाल अपने को।"

"सर, जीवन-मरण तो अपने हाथ में नहीं है, किंतु उसके लिए मैं मकान और काफी पैसे छोड़ जाऊँगा। और वह अकेली नहीं होगी, भइया का बेटा मेरा गोद लिया हुआ बेटा है। वह तो साथ रहेगा ही। और नवनीत भइया की मनुष्यता से तो आप परिचित ही हैं, उनके रहते वह न बेसहारा होगी, न दुखी। पहले उसे रोटी खिलाएँगे तब खुद खाएँगे।"

इस विश्वास को मैंने मन ही मन प्रणाम किया और प्रभु से प्रार्थना की कि ऐसा ही हो प्रभु।

यानी कि उन्हें अपनी मौत अब दिखाई पड़ने लगी थी। और वह आख़िरी भेंट थी हमारी। सपत्नीक मैं अहमदाबाद पहुँचा। उम्मीद थी कि स्टेशन पर कोई न कोई होगा ही। जब हम वहाँ जाते हैं तब अधिकांश को हमारे कार्यक्रम की ख़बर होती है किंतु सबकी अपने-अपनी व्यस्तताएँ होती हैं। समय हुआ तो कोई आ जाता है, नहीं तो मैं अपने गंतव्य पर पहुँच जाता हूँ। उतर कर देखा, कोई दिखाई नहीं पड़ा। चलने को हुए तो देखा विनीत लाल लाठी टेकते हुए हमारी ओर चले आ रहे हैं। एक पाँव में पट्टी बँधी हुई है। सुना तो था कि पाँव में घाव हो गया है, सूख नहीं रहा है बल्कि बढ़ता ही जा रहा है लेकिन विनीत इस हाल में होंगे, कल्पना नहीं की थी। सच पूछिए तो कभी सोचा भी नहीं था कि मस्ती और फक्कड़पन के प्रतीक विनीत लाल को कभी इस हालत में देखूँगा। पत्नी तो सकते में आ गईं। घबराई सी बोलीं, "यह क्या हुआ विनीत ?"

"कुछ नहीं भाभी। सब ठीक है।" विनीत ने अपना फक्कड़पन दिखाने की कोशिश की किंतु हम उनके उस फक्कड़पन के पार उस दर्द को देख रहे थे जिसे वे छिपा रहे थे।

हम चाय लेकर एक बेंच पर बैठ गए तो विनीत बोले, "आपकी चिट्ठी मिली थी। सीधे कॉलेज से आ रहा हूँ।"

"लेकिन इस हालत में क्यों आए विनीत ?"

"सर, सोचा-पता नहीं स्टेशन पर आपको लेने के लिए कोई आए कि न आए, मुझे चलना ही चाहिए।"

पत्नी बोलीं, "अरे पागल, अपने को इतना हलकान करने की क्या जरूरत थी। अहमदाबाद हमारे लिए कोई अपरिचित शहर है क्या ?"

"परिचित हो या अपरिचित, आप लोगों के पास आने का मेरा अपना जो सुख है उसे कैसे छोड़ सकता हूँ ?"

एक सन्नाटा-सा पसर गया था। हम चलने को उठे तो विनीत भर्राए हुए गले से बोले, "माफ कीजिए सर, मैं आपके साथ नहीं चल सकता। यहाँ से सीधे घर (दरियापुर) जाऊँगा।"

"नहीं तुम्हें हम साथा ले भी नहीं चलेंगे। तुम जाओ आराम करो। हम सीधे रघुवीर चौधरी के यहाँ जाएँगे।"

विनीत ने मेरे पाँव छुए। जब पत्नी के पाँव छूकर उठे तो उनकी आँखें गीली थीं। बोले, "भाभी जी, मैंने आपको बहुत दुख दिए हैं मुझे माफ कर दीजिएगा, अब पता नहीं फिर भेंट हो कि न हो।" कहते हुए वे झटके से लाठी टेकते हुए चले गए।

हम स्तब्ध थे। पत्नी का चेहरा दबी हुई रुलाई के कारण आरक्त हो उठा था। हम धीरे-धीरे स्टेशन से बाहर आए।

हाँ विनीत लाल से वह हमारी आख़िरी भेंट थी। ◆

पता : बी-24 ब्रह्मा अपार्टमेंट, सेक्टर-7,
प्लाट नं.-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
मो. : 7303105299

संस्मरण

रूको ज़रा ओ ज़िन्दगी अभी तो मन भरा नहीं

अपनी धर्मपत्नी के अस्वस्थ होने पर एक लम्बे सुखद दाम्पत्य जीवन को याद करते हुये रामदरश जी द्वारा लिखा गया यह संस्मरण महत्वपूर्ण है। पत्नी को अन्तिम पलों में असहाय देखकर उन्होंने जो कुछ भी महसूस किया, याद किया वह सब कुछ अपनी संवेदनशील कलम से उन्होंने इसमें पिरोया है।

दीपावली को बेटी स्मिता अपने मकान पर ले गई थी। मैं सरस्वती जी के साथ ही सोता हूं। वे महीनों से अस्वस्थ चल रही हैं। न बोल सकती है न सुन सकती हैं। पहले तो पाँव से चल लेती थी, अब बेटा शशांक उन्हें गोद में उठकर स्नान घर में ले जाता है। रात भर से कराहती हैं और चार बार मेरा हाथ खींच कर इशारा करती हैं कि मुझे उठाओ और कहीं ले चलो। तो प्राय मैं रात को पूरी नींद नहीं ले पाता। तो बेटी स्मिता दीपावली को मुझे अपने घर ले गई। इसलिए कि एक रात पूरी नींद सो लूंगा। और वैसे भी वह अकेली रहती है। दीपावली के दिन तो मुझे उसके घर होना ही चाहिए था। दूसरे दिन मुझे सरस्वती जी के पास लौटना ही था। नाश्ते के पश्चात् बेटी स्मिता ने कहा धूप में बैठ जाइए, और कुछ लिखिए। इधर मैं भी कुछ अस्वस्थ चल रहा हूँ और 100 वर्ष की अवस्था तो है ही। लिखना पढ़ना बंद सा हो गया है। बहुत दिनों बाद 28 अक्टूबर को एक ग़ज़ल की रचना हो ही गई।

कहाँ-कहाँ चला मैं किंतु राह से डरा नहीं
रुको जरा ओ जिंदगी अभी तो मन भरा नहीं

यह गजल काफी लोगों द्वारा पसंद की गई तो धूप में बैठे-बैठे अनुभव करने लगा कि अभी मेरे भीतर सृजन का दर्द बचा हुआ है। और इस समय तो सरस्वती जी का दर्द मेरा दर्द बनकर चुपके-चुपके मुझे रुला रहा है। तो मुक्तकों में दर्द ने कविता का रूप ले लिया।

दर्द तन मन में भरा है पर कहा जाता नहीं
दर्द का यह मौन आँखों से सहा जाता नहीं
दूर हो जाता हूँ मैं घबरा के दो दिन के लिए
पर तुम्हारे बिना बाहर तो रहा जाता नहीं
हाय, जिस देवी ने सबको सदा अपनापन दिया
बेसहारों को सहारा भूख को भोजन दिया
स्वर दिया बेचैन चुप्पी को उसे हे.. ईश क्यों
सफर के अंतिम चरण में मूक यह क्रंदन दिया

इसके बाद तो लगा कि सरस्वती जी की चुप्पी पुकार रही है 'आ जाओ' कुछ देर बाद बेटी के साथ सरस्वती जी के पास लौट आया। उनकी आँखों में प्रतीक्षा भरी हुई थी। मैंने उनकी आँखों में अपनी आखें डाल दी जो भीगी हुई थीं। उन्होंने हल्का सा सिर हिलाकर संकेत किया- "नहीं-नहीं रोइए मत।" लेकिन जब भी उनकी खुली आँखों से मेरी आँखें मिलती हैं दोनों मोह से भर जाते हैं। उनके भी दर्द भरे मौन में हमारे मधुर और मूल्यवान संबंध एवं यात्रा के अनेक प्रिय संदर्भ स्पंदित हो रहे होंगे और मैं तो उनके साथ हुई अत्यंत प्रीतिकर और सुखद जीवन यात्रा की याद में डूब ही रहा हूं। यात्रा के न जाने कितने प्यारे संदर्भ याद आ रहे हैं और मुझे रुला रहे हैं।

सरस्वती जी कभी-कभी आँख खोलती हैं तो आँखों-आँखों से कुछ बात सी हो जाती है। परंतु मेरा तड़पता हुआ मन चाहता है काश उनसे एक बार बात हो जाती। एक बार उनका प्रिय स्वर कानों में गूंज जाता। लेकिन उनकी तो वाणी ही छिन गई है। बस आह आह के स्वर में अपनी तकलीफ व्यक्त करती रहती हैं। वे अपनी ओर से शब्द तो बोलती है किंतु वे शब्द केवल गूँ गाँ बनकर रह जाते हैं। मैं उनसे कहता था कि यदि तुम शिक्षिका बनी होती तो बहुत सफल शिक्षिका बनी होती। तुम्हारी वाणी में जो प्रवाह, बुलंदी और स्वच्छता है वह अनुपम है। ईश्वर को क्या सूझी कि उनसे वह वाणी ही छीन ली। मेरी रचनाओं की वह पहली पाठिका और श्रोता होती थीं। उन पर अपनी सहज प्रसन्न राय देती थी। अब जब कुछ नया लिखता हूँ तो मन ही मन रो पड़ता हूँ। हाय मेरी पहली पाठिका तुम्हें यह क्या हो गया है?

क्या विडंबना है जिस देवी ने जीवन भर मेरी देखरेख की। मेरा छोटे से छोटा दुःख जिसे हिला देता था, घर बाहर के 'उन तमाम दायित्वों को अपने सर उठा लिया करती थीं जो मुझे उठाने चाहिए थे। उन्होंने मुझे साहित्य-सेवा

के लिए गृह कार्यों से मुक्त कर दिया। पहली भेंट से लेकर कल तक के हमारे साहचर्य में जो छवियाँ व्याप्त रही हैं वे आज याद आ रही हैं, और आज सरस्वती जी की इस दशा से टकरा कर मेरे आँसू बन जा रही हैं।

हमारा साहचर्य बहुत सघन रहा है। घर से लेकर विदेश तक यह व्याप्त है। मैंने मिलन के पहले दिन से भी इन्हें दुल्हन के बंधनों से मुक्त रखा और एक साथी की तरह इन्हें अपने साथ चलने दिया। जिस किसी साहित्यिक कार्यक्रम में मैं गया इन्हें साथ ले गया। बनारस, गुजरात के कई शहरों और दिल्ली में तो हमारी सहयात्राएँ सघन रूप से चलती ही रहीं। यह मेरे साथ दक्षिण कोरिया की यात्रा पर भी गईं मुझे नेपाल में आयोजित एक वृहद साहित्यिक संगोष्ठी में आमंत्रित किया गया, वहाँ भी मैं इन्हें अपने साथ ले गया। इंदौर, पांडिचेरी, शिमला आदि अनेक स्थानों पर आयोजित कार्यक्रमों में जाना हुआ तो उनके साथ के बिना जाने का प्रश्न ही नहीं ठहरा। मैं तो स्वभावतः यात्रा भीरू हूँ। ये साथ हो लेतीं तो मेरी यात्राएँ भरी-भरी सी लगती रहीं साहित्य और मेरे प्रति उनके सघन अनुराग ने मेरे मित्रों और शिष्यों को अद्‌भुत अपनापन दिया। जो भी मेरे घर आता था इनका स्नेह तो पाता ही था नाश्ता-चाय भी प्राप्त करता था और इनके हाथ द्वारा बनाई गई खाद्य वस्तुओं के अद्‌भुत स्वाद से अभिभूत होता था। इसलिए साहित्य-जगत में इनकी सदा चर्चा होती रही है।

कितना कुछ याद करूँ? मेरे साथ इनका जीवन बीता उसके सौंदर्य और मानवता से भरा हुआ हूं। इनका बचपन भी एक अलग बचपन रहा उस पर मैंने 'एक बचपन यह भी नाम से एक उपन्यास लिखा है जो काफी पसंद किया गया है।

इतनी सारी स्मृतियाँ लेकर इनके पास बैठा होता है। इनके अबोले दर्द को देखता रहता हूं। कभी-कभी ये दो क्षण के लिए दर्द से पलकें खोलती हैं तो न जाने हम दोनों की क्या-क्या स्थिति हो जाती है। इनकी स्थिति शोचनीय होती जा रही है। अब और क्या कहूँ?

सरस्वती जी चली गईं

पाँच-छह महीने की लंबी यातना सहकर तीन दिसंबर 2023 को प्रातः 4:00 बजे सरस्वती जी परलोक गमन कर गईं। शशांक और उसके परिवार के सभी लोग (रीता, नीतिका, उत्सव) हम दोनों की सेवा में गहरे संलग्न रहे। बाहर से आई हुई कंचन इस परिवार का अभिन्न अंग बन गई है। वह बहुत प्यार से सरस्वती जी को नहलाती धुलाती थी। बार-बार उनके डायपर बदलती थी। अपने को माँ की भूमिका में लाकर सरस्वती जी को बच्चों की तरह खिलाती थी। सरस्वती जी की आह.... आह से मैं आहत होता रहता था। समझ में नहीं आता था कि यह किस तकलीफ की उपज है। वह बोल सकती होती तो बताती कि कहाँ दर्द हो रहा है। यद्यपि कुशल डॉक्टर की दवाएँ चल रही थीं। और शायद उसके नाते सरस्वती जी मर-मर कर भी जी रही थीं। मैं उनके पास लेटा होता था वह मेरा हाथ पकड़ कर खींचती थीं। मैं उन्हें अपनी

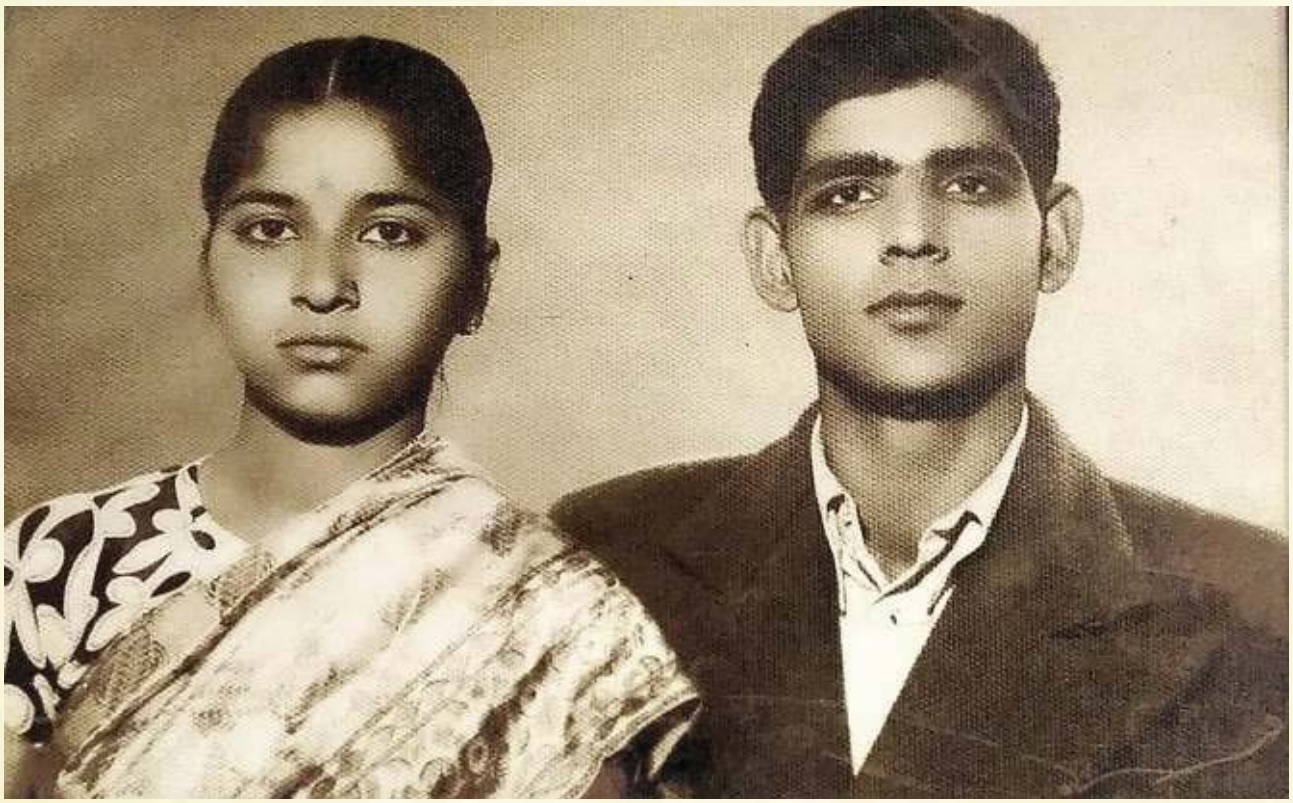

बाँहों में समेटने का प्रयत्न करता था। कभी-कभी मैं बैठा हुआ उनके मुख मंडल देखथा। उसे प्यार से सहलाता था। यदि उनकी आँखें खुली होती थीं तो आँखें आँखों से कुछ कह सुन लेती लगती थी। मेरी आंखों में आँसू भर आते थे। तो वह सिर हिला कर मानो कहती थी ''नहीं-नहीं मत रोइए। यद्यपि उनकी आँखें भी भर आती थीं। मैं उनके आँसू पोंछता था। उनकी आह से में न दिन को सो पाता था ना रात को दीवाली को बेटी स्मिता अपने आवास पर मुझे ले गई कि मैं कुछ दिन आराम से सो लूं। परंतु दूसरे ही दिन लगा कि सरस्वती जी मुझे पुकार रही हैं। मैं उनके पास लौट आया और उनके चेहरे में अपना चेहरा डाल दिया। वे थोड़ा मुस्कुराई। मुझे लगा कि मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। अब तय हुआ की रात को कंचन सरस्वती जी के कमरे में सोएगी और में दूसरे कमरे में मैं सोऊँगा ताकि मेरी रात तो कुछ चैन से बीते। सुबह उठकर आता था तो लगता था सरस्वती जी की आँखें मेरी राह देख रही थी। दिन पर दिन बीतते गए और सरस्वती जी की स्थिति क्रमशः कमजोर होती गई। उनकी यातना भयानक से भयानक होती गई। मैं अब प्रभु से मन ही मन प्रार्थना करने लगा हे प्रभु इन्हें इस यातना से मुक्त करो.. मुक्त करो प्रभु मुक्त करो प्रभु उनकी यातना मुझ में भी भरती जा रही थी और लगता था कि उन्हें इस हाल में देखकर जी नहीं पाऊँगा। कुछ दिन पहले तक यह स्थिति थी कि मित्र लोग मुझसे मिलने आते तो इन्हें भी ले जाकर उनके बीच बैठा दिया जाता था। मित्रों के मन में उनके लिए अपार आदर रहा है। अतः वे इन्हें कुछ देर के लिए ही सही अपने बीच देखना चाहते रहे अब सरस्वती जी उनके बीच बैठने की स्थिति में नहीं-रहीं। बेटी स्मिता इन्हें बाहर घुमाने के लिए व्हीलचेयर लाई थी नहीं रहीं और जब आती थी तो इन्हें शाम को घुमाती थी। लगता था कि इससे इनका मन कुछ बहलता था। अब यह भी संभव नहीं रहा।

दो दिसंबर को सरस्वती जी एक दम निष्क्रिय हो गईं। न चीखना न चिल्लाना, खाना-पीना, न बाथरूम जाने के लिए रजाई फेंकना और हाथ उठाना। मुझे लग गया कि अब इनकी परम शांति का समय आ गया है।

मैं दूसरे कमरे में सोया था। 3 दिसंबर को सुबह-सुबह 5:00 बजे शशांक मेरे पास आया और रोकर बोला माँ चली गई। एकाएक मेरा रुदन फूट पड़ा सरस्वती जी के यातना मुक्त होने के चैन और उनके साथ छूटने की पीड़ा की दोहरी अनुभूति से मन भर आया। और सरस्वती जी के जाने का समाचार सुनते ही मेरे संबंधियों, आत्मीय साहित्यकारों और सरस्वती जी से जुड़े आमजन में शोक की लहर फैल गई। यह अच्छा संयोग था कि पुत्र विवेक इन दिनों राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के संदर्भ में यहाँ आए हुए हैं। वह मुंबई में होते तो शवदाह के लिए लंबा इंतजार करना पड़ता। दस बजे तक हमारे अनेक प्रिय जन हमारे घर में उपस्थित हो गए थे। और शव यात्रा की विधियां क्रियान्वित करने में संलग्न हो गए थे। ग्यारह बजे मंगलापुरी के श्मशान घाट पहुंचना था। अनेक लोग वहाँ पहले से ही पहुँचे हुए थे। वहाँ मैंने फिर जी भरकर सरस्वती जी का चेहरा देखा और मन ही मन उन्हें सप्रेम विदाई दी। पर वे विदा हुई कहाँ। वह तो मुझ में समाई हुई हैं। बेटी स्मिता भी मातृ ममता से भरी हुई अहक-अहक कर रो रही थी। माँ के साथ उसका बहुत प्यार भरा गहरा नाता था। वह माँ की बीमारी के दौरान रोज-रोज शाम को अपने आवास से आती थी और माँ की सेवा में अपने को लगा देती थी। दर्द तो सबको था किंतु बेटी स्मिता और मेरे दर्द की इंतिहा नहीं थी। हम दोनों के रोते हुए सर एक दूसरे के कंधे पर अपने को डाल रहे थे तथा परस्पर सांत्वना भी दे रहे थे।

10-12-2023

प्रिया सखे,

तुम्हारी अनंत यात्रा के समाचार से वे सभी लोग बेचैन हैं जिनको तुमने स्नेह सम्मान दिया था और जिनसे प्रीतिकार घरेलू और साहित्यिक संवाद किया था। कइयों की तो आँखों में आँसू छलक आए और मेरा क्या हाल होगा तुमसे अधिक इसे कौन समझेगा।

मातम के लिए रोज़ लोग आ रहे हैं। उनके बीच मुझे थोडी आश्वस्ति प्राप्त होती है। किंतु रह रहकर आँखें भी भर आती हैं। आज प्रियबर विश्वनाथ त्रिपाठी आए थे। तुम्हें याद है न वह फोन पर तुम्हारा चरण स्पर्श करते थे। तुम भी उनके घर के सुख-दुःख में उनके यहाँ पहुँच जाती थी। विश्वनाथ जी का स्वास्थ्य भी ढीला हो गया है। 93 वर्ष के हो गए है ना किंतु वे लोग बिना आए रह नहीं सके। आए और तुम्हारी चर्चा में हम बहते रहे और भी बहुत सी बातें हुई। गुरुदेव हजारी प्रसाद द्विवेदी की तो चर्चा हुई ही। उनके यहाँ तुम्हारा जाना और होना भी सबको याद आया। क्या क्या लिखें और कहाँ मेरी प्रिय सखे तुम्हारी याद रह-रह कर बेचैन कर देती है। ◆

पता : बी 24 ब्रह्माअपार्टमेंट
सेक्टर-7 प्लाट नं. 7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
मो. : 7303105299

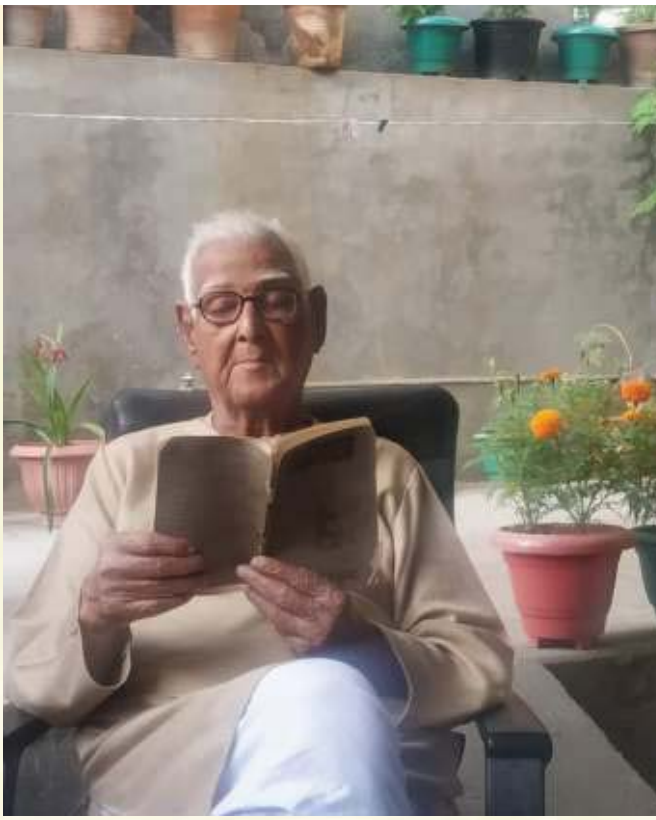

कविताएं

कलम

हमारे हाथ में सोने की नहीं
सरकंडे की कलम है।
सरकंडे की कलम
खूबसूरत नहीं, सही लिखती है
वह विरोध के मंत्र लिखती है
प्रशस्तिपत्र नहीं लिखती है।
हम कठघरे में खड़े हैं, खड़े रहेंगे
और कठघरे में खड़े हर उठे हाथ को
अपने हाथ में ले लेंगे
राजा कौरव हों या पाण्डव-
हम तो सदा वनवास ही झेलेंगे।

(1977)

दिन डूबा

दिन डूबा अब घर जायेंगे
कैसा आया समय कि साँझें
होने लगे बंद दरवाज़े
देर हुई तो घर वाले भी
हमें देख कर डर जायेंगे
आँखें आँखों से छिपती हैं
नज़रों में छुरियाँ दिपती हैं
हँसी देखकर हँसी सहमती
क्या सब गीत बिखर जायेंगे
गली-गली औ कूचे-कूचे
भटक रहा पर राह नर पूछे
काँप गया वह, किसने पूछा-
"सुनिये, आप किधर जायेंगे ?"

(1987)

माँ बाज़ार में

खट्ट खट्ट
दो-दो पल बाद 'गेट' बजता रहा
मेरी अपरा"नींद छिन्न-छिन्न हो गयी
"कौन है ?"
क्रोध से आँखें मलता हुआ
मैं कमरे से बाहर आया
"ये देखिए कुछ टूथपेस्ट हैं

कुछ साबुन हैं, कुछ तौलिए हैं
कुछ - - -
नहीं चाहिए।" कहकर मैं कमरे में चला आया
मैं देर तक बड़बड़ाता रहा
तमाम कोशिशों के बावजूद
नींद को नहीं सिमटना था नहीं सिमटी
उसमें से उभरती रही वही औरत
मेरे क्रोध को उकसाती हुई
धीरे-धीरे पता नहीं कब
वह औरत माँ बन गयी
लगा- उसके हाथ में सामानों की नहीं
परिवार की ज़रूरतों की गठरी है
जिसे उठाये हुए वह घूम रही है
और द्वार-द्वार दस्तक दे रही है
फिर न जाने कब
वह माँ मेरी माँ में बदल गयी
और मेरी माँ
दिन को कहाँ सोती थी
वह तो भारी दिनों के पल-पल को दुहकर
हमारे लिए जीवन रस संचित करती थी
हाँ तब वह घर में थी
आज बाज़ार में आ गयी है
जल्दी से कमरे से निकल कर
मैंने गेट की ओर देखा
वहाँ कोई नहीं था
केवल एक सन्नाटा तड़प रहा था

(1997)

संस्कृति

यहाँ वहाँ उड़-उड़ कर
देर तक एक कोयल बोलती रही अकेली
देर तक निर्जन में
एक गुलाव हँसता रहा अकेला
देर तक एक मंजरित टहनी
नाचती रही हवा में अकेली
देर तक वसंत
हमारे आस-पास खड़ा रहा अकेला
न जाने कब किस देश से
यह सफेद कौआ हमारे बीच घुस आया
और काँव-काँव चिल्लाने लगा
"वाह क्या मीठी रागिनी है ?"
कहती हुई झुंड की झुंड रंगीन देहें
हमारे घरों से बाहर निकल आयीं
और काँव-काँव की लय पर लहराने लगीं
कौओं के बदन से चुवे हुए पसीने को
सूँघ-सूँघ कर
एक नशे में थरथराने लगीं
और पागल होकर संगीत दुहराने लगीं
काँव काँव काँव काँव - - -
जून में लगा कि
पत्थरों के जंगल में वसंत आ गया है।

(1997)

(1)

बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे
खुले मेरे ख़्वाबों के पर धीरे-धीरे

किसी को गिराया न खुद को उछाला
कटा जिन्दगी का सफ़र धीरे-धीरे

जहाँ आप पहुँचे छलाँगें लगा कर
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे

पहाड़ों की कोई चुनौती नहीं थी
उठाता गया यों ही सर धीरे-धीरे

गिरा मैं कहीं तो अकेले में रोया
गया दर्द से घाव भर धीरे-धीरे

ज़मीं खेत की साथ लेकर चला था
उगा उसमें कोई शहर धीरे-धीरे

न रोकर, न हँसकर किसी में उड़ेला
पिया ख़ुद ही अपना ज़हर धीरे-धीरे

मिला क्या न मुझको, ऐ दुनिया तुम्हारी
मोहब्बत मिली है मगर धीरे-धीरे

(1985)

(2)

महफिलें ज्यों-ज्यों हँसी तनहाइयाँ बढ़ती गयीं
आप ज्यों-ज्यों पास आये, खाइयाँ बढ़ती गयीं

कौन सी है धूप इस माया नगर में दोस्तों
हम तो छोटे हो गये, परछाइयाँ बढ़ती गयीं

उत्सवों में गूँज कर रोती हैं फिर लपटों के साथ
बेटियाँ जलती रहीं, शहनाइयाँ बढ़ती गयीं

कुर्सियों के इस शहर में बह रही कैसी हवा
सुर्ख होते गये, रूसवाइयाँ बढ़ती गयीं

डालियों पर पंछियों का बैठना अब है मना
आशियाँ गिरते गये अमराइयाँ बढ़ती गयीं

फेर कर लोगों से मुँह अब देखते आकाश को
आँख से गिरते गये, ऊँचाइयाँ बढ़ती गयीं

(1995)

(3)

ये आवारा बादल जो छाये हुए हैं
न मालूम किसके बुलाये हुए हैं

अंधेरे की ये घाटियाँ भूँकती हैं
बयाबां में हम डगमगाये हुए हैं

चलीं चीखती सनसनाती हवाएँ
खुले खेत माथा झुकाये हुए हैं

उड़ी जा रहीं सर्द झीलें ज्यों छन-छन
दिशाओं के दिल थरथराये हुए हैं

डरी चाँदनी बादलों से फिसलती
ये तरु नंगी बाँहें बिछाये हुए हैं

ये बेदर्द मौसम सुनाता है जैसे
कि घर कोई मेहमान आये हुए हैं

बुलाते हैं कब से कोई गीत आ जा
कि हम रात सिर पर उठाये हुए हैं

(4)

दूर ही दूर से बुलाता है
कौन है पास नहीं आता है

उसकी आवाज़ अजनबी जैसी
फिर भी लगता युगों का नाता है

डूब जाता हूँ जब कि रातों में
झंडियाँ चाँद की हिलाता है

राह पाँवों में पिन्हा कर मेरे
दीठियों-पार मुस्कुराता है

रूप उसका सदा अदेखा पर
जैसे कोई फूल महमहाता है

बंद तनहाइयों के कमरे में
जैसे कोई झाँक-झाँक जाता है

बात करता किसी से छिप मेरी
ज्यों पहुँचता हूँ चुप लगाता है

गुज़रा शायद अभी यहीं से है
गंध से रास्ता नहाता है

उसके ओठों से छूट कर जैसे
नाम मेरा ही थरथराता है

(5)

चाँद को आज रात भर देखा
तेरा क्या-क्या नहीं असर देखा

जब से देखा है तुझे ओ मासूम
सारे जग को नई नज़र देखा

तुझको देखा कि घन अँधेरे में
जैसे कोई ज्योति का शिखर देखा

चैत की महकती हवाओं का
पुष्प-केसर से बना घर देखा

जाने क्यों देखता रहा, जब-जब
धूप में हँसता गुलमुहर देखा

मैंने जब-जब सुना पपीहों को
अपने को खुद से बेखबर देखा

जैसे कोई दूध का हो फौवारा
जैसे कोई गीत का पहर देखा

तुझको देखा कि गोया वंशी का
एक भटका हुआ सा स्वर देखा

(6)

आइए कुछ नहीं सुनें-बोलें
हम भी बौने बुतों के संग हो लें

खून के दाग उनके चेहरे पर
हमसे कहते हैं- 'आप मुँह धो लें'

बुझ गई आग उनकी छाया से
आइए राख बैठ कर तोलें

भूख औ प्यास में जगे अब तक
जागना अब गुनाह है, सो लें

बंद भीतर से सभी दरवाज़े
लोग बाहर से कहाँ तक खोलें

छोड़िए अब समझ की कविताई
आइए छन्द में शहद घोलें

(7)

दिन-रात सागर चीखता, अपनी लहर की तलाश में
पर मारता दिन का विहग, अपने ही पर की तलाश में

एक कारवाँ चलता रहा, तेरे पास ही तेरे पास ही
तूने राह सारी गुज़ार दी, किसी हमसफ़र की तलाश में

रहा गाँव तुझको पुकारता, रहे हाथ जंगल थामते
तेरा अपना शहर भी छुट गया, किसी के शहर की तलाश में

तेरी शीशियों पे नज़र रही, तुझे आज आके पता चला
एक प्यास अमरित की लिए, रहा तू ज़हर की तलाश में

एक गंध-सा है छिपा रहा वहशी हवाओं में प्यास की
तू कहाँ-कहाँ से गुज़र गया, अपने ही घर की तलाश में

कुछ शब्द फूलों की तरह, कुछ शब्द शूलों की तरह
इसके सिवा तुझे क्या मिला, इस उम्र भर की तलाश में

(8)

बाज़ार को निकले हैं लोग बेच के घर को
क्या हो गया है जाने आज मेरे शहर को

कितने हैं मेहरबान यहाँ के बहेलिये
कहते हैं परिंदों से- 'उड़ो' काट के पर को

गीला है कहीं सुबह की खुशियों का कहकहा
चुप-चुप कोई रोया है रात पिछले पहर को

चूल्हों में है बुझी हुई जलती है जिगर में
कैसी अजीब आग मिली ज़िन्दगी भर को

ठहरी हुई है भीड़ एक ऊबती हुई
लगता है कोई रहनुमा निकला है सफर को

चेहरों में कई चेहरे दिखाई मुझे देते
यह कौन सी नज़र है लगी मेरी नज़र को

कहते हैं वे कि रुकिए नहीं, चलते जाइए
चलते तो हम हैं, चल के मगर जाएँ किधर को

(9)

क्यों हुआ, कैसे हुआ, यह क्या हुआ
घूमता है प्रश्न एक डरा हुआ

बिना मौसम शहर में आयी बहार
हर परिंदा डाल पर सहमा हुआ

थरथराता अभी तक पुल सा बदन
ट्रेन को गुज़रे हुए अरसा हुआ

उठ रहा अंधी गली से है धुआँ
राजपथ पर फिर कोई जलसा हुआ

कहाँ से निकला न जाने कब, किधर
यह अजनबी सफ़र अब घर-सा हुआ

झुनझुने-सा बज रहा है देश यह
देवकुल में फिर कोई पैदा हुआ

पत्थरों की दीठियों में फिर हँसी
क्या कहीं फिर फूल का सौदा हुआ

चटकने दीवार शीशे की लगी
दर्द फिर तप कर कोई शोला हुआ

(10)

शरद की भोर है कि याद तेरी आयी है
युगों से मन में ज़मी रात थरथराई है

बहुत दिनों के बाद आज हँसा सन्नाटा
बँधी-बँधी सी कोई पाँख फड़फड़ाई है

सँवर रही हैं अपने आप कितनी तस्वीरें
हवा कहाँ-कहाँ से रंग उड़ा लाई है

छलक रही है तन से आब, आब से खुशबू
सुबह की धूप है या तेरी ही परछाई है

रुका-रुका सा अपना गीत कोई याद आया
ज़रूर तू ही कहीं आज गुनगुनाई है

किरण से कह दो कोई, हाय यों नहीं झाँके
इस अँधेरे कुएँ की काँपती तन्हाई है

(11)

रोशनी में बड़ा अँधेरा है
आज यह कौन सा सवेरा है

रात भर साथ हम चले जिसके
दिन में देखा कि वह लुटेरा है

तीसरा कौन आ गया है यहाँ
यह तो घर तेरा है, न मेरा है

यह शहर वन है एक साँपों का
इसका मालिक कोई सँपेरा है

रात सपनों में जो रहा हँसता
वह तो भूतों का एक डेरा है

रास्तों से लदे हुए कंधे
पूछते हैं कहाँ बसेरा है

नई खुशी से मछलियाँ जागीं
उनसे पहले जगा मछेरा है

(12)

हाथ कुछ आया न, तू फसलें उगाता रह गया
चर गए पशु खेत, तू पंछी उड़ाता रह गया

देश तलघर में सुलाकर देश वे बनते गए
और तू पागल वतन के गीत गाता रह गया

झूठ रेखाएँ बना फिर वृत्त सा बनता गया
और सच का बिंदु खुद में थरथराता रह गया

घाटियाँ मैदान जंगल जल रहे सब आग में
और अपने जल में बादल खुद नहाता रह गया

दोपहर को ही उजाला पी गया सूरज स्वयं
रोज़ कोई शाम को दीपक जलाता रह गया

बसें, कारें, गाड़ियाँ गुज़रीं, गुज़रती ही गईं
रास्ते पर तू खड़ा बाँहें उठाता रह गया

छूरियाँ मानव-लहू की प्यास में जलती गईं
तेरी आँखों बीच आँसू झलमलाता रह गया

(13)

सुबह ये कैसी? रात के बदन की बू तो नहीं
पड़ा है कौन सड़क पर मरा सा, तू तो नहीं

लहर सा खाता हूँ हर नींद टूट जाने पर
हूँ सोचता कोई सपना गया है छू तो नहीं

लदा-फदा सा सुखों से सफ़र, उदासी क्यों
जगी है आप में जब ख़ुद की जुस्तजू तो नहीं

फटी-फटी सी आँख सामने ये सन्नाटा
युगों से बैठा है ये कौन, मैं ही हूँ तो नहीं

ये कौन है जो घूमता है भरा जख़्मों से
किसी ग़रीब की आँखों की आरजू तो नहीं

मेरा नसीब खींच लाया मुझे थाने में
ख़ुदा के पास भी जाता मैं कभी यूँ तो नहीं

हुआ क्या हँसते-हँसते आप रुक गए सहसा
किसी की आँख का आँसू बना लहू तो नहीं

(14)

हुआ न कुछ भी कहीं सभी कुछ सँजोने में
उमर गुज़र गई हँसी के लिए रोने में

महलपट सा बन के चारों ओर फैले आप
जला किया मैं अँगीठी-सा घर के कोने में

जनाब खेल-खेल में ही ख़ुदा बन बैठे
मेरे जनम बीते आदमी सा होने में

ख़ुदा का शुक्र आपसे न कुछ लिया मैंने
नहीं तो उम्र बीत जाती ख़ुद को खोने में

रहे जगे तो गरजते ही रहे बादल से
सुना कि आप बहुत रोये रात सोने में

(15)

एक सन्नाटा भयानक सड़क पर बरपा हुआ
पूछते हैं हम हमीं से क्या हुआ यह क्या हुआ

हो गईं चुप ज्यों अचानक सैकड़ों शहनाइयाँ
साँस खींचे सा शहर ख़ामोश है, सहमा हुआ

रह गया है वक्त अब तो सायरन की चीख़ भर
चप्पा-चप्पा रास्ता संगीन का साया हुआ

यों तो पहले भी कई तन्हाइयाँ गुज़रीं मगर
आज पहली बार लगता है कि मैं तन्हा हुआ

क्या करूँ? जागूँ कि सोऊँ? या कि गाऊँ, चुप रहूँ?
एक पत्ते सा अजनबी डाल पर अटका हुआ

यह उबलती सी दुपहरी, चुप्पियों का शोर यह
भनभनाती एक मक्खी यह मेरा कमरा हुआ

आज तो कट जाएगा ही, आएगा कल कौन सा
पूछ मत ऐ दिल, चला जा चला जा सहता हुआ

अकेली आँखों में आँखों के उगे आते हैं फूल
दूर जितना घर हुआ उतना ही मन घर सा हुआ

(16)

थक गए हैं महफिलों के जाम, आओ घर चलें
सो गयी है रात बन कर शाम, आओ घर चलें

इश्तहारों को रहें पढ़ते भला कब तक यहाँ
चिट्ठियाँ होंगी हमारे नाम, आओ घर चलें

बिजलियों की रात में खोते गये अपनी शक्ल
याद आया है सुबह का घाम, आओ घर चलें

कोई आँसू, हँसी कोई, कुछ तो अपने नाम हो
जी लिये अब तक बहुत गुमनाम, आओ घर चलें

दूसरों के ख़्वाब को अपना समझ सोते रहे
पड़ा होगा ढेर सारा काम, आओ घर चलें

ढूँढता ही रह गया मन आशियाँ बाज़ार में
थक गया अब चाहिए आराम, आओ घर चलें

राजधानी में अमन का राग देखो उठ रहा
क्या हुआ होगा वहाँ हे राम, आओ घर चलें

(17)

वह न मंदिर में, न मस्ज़िद में, न गुरुद्वारे में है
वह पराई पीर वाली आँख के तारे में है

खोजते हो तुम शिकारी को कहाँ जंगल के बीच
वह तो पोशीदा कहीं भीतर के अँधियारे में है

मैंने तो किस्सा सुनाया था किसी शैतान का
आपको क्यों शक हुआ यह आपके बारे में है

आपकी ठंडी हँसी से जल गया पूरा शहर
रोटियों की महक ताज़ा उसके अंगारे में है

आसमानों की तरफ उठते गये भू देवता
फैलती धरती गयी पागल से बनजारे में है

(18)

जो गिरकर वक्त की आँधी में फिर उठ कर अड़ा होगा
वो छोटा आदमी उस वक्त से कितना बड़ा होगा

सलामत जो नहीं है वह न बदकिस्मत न बेचारा
सलामत के लिए सबकी वही बेशक लड़ा होगा

बहुत दिन बाद आयी याद अपने गाँव की सरहद
वो पागल आज तक मेरी प्रतीक्षा में खड़ा होगा

हुआ क्या दर्द वह अपना जिसे हम साथ लाये थे
किसी शैतान के सीने में पत्थर सा गड़ा होगा

गया हो खुशनुमा माहौल इस जलते शहर का क्यों
अजी बस कुछ नहीं देहात में ओला पड़ा होगा

पता : बी-24 ब्रह्मा अपार्टमेंट, सेक्टर-7,
प्लाट नं.-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
मो. : 7303105299

डॉ. रामदरश मिश्र का जीवन वृत्त और रचना संसार

जन्म : 15 अगस्त, 1924, गोरखपुर

निधन : 31 अक्टूबर, 2025, दिल्ली

शिक्षा : एम.ए., पीएच.डी. सम्प्रतिः प्रोफेसर (सेवानिवृत्त) हिंदी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय।

कृतियाँ

काव्य : 'पथ के गीत', 'रंग-बेनाम चिट्ठियां', 'पक गई है धूप', 'कन्धे पर सूरज', 'दिन एक नदी बन गया', 'मेरे प्रिय गीत', 'बाजार को निकले हैं लोग', 'जुलूस कहाँ जा रहा है', 'रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएं', 'आग कुछ नहीं बोलती', 'शब्द सेतु', 'बारिश में भीगते बच्चे', 'हंसी ओठ पर आंखें नम हैं' (गजल संग्रह), 'ऐसे में जब कभी', 'आम के पत्ते', 'तू ही बता ऐ जिंदगी' (गजल संग्रह) 'हवाएँ साथ हैं' (गजल संग्रह), 'कभी-कभी इन दिनों', 'धूप के टुकड़े', 'आग की हंसी', 'लमहे बोलते हैं', 'और एक दिन', 'मैं तो यहाँ हूँ अपना रास्ता', 'रात सपने में', 'सपना पलता रहा' (गज़ल संग्रह) 'पचास कविताएँ', 'राम दरस मिश्र की लंबी कविताएँ', 'दूर घर नहीं हुआ' (गजल संग्रह), 'बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे' (गज़ल संग्रह) 'समवेत'।

उपन्यास : 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'सूखता हुआ तालाब', 'अपने लोग', 'रात का सफर', 'आकाश की छत', 'आदिम', 'बिना दरवाज़े का मकान', 'दूसरा घर', 'थकी हुई सुबह', 'बीस बरस', 'परिवार', 'बचपन भास्कर का', 'एक बचपन यह भी', 'एक था कलाकार'।

कहानी संग्रह : 'खाली घर', 'एक वह', 'दिनचर्या', 'सर्पदंश', 'बसन्त का एक दिन', 'इकसठ कहानियाँ', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'अपने लिए', 'अतीत का विष', 'चर्चित कहानियाँ', 'श्रेष्ठ आंचलिक कहानियाँ', 'आज का दिन भी', 'एक कहानी लगातार', 'फिर कब आयेंगे', 'अकेला मकान', 'विदूषक', 'दिन के साथ', 'मेरी कथा यात्रा', 'विरासत', 'चुनी हुई कहानियां', 'संकलित कहानियाँ', 'लोकप्रिय कहानियां', '21 कहानियाँ नेता की चादर', 'स्वप्नभंग', 'आखिरी चिट्ठी', 'कुछ यादें बचपन की' (बाल साहित्य), 'इस बार होली में', 'गाँव की आवाज़', 'अभिशप्त लोक', 'अकेली वह', 'ज़िन्दगी लौट आई'।

ललित निबन्ध : 'कितने बजे हैं', 'बबूल और कैक्टस', 'घर-परिवेश', 'छोटे-छोटे सुख', 'नया चौराहा', 'फिर लौट आया हूँ', 'मेरे देश'।

आत्मकथा : 'सहचर है समय'

यात्रावृत्त : 'घर से घर तक', 'देश-यात्रा'।

डायरी : 'आते-जाते दिन', 'आस-पास', 'बाहर भीतर', 'विश्वास जिन्दा है', 'मेरा कमरा', 'सुख-दुःख के राग'।

आलोचना : हिंदी आलोचना का इतिहास (हिंदी समीक्षा : स्वरूप और संदर्भ, हिंदी आलोचना प्रवृत्तियां और आधार भूमि), 2- ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा, 3- साहित्य संदर्भ और मूल्य, 4- हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा, 5- आज का हिंदी साहित्य : संवेदना और दृष्टि, 6- हिंदी कहानी : अंतरंग पहचान, 7- हिंदी कविता आधुनिक आयाम (छायावादोत्तर हिंदी कविता), 8- छायावाद का रचनालोक, 9- आधुनिक कविता सर्जनात्मक संदर्भ, 10- हिंदी गद्यसाहित्य उपलब्धि की दिशाएं 11 आलोचना का आधुनिक बोध रचनावली : 14 खण्डों में, कविता समग्र कहानी- समग्र।

संस्मरण : 'स्मृतियों के छन्द', 'अपने-अपने रास्ते', 'एक दुनिया अपनी', 'सर्जना ही बड़ा सत्य है'।

साक्षात्कार : 'अंतरंग', 'मेरे साक्षात्कार', 'संवाद यात्रा'।

संचयन : 'बूंद-बूंद नदी', 'नदी बहती है', 'दर्द की हंसी', 'सरकंडे की कलम'।

संप्रति : 'सेवा निवृत्त प्रोफेसर', 'दिल्ली विश्वविद्यालय'।

सम्पर्क : आर 38- वाणी बिहार, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059 मोबाइल-7303105299

अंग्रेजी अनुवाद

1) The Laughing Flames and other Poems (Poetry) Sahitya Academy (2021) (आग की हंसी) अनुवादक- उमेश कुमार

2) Down of Red Flames (Novel), Kritika Books, Delhi (2000) (रात का सफर) अनु अनिल राजिम वाला

3) Modern Hindi Fiction (Criticism), Bansal-Co-, Delhi (1983) (हिन्दी उपन्यास एक अंतर्यात्रा तथा हिन्दी कहानी : अन्तरंग पहचान, अनुवादक- डॉ. ए.एन. जौहरी

(4) The Sky Before Her and Other Short Stories, Radha Publication, Delhi (1998) (चुनी हुई कहानियाँ) अनु.वाई.एन. निगम

गुजराती

1- आगनी हंसी (2021), साहित्य अकादमी,
(आग की हँसी) अनुवादक- आलोक गुप्ता

2- आदिम राग (Novel) दर्पण प्रकाशन, नडियाद (2006)
(आदिम राग) अनु. डॉ. यशवंत गोस्वामी

3- सगा बहालां (Novel) Rangdwar Prakashan, Ahmadabad (1989) (अपने लोग) अनु मणिलाल पटेल

4- रात नी सफर (Novel) दर्पण प्रकाशन, नडियाद (2006) (रात का सफर) अनु. डॉ. यशवंत गोस्वामी

5- दरवाज़ा बगरनु मकान (Novel) दर्पण प्रकाशन नडियाद (2006)
(बिना दरवाज़े का मकान) अनु. डॉ. यशवंत गोस्वामी

मराठी

1 आगीचं हास्य (आग की हंसी) साहित्य अकादमी 2022, अनुवाद दिलीप भाऊराव पाटील

कन्नड़

6 रात्रिण प्रयाण (Novel) (रात का सफर) अनु. जी चन्द्रशेखर

मलयालम

7 रात्रिदूल ओस यात्रा (Novel) (रात का सफर) अनु. डॉ. जयकृष्णन जे

पंजाबी

1 अगदी हसी (2021) साहित्य अकादमी

(आग की हँसी) अनुवादक- अमरजीत कौर 2- चोनवीं कहानी रामदरश मिसरीओ साहित्य अकादेमी पुरस्कृत (रामदरश मिश्र संकलित कहानियाँ) अनु.-जिंदर

प्रमुख सम्मान

1) सरस्वती सम्मान (2021) के के बिड़ला फाउंडेशन

2) साहित्य अकादमी (2015)

3) भारत भारती सम्मान (2005)- उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ

4) शलाका सम्मान (2001) हिंदी अकादमी, दिल्ली

5) व्यास सम्मान (2011) के के बिड़ला फाउंडेशन

6) उदयराज सिंह स्मृति सम्मान (2007) नई धारा, पटना

7) विश्व हिंदी सम्मान (2015) - विश्व हिंदी सम्मलेन

8) शान ए हिंदी खिताब (2017) साहित्योत्सव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र

9) महापंडित राहुल सांकृत्यायन सम्मान (2004) केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा 10) दयावती मोदी कवि शेखर सम्मान (1998)।

11) डॉ. रामविलास शर्मा सम्मान (2003) - आल इंडिया कॉन्फ्रेन्स ऑफ इंटलेक्चुएल्स, आगरा चैप्टर 12) साहित्य वाचस्पति (2008) हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

13) साहित्य भूषण सम्मान (1996) उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ 14) साहित्यकार सम्मान (1984) हिंदी अकादमी, दिल्ली

15) नागरी प्रचारिणी सभा सम्मान, आगरा (1996) 16) अक्षरम शिखर सम्मान (2008) - दिल्ली

17) राष्ट्रीय साहित्यिक पुरस्कार (2012) श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति, इंदौर 18) प्रभात शास्त्री सम्मान (2018) हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

19) साहित्य शिरोमणि सम्मान (2018) अखिल भारतीय स्वतंत्र लेखक मंच

20) पूर्वांचल साहित्य सम्मान (2005) दिल्ली

21) सारस्वत सम्मान (2006) समन्वय, सहारनपुर

22) सारस्वत सम्मान (2006) सरयू प्रसाद बाल विद्यालय इंटर कॉलेज, कानपुर

पुरस्कृत कृतियाँ

'आग की हंसी' (साहित्य अकादमी), 'रोशनी की पगडंडियां' (हिंदी अकादमी दिल्ली), 'हिंदी आलोचना का इतिहास', 'जल टूटता हुआ', 'हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा', 'अपने लोग', 'एक यह', 'कंधे पर सूरज', 'कितने बजे हैं', 'जहां मैं खड़ा हूँ', आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि (उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान) अपने लोग (आथर्स गिल्ड), मैं तो यहाँ हूँ , आम के पत्ते (के.के. बिड़ला फाउंडेशन)

अकादमिक एवं साहित्यिक पद :

1- अध्यक्ष भारतीय लेखक संगठन 1984-1990

2- प्रधान सचिव, साहित्यिक संघ, वाराणसी 1952-55

3- अध्यक्ष, गुजरात हिन्दी प्राध्यापक परिषद 1960-64

4- अध्यक्ष, मीमांसा, नई दिल्ली

5- अनेक मंत्रालयों में हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य

6- गुजरात विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिंदी केन्द्र के प्रभारी प्रोफेसर (1959-64)

7- प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय

8- अनेक विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम समिति के सदस्य

9- साहित्य अकादमी, हिन्दी अकादमी, दिल्ली तथा अनेक विश्वविद्यालयों तथा प्रतिष्ठित संस्थाओं की संगोष्ठियों की अध्यक्षता

10- कई पत्रिकाओं के सलाहकार संपादक।

11- अध्यक्ष, प्रबंध समिति, राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय (1999-2000)

साहित्यिक उपलब्धियाँ

1- रचनाओं का देश की प्रायः सभी भाषाओं में अनुवाद।

2- अनेक विश्वविद्यालयों तथा विद्यालयों के पाठ्यक्रम में रचनाएँ।

3- देश के अनेक विश्वविद्यालयों में 250 के लगभग पीएच.डी. एवं एम.फिल. के लिए शोधकार्य।

4- रचनाओं पर कई समीक्षात्मक ग्रंथ प्रकाशित।

5- अनेक पत्रिकाओं के विशेषांक प्रकाशित।

◆ ◆ ◆

खेतों, ताल–तलैयों में छलकाती जाती पानी है
लुटा रही खुद को देखो नदिया कैसी दीवानी है

भगे जा रहे लोग कहीं पर मैं ठहरा सा देख रहा
सच कहते हैं लोग कि मुझमें अभी बहुत नादानी है

मुस्कानें भी नाप–तौल कर जिस बाजार में बिकती हैं
लुटा रहा कहकहे फकीरा वहीं, अजब हैरानी है

पिला–पिला कर साँस हवाएँ भटक रहीं बनजारन सी
ताप बिछा कर तपती रेती बनी हुई महरानी है

जंगल से हम शहर को निकले, शहर में जंगल उग आए
वह जंगल जंगल था यारो, यह जंगल तो ज्ञानी है

ख़ामोशी की भाषा में तब मन की कितनी हलचल थी
भाषा की हलचल में कितनी ख़ामोशी, वीरानी है

आदत है कि मोहब्बत में फिर आप सियासत कर बैठे
आदत है कि सियासत में फिर मैंने मोहब्बत जानी है

–डॉ. रामदरश मिश्र

छोड़ जाऊँगा
कुछ कविता, कुछ कहानियाँ, कुछ विचार
जिनमें होंगे कुछ प्यार के फूल
कुछ तुम्हारे उसके दर्द की कथाएँ
कुछ समय – चिंताएँ

मेरे जाने के बाद ये मेरे नहीं होंगे
मैं कहाँ जाऊँगा, किधर जाऊँगा
लौटकर आऊँगा कि नहीं
कुछ पता नहीं
लौटकर आया भी तो
न मैं इन्हें पहचानूँगा, न ये मुझे
तुम नम्र होकर इनके पास जाओगे
इनसे बोलोगे, बतियाओगे
तो तुम्हें लगेगा, ये सब तुम्हारे ही हैं
तुम्हीं में धीरे–धीरे उतर रहे हैं
और तुम्हारे अनजाने ही तुम्हें
भीतर से भर रहे हैं।

मेरा क्या
भर्त्सना हो या जय–जयकार
कोई मुझ तक नहीं पहुँचेगी।।

–डॉ. रामदरश मिश्र

महत्वपूर्ण प्रकाशनों के लिए सम्पर्क करें

मूल्य–₹100

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र.
दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
उत्तर प्रदेश के समस्त जिला सूचना कार्यालय

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. स्वत्वाधिकारी के लिए विशाल सिंह, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ द्वारा प्रकाशित तथा
प्रकाश एन. भार्गव, प्रकाश पैकेजर्स, लखनऊ द्वारा मुद्रित